इस उपन्यास की नायिका 'शान्तला' भारतीय इतिहास की एक ऐसी अनुपम और अद्भुत पात्र है जिसकी कीर्ति कर्नाटक के शिलालेखों में अनेक विशेषणों से उत्कीर्ण है—'लावण्य सिन्धु', 'संगीत-विद्या-सरस्वती', 'मृदु-मधुर-वचन-प्रसन्ना', गीत-वाद्य-नृत्य-सूत्रधारा' आदि। होय्सल राजवंश के महाराज विष्णुवर्धन की पट्टरानी शान्तला को केन्द्र में रखकर श्री नागराजराव ने एक ऐसे विशाल उपन्यास की रचना की है जिसमें 200 ऐतिहासिक पात्र राजवंश की तीन पीढ़ियों की कथा को देश और समाज के समूचे जीवन-परिवेश की पृष्ठभूमि में प्रतिबिम्बित करते हैं। लेखक पुरस्कृत साहित्यकार तो हैं ही, इनके परिपक्व अनुभव के अन्य आयाम हैं— अनुसंधान, अभिनय, चित्र-पटकथा, शिल्पन, आन्दोलन-संचालना आदि।

सर्जनात्मक प्रतिभा का इतना सघन वैभव लेकर नागराजराव ने अपने पच्चीस वर्ष के ऐतिहासिक अनुसंधान और आठ वर्ष की लेखन-साधना को प्रतिफलित किया है—'शान्तला' के 2000 से अधिक पृष्ठों में। प्रत्येक पृष्ठ रोचक, प्रत्येक पात्र जीवंत, *कथा का प्रत्येक चरण प्रत्येक घुमाव मन को बाँधने* वाला। बहुत कम शिल्पी ऐसे होते हैं जो कथा के इतने बड़े फलक पर मानव-अनुभूति के खरे और खोटे विविध पक्षों को इतने सच्चे और सार्थक रंगों से चित्रित करें कि कृतित्व अमरता प्राप्त कर ले।

शान्तला का चरित्र भारतीय संस्कृति की प्राण-धारा के स्रोत की गंगोत्री है। पट्टरानी शान्तला ने षड्यंत्रों के चक्रव्यूह को भेद कर जिस संयम, शालीनता, उदारता, और धार्मिक समन्वय का उदाहरण प्रस्तुत किया है उसको हमारे आज के राष्ट्रीय जीवन के लिए विशेष सार्थकता है।

उपन्यास का मुख्य गुण है रोचकता; ऐतिहासिक परिवेश का मुख्य आकर्षण है इसकी प्रामाणिकता। आप यह खण्ड पढ़ेंगे तो प्रतीक्षातुर होंगे अगले तीन खण्डों के लिए जो भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशनार्थ क्रमशः नियोजित है।

समर्पण

साहित्य में अभिरुचि रखनेवाले

उन अनेक-अनेक वस्तुनिष्ठ सहृदय-पाठकों को....

आत्मकथन

(मूल कन्नड़ संस्करण से)

मैंने 1933 में श्रवणबेलगोल, हलेबिड़, बेलूर को पहली बार देखा। वह भी हम सात मित्र जेब में दो-दो रुपये रखकर साइकल पर एक सप्ताह के प्रवास के लिए निकले, तब। गोमटेश्वर की भव्यता, हलेबिड के मन्दिरों का गाम्भीर्य, बेलूर के मन्दिर का कला-सौन्दर्य मेरे मन में बस गया था। बेलूर के गाइड श्री राजाराव ने बेलूर के मन्दिर के बारे में बहुत कुछ बताया था, लेकिन वह सब तब मेरे मस्तिष्क में नहीं ठहरा। उन स्थानों का स्मरण तो अवश्य ही कभी-कभी हो जाता था, परन्तु इतिहास के लिए वहाँ स्थान नहीं था।

1945 में मुझे पुनः सुअवसर मिला। चिक्कमगलूर कर्नाटक-संघ का कार्य-कलाप स्थगित-सा हो गया था। उस संघ में नयी चेतना भरने के लिए उद्यत 'कन्नड़ साहित्य परिषद्' की मैसूर प्रान्तीय समिति ने चिक्कमगलूर, बेलूर तथा हासन में भाषण आदि का कार्यक्रम नियोजित किया था। इस कार्य के लिए बेंगलूर से श्री डी. वि. गुंडप्पा के नेतृत्व में एक जत्था निकला। श्री गुंडप्पा के साथ सर्वश्री निट्टूर श्रीनिवास राव, मान्वि नरसिंगराव और यह लेखक थे। श्री डी. वि. गुंडप्पा अपनी 'अन्तःपुरगीत' पुस्तक में शिलाबालिकाओं के चित्र मुद्रित कराना चाहते थे। इसलिए साथ-साथ उन शिला-बालिकाओं के फोटो खिचवाने का भी काम था। दो दिन वहीं ठहरे। तब वहाँ के पुजारीसमुदाय के मुखियों में एक श्रीमुत्तुभट्ट से डी. वि. गुंडप्पा आदि वरिष्ठ जनों ने जो विचार-विनिमय किया उससे मेरे मन में एक विशेष अभिरुचि पैदा हो गयी।

इस बार यह चर्चा मेरे मन में पैठ गयी। शान्तला और जकणाचारी के बारे में मेरा कुतूहल बढ़ चला। विषय-सामग्री संग्रह करने की दृष्टि से मैं उस दिशा में प्रयत्न करने लगा।

1947 में मैं कन्नड़ साहित्य परिषद् का मानद सचिव चुना गया। यह मेरे लिए एक गर्व की बात थी। तब तक मेरी सात-आठ पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी थीं। प्रसिद्ध साहित्यकारों में मेरी गिनती होने लगी थी। 1942 की जनगणना रिपोर्ट में, 1931-42 दशक में कन्नड़ साहित्य की अभिवृद्धि के कारणकर्ता के इने-गिने नामों में मेरा भी नाम था। यह मेरे लिए और भी गौरव की बात थी।

जब मैं कन्नड़ साहित्य परिषद् का मानद सचिव हुआ तब मुझे कर्नाटक के इतिहास के बारे में, कन्नड़ साहित्य के इतिहास के बारे में या महाकाव्य एवं कवियों के बारे में पर्याप्त ज्ञान नहीं था। स्वभावतः पीछे हटने की प्रवृत्ति का मैं नहीं हूँ। हाथ में लिये हुए को साधित कर फल पाने की निष्ठा अवश्य रखता हूँ। उस स्थान के योग्य ज्ञानार्जन हेतु मैं लेखन को कम कर, अध्ययन तथा ज्ञानाभिवृद्धि में लग गया। यों जब मैं ज्ञानार्जन में लगा था तब ही बेलूर में, 1952 में, कन्नड़ साहित्य सम्मेलन सम्पन्न हुआ।

परिषद् का मानद सचिव होने के कारण मुझ पर काफी जिम्मेदारी थी। उस कार्य के लिए बेलूर कई बार जाना पड़ा था। इतना ही नहीं, सम्मेलन से पूर्व दो-तीन सप्ताह तक वहीं ठहरना पड़ा था। तभी मुझे बेलूर एवं पोय्सलों के इतिहास के बारे में विशेष आकर्षण हुआ। शान्तला एवं जकणाचारी के विषय में मेरा भीतरी आकर्षण और तीव्र हो गया।

अभी तक यह धारणा थी कि शान्तला बन्ध्या थी, अध्ययन में लग जाने के बाद मुझे लगा कि शान्तला का सन्तान-राहित्य और आत्महत्या दोनों गलत हैं। लेकिन गलत सिद्ध करने के लिए तब मेरे पास पर्याप्त प्रमाण नहीं थे। केवल मेरी भावना बलवती हो चली थी। मेरे उस अभिप्राय के सहायक प्रमाणों को ढूंढ़ने के लिए मुझे समूचे पोय्सल इतिहास के एवं तत्कालीन दक्षिण भारत के इतिहास के ज्ञान की अभिवृद्धि करनी पड़ी।

अध्ययन करते समय शिक्षा विभाग के मेरे अधिकारी मित्र का आग्रह था, "जकणाचारी के विषय में 250 पृष्ठों का एक उपन्यास क्यों नहीं लिख देते? इस क्षेत्र में आपने परिश्रम तो किया ही है। पाठ्य-पुस्तक के रूप में सम्मिलित करा लिया जायेगा।" इधर धनार्जन की आवश्यकता तो थी ही, इसलिए झटपट 1962 में, सितम्बर-अक्तूबर में, एक सौ पृष्ठ लिख डाले। इसी बीच मुझे 'शान्तला बन्ध्या नहीं थी' सिद्ध करने के लिए दृढ़ प्रमाण भी मिल गये और तुरन्त मेरा मन उस ओर लग गया। उक्त उपन्यास का लेखन फिर वहीं रुककर रह गया। बाद के कुछ वर्ष पर्यनुशीलन में बीते। फलस्वरूप मुझमें यह सिद्ध करने की क्षमता जुट गयी कि शान्तला के तीन पुत्र और एक पुत्री थे। मैंने एक गवेषणात्मक लेख लिखा। वह मिथिक सोसाइटी की त्रैमासिक पत्रिका के 1967 के 59वें अंक में प्रकाशित हुआ।

मैसूर विश्वविद्यालय के इतिहास के स्नातकोत्तर विभाग द्वारा 'पोय्सल वंश' विषय पर आयोजित संगोष्ठी में आमन्त्रित प्रतिनिधि के नाते मैंने इसी विषय को फिर एक बार प्रामाणिक तथ्यों के साथ प्रस्तुत किया। 'होय्सल डाइनेस्टी' (Hoysala dynasty) ग्रन्थ में मेरे उस लेख को प्रकाशित किया गया।

गवेषणा भी एक धुन है। जिस किसी को वह लग जाय तो आसानी से नहीं छूटती। इसी धुन का ही फल था कि 'महाकवि लक्ष्मीश का स्थल और काल' नामक ग्रन्थ की रचना के लिए कर्नाटक साहित्य आकादमी ने मुझे सम्मानित किया।

इतना सब बताने का उद्देश्य यही है कि प्रस्तुत उपन्यास की रचना के लिए मूल सामग्री जुटाने में ही मेरी बहुत अधिक शक्ति और समय लग गया। इसके *लेखन का प्रारम्भ 18 सितम्बर, 1968 को हुआ था और परिसमाप्ति 25* दिसम्बर, 1976 को। जकणाचारी के सम्बन्ध में 1962 में लिखित लगभग सौ पृष्ठ भी इसी उपन्यास में सम्मिलित हैं। इन आठ वर्षों में इस उपन्यास का लेखन केवल 437 दिनों में हुआ। कुछ दिन दो ही वाक्य, कुछ दिन केवल आधा पृष्ठ, तो कुछ दिन तीन-चार पृष्ठ और कुछ दिन तो पन्द्रह-बीस पृष्ठ भी लिख गया। बीच-बीच में महीने-के-महीने भी निकल गये, पर कुछ भी नहीं लिखा जा सका।

अनावश्यक मानने योग्य एक प्रश्न को, जिसे दूसरे भी मुझसे पूछ सकते थे, अपनेआप से किया : कन्नड़ में शान्तला देवी के बारे में अब तक तीन-चार उपन्यास आ चुके हैं तो फिर यह उपन्यास क्यों?

मुझे यह भास हुआ कि इस समय एक ऐसे बृहद् उपन्यास की आवश्यकता है। और फिर, मेरी गवेषणा के कतिपय अंश पिछले उपन्यासों में नहीं आ सके थे। मुझे तो ऐतिहासिकांश ही कल्पितांशों से प्रधान थे। तथ्यपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करने पर सत्य के समीप की एक भव्यकल्पना का निरूपण किया जा सकता है—यह मेरा विश्वास है।

यह उपन्यास शान्तलादेवी के जीवन के चालीस वर्षों की घटनाओं से सम्बद्ध है। शान्तला देवी का परिपूर्ण व्यक्तित्व हमें अनेक शिलालेखों एवं ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है। उनमें सूचित शान्तलादेवी के गुणी व्यक्तित्व और कृतित्व को उजागर करनेवाले कतिपय विशेषण इस प्रकार हैं—

सकलकलागमानूने, अभिनवरुक्मिणीदेवी, पतिहितसत्यभामा, विवेकैकबृहस्पति, प्रत्युत्पन्नवाचस्पति, मुनिजनविनेयजनविनीता, पतिव्रताप्रभावसिद्धसीता, शुद्धचरित्रा, चतुस्समयसमुद्धरणकरणकारणा, मनोजराजविजयपताका, निजकलाभ्युदयदीपिका, गीतवाद्यनृत्यसूत्रधारा, जिनसमयसमुदितप्रकारा, आहाराभयभेषजशास्त्रदाना, सकलगुणगणानूना, व्रतगुणशीला, लोकैकविख्याता, पुण्योपार्जनकरणकारणा, सौतिगन्धहस्ति, जिनधर्मकथाकथनप्रमोदा, जिनधर्मनिर्मला, भव्यजन-

वत्सला, अगण्यलावण्यसम्पन्ना, जिनगन्धोदकपवित्रीकृतोत्तमांगा, मृदुमधुरवचन प्रसन्ना, पंचलकार (वस्तु, शिल्प, साहित्य, चित्र, संगीत—ये ही 'ल'—ललित-कलापंचक है) पंचरत्नयुक्ता, संगीतविद्यासरस्वती, अभिनवारुंधति, पतिहितव्रता, सर्वकलान्विता, सर्वमंगलस्थितियुता, सर्वजीवहिता, भरतागमद तिरूनिमल्नुभय-क्रमनृत्य-(परिणता), लावण्यसिंधु, भरतागमभवननिहितमहनीयमतिप्रदीपा, दया-रसामृतपूर्णा, अनूनदानाभिमानि, विचित्रनर्तनप्रवर्तनपात्रशिखामणि, सकलसमय-रक्षामणि, संगीतसंगतसरस्वती, सौभाग्यसीमा, विशुद्धाचारविमला, विनयविनम-द्विलासिनी, सदर्थसरससमयोचितवचनमधुरसस्यंदिवदनारविंदा, सम्यक्त्वचूड़ा-मणि, विष्णुनृपमनोनयनप्रिया, विधेयमूर्ति, परिवारपदलितकल्पितकुजशाखा, संगीत-विद्यासरस्वती, कदंबलंबालकालवितचरणनखकिरणकलापा, विष्णुपिंद में भूमिदेवते, रणव्यापारदोल् वल्गदेवते, जनकेल्ल पुण्यदेवते, विद्येयोल् वाग्देवते, सकलकार्यो-द्योगदोल् मंत्रदेवते…"

कोई सन्देह नहीं कि वह अनेक विषयों में पारगत तथा प्रतिभासम्पन्न थी। मात्र रानी होने से ही उसे उपर्युक्त विशेषण, विरुद प्रशंसा नहीं मिली थी, अन्यथा कर्नाटक की सभी रानियों को क्यों नहीं इस विरुदावली से निरूपित किया गया? पट्टमहादेवी शान्तला में निश्चित ही ये योग्यताएँ रही होंगी।

शान्तला एक साधारण हेग्गड़े (ग्राम प्रमुख) की पुत्री थी। लेकिन अपने विशिष्ट गुणों के कारण वह पट्टमहादेवी बन गयी थी। अगर उपर्युक्त विशेष गुण उसमें नहीं रहे होते तो वह उस स्थान को कैसे सुशोभित कर पाती! उसका व्यक्तित्व निश्चित ही अपने आप में अद्भुत रहा होगा। उसकी विद्वत्ता, ज्ञान, संयम, मनोभावना सभी कुछ विशेष हैं। उसका औदार्य, कलाकौशल एवं सर्वमतदर्शित्व—सभी कुछ सराहनीय।

फिर, उसकी धर्मसमन्वय की दृष्टि भी विशिष्ट रही आयी। पिता शुद्ध शैव, तो माता परम जिनभक्त। वह भी माता की भाँति जिनभक्ति-निष्ठ। विवाह करने-वाला जिनभक्त रहकर भी मतान्तर स्वीकार किया हुआ विष्णु-भक्त। ऐसी परिस्थिति में भी समरसता बनाये रखनेवाला संयम तथा दृढ़निष्ठा कितने लोगों में रह पाती है? सच तो यह है कि शान्तला का व्यक्तित्व उसका अपना व्यक्तित्व था।

उसके जीवन के चारों ओर बाल्य से सायुज्य तक, उस समय की कला, संस्कृति शिल्प, धर्म, साहित्य, जन-जीवन, राजकारण, आर्थिक परिस्थिति, षड्यन्त्र, स्पर्धा, मानवीय दुर्बलताओं का आकर्षण, चुगलखोरी, राष्ट्रद्रोह, राष्ट्रनिष्ठा, व्यक्तिनिष्ठा, युद्ध, भयंकर स्वार्थ, अन्धश्रद्धा आदि अनेकमुखी बन व्यापक होकर खड़े थे। विभिन्नता और वैविध्य से भरे थे। उन वैभिन्न्य और वैविध्यों में एकता लाने का प्रयास मैंने इस उपन्यास में किया है। साथ ही, वास्तविक मानवीय मूल्यों का भी

ध्यान रखा गया है, फलतः लौकिक विचारों के प्रवाह में पारलौकिक चिन्तन भी अन्तर्वाही हो आया है।

जकणाचारी ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं थे, ऐसा भी एक मत है। जकण नामक शिल्पी था, इसके लिए प्रमाण हैं। यह उस नाम के शिल्पियों के होने का प्रमाण है न कि इस उपन्यास से सन्दर्भित काल में उसके रहने का। लेकिन जकण और डंकण के जीवन की कथा सात-आठ सदियों से जन-समूह में प्रसारित होती आयी है। इसके साक्षीभूत कप्पे (मण्डूक) चन्निगरायमूर्ति वेलूर में है। हमारे पूर्वजों ने अपने सच्चे इतिहास को सप्रमाण संरक्षित रखने की दृष्टि से शायद विचार नहीं किया होगा। इसीसे हमें आज कितनी ही लोकगाथाओं में ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिल पाते। आज हमें अपने पूर्वजों के बारे में, शिलालेख तथा ताम्रलेखों द्वारा अनेक बातों का पता चलता है। यद्यपि साहित्यिक कृतियों में भी कुछ-न-कुछ सम-सामयिक तथ्य मिल जाते हैं, पर उनकी पूरी प्रामाणिकता हमें नहीं मिल पा रही हैं। विष्णुवर्धन की पत्नियों में एक—लक्ष्मीदेवी के माँ-बाप वंश आदि के बारे में ज्ञात नहीं हो सका है। शान्तला के माँ-बाप के बारे में, रानी बम्मलदेवी के विषय में, रानी किरिय शान्तला (इस उपन्यास में उसका आगमन नहीं हुआ है) के सम्बन्ध में, अथवा रानी राजलदेवी के विषय में पर्याप्त साधन मिल जाते हैं, लेकिन लक्ष्मीदेवी के बारे में नहीं। उसके गर्भ से उत्पन्न पोय्सल के सिंहासनारोहण होने से उसका नाममात्र मालूम हो रहा है। अन्य बातों का पता नहीं मिल पा रहा है। लेकिन इससे एक व्यक्ति के रहने के बारे में प्रमाण नहीं मिले तो, उसका अस्तित्व ही नहीं, ऐसा मत व्यक्त करना कहाँ तक न्याय्य है?

यह उपन्यास है। इतिहास का अपोह किये बिना रसपोषण के लिए अनेक पात्रों की उद्भावना आवश्यक हो जाती है। जकण-डंकण की लोक-गाथाओं में उपर्युक्त मानवीय मूल्य भरे पड़े हैं, इसीलिए उन शिल्पाचार्यों को यहाँ लिया गया है। उपन्यासकार होने के नाते मैंने वह स्वातन्त्र्य अपनाया है। और भी अनेक आलेखों में उल्लिखित शिल्पियों को यहाँ लिया गया है।

इस उपन्यास में करीब दो सौ शिलालेखों, ताम्र-पत्रों एवं ताड़-पत्रों में उल्लिखित ऐतिहासिक पात्र आये है। वैसे ही लगभग 220 कल्पित पात्र भी है। इन सबमें लगभग 65 तो शिलालेखादि में उल्लिखित पात्र और लगभग 30 कल्पित पात्र मुख्य है।

ऐतिहासिक प्रमाणों में न रहनेवाली अनेक घटनाओं की भी यहाँ कल्पना की गयी है। उपन्यास होने से एवं अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत होने से भी, पाठकों की अभिरुचि को अन्त तक बनाये रखना आवश्यक था। वह सब कल्पना से ही साध्य था। जहाँ तक मैं समझता हूँ, मेरी यह रचना पाठकों को रुचिकर लगेगी, उन्हें तृप्ति देगी।

इसकी घटनाएँ कर्नाटक के अनेक तब और अब के प्रमुख स्थानों से सम्बद्ध हैं। उनमें से कुछेक हैं—वेलुगोल (श्रवण बेलुगोल), शिवगंगा (कोडुगल्लु ब्रसव), सोसेऊरु (अंगडि), वेलापुरी (बेलूर), दोरसमुद्र (हलेवीडु), यादवपुरी (तोण्णूरु), यदुगिरि (मेलुकोटे), बलिपुर (बल्लिगावे बेलगांवि), कोवलालपुर (कोलार), क्रीडापुर (कैदाल), पुलिगेरे (लक्ष्मेश्वर), हानुंगल्लु, बंकापुर, तलकाडु, कंची, नंगलि, धारा इत्यादि।

परमार, चालुक्य, चोल, कोंगाल्व, चेंगाल्व, आलुप, सान्तर, उच्चंगिपाण्ड्य, कदम्ब आदि पड़ोसी राज्यों के साथ के युद्ध, उस समय अनुसरण किये हुए युद्धतन्त्र भी इसमें सम्मिलित हैं।

जीर्णोद्धार हुए यादवपुरी के लक्ष्मीनारायण, यदुगिरि के चलुवनारायण, दोड्डगड्डुवल्लि की महालक्ष्मी, क्रीडापुर के केशवदेव ग्राम के धर्मेश्वर, मन्दिर, वेलुगोल की अँधेरी बसदि तथा शान्तिनाथ बसदि, पनसोगे की पार्श्वनाथ बसदि, वेलापुरी के चन्नकेशव मन्दिर, दोरसमुद्र के होयसलेश्वर-शान्तलेश्वर, यमलशिवालय पोय्सल शिल्प के लिए पर्याप्त निदर्शन हैं।

यह उपन्यास, यद्यपि ग्यारहवीं शती के अन्तिम दशक से आरम्भ होकर बारहवीं शती के चौथे दशक के आरम्भ तक के, गतकाल के जन-जीवन को समग्र-रूप से निरूपण करने की, कालक्रम की दृष्टि से एक रीति की परिसर भावनाओं के लिए सीमित वस्तु की रचना है, फिर भी सार्वकालिक शाश्वत, विश्वव्यापी मानवीय मूल्यों की समकालीन प्रज्ञा को भी इसमें अपनाया गया है।

बेलूर साहित्य-सम्मेलन के सन्दर्भ में मुझे अनेक सुविधाएँ देकर, वहाँ मेरे मुकाम को उपयुक्त एवं सन्तोषपूर्ण बनाने वाले मित्रों को इस सुअवसर पर स्मरण करना मेरा कर्तव्य है। तब बेलूर नगर-सभा के अध्यक्ष, एवं साहित्य सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष रहनेवाले श्री एस. आर. अश्वत्थ, सदा हँसमुख श्री चिदम्बर श्रेष्ठि, साहित्य एवं सांस्कृतिक कार्यों में अत्यन्त रुचि रखने वाले वकील श्री के. अनन्त रामय्या, वाणी खड्ग जैसी तीक्ष्ण होने पर भी आत्मीयता में किसी से पीछे न रहनेवाले श्री एच. पी. नंजुंडय्या, वहाँ के हाई स्कूल के पण्डित (अब स्वर्गवासी) रामस्वामी अय्यंगर आदि ने इस कृति की रचना में कितनी ही सहूलियतें दी हैं।

तोण्णूर (उस समय की यादवपुरी) अब खेड़ा है। यह पाण्डवपुर से छः मील दूर है। वहाँ जाकर आँखों देख आने की अभिलाषा से पांडवपुर जाकर मित्र श्री समेतनहल्ली रामराव के यहाँ अतिथि रहा। तब वे शकुन्तला काव्य रच रहे थे। कस्बा इलाका रेवेन्यू अधिकारी (Revenue Inspector) श्री सी. एम. नरसिंह मूर्ति (प्यार का नाम 'मधु') ने समय निकालकर मेरे साथ साइकल पर तोण्णूर आकर सर्वे करने में मेरी सहायता की। इसी तरह तलकाडु वैद्येश्वर मंदिर के पुजारी श्री दीक्षित, मेलुकोटे (उस समय की यदुगिरि) के श्री अनन्त नारायण

अय्यंगर भी उन-उन स्थानों को देखने में सहायक बने। उसी तरह बादामी के दर्श
हेतु मापाकार श्री बिंदुमाधव; सवर्तुद्वि के गर्व हेतु मित्र श्री कमलाक्ष कामत, तथ
श्री कट्टी मठ, बल्लिगावे (उस समय का बलिपुर) को संपूर्ण रूप से देखने ं
मेरे आत्मीय मित्र एवं गह-नट शिकारिपुर के श्री नागेशराव का पूरा-पूरा सहयो
प्राप्त हुआ। इन सबके प्रति मेरा बहुत-बहुत आभार।

18-19 वर्षों से कर्नाटक लेखक संघ में, मिथिक सोसाइटी आदि संस्थाओं ं
मेरे साथ रहकर मेरे संशोधन कार्य में प्रोत्साहन देनेवाले मित्र श्री एस. वि. कृष्ण
मूर्ति, श्री सी. मु. सुब्रह्मण्य, श्री टी. एन. शेषाद्रि श्री के. एस. मूर्तिवेने (इस
जनवरी में हमसे बिछुड़ गये) इनको, मेरे सभी कार्यों में आत्मीय भावना रे
सहायता करनेवाले श्री एन. जि. शितिकंठ शर्मा को स्मरण करना मेरा प्रथम
कर्तव्य है। यह सारा सहयोग ही तो मेरी कृतिरचना का मूल है।

इसे मुद्रण के लिए देने पाण्डुलिपि तैयार करने का कार्य भी मुख्य था। परि
स्थितियाँ कैसे बदली हैं इसके लिए एक छोटा-सा उदाहरण दूँ—1937 में मेरे
प्रथम कथा-संग्रह 'काडुमल्लिगे' प्रकाशित हुआ। मात्र 72 पृष्ठों की पुस्तक
उसकी एक हजार प्रतियों के लिए सारा खर्च, कागज, कम्पोजिंग, मुद्रण और
बाईडिंग मिलाकर, 75 रुपये मात्र। अब 1977 में इस उपन्यास की पाण्डुलिपि
तैयार करने के लिए खरीदे हुए कागज का दाम 77 रुपये। मेरे चालीस वर्ष वे
पुस्तक-जगत् के जीवन का यह परिवर्तन है। कैसी महती प्रगति है यह ?

इसकी हस्तप्रति करने का काम, आलस्य के बिना, उत्साह से अपने में बाँट-
कर मेरे पुत्र-पुत्री, सौ. शोभा, सौ. मंगला, सौ. गीता, सौ. शांभवी, कुमारी राज-
लक्ष्मी तथा कुमार गणेश ने किया है। और मुद्रण के प्रूफ संशोधन के काम में
भी सहायता की है। उनकी सहृदयता का स्मरण कर उनके प्रति शुभकामना
करता हूँ।

हस्तप्रति सिद्ध होने पर भी उसका प्रकाशन-कार्य आसान नहीं। उपन्यास
का स्वरूप सुनकर ही प्रकाशकों का उत्साह पीछे हट गया। किस-किसने क्या-
क्या प्रतिक्रिया जतायी यह अप्रकृत है। इस उपन्यास का मुद्रण प्रकृत है। यह कैसे
होगा ? इस चिन्ता में रहते समय मुझे उत्साहित कर प्रेरणा देनेवाले थे—कैनेडा में
रहने वाली मेरी पुत्री सौ. उषा तथा जामाता चि. डॉ. बि. के. गुरुराजराव।
उनके प्रोत्साहपूर्ण अनुरोध से मैंने इस उपन्यास का प्रकाशन कार्य स्वयं करने का
निर्णय किया। आर्थिक सहायता के लिए प्रयत्न किया। एक संस्थान ने सहायता
मिलने की संभावना सूचित कर, मुद्रण कार्य प्रारम्भ करने के लिए भी प्रोत्साहित
कर चार महीनों के बाद सहायता न कर पाने के अपने निर्णय से सूचित कर
दिया। भँवर में फँस जाने जैसी हालत थी। आगे जाना अशक्य था, पीछे हटना
आत्मघात था।

ऐसी विषम परिस्थिति में मेरी प्रार्थना स्वीकार कर, मुझ पर भरोसा कर प्रकाशन-पूर्व चन्दा भेजनेवालों को मैं क्या उत्तर दे सकता था ? उनके बारे में मेरे हृदय में कृतज्ञता भरी थी । लेकिन कृतघ्न बनने का समय आ गया था ।

मेरा प्रयत्न प्रारंभ से ही श्रद्धापूर्ण था, सत्यनिष्ठ था । मैंने अपने कुछ मित्रों से परिस्थिति का निवेदन किया । श्री एच. एस. गोपालन, श्री रामराव, श्री एम. के. एस. गुप्त, मेरा पुत्र चि. एन. गणेश आदियों ने मुद्रण कार्य न रुकने में मेरी सहायता की । अन्त में, केनरा बैंक से आर्थिक सहायता भी मिल गई ।

आत्मीय भावना से सलाह देने के साथ आकर्षक रक्षा कवच को सुन्दर ढंग से तैयार कराकर मुद्रण कर देने वाली 'रचना' सस्था के श्री सि. आर. राव और उस सस्था के कलाकार श्री कुलकर्णी का मैं आभारी हूँ । इस उपन्यास की घटनाओं के स्थानों का परिचय पाठकों को कराने के अभिप्राय से नक्शा तैयार करने में, मेरे पुत्र चि. सर्वेश, दामाद श्री चि. राजकुमार और श्री के. एम. अनन्तस्वामी ने मेरा हाथ बँटाया है । उनके प्रति शुभकामना ज्ञप्ति मेरा कर्तव्य है ।

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने वास्तु शिल्प चित्रों को देकर उनका उपयोग करने की अनुमति दी है । मैं उनका कृतज्ञ हूँ ।

कन्नड़ का यह उपन्यास 2000 पृष्ठों वाला होने की आशा थी । लेकिन 2240 से भी अधिक हो गया । इसको चार ही महीनों में सुचारु रूप से मुद्रण करने वाले इला प्रिंटर्स की श्रीमती विजया और उनके कर्मचारी वर्ग का भी मैं आभारी हूँ ।

मुद्रण कार्य प्रारम्भ होने के बाद अचानक कागज़ का अभाव ! दाम बढ़ गया था । पृष्ठ भी इतने अधिक ! इससे भी प्रकाशन में कुछ देरी हुई । तथापि अधिक देरी न हो, इस उद्देश से मुझे कागज़ देनेवाले एक्सेल पेपर मार्ट के श्री गुप्त का मैं कृतज्ञता पूर्वक स्मरण करता हूँ ।

मेरा प्रार्थना-पत्र मिलते ही, प्रकाशन पूर्व चन्दा भेजनेवाले साहित्यासक्त सहृदयों का, संघ-संस्थाओं का, एवं इस दिशा में सहयोगी अन्य अपने मित्रवर्ग का भी मैं कृतज्ञ हूँ ।

उपन्यास के पात्रों की कल्पना सुलभ है । लिखते समय ही नवीन आलोचनाएँ आ जाती हैं । उनके भँवर में फँसकर बाहर आने में मुझे जो सहायता मिली उनके अनेक स्वरूपों को, व्यक्तियों को देखने पर अनुभव में आये हुए आत्मीयता के अनेक मुख तो कल्पनातीत है ।

पिंगल संवत्सर श्रावण शुद्ध द्वादशी
बेंगलोर, 6 मार्च, 1978.

सी. के. नागराजराव

लेखकीय

(प्रस्तुत संस्करण के संदर्भ में)

भारतीय भाषाओं के साहित्य के इतिहास को जाननेवाले किसी भी व्यक्ति को यह एक इन्द्रजाल-सा मालूम होगा। एक कन्नड का उपन्यास, वह भी कन्नड़ में प्रकट हुए तीन ही वर्षों में हिन्दी में प्रकट हो रहा है, यह आश्चर्य की बात तो है ही। इस आश्चर्यकर घटना के लिए कारणीभूत साहित्यासक्त सहृदयों को मनसा स्मरण करना मेरा प्रथम कर्तव्य है।

'पट्टमहादेवी शान्तला' कन्नड़ में जब प्रकाशित हुआ तो थोड़े ही समय में सभी वयोवस्था के, सभी स्तर के, सभी वर्ग के सामान्य एवं बुद्धिजीवियों की प्रशंसा का पात्र बन गया। उस प्रशंसा का परिणाम ही, इसके हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन माना जाय तो शायद कोई गलती नहीं होगी। मुझ से सीधे परिचित न होने पर भी इस कृति को पढ़कर सराहनेवाले डॉ. आर. एस. सुरेन्द्र जी, उनके बन्धु एवं मित्रवर्ग की सहानुभूति के फलस्वरूप इस कृति को हिन्दी में लाने की इच्छा से सम्मान्य श्री साहू श्रेयांस प्रसाद जैन से परिचय कराया। इस उपन्यास को पढ़कर इस में रूपित शान्तलादेवी के व्यक्तित्व से आकृष्ट होकर, इसे हिन्दी में अनुवाद करने की तीव्र अभिलाषा रखने वाले मेरे वृद्ध मित्र श्री पि. वेंकटाचल शर्मा भी परिचय के समय अचानक साथ थे। इस परिचय और सन्दर्शन के फलस्वरूप ही, भारतीय ज्ञानपीठ इसके प्रकाशन के लिए इच्छुक हुआ।

भारतीय ज्ञानपीठ, के निर्देशक श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन से मेरा पहले से परिचय रहा है। किन्तु वर्षों से सम्पर्क न होने से जैसे एक-दूसरे को भूल-से गये थे। यह रचना तुरन्त पुरानी मैत्री को नया रूप देकर हम दोनों को पास लायी। और वह आत्मीयता इस बार स्थायी बन सकी। प्रकाशन के कार्य भार को सीधे वहन

करनेवाले भारतीय ज्ञानपीठ के भूतपूर्व कार्यसचिव डा. विमलप्रकाश जैन मुझसे बिलकुल अपरिचित थे। सम्मान्य श्री साहू श्रेयांस प्रसाद जैन की इच्छा के अनुसार उन्होंने मुझसे स्वयं पत्रव्यवहार प्रारम्भ किया। सहज साहित्याभिरुचि, सूक्ष्मगुणग्रहणशक्ति के कारण उन्होंने इसके हिन्दी अनुवाद को पढ़कर वस्तु-विन्यास, पात्र-निर्वहण, निरूपण-तंत्रों से आकृष्ट होकर इसमें गौरव दर्शाया। और वही गौरव मुझे भी दर्शाकर वे इस प्रकाशन कार्य में हृदय से तत्पर हुए थे। डॉ. वि. प्र. जैन के बाद, वर्तमान में भारतीय ज्ञानपीठ के कार्य सचिव का स्थान कवि श्री बालस्वरूप राही ने ग्रहण कर लिया है। वे और ज्ञानपीठ के प्रकाशन विभाग के अधिकारी डॉ. गुलाबचन्द्र जैन दोनों ने त्वरित मति से इस ग्रन्थ के प्रकाशन कार्य में विशेष रुचि दिखायी। उनसे सभी तरह का सहयोग प्राप्त हो रहा है। उनके लिए मेरा आभार ज्ञापन।

श्रवणबेलुगोल के श्री जैन मठ के पीठाधिपति श्री चारुकीर्ति भट्टारक स्वामी जी ने यद्यपि सीधा मुझे कुछ नहीं बताया, न ही लिखा, व्यक्तिगत परिचय का अवसर भी नहीं आया, तो भी मेरी कन्नड़ रचना को पढ़कर, परोक्ष में ही उसकी प्रशंसा श्री साहू श्रेयान्सप्रसाद जी के समक्ष प्रकट की। यह इस रचना के लिए उनसे प्राप्त शुभाशीर्वाद मानता हूँ।

हिन्दी अनुवाद के कार्य को अपनी इस आयु में (पचहत्तर के करीब) बहुत ही आत्मीयता से, अपने स्वतः के कार्य के जैसे श्रद्धासक्ति से करनेवाले श्री वि. वेंकटाचल शर्मा जी का मैं कृतज्ञ हूँ। हस्तप्रति टाइप होकर, यथासंभव कम गलतियों से ज्ञानपीठ को पहुँचाना था। हिन्दी में टाइप करनेवाले श्री वेंकटरामय्य के सकालिक सहयोग का मैं आभारी हूँ। संभवनीय गलतियों को निवारण करने में कन्नड़ मूल रचना के साथ हिन्दी अनुवाद को तुलनाकर अवलोकन करने में, मेरे कन्नड़ भाषा के आत्मकथन तथा इस निवेदन को हिन्दी अनुवाद करने में एवं अनेक विधों में सदा के जैसे मेरे सभी कार्यों में हमेशा सहायता करनेवाले मेरे मित्र विद्वान श्री एच. जि. शितिकण्ठ शर्मा एम. ए. साहित्यरत्न का मैं कृतज्ञ हूँ।

ग्रंथ प्रकाशन में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से सहायता करनेवाले सभी जनों का मैं पुनः अभार मानता हूँ।

710, I 'वि' मुख्य मार्ग
7 ब्लॉक, बनशंकरी III स्टेज बेंगलूर
दुंदुभि सं. कार्तिक बहुल द्वादशी
12 दिसम्बर, 1982

इति,
सी. के. नागराजराव

पट्टमहादेवी शान्तला

भाग : एक

बाहरी बरामदे में शान्तला अपनी सखियों के साथ खेल रही थी। वह हठात् खेलना छोड़कर रास्ते की ओर भाग चली। रह गयीं तीन सखियाँ जो उसके साथ खेल रही थीं। उसका अनुसरण करती हुई भाग चलीं। अहाते की दीवार से सटकर खड़ी शान्तला पास आती हुई घोड़ों के टापों की ध्वनि सुनती, जिधर से आवाज़ आ रही थी उसी ओर नजर गाड़े खड़ी रही।

सखियों में से एक ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर पूछा, "क्या देख रही हो शान्तला?" शान्तला ने इशारे से चुप रहने को कहा। इतने में राज-पथ की ओर मुड़ते हुए दो घुड़सवार दिखायी दिये। घोड़े शान्तला के घर के अहाते के सामने रुके। सवारों की सज-धज देखकर सखियाँ चुपचाप खिसक गयीं।

रुके घोड़े हाँफ रहे थे। उनको फाटक पर छोड़कर अन्दर प्रवेश करते राजभटों की ओर देखकर शान्तला ने पूछा, "आपको किससे मिलना है?"

राजभट शान्तला के इस सवाल का जवाब दिये बिना ही आगे बढ़ने लगे।

शान्तला ने धृष्टता से पूछा, "जी! मेरी बात सुनी नहीं? यह हेग्गड़े का घर है। यों घुसना नहीं चाहिए। आप लोग कौन हैं?"

उस ढीठ लड़की शान्तला के सवाल को सुन राजभट अप्रतिभ हुए। आठ-दस साल की यह छोटी बालिका हमें सिखाने चली है? इतने में उन दो सवारों में से एक ने बालिका की तरफ़ मुड़कर कहा, "लगता है कि आप हेग्गड़ेजी की बेटी अम्माजी हैं। हम सोसेऊरु से आ रहे हैं। श्रीमान् युवराज एरेयंग प्रभु और श्रीमती युवरानी-जी एचल महादेवी ने एक पत्र भेजा है। हेग्गड़ेजी और हेग्गड़तीजी हैं न?"

"हेग्गड़ेजी नहीं हैं, आइए, हेग्गड़तीजी हैं," कहती हुई शान्तला बैठक की ओर चली। राजभटों ने उस बच्ची का अनुसरण किया।

महाद्वार पर खड़ी शान्तला ने परिचारिका गालब्बे को आवाज़ दी और कहा, "देखो, ये राजदूत आये हैं, इनके हाथ-पैर धुलवाने और जल-पान आदि की व्यवस्था करो।" फिर वह राजभटों को आसन दिखाकर, "आप यहाँ बिराजिए,

में जाकर माताजी को खबर दूँगी।" कहकर अन्दर चली गयी।

राजभट यन्त्रवत् बरामदे पर चढ़े और निर्देशानुसार गद्दी पर बैठ गये। राजमहल के ये भट पहले ही इस तरह के शिष्टाचार से परिचित तो थे ही। परन्तु इस तरह के शिष्टाचार का पालन यहाँ भी करना होगा, इसकी उन्होंने अपेक्षा नहीं की थी। एक साधारण हेग्गड़े की बालिका इस तरह का व्यवहार करेगी—इसकी उन्हें उम्मीद भी न थी। उस छोटी-सी बालिका का चलन-वलन, भाव-भंगी, संयमपूर्ण शिष्टाचार-व्यवहार और गाम्भीर्ययुक्त वाणी आदि देखकर वे बहुत प्रभावित हुए।

इतने में परिचारिका गालब्बे ने थाली में पनौटी, सरौता, गुड़, एक बड़े लोटे में पानी और दो गिलास लाकर उनके सामने रखे और कहा, "इसे स्वीकार कीजिए।" फिर स्वयं कुछ दूर हटकर खड़ी हो गयी।

उन भटों मे एक ने गुड़ की भेली तोड़कर मुँह में एक टुकड़ा डालते हुए पूछा, "हेग्गड़ेजी कहाँ गये हैं?"

परिचारिका गालब्बे ने उत्तर में कहा, "मालिक जब कहीं जाते हैं तो हम नौकर-चाकरों से बताकर जाएँगे?" उसके इस उत्तर में सरलता थी। कोई अवहेलना का स्वर नहीं था। राजभट आगे कुछ बोल न सके। उन्होंने गुड़ खाकर पानी पिया; पान बनाना शुरू किया। बीच-बीच में यह प्रतीक्षा करते हुए नौकरानी की ओर देखते रहे कि वह कुछ बोलेगी। तीन-चार बार भी उसकी तरफ़ देखने पर भी वह चुपचाप ज्यों-की-त्यों खड़ी रही।

इतने में परिचारिका गालब्बे को, इन दोनों राजभटों को अन्दर बुला लाने की सूचना मिली। उसने दोनों राजभटों से कहा, "हेग्गड़तीजी ने आपको अन्दर बुला लाने का आदेश भेजा है।"

निर्दिष्ट जगह पर पान की पीक थूक दोनों अन्दर चलने को तैयार हुए। परिचारिका दोनों को अन्दर ले गयी। मुख्य-द्वार के भीतर प्रवेश करते ही बड़ी बारहदरी थी, उसे पार कर अन्दर ही दूसरी बारहदरी में उन्होंने प्रवेश किया। वहाँ एक सुन्दर चित्रमय झूला था जिस पर हेग्गड़ती बैठी थीं। राजभटों ने अदब से झुककर प्रणाम किया।

हेग्गड़ती ने उन्हें कुछ दूर पर बिछी सुन्दर दरी की ओर संकेत करके "बैठिए" कहा।

राजभटों ने संकोच से झुककर विनीत भाव से पूछा, "हेग्गड़ेजी···" इन राजदूतों की बात पूरी होने से पहले ही हेग्गड़ती ने कहा, "वे किसी राजकार्य से बाहर गये हैं। कब लौटेंगे यह कहना कठिन है। यदि आप लोग उनके आने तक प्रतीक्षा कर सकते हैं तो ठहरने आदि की व्यवस्था कर दूँगी। आप लोग राजदूत हैं; आप कार्य-व्यस्त होंगे। हमें यह विदित नहीं कार्य कितना गम्भीर और महत्त्व

का है।"

राजभटों ने तत्काल जवाब नहीं दिया। वे हेग्गड़े के घर के व्यवहार में यों असाधारण ढंग देखकर जवाब देने में कुछ आगा-पीछा कर रहे थे।

इन राजदूतों के इस संकोच को देख हेग्गड़ती ने कहा, "संकोच करने की जरूरत नहीं। सोसेऊरु से आप लोग आये हैं, इससे स्पष्ट है कि आप लोग हमारे अपने हैं। परन्तु, आप लोग राजकाज पर आये हैं, मैं नहीं जानती कि कार्य किस तरह का है। यदि वह गोप्य हो तो आप लोगों को हेग्गड़ेजी के आने तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।"

"ऐसा कोई गोप्य विषय नहीं माताजी; फिर भी युवराज के संदेश को सीधे हेग्गड़ेजी से निवेदन कर सकने का अवकाश मिलता तो अच्छा होता। निश्चित रूप से यह मालूम होता कि वे कब तक लौटेंगे तो हमें कार्यक्रम निश्चित करने में सुविधा होती।"

"ऐसा कह नहीं सकती कि वे कब लौटेंगे। यदि आप लोगों को उनके दर्शन करने का भाग्य हो तो अभी इसी क्षण आ सकते हैं। नहीं तो पन्द्रह दिन भी लग सकते हैं।"

"तो हम एक काम करेंगे। हम जो पत्र वहाँ से लाये हैं, उसे आपको सौंपेंगे और श्रीमद्युवराज और युवरानीजी ने जो संदेश कहला भेजा है उसे आपसे निवेदन करेंगे। हम कल दोपहर तक हेग्गड़ेजी की प्रतीक्षा करेंगे। तब तक भी यदि वे न आयें तो हमें जाने की आज्ञा देनी होगी। क्योंकि हमें बहुत-से कार्य करने हैं। दस-बारह कोस दूर पर रहने के कारण आपको पत्र और संदेश पहुँचाना आवश्यक था जिससे आप लोगों को आगे का कार्यक्रम बनाने में सुविधा रहे। श्रीमान् युवराज का ऐसा ही आदेश है कि संदेश पहले आपको मिले।" यह कहकर राजमुद्रांकित खरीता राजभट ने हेग्गड़ती के समक्ष प्रस्तुत किया।

हेग्गड़ती माचिकब्बे ने खरीता हाथ में लेकर खोला और मन-ही-मन पढ़ा। बाद में बोली, "ठीक, बहुत संतोष की बात है। शुभ-कार्य सम्पन्न हो जाना चाहिए। इस कार्य में पहले ही बहुत विलम्ब हो चुका है। लेकिन अब तो सम्पन्न हो रहा है—यह आनन्द का विषय है।"

"अब क्या आज्ञा है?"

"जब तक हेग्गड़ेजी नहीं आते और विचार-विमर्श न हो तब तक मैं क्या कह सकती हूँ।"

बड़े राजदूत ने निवेदन किया, "आपका कहना ठीक है। फिर भी श्रीमान् युवराज एवं विशेषकर श्रीमती युवरानी जी ने बहुत आग्रह किया है। उन दोनों ने हमें आज्ञा दी है कि इस शुभ-कार्य के अवसर पर आप दोनों से अवश्य पधारने की विनती करें। श्रीमती युवरानी जी को आपके घराने से विशेष प्रेम

है।"

"यह हमारा अहोभाग्य। ऐसे उन्नत स्थान पर विराजनेवाले, हम जैसे साधारण हेगड़े के परिवारों पर विशेष अनुग्रह कर रहे हैं। यह हमारे पूर्व-पुण्य का ही फल है। और नहीं तो क्या? आप लोगों की बात-चीत और व्यवहार से ऐसा लगता है कि आप लोग उनके अत्यन्त निकटवर्ती और विश्वसनीय हैं।"

"माँजी, आपका कथन ठीक है। उनके विश्वास-पात्र बनने का सौभाग्य, हमारे पूर्व-पुण्य का ही फल है। हम भाग्यशाली हैं। मेरा नाम रेविमय्या है और मैं राजगृह का द्वारपाल हूँ। यह मेरा साथी है, इसका नाम गोक है। हम दोनों—राज-परिवार के अत्यन्त निकटवर्ती सेवक हैं। इसीलिए हमें आपके सम्मुख भेजा गया है। कुछ औरों को भी निमन्त्रण-पत्र भेजने हैं। औपचारिक निमन्त्रण-पत्र बहुत हैं जो भेजने को हैं। ऐसे पत्र हम जैसे और नौकर पहुँचा आएँगे। मगर युवराज का खुद का सन्देश उन अन्य निमन्त्रितों के लिए नहीं होता। जिन्हें इस शुभ अवसर पर रहना अत्यन्त आवश्यक है, उन्हीं के पास हम जैसों के द्वारा निमन्त्रण के साथ सन्देश कहला भेजते हैं। राजवंशियों का विश्वासपात्र बनना उतना आसान नहीं है, माताजी! विश्वास योग्य बनना कितना बड़ा सौभाग्य है—इसे मैं खुद अनुभव से समझ पाया हूँ।"

"बहुत अच्छा हुआ। अब आप लोग विश्राम कीजिए। बहुत थके होंगे। गालब्बे! लेंका से जाकर कहो कि इनके घोड़ों को घुड़साल में बाँधकर उनकी देख-रेख करे।

"बाहर के बरामदे के दक्षिण की ओर के कमरे में इन्हें ठहराने की व्यवस्था करो। ये राजपरिवार में रहनेवाले हैं, इनकी मेजबानी में कोई कसर न हो।"

हेगड़ती के आदेश के अनुसार व्यवस्था करने के लिए सब लोग वहाँ से चले। आदेशानुसार व्यवस्था कर राजदूतों को कमरे में छोड़कर गालब्बे लौटी। हेगड़ती माचिकब्बे ने पूछा, "शान्तला कहाँ है?"

"मैंने देखा नहीं, माताजी! कहीं अन्दर ही होंगी। बुला लाऊँ?"

"न, यों ही पूछ रही थी।"

गालब्बे चली गयी। हेगड़ती झूले से उठी और अपने कमरे में चली गयी। उसका वह कमरा अन्दर के बरामदे के उत्तर की ओर था। शान्तला भी वहीं माँ के साथ रहती थी। शान्तला ने माँ के आने की ओर ध्यान नहीं दिया। शाम का समय था। वह भोजन-पूर्व भगवान का ध्यान करती हाथ जोड़े, आँख मूँदे बैठी थी। मन-ही-मन गुनगुनाती हुई प्रार्थना कर रही थी। माचिकब्बे राजगृह से प्राप्त पत्र को सुरक्षित स्थान पर रख ही रही थी कि, इतने में दरवाज़े से लेंका ने आवाज़ दी और कहा कि हेगड़ेजी आ गये। लेंका की बात सुन उस पत्र को हाथ में लिकर जैसे ही हेगड़ती बाहर आयी। लेंका की बात शान्तला ने भी सुनी तो वह

भी तुरन्त ध्यान से उठी, माँ के पीछे-पीछे चल पड़ी।

माचिकब्बे अभी बरामदे के द्वार तक पहुँची ही थी कि इतने में हेग्गड़े मारसिंगय्या अन्दर आ चुके थे।

हेग्गड़ती माचिकब्बे ने कहा, "उचित समय पर पधारे आप।"

"सो क्या ?"

"सोसेऊरु से राजदूत आये हैं।"

"क्या समाचार है ?" हेग्गड़े मारसिंगय्या ने कुछ घबड़ाये हुए-से पूछा।

"सब अच्छा ही समाचार है। पहले आप हाथ-मुँह धोकर शिवार्चन कर लें। सूर्यास्त के पहले भोजन हो जाये।"

"मेरे लिए यह नियम लागू नहीं न ? मेरा शिवार्चन ऐसी जल्दबाजी में पूरा नहीं होता। इसलिए आप लोग भोजन कर लें। मैं आराम से यथावकाश अपने कार्यों से निबट लूँगा। इस बात को रहने दें—अब यह कहें राजमहल की क्या खबर है ?"

"यह पत्र आप पढ़ लें।"—कहती हुई उसे हेग्गड़े जी के हाथ में देकर पीछे की ओर मुड़ बेटी को देखकर पूछा, "अम्माजी ! तुम्हारी ध्यान-पूजा समाप्त हो गयी ? तो चलो, हम दोनों चलें और भोजन कर आवें। तुम्हारे अप्पाजी को हमारा साथ देने की इच्छा नहीं।"

"अप्पाजी ने ऐसा तो नहीं कहा न ! अम्मी।"

"हाँ, मैं तो भूल ही गयी। लड़कियाँ हमेशा पिता का ही साथ देती हैं। मेरे साथ तुम चलोगी न ?"

"चलो, चलती हूँ।" शान्तला ने कहा।

माँ-बेटी दोनों भोजन करने चली गयीं।

इधर हेग्गड़े मारसिंगय्या ने अपने उत्तरीय शिरोवेष्टन आदि उतारे और गद्दी पर रखकर तकिये के सहारे बैठ उस पत्र को पढ़ने लगे। इतने में नौकरानी गालब्बे ने पनौटी-पानी-गुड़ आदि ला रखा।

"राजदूत चले गये ?"

गालब्बे ने कहा, "अभी यहीं हैं मालिक। कल दोपहर तक वे आपकी प्रतीक्षा करने के इरादे से यहीं ठहरे हैं। आपके दर्शन करके ही प्रस्थान करने का उनका विचार है। क्या उन्हें बुलाऊँ ?"

"वे आराम करते होंगे, आराम करने दो। मुझे भी नहाना है। शीघ्र तैयारी करो। तब तक मैं भी आराम करूँगा। उन अतिथियों के लिए सारी व्यवस्था ठीक है न ?"

"हेग्गड़तीजी के आदेशानुसार सभी व्यवस्था कर दी गयी है।"

"ठीक है। अब जाओ।"

स्नान, पूजा-पाठ से निवृत्त होकर भोजन समाप्त करके हेग्गड़े मारसिंगय्या बारह-दरी में उसी झूले पर आ विराजे। उनके पीछे ही पान-पट्टी लेकर उसी झूले पर पतिदेव के साथ बैठी माचिकब्बे पान बनाने लगी।

हेग्गड़े मारसिंगय्या ने पूछा, "हेग्गड़ती जी ने क्या सोचा है?"

"किस विषय में।"

"दोरसमुद्र के लिए प्रस्थान करने के बारे में।"

"मेरा क्या निश्चय होगा। जैसी आपकी आज्ञा होगी।"

"अपनी इच्छा के अनुसार मुझे अनुकूल बनाने में हेग्गड़तीजी बड़ी होशियार हैं। अब इस बात को रहने दें। यह बताएँ कि अब क्या करना है?"

"युवरानीजी ने खुद अलग से सन्देश भेजा है। ऐसी हालत में न जाना क्या उचित होगा?"

"जाना तो हमारा कर्तव्य है ही। मगर यही शुभकार्य उनके महाराजा होने पर सम्पन्न हुआ होता तो कितना अच्छा लगता?..."

"महाराजा विनयादित्य प्रभु के जीवित रहते एरेयंग प्रभु का महाराजा बनना कैसे सम्भव हो सकता है?"

"युवराज एरेयंग प्रभु की आयु अब कितनी है—समझती हो?"

"कितनी है?"

"उनका जन्म शालिवाहन शक सं. ९६९ सर्वजित् वर्ष में हुआ था। इस आंगीरस वर्ष तक पैंतालीस वर्ष के हो गये। फिर भी वे अब तक युवराज ही हैं। महाराजा विनयादित्य प्रभु की आयु अब करीब-करीब भीमरथ शान्ति सम्पन्न करने की है।"

"वह उनका भाग्य है। युवराज हैं, तो भी उन्हें किस बात की कमी है। सुनते हैं कि वास्तव में सारा राजकाज करीब-करीब उन्हीं के हाथ है।"

"किस गुप्तचर के द्वारा तुमने यह खबर पायी?"

"सब लोग कहते फिरते हैं। इसके लिए गुप्तचर की क्या जरूरत है?"

"लोगों में प्रचलित विचार और वास्तविक स्थिति—इन दोनों में बहुत अन्तर रहता है। इस अन्तर को वहाँ देखा जा सकता है। अब तो वहाँ जाने का मौका भी आया है।"

"मतलब यह कि जाने की आज्ञा है। है न?"

"आज्ञा या सम्मति जो भी हो, वहाँ जाना आवश्यक है। क्योंकि यह हमारा कर्तव्य है।"

पान तैयार कर हेग्गड़े के हाथ में देकर कहने लगी, "आप अकेले हो आइए।"

"क्यों? राजकुमार का उपनयन राज-कार्य नहीं है?"

"ऐसा तो नहीं। पुरुषों के लिए तो सब जगह ठीक हो सकती है। मगर स्त्रियों को बड़े लोगों के यहाँ उनके अनुसार चलना कठिन होता है। हम छोटे हैं, क्या हम उनके बराबर हो सकेंगे?"

"मानव-जन्म लेकर, मनुष्य को अपने को कभी छोटा समझना ठीक नहीं। समझी?"

"मैं अपने को कभी छोटी नहीं समझती, पर उनकी दृष्टि में हम छोटे है इसलिए कहा।"

"क्या यह तुम्हारा अनुमान है या अनुभव?"

"राजमहल में जो हेग्गड़तियाँ हो आयी हैं उनसे मैंने ऐसी बातें सुनी हैं।"

"तभी कहा न? दूसरों की बात पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। यदि हमारी हेग्गड़ती को दुःख होगा तो वह हमारे लिए क्या संतोष की बात होगी? अब की बार दोनों साथ चलेंगे। वहाँ से लौटने के बाद यदि दुबारा बुलावा आयेगा तब जाने न जाने का निर्णय तुम ही पर छोड़ दूँगा।"

"हेग्गड़ेजी की आज्ञा हुई तो वही करेंगे। उपनीत होनेवाले राजकुमार की क्या आयु है?"

"सोलह। क्यों?"

"बस, यों ही पूछा। उपनयन करने में इतनी देरी क्यों की?"

"शायद पाँच वर्ष हुए होंगे। महाराजा की षष्ठिपूर्ति शांति के दो-तीन वर्ष बाद महाराजा एक गम्भीर बीमारी के शिकार हुए। उस रोग से वे मुक्त होंगे—ऐसी उम्मीद किसी को नहीं थी। रोग से मुक्ति तो मिल गयी, परन्तु बहुत कमजोर ही रहे। राजवैद्य भी कुछ कह नहीं सके थे। उस प्रसंग में युवराज अभिषिक्त हो जायें उसके बाद ही बड़े लड़के का उपनयन करने की शायद सोचते रहे होंगे।"

"तो क्या युवराज पिता की मृत्यु चाहते थे?"

"छी, छी! ऐसा नहीं कहना चाहिए। जो जन्म लेते हैं वे सब मरते भी हैं। कुछ पद वंशपरम्परा से चले आते है। युवराज महाराजा के इकलौते पुत्र हैं। ऐसी दशा में युवराज का यह सोचना कि महाराजा होने के बाद बेटे का उपनयन करें—यह कोई गलत तो नहीं है। जो भी हो, पट्टाभिषेक भी स्थगित हुआ। उपनयन करने में विलम्ब हुआ। और अधिक विलम्ब न हो—सम्भवतः इसलिए अब इसे सम्पन्न करने का निश्चय किया है।"

"जो भी हो, विवाह की उम्र में यह उपनयन सम्पन्न हो रहा है।"

"होने दो! तुम्हें उनकी समधिन तो नहीं बनना है। तुम्हें अपनी बेटी की शादी के बारे में सोचने के लिए अभी बहुत समय है। उन राजभटों का भोजन हो चुका हो तो उन्हें कहला भेजो। उन्हें और भी बहुत से काम होंगे। वे यहाँ बैठे-बैठे व्यर्थ में समय क्यों व्यतीत करें।"

हेग्गड़ती वहाँ से उठी और जाकर दो-चार क्षणों में ही लौटकर, "वे अभी आ रहे हैं। मैं थोड़ी देर में आऊँगी," कहकर भीतर चली गयी।

रेविमय्या और गोंक—दोनों राजभट उपस्थित हुए और अदब से प्रणाम कर खड़े हो गये। हेग्गड़े के उन्हें बैठने को कहने पर वे बैठ गये।

"तुम लोगों ने हेग्गड़तीजी को जो बताया है, उस सबसे हम अवगत हैं। युवराज की आज्ञा के अनुसार हम इस उपनयन महोत्सव के अवसर पर वहाँ अवश्य आएँगे। इतनी आत्मीय भावना से जब हम स्वयं युवराज के द्वारा निमंत्रित हैं तो यह हमारा अहोभाग्य ही है। मालूम हुआ कि आप लोगों ने मेरे लिए कल तक प्रतीक्षा करने का निश्चय किया था। आप लोग जितने दिन चाहें हमारे अतिथि बनकर रह सकते हैं। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में आप लोग जैसा उचित समझें वैसा करें।"

"आपके दर्शन भी हो गये। इसलिए सुबह तड़के ही ठंडे वक्त में हम यहाँ से चल देंगे। इसके लिए आप अनुमति दें।"

"जैसी इच्छा हो करें। अब आप लोग जाकर आराम करें। हमारे नौकर लेंका से कहेंगे तो वह सारी व्यवस्था कर देगा।"

दोनों राजदूत उठ खड़े हुए, परन्तु वहाँ से हिले नहीं।

"क्यों क्या चाहिए था। क्या कुछ और कहना शेष है?"

बड़े संकोच से रेविमय्या ने कहा, "क्षमा करें। जब हम आये तब फाटक पर ही छोटी अम्माजी से मिले थे। वे ही हमें अन्दर ले आयी थीं। फिर उनके दर्शन नहीं हुए। अगर हम सुबह तड़के ही चले जायें तो फिर हमें उनके दर्शन करने का अवसर ही न मिलेगा। यदि कोई आपत्ति न हो, उन्हें एक बार और देखने की इच्छा है।"

"शायद सोती होगी। गालब्बे! देखो तो अगर अम्माजी सोयी न हो तो, उसे कुछ देर के लिए यहाँ भेजो।" कहकर हेग्गड़े मारसिंगय्या ने राजदूतों से कहा, "तब तो उसने तुम लोगों को तंग किया होगा।"

रेविमय्या ने कहा, "ऐसा कुछ नहीं। उनकी उम्र के बच्चों में वह होशियारी, और बुद्धिमानी, वह गाम्भीर्य और संयम, और वह धीरता-निर्भयता दुर्लभ है। इसलिए उस बालिका को फिर से देखने की इच्छा हुई। आप अन्यथा न समझें।"

"कुछ नहीं। तुम लोग बैठो। बच्चों को प्यार करने का सबको अधिकार है। इसमें अन्यथा समझने की क्या बात है?"

दोनों राजभट बैठ गये। गालब्बे शान्तला के साथ आयी।

शान्तला ने पूछा, "अप्पाजी! मुझे बुलाया?"

"ये लोग कल सुबह तड़के ही जानेवाले हैं। आते वक्त तो इन्होंने तुम्हें देखा था फिर तुम्हें देख नहीं सके। वे फिर तुम्हें देखना चाहते थे। अतः कहला-

भेजा।"

"कल दोपहर जाने की बात कह रहे थे।"

"हाँ, उन लोगों ने वैसा ही सोचा था। मैं आ गया तो उनका काम बन गया। इसलिए अभी जा रहे हैं।"

"कल दोपहर तक भी आप न आते तो तब ये लोग क्या करते?" शान्तला ने पूछा।

"अब तो आ गया हूँ न?" हेग्गड़े ने कहा।

"आये तो क्या हुआ? ये लोग कल दोपहर ही को जायेंगे।"

"अम्माजी उन्हें बहुत काम करने के हैं। राज-काज पर लगे लोग यों ही समय नहीं बिता सकते। काम समाप्त हुआ कि दूसरे काम के लिए दौड़ना पड़ता है। तुम्हें यह सब मालूम नहीं होता, बेटी।"

"सब लोगों की भी तो यही दशा है। एक काम समाप्त हुआ कि नहीं, दूसरे काम पर आगे बढ़ते जाना चाहिए।"

रेविमय्या टकटकी लगाये शान्तला को ही देखता रहा।

हेग्गड़े मारसिंगय्याजी को हँसी आ गयी। वे बोले, "बेटी! तुम बड़े अनुभवी लोगों की तरह बात करती हो।"

रेविमय्या ने कहा, "हेग्गड़ेजी, आप एक योग्य गुरु से अच्छी शिक्षा दिलाने की व्यवस्था करें तो बहुत अच्छा होगा। इसके लिए यहाँ की अपेक्षा राजधानी बहुत ही अच्छी जगह होगी। वहाँ बड़े योग्य और निपुण विद्वान हैं।"

"यह बात तो महाराजा की इच्छा पर अवलम्बित है। यहाँ भी अच्छे शिक्षक की व्यवस्था की गयी है। अभी संगीत, साहित्य और नृत्य की शिक्षा क्रम से दी जा रही है। इसके गुरु भी कहते हैं कि अम्माजी बहुत प्रतिभासम्पन्न है।"

"गुरुजी को ही कहना होगा? अम्माजी की प्रतिभा का परिचायक आइना उनका मुखमण्डल स्वयं है। यदि अनुमति हो तो एक बार बच्ची को अपनी गोद में उठाऊँ?"

"यह उसे सम्मत हो तो कोई आपत्ति नहीं। गोद में उठाने को वह अपना अपमान समझती है।"

"नहीं अम्माजी, गोद में उठाना प्रेम का प्रतीक है। जिसे गोद में लिया जाता है उसकी मानसिक दुर्बलता नहीं। इसमें अपमान का कोई कारण नहीं। आओ अम्माजी, एक बार सिर्फ़ एक ही बार अपनी गोद में लेकर उतार दूँगा।" गिड़गिड़ाते हुए रेविमय्या ने हाथ आगे बढ़ाये।

शान्तला बिना हिले-डुले मूर्तिवत् खड़ी रही। आगे नहीं बढ़ी। वहीं दो कदम आगे बढ़ आया। उसकी आँखें तर हो रही थीं। दृष्टि मन्द पड़ गयी। वैसे ही बैठ गया। शान्तला अपने पिता के पास जाकर बैठ गयी। यह सब उसकी समझ में

कुछ भी नहीं आया।

हेग्गड़े मारसिंगय्या ने पूछा, "क्यों? क्या हुआ?" रेविमय्या की आँखों से धाराकार आँसू बह रहे थे। धारा रुकी ही नहीं। मारसिंगय्या ने गोंक की ओर देखा और कहा, "वह बहुत भावुक है। उसके विवाह के छः वर्ष के बाद उसकी एक बच्ची पैदा हुई थी। दो साल तक जीवित रही। बच्ची बहुत होशियार थी। उसके मरने के बाद फिर बच्चे हुए ही नहीं। उसे बच्चे प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं।"

"बेचारा!" अनुकम्पा के स्वर में हेग्गड़े मारसिंगय्या ने कहा।

रेविमय्या को स्वस्थ होने में कुछ समय लगा।

हेग्गड़े मारसिंगय्या ने कहा, "आप लोग एक काम करें। आप लोगों की यात्रा कल दोपहर को ही हो। अम्माजी भी यही कहती है। अब जाकर आराम करो। मैं भी आराम करूँगा।"

सुबह स्नान-उपाहार आदि समाप्त कर रेविमय्या और गोंक दोनों हेग्गड़े के घुड़साल में गये। उनके घोड़े मालिश-शुदा होकर चमक रहे थे। घोड़े भी खा-पीकर तैयार थे। घोड़ों का प्रातःकालीन आतिथ्य चल रहा था। पास ही जीन-लगाम से लैस एक टट्टू तैयार खड़ा था। दोनों उसकी ओर आकर्षित हुए। घुड़साल के उस कर्मचारी को पिछले दिन इन लोगों ने नहीं देखा था। उसके पास जाकर रेविमय्या ने पूछा, "यह टट्टू किसके लिए है?"

"यह छोटी अम्माजी के लिए है।" उत्तर मिला।

"क्या! अम्माजी घोड़े की सवारी भी करती है?" रेविमय्या ने चकित होकर पूछा।

नौकर ने गर्व से कहा, "आप भी उन जैसी सवारी नहीं कर सकते।"

इसी बीच शान्तला वहाँ आयी।

वह वीरोचित वेषभूषा, काछ लगी धोती, ऊपर अँगरखे में सजी हुई थी। "रायण! अब चलें!" कहती हुई वह अपने टट्टू के पास गयी और उसे थपथपाया। अपने टट्टू को लेकर घुड़साल से बाहर निकल पड़ी। रायण दूसरे घोड़े को लेकर उसका अनुसरण करने लगा।

रेविमय्या शान्तला के पास आया। पूछा, "अम्माजी, आपके साथ चलने की मुझे इच्छा हो रही है; क्या मैं भी चलूँ?"

"आइए, क्या हर्ज है।" फिर उसने घुड़साल की ओर देखकर कहा, "अभी तो आपका घोड़ा तैयार नहीं है।"

रेविमय्या ने कहा, "अभी दो ही क्षणों में तैयार हो जाऊँगा।" इतने में हेग्गड़े वहाँ आये। उन्होंने पूछा, "कहाँ के लिए तैयारी है?"

रेविमय्या ने जवाब दिया, "अम्माजी के साथ जाने के लिए अपने घोड़े को तैयार कर रहा हूँ।"

हेग्गड़े ने कहा, "रायण! तुम ठहर जाओ।" फिर रेविमय्या से कहा, "तुम इसी घोड़े को लेकर अम्माजी के साथ जा सकते हो।"

फिर क्या था? नयी मैत्री के लिए सहारा मिल गया।

शान्तला और रेविमय्या दोनों निकले, अपने-अपने घोड़ों पर। रेविमय्या चकित रह गया। वहाँ राजमहल में घोड़े के पास जाते हुए डरनेवाले राजकुमार उदयादित्य। यहाँ एक साधारण हेग्गड़े की साहस की पुतली छोटी बालिका। यदि कोई और यह कहता तो वह समझता कि सब मनगढ़न्त है, और उस पर विश्वास नहीं करता। यहाँ खुद आँखों से देख रहा है। घोड़े को चलाने के उसके ढंग को देखकर वह चकित रह गया। एक प्रहर तक सवारी कर लौटने पर समझ में आया कि रायण की बात सही है। रेविमय्या मन-ही-मन सोचने लगा—'जिसका जन्म राजमहल में होना चाहिए था वह एक साधारण हेग्गड़े के घर में क्यों हुआ?' —उस सवाल का जवाब कौन दे? वही जवाब दे सकता है जिसने इस जगत् का सृजन किया है। परन्तु, वह सिरजनहारा दिखायी दे जब तो।

घुड़साल में घोड़ों को पहुँचाकर दोनों ने अन्दर प्रवेश किया। पिछवाड़े की ओर से अन्दर आये, वहीं बारहदरी में हेग्गड़े बैठे थे। उन्होंने पूछा, "सवारी कैसी रही?"

रेविमय्या मौन खड़ा रहा। उसने समझा—शायद सवाल शान्तला से किया होगा।

रेविमय्या से हेग्गड़े ने पूछा, "मैंने तुम ही से पूछा है, घोड़े ने कहीं तंग तो नहीं किया?"

इतने में शान्तला ने कहा, "ये रायण से भी अच्छी तरह घोड़ा चलाते हैं।"

हेग्गड़े ने कहा, "उन्हें वहाँ राजधानी में ऐसी शिक्षा मिलती है, बेटी।"

रेविमय्या ने पूछा, "जी आपको यह टट्टू कहाँ से मिला? यह अच्छे लक्षणों से युक्त है। इसे किसी को न दीजिएगा।"

हेग्गड़े ने कहा, "हमारी अम्माजी बढ़ेगी नहीं? जैसी अब है वैसे ही रहेगी?"

"न, ऐसा नहीं, कुछ वस्तुएँ सौभाग्य से हमारे पास आती हैं। उन्हें हमें कभी नहीं खोना चाहिए। उसके ठिगनेपन को छोड़कर शेष सभी लक्षण राज-

योग्य हैं। अगर उसकी टाँगों में घुँघरू बाँध दें और अम्माजी उसे चलावें तो उसके पैरों का लय नृत्य-सा मधुर लगेगा। हेग्गड़ेजी! घोड़े पर सवार अम्माजी के कान हमेशा टापों पर ही लगे रहते हैं। आप बड़े भाग्यवान् हैं। ईश्वर से प्रार्थना है कि अम्माजी दीर्घायु होवें और आप लोगों को आनन्द देती रहें। फिर उसने शान्तला से कहा, "अम्माजी, कम-से-कम अब मेरी गोद में एक बार आने को राजी होंगी?" रेविमय्या के हाथ अपने-आप उसकी ओर बढ़े।

शान्तला उसी तरफ देखती हुई उसकी ओर बढ़ी। रेविमय्या आनन्दविभोर हो उस नन्ही बालिका को गोद में उठाकर "मेरी देवी आज मुझ पर प्रसन्न हैं" कहता हुआ मारे आनन्द के नाच उठा। ऐसा लगता था कि वह अपने आसपास के वातावरण को भूल ही गया है। शान्तला को उतारने के बाद मुसकराते बैठे हुए हेग्गड़े को देखकर उसने संकोच से सिर झुका लिया।

संगीत सिखाने के लिए अध्यापक को आते देखकर उसने पिताजी से "मैं अध्यापक जी के पास जाऊँ?" कहकर संगीत अध्यापक का अनुसरण करती हुई वहाँ से चली गयी।

"हेग्गड़े जी! आपके और अम्माजी के कहे अनुसार आज सुबह जो यहाँ ठहर गया, सो बहुत अच्छा हुआ। आज मुझे जो एक नया आनन्द मिला उससे—मुझे विश्वास है, मैं अपने पुराने सारे दुःख को भूल जाऊँगा। किसी भी तरह से हो आप इस बात की कोशिश करें कि आप राजधानी ही में बस सकें। मैं यह बात अम्माजी के लिए कह रहा हूँ, आप अन्यथा न समझें।"

"देखें! आज बृहस्पतिवार है। आप लोग तेईस घड़ियाँ बीतने के बाद यात्रा करें। जहाँ तक हो सकेगा हम पहले ही वहाँ पहुँचेंगे। मुहूर्त काल तक तो किसी भी हालत में जरूर ही पहुँच जायेंगे; चूकेंगे नहीं। युवराज से यह बात कह दें। हेग्गड़तीजी से मिल लें और मालूम कर लें कि युवरानीजी से क्या कहना है"—इतना कहकर हेग्गड़े वहाँ से उठकर अन्दर चलने को तैयार हुए।

इधर शान्तला का संगीत-पाठ शुरू हो चुका था।

शान्तला की मधुर ध्वनि सुनकर रेविमय्या दंग रह गया और संगीत सुनता हुआ वहीं मूर्तिवत् खड़ा रहा।

राहुकाल के बीतने पर दोनों राजदूत हेग्गड़े, हेग्गड़ती और शान्तला से विदा लेकर निकले। शान्तला रेविमय्या और उसके साथी को अहाते तक पहुँचा कर

लौटी। उनके माता-पिता झूले पर बैठे बातचीत कर रहे थे। शान्तला को आयी देखकर हेग्गड़ती माचिकब्बे—"किसी तरह रेविमय्या तुम्हें छोड़कर चला गया! मुझे आश्चर्य इस बात का है कि जो आसानी से किसी के पास न जानेवाली यह उस रेविमय्या में क्या देखकर चिरपरिचित की तरह बिना संकोच के उसके पास गयी?" कहकर हेग्गड़े की ओर प्रश्नार्थक दृष्टि से देखने लगी।

"उसने क्या देखा, इसने क्या समझा, सो तो ईश्वर ही जाने। परन्तु इतना तो निश्चित है कि इन दोनों में प्रगाढ़ मैत्री हो गयी है।"

"जाने भी दीजिए। यह कैसी मैत्री। मैत्री के लिए कोई उम्र और हैसियत भी तो चाहिए? वह तो एक साधारण राजभट है। फिर वह आपकी उम्र का है।"

मारसिंगय्या मुसकराये और बोले :

"सच है। जो तुम कहती हो वह सब सच है। जितना तुम देख और समझ सकी हो उतना ही तुम कह रही हो। परन्तु उन दोनों का अन्तरंग क्या कहता है। सो तो यह तुमको मालूम नहीं। अम्माजी, यों क्यों खड़ी हो गयी, आओ, बैठो।"

शान्तला आकर दोनों के बीच में झूले पर बैठ गयी।

मारसिंगय्या ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "राजकुमार के उपनयन संस्कार के अवसर पर तुम हमारे साथ सोसेऊरु चलोगी न?"

शान्तला ने कोई जवाब नहीं दिया।

"छोड़िये तो, आपकी अकल को भी क्या कहूँ? वह तो अनजान बच्ची है, जहाँ हम होंगे वहाँ वह भी साथ रहेगी।"

"अप्पा जी, रेविमय्या ने जरूर आने को कहा है। मैंने 'हाँ' तो कह दिया। परन्तु जाऊँ तो मेरी पढ़ाई रुक न जाएगी?"

"थोड़े दिन के लिए रुके तो हर्ज क्या? लौटते ही फिर सीख लेना।" माचिकब्बे ने कहा।

"हमारे गुरुजी कह रहे थे कि यदि धन-सम्पत्ति गई तो फिर कमाई जा सकती है, राज्य भी गया तो वह फिर पाया जा सकता है। परन्तु समय चूक गया तो उसे फिर पा नहीं सकते। बीते समय को फिर से पाना किसी भी तरह से सम्भव हो ही नहीं सकता।" शान्तला ने कहा।

"तुम जो सीखोगी उसे एक महीने के बाद भी सीखो तो कोई नुकसान नहीं। गुरुजी को क्या नुकसान है? पढ़ावें या न पढ़ावें, ठीक महीने के समाप्त होते ही उनका वेतन तो उन्हें पहुँचा दिया जाता है।" माचिकब्बे ने कहा।

मारसिंगय्या को लगा कि बात का विषयान्तर हो रहा है। "फिलहाल जाने में चार महीने हैं। अभी से इन बातों को लेकर माथापच्ची क्यों की जाय? इस

बारे में यथावकाश सोचा जा सकता है।" यों उन्होंने रुख बदल दिया।

"उपनयन तो अभी इस कार्तिक के बाद आनेवाले माघ मास में होगा? इतनी जल्दी चार महीने पहले निमन्त्रण क्यों भेजा गया है?" माचिकब्बे ने पूछा।

"राजकुमार का उपनयन क्या कोई छोटा-मोटा कार्य है? उसके लिए कितनी तैयारी की आवश्यकता है। जिन-जिनको बुलाना अनिवार्य है उन सभी के पास निमंत्रण भेजना है। कौन-कौन आनेवाले हैं; जो आएँगे उनमें किन-किनको कहाँ-कहाँ ठहराना होगा, और उन-उनकी हस्ती-हैसियत के अनुकूल कैसी-कैसी सहूलियतें करनी होंगी, फिर यथोचित पुरस्कार आदि की व्यवस्था करनी होगी। यह सब कार्य पूर्वनिश्चित क्रम के अनुसार चलेंगे। इसके लिए समय भी तो आवश्यक है। हमें चार महीनों का समय बहुत लम्बा दीखता है। उनके लिए तो ये चार महीने चार दिनों के बराबर हैं। इतनी पूर्वव्यवस्था के होते हुए भी अंतिम घड़ी में झुण्ड के झुण्ड लोग आ जायेंगे तो तब ऐसे लोगों को ठहराने आदि-आदि की व्यवस्था करनी पड़ेगी। इसके अलावा यह राजमहल से सम्बन्धित व्यवहार है। सब व्यवस्था नपी-तुली होती है। इस काम में लगना भी मुश्किल, न लगे तो भी दिक्कत। वहाँ जब जाकर देखेंगे तब तुम्हें स्थिति की जानकारी होगी।"

"हम तो स्थिति के अनुसार हो लेंगे, परन्तु आपकी इस बेटी को वहाँ की नयी परिस्थितियों से समझौता करने में दिक्कत होगी।"

"उसकी वजह से तुम्हें चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। वह हम दोनों से अधिक बुद्धिमती है।"

"यह क्या अप्पाजी, आप लोगों के साथ, मेरे जाने न जाने के बारे में आराम से सोच-विचार करके निश्चय करने की बात कह रहे थे, अभी ऐसा कह रहे हैं मानो निश्चय ही कर दिया हो।"

"हाँ अम्माजी! तुम्हें छोड़कर जाना क्या हमारे लिए कभी सम्भव हो सकता है? यह तो निश्चय है कि तुम्हें अवश्य ले जाएँगे। परन्तु विचारणीय विषय यह नहीं। विचार करने के लिए अनेक अन्य बातें भी तो हैं।"

"मतलब, मेरे पाठ-प्रवचन का कार्यक्रम न चूके, इसके लिए कोई ऐसी व्यवस्था की संभावना के बारे में विचार कर रहे हैं, यही न?"

"हाँ बिटिया, ठीक यही बात है, बड़ी होशियार हो तुम।"

"बहुत अच्छा, अध्यापकजी को साथ ले जाकर वहाँ भी 'सा रे ग म' गवाते रहेंगे?"

"क्यों नहीं हो सकता?"

"क्या ऐसा भी कहीं होता है? वहाँ के लोग क्या समझेंगे? हमारे घर में जैसे चलता है वैसा ही वहाँ भी चलेगा? यह कभी सम्भव है? क्या यह सब करना

उचित होगा ?"

"इसीलिए तो हमने कहा, इन सबके बारे में आराम से विचार करेंगे, समझीं ? उन अध्यापकजी से भी विचार-विमर्श करेंगे। गुरु और शिष्या दोनों जैसी सम्मति देंगे वैसा करेंगे। आज का पाठ-प्रवचन सब पूरा हो गया अम्माजी ?"

"सुबह संगीत और नृत्य के पाठ समाप्त हुए। साहित्य पढ़ाने के लिए अब गुरुजी आएँगे।"

"इन तीन विषयों में कौन-सा विषय तुम्हें अधिक प्रिय है, अम्माजी ?"

"मुझे तीनों में एक-सी रुचि है। हमारे गुरुजी कहते हैं कि इन तीनों का पारस्परिक सम्बन्ध ऐसा है कि एक को छोड़ दूसरा पूर्ण नहीं हो सकता। साहित्य यदि चेहरा है तो संगीत और नृत्य उस चेहरे की दो आँखें हैं।"

ठीक इसी समय लेंका ने आकर खबर दी कि कविजी आये हैं।

सुनते ही शान्तला झूले से कूदकर भागी। हेग्गड़े मारसिंगय्या भी उसका अनुसरण करते चल दिये।

शान्तला के अध्यापक बोकिमय्या अपने ताड़पत्र ग्रंथ खोलने लगे। अपनी शिष्या के साथ उसके पिता भी थे। हेग्गड़े मारसिंगय्या को देखकर वे उठ खड़े हुए और प्रणाम किया। हेग्गड़े ने उन्हें बैठने को कहा और खुद भी बैठ गये।

कभी पढ़ाने के समय पर न आनेवाले हेग्गड़े के आज आने के कारण अध्यापक के मन में कुछ उलझन-सी पैदा हो गयी थी। उनकी ओर देखा, फिर पोथी खोलने में लगे।

हेग्गड़े मारसिंगय्या ने पूछा, "आपकी यह शिष्या कैसी है ?"

"सैकड़ों विद्यार्थियों को पढ़ाने के बदले ऐसी एक शिष्या को पढ़ाना ही पर्याप्त है। हेग्गड़ेजी !"

"इतना बढ़ा-चढ़ाकर कहना ठीक नहीं।"

"यह अतिशयोक्ति नहीं हेग्गड़ेजी। सम्भवतः आप नहीं समझते होंगे। आपकी दृष्टि में यह छोटी मुग्ध बाला मात्र है। अभी जन्मी छोटी बालिका आपके सामने आँखें खोल रही है। परन्तु इसकी प्रतिभा, धीशक्ति का स्तर ही कुछ और है। सचमुच आप बड़े भाग्यवान हैं। आप और हेग्गड़तीजी ने उत्तम पुष्पों से भगवान् की पूजा की है। इसी पुण्य से साक्षात् सरस्वती ही आपकी पुत्री के रूप में अवतरित हुई है। आपको आश्चर्य होगा अभी बालिका दस साल की भी नहीं हुई होगी। दो साल से मैं पढ़ा रहा हूँ। सोलह वर्ष की उम्र के बच्चों में भी न दिखनेवाली सूक्ष्म ग्रहणशक्ति और तन्मयता इस बालिका में है। पूर्व-पुण्य का फल और दैवानुग्रह दोनों के संगम से ही यह प्रतिभा इस बालिका में है। आपको यह बेटी आज अमरकोश के तीनों काण्ड कण्ठस्थ कर चुकी है। यह अम्माजी गार्गेयी-

मैत्रेयी की पंक्ति में बैठने लायक है। ऐसे शिष्य मिल जायें तो सात-आठ वर्षों में सकलविद्या पारंगत बनाये जा सकते हैं।"

"मैं मान लूँ कि अपनी इन बातों की जिम्मेदारी को आप समझते हैं।"

"जी हाँ, यह उत्तरदायित्व मुझ पर रहा। यह अम्माजी मायके और ससुराल दोनों वंशों की कीर्ति-प्रतिष्ठा को आचन्द्रार्क स्थायी बना सकने योग्य विचारशीला बनेगी।"

"सभी माता-पिता यही तो चाहते हैं।"

"इतना ही नहीं, यह अम्माजी जगती-मानिनी बनकर विराजेंगी।"

अब तक पिता और गुरु के बीच जो सम्भाषण हो रहा था, उसे सुनती रहीं अम्माजी। अब उसने पूछा, "गुरुजी! इस जगती-मानिनी का क्या माने है?"

गुरुजी ने बताया, "सारे विश्व में गरिमायुक्त गौरव से पूजी जानेवाली मानव-देवता।"

"मानव देवता कैसे बन सकता है?" शान्तला ने पूछा।

"उसके व्यवहार से।"

शान्तला ने फिर से सवाल किया, "ऐसे, मानव से देवता बननेवाले हैं क्या?"

"क्यों नहीं अम्माजी, हैं अवश्य। भगवान् महावीर, भगवान् बुद्ध, शंकर भगवत्पाद और अभी हाल के हमारे स्वामी बाहुबलि, कितने महान् त्यागी हैं। आप सब कुछ विश्वकल्याण के लिए त्यागकर बिलकुल नग्न हो जो खड़े हैं। उनका बृहत्काय शरीर, फिर भी सद्योजात शिशु की तरह भासित मुखमण्डल, निष्कलमष और शान्त। भव्यता और सरलता का संगम है—यह हमारे बाहुबलि स्वामी। अम्माजी, तुम्हें हमारे इस बाहुबलि स्वामी को बेलुगोल में जाकर देखना चाहिए।"

"अप्पाजी, अबकी राजकुमार के उपनयन के अवसर पर जाएँगे न, तब लौटते समय बेलुगोल हो आएँ?" शान्तला ने पूछा।

बोकिमय्या ने पूछा, "किस राजकुमार का उपनयन है, हेग्गड़ेजी?"

"होय्सल राजकुमार बल्लालदेवजी का।"

"उपनयन कब है?"

"अभी इसी माघ मास में।"

"कहाँ?"

"सोसेऊरु में।"

"वहाँ से बेलुगोल दूर पड़ता है? मैं समझता था कि उपनयन दोरसमुद्र में होगा।"

शान्तला ने कहा, "दोरसमुद्र से बेलुगोल तीन कोस पर है, सोसेऊरु से छः

कोस की दूरी पर।"

मारसिंगय्या ने आश्चर्य से पूछा, "यह सब हिसाब भी तुम जानती हो?"

"एक बार गुरुजी ने कहा था, प्रजाजन में राजभक्ति होनी चाहिए। हमारे राजा होय्सलवंशीय हैं। सोसेऊरु, वेलापुरी, दोरसमुद्र—ये तीनों होय्सल राजाओं के प्रधान नगर हैं। बेलुगोल जैनियों का प्रधान यात्रास्थान है और शिवगंगा शैवों का। यह सब गुरुजी ने बताया था।"

गुरु बोकिमय्या ने कहा, "बताया नहीं, इन्होंने प्रश्न पर प्रश्न पूछकर जाना है।"

मारसिंगय्या ने उठ खड़े होते हुए कहा, "अब पढ़ाई शुरू कीजिए। पढ़ाने के बाद जब घर जाने लगें तो एक बार हमसे मिलकर जाइएगा। आपसे कुछ बात करनी है। पढ़ाई समाप्त होने पर मुझे खबर दीजिएगा।" तब हठात् शान्तला वहाँ से उठकर जाने लगी।

"कहाँ जा रही हो, अम्माजी?"

"आप बातें पूरी कर लें, अप्पाजी। अभी आयी।" कहकर वह चली गयी।

"देखिए, हेग्गड़े जी, इस छोटी उम्र में अम्माजी की इंगितज्ञता किस स्तर की है।"

"समझ में नहीं आया।"

"आपने कहा न? मुझसे बात करनी है, जाने के पहले खबर दीजिए। बात रहस्य की होगी, उसके सामने बात करना शायद आप न चाहते हों; इसलिए आपने बाद में खबर देने के लिए कहा है—यह सोचकर अम्माजी अभी बातें कर लेने के लिए आपको समय देने के इरादे से चली गयी।"

"मेरे मन में ऐसी कोई बात नहीं थी। फिर भी अम्माजी ने बहुत दूर की बात सोची है।"

"बात क्या है?" बोकिमय्या ने पूछा।

"कुछ खास बात नहीं। उपनयन के लिए जायें तो वहाँ जितने दिन ठहरना होगा उतने दिन के अध्यापन में बाधा पड़ेगी न? मालूम होता है कि आपने उससे कहा, 'खोया हुआ राज्य पाया जा सकता है, परन्तु बीता हुआ समय फिर कभी लौटाया नहीं जा सकता।' अब क्या करें? उपनयन के लिए जाना तो होगा ही। और अम्माजी को साथ ले जाना ही होगा। पाठ भी न रुके—यह कैसे हो सकता है? इसके लिए क्या उपाय करें? यह आपसे पूछना चाहता था।"

"मुझे उधर की बातें मालूम नहीं। मेरे लिए निमन्त्रण तो है नहीं फिर भी मुझे कोई एतराज नहीं; अगर आप और हेग्गड़तीजी इस बात को उचित समझें तो आपकी तरफ से मैं आप लोगों के साथ चलने को तैयार हूँ। शिल्पी नाट्याचार्य गंगाचार्य को भी समझा-बुझाकर मैं ही साथ लेता आऊँगा।"

"तब ठीक है। मैं निश्चिन्त हुआ। अब जाकर अम्माजी को भेज दूँगा।" कहकर मारसिंगय्या वहाँ से निकल पड़े।

थोड़ी ही देर में शान्तला आयी। पढ़ाई शुरू हुई।

उधर मारसिंगय्या ने अपना निर्णय हेग्गड़ती को बता दिया।

हेग्गड़े और हेग्गड़ती की यात्रा, सो भी राजधानी के लिए, कहने की जरूरत नहीं कि यह कोई साधारण यात्रा नहीं थी। उन्हें भी काफी तैयारियाँ करनी पड़ीं। राजकुमार बल्लालदेव, युवराज एरेयंग, युवरानी एचलदेवी, राजकुमार बिट्टिदेव और राजकुमार उदयादित्यदेव—इन सबके लिए नजराना-भेंट-चढ़ावे आदि के लिए अपनी हस्ती के मुताबिक और उनकी हैसियत के लायक वस्तुएँ जुटायी गयीं। उपनीत होनेवाले बटु को 'मातृभिक्षा' देने के लिए आवश्यक चीजें तैयार कीं। ग्रामीणों की तरफ से भेंट की रकम भी जमा की गयी। हेग्गड़े का परिजन भी कोई छोटा नहीं था। माँ, बाप और बेटी—ये तीन ही परिवार के व्यक्ति थे। पर अध्यापक कवितिलक बोकिमय्या, शिल्पी नाट्याचार्य गंगाचार्य—दोनों सपत्नीक साथ चलने को तैयार हुए। नौकर-नौकरानी में लेंका, गालब्बे और रायण के बिना काम ही नहीं चल सकता है, इसलिए वे भी साथ चलने को तैयार हुए। उन अध्यापकों के परिवारों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नौकर, गालब्बे की बहन नौकरानी दासब्बे, फिर रक्षकदल के सात-आठ लोग—इन सब के साथ वे सोसेऊरु के लिए निकले। हेग्गड़े, हेग्गड़ती और छोटी अम्माजी के लिए एक, अध्यापकों के लिए एक, बाकी लोगों के लिए एक, इस तरह अच्छे बैलों-वाली तीन बैलगाड़ियाँ तैयार हुई। रायण और रक्षक-दल के लोग घोड़ों पर चले; साथ शान्तला का टट्टू अशोक भी था।

कवि बोकिमय्या की सलाह के अनुसार कुछ लम्बा चक्कर होने पर भी तुंग-भद्रा के संगम कूडली क्षेत्र से होकर निकले। वहाँ एक दिन ठहरें और 'शारदा देवी' का दर्शन कर आगे बढ़ें—ऐसा विचार था।

वहाँ एक विचित्र घटना हुई। जब श्री शारदा देवी के मंदिर में गये तब देवी के दायें पार्श्व से हल्दी के रंग का एक सुविकसित बड़ा फूल खिसककर नीचे गिरा। पुजारी ने उसे उठाया। चरणोदक के लोटे के साथ थाल में रखकर हेग्गड़ती के पास आया। चरणोदक देकर "हेग्गड़तीजी, आप बहुत भाग्यशाली हैं, माँ शारदा ने दायीं ओर से यह प्रसाद दिया है, इसे लीजिए।" कहते हुए उसने

फूल आगे बढ़ाया। हेग्गड़ती माचिकब्बे ने हाथ पसारा ही था कि अध्यापक बोकिमय्या ने कहा, "पुजारीजी, वह हमारी छोटी शारदा के लिए देवी द्वारा दत्त प्रसाद है, उसे अम्माजी को दीजिए।" सब लोग एक क्षण के लिए स्तब्ध रह गये। पुजारी भी सन्न रह गये। उसे लगा कि अध्यापक की ज्यादती है, तो भी हेग्गड़े और हेग्गड़ती की तरफ से किसी तरह की प्रतिक्रिया न दिखने के कारण उसने अपनी भावनाओं को अपने में ही संयमित रखा। देने व लेनेवाले दोनों के हाथ पसरे ही रहे आये।

शान्तला ने कहा, "अम्मा को ही दीजिए, वे गाँव की प्रधान हेग्गड़ती हैं और बड़ी हैं। उन्हें दें तो मानो सबको मिल ही गया।"

पुजारी ने चकित नेत्रों से शान्तला की ओर देखा। कुछ निर्णय करने के पहले ही पुष्प हेग्गड़तीजी के हाथ में रहा। उन्होंने प्रसाद-पुष्प लेकर सर-आँखों लगाया और कहा, "गुरुजी ने जो कहा सो ठीक है बेटी! यह प्रसाद तो तुमको ही मिलना चाहिए।"

शान्तला ने प्रसाद-पुष्प को दोनों हाथों में लिया, आँखों लगाया। पुजारी को चरणोदक देने के लिए सामने खड़ा देख माचिकब्बे ने कहा, "फूल जूड़े में पहन लो, पुजारी जी चरणोदक दीजिए।"

शान्तला बोली, "बाकी सबको भी दीजिए, इतने में मैं फूल पहन लूँगी।" पुजारी ने हेग्गड़े की ओर देखा। उन्होंने इशारे से अपनी सम्मति जता दी।

शान्तला के जूड़े की शोभा को बढ़ा रहा था वह प्रसाद-पुष्प। सबको तीर्थ-प्रसाद बाँटकर पुजारी शान्तला के पास आया। एकाग्र भाव से शान्तला शारदा की मूर्ति को अपलक देखती खड़ी रही। पुजारी ने कहा, "तीर्थ लीजिए अम्माजी।"

शान्तला ने तीर्थ और प्रसाद लिया।

शान्तला ने एक सवाल किया, "गुरुजी, यह देवी शारदा यहाँ क्यों खड़ी है? वहाँ बलिपुर में महाशिल्पी दासोजा जी के यहाँ शारदा देवी की बैठी हुई मूर्ति देखी थी।"

"शिल्पी की कल्पना के अनुसार वह मूर्ति को गढ़ता है। इस मूर्ति को गढ़ने-वाले शिल्पी की आँखों में खड़ी मूर्ति ही बस रही होगी।"

"लक्ष्मी चंचला है। अतः वह जाने को तैयार खड़ी रहती है। सरस्वती ऐसी नहीं। एक बार उसका अनुग्रह जिस पर हो जाता है वहाँ स्थिर हो जाती है। इस-लिए वह सदा बैठी रहती है—ऐसा आपने ही एक बार कहा था न?"

"हाँ, अम्माजी, कहा था। मैं भूल ही गया था। वह वास्तव में सांकेतिक है। इसके लिए कई प्रत्यक्ष प्रमाण देखे हैं। आज कोई निर्धन तो कल धनी। आज का धनी कल निर्धन। यह सब लक्ष्मी की चंचलता का प्रतीक ही है। इसीलिए शिल्पी, चित्रकार ऐसे ही निरूपित करते है। परन्तु एक बार ज्ञानार्जन कर लें तो वह ज्ञान

स्थायी हो जाता है। वह अस्थिर नहीं होता। वह स्थिर और शाश्वत होता है।"

शान्तला ने फिर प्रश्न किया, "मतलब यह कि इस मूर्ति के शिल्पी की शारदा भी चंचल लगी होगी।"

बीच में पुजारी बोल उठा, "क्षमा करें, इसके लिए एक कारण है। यह शिल्पी की कल्पना नहीं। इस सम्बन्ध में एक किवदन्ती है। थोड़े में कह डालूँगा : श्री आदिशंकराचार्यजी ने भारत की चारों दिशाओं में चार पीठों की स्थापना करने की बात सोचकर, पुरातन काल में महर्षि विभाण्डक की तपोभूमि और ऋष्यशृंग की जन्मभूमि के नाम से ख्यात, तुंगा तीर के पवित्र क्षेत्र में दक्षिण-मठ की स्थापना करके, यहाँ श्री शारदा की मूर्ति को प्रतिष्ठित कर ज्ञानाराधना के लिए उपयुक्त स्थान बनाने की सोची। 'अहं ब्रह्मास्मि' महावाक्य, यजुर्वेद संकेत, इस मठ के पीठाधीश चैतन्य-ब्रह्मचारी और भूरिवार-सम्प्रदाय के अनुसार यहाँ अनुष्ठान हों—यह उनकी इच्छा रही। इसी इरादे के साथ आद्य आचार्य शंकर ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। इस दक्षिण यात्रा के समय एक विशेष घटना हुई। श्री शंकराचार्य जी ने शास्त्रार्थ में मण्डनमिश्र और सरस्वती की अवतार स्वरूपिणी उनकी पत्नी को हराया तो था ही। तब सरस्वती अपने स्थान ब्रह्मलोक चली जाना चाहती थी। उनकी इस इच्छा को जानकर आचार्य शंकर ने वनदुर्गा मंत्र के बल पर उस देवी को वश में कर लिया और अपनी इस इच्छा को देवी के सम्मुख प्रकट किया कि उन्हें उस स्थान में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं जहाँ अपने दक्षिण के मठ की स्थापना करने का इरादा है। इस प्रकार की प्रार्थना कर उन्होंने देवी को मना लिया।"

शान्तला ध्यान से सुनती रही, पूछा, "सिद्धि मन्त्र द्वारा वश में कर लेने के बाद फिर प्रार्थना क्यों ?"

पुजारी ने इस तरह के प्रश्न की अपेक्षा नहीं की थी। क्षण-भर शान्तला को स्तब्ध होकर देखता रहा। फिर बोला, "अम्माजी ! हम जैसे अज्ञ, आचार्य जैसे ब्रह्मज्ञानियों की रीतिनीतियों को कैसे समझ सकते हैं। उनकी रीति-नीतियों को समझने-लायक शक्ति हममें नहीं है। कालक्रम से इस वृत्तान्त को सुनते आये हैं। उन आचार्य ने क्या किया सो बात परम्परा से सुनकर, उस पर विश्वास कर उसे हम बढ़ाते आये हैं। आचार्य ने ऐसा क्यों किया, ऐसा क्यों करना चाहिए—आदि सवाल ही नहीं उठे। केवल परम्परा से सुनी-सुनायी बातें चली आयी हैं, उनपर हम विश्वास रखते चले आये है।" कहकर पुजारी ने मौन धारण किया।

शान्तला ने फिर पूछा, "फिर क्या हुआ ?"

"फिर देवी प्रसन्न होकर आचार्य की बात मान गयी। पर उन्होंने एक शर्त लगायी, यह शर्त थी, 'मैं आपके पीछे-पीछे चलूँगी, परन्तु जहाँ आप मूर्ति को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं वहाँ पहुँचने तक आपको मुड़कर नहीं देखना चाहिए।

जहाँ मुड़कर देखेंगे वहीं मैं ठहर जाऊँगी। आगे आपके साथ नहीं चलूँगी।' इस शर्त को खुशी से आचार्य ने मान लिया। फिर उन्होंने अपनी दक्षिण की यात्रा शुरू की। रास्ते में कहीं भी उन्होंने मुड़कर नहीं देखा। चलते-चलते वे तुंगा और भद्रा नदियों के संगम-स्थान पर पहुँचे। तब..."

इतने में कवि बोकिमय्या ने पूछा, "क्यों कहते-कहते रुक गये? बताइये, तब क्या हुआ?"

"वसन्त समाप्त होने को था; और ग्रीष्म ऋतु के प्रवेश का समय था; वनश्री पूर्ण रूप से हरी-भरी होकर शोभा पा रही थी पर तुंगा और भद्रा नदियाँ दुबली, पतली होकर बह रही थीं। नदी-पात्र करीब-करीब वालुकामय ही था। आचार्य-जी के जल्दी-जल्दी चलने का प्रयत्न करने पर भी सूर्य की प्रखर किरणों से तप्त वालुका उन्हें रोक रही थी। आचार्य अचानक रुके और पीछे मुड़कर देखने लगे। उनका अनुगमन करनेवाली देवी शारदा वहीं ठहर गयी।"

शान्तला ने पूछा, "आचार्य जी ने ऐसे मुड़कर क्यों देखा?"

"बताता हूँ! माँ शारदा को खड़ी देखकर आचार्य स्तम्भित हो गये। तब माँ शारदा ने मुसकराते हुए पूछा, 'क्यों मुझपर आपको विश्वास नहीं हुआ?' आचार्य को कुछ उत्तर नहीं सूझा। अन्त में कहा, 'माँ, अविश्वास की बात नहीं। मगर अब जो काम मैंने किया उसका यह अर्थ भी हो सकता है। परन्तु, मुझे लगता है कि माँ को मेरी इच्छा पसन्द नहीं आयी।' अम्माजी, तब देवी शारदा ने आचार्य से वही प्रश्न किया जो आपने अभी पूछा। तब आचार्य ने कहा, 'मेरी दक्षिण यात्रा के आरम्भ के समय से आज तक लगातार चलती हुई माँ के पैरों के घुँघरुओं की मधुर-ध्वनि मेरा रक्षक-कवच बनकर रही; इस नदी-पात्र को पार करते हुए अचानक वह मधुर नाद रुक गया। इसलिए इच्छा के न होते हुए भी यन्त्रवत् मैंने मुड़कर देखा। जब आपने यह निश्चय कर लिया है कि यहीं ठहरना है तब मुझे आपके इस निश्चय को मानना ही पड़ेगा। देवी की जैसी इच्छा। यहीं मैं मूर्ति की प्रतिष्ठा करूँगा।' तब माँ शारदा देवी ने कहा, 'मेरी ऐसी कोई इच्छा नहीं। जब मैं पीछे-पीछे चल रही थी तब घुँघरू के नाद के न सुनायी देने का कारण यह वालुका-मय भूमि है, मैं नहीं। मैं क्या करूँ?' 'माँ, आपका यहाँ ठहरना एक अनपेक्षित घटना है, इसके लिए मुझे दुःख नहीं। परन्तु मेरा मन संकल्प पूर्ण करने का अनुग्रह करें।' आचार्य की इस विनती से देवी सन्तुष्ट हुईं और कहा, 'दशहरे के पूरे नौ दिन, अपने संकल्प के अनुसार जिस स्थान पर प्रतिष्ठा करोगे, वहाँ मैं अपने सम्पूर्ण-तेज के साथ रहूँगी।' आचार्यजी के उस अनुभव का प्रतीक है यह खड़ी हुई शारदा माँ की मूर्ति। यह शारदा चंचल नहीं। सर्वदा ज्ञान-भिक्षा देने के लिए तैयार होकर यह शारदा खड़ी है!" पुजारी ने कहा।

शान्तला ने उस खड़ी शारदा को देखा। आँखें बन्द कर हाथ जोड़े रही। उसके

कान खड़े हो गये। शरीर हर्षोल्लास से रोमांचित हो उठा। उसके चेहरे पर मुसकराहट की एक लहर दौड़ गयी। होंठ खुले। कहा, "माँ, मुझे भी ज्ञान-भिक्षा दो।" ये शब्द शान्तला के मुँह से निकले। तुरन्त उसने दण्डवत् प्रणाम किया।

उस पूरे दिन वे लोग वहीं ठहरे। उस दिन श्री शारदा देवी के समक्ष में उनकी सन्निधि में ही पाठ-प्रवचन सम्पन्न हुआ। उस समय पुजारी भी वहीं उपस्थित रहा। शान्तला की श्रद्धा और विषय ग्रहण करने की प्रखर मेधा को देखकर पुजारी चकित रह गया। पाठ-प्रवचन समाप्त होने के बाद पुजारी ने बोकिमय्या से पूछा, "कविजी, सोसेऊरु जाने के लिए यह सीधा मार्ग तो नहीं है। फिर भी इधर से होकर जाने का क्या उद्देश्य है?"

बोकिमय्या ने कहा, "माँ शारदा का अनुग्रह प्राप्त कर आगे जाने के उद्देश्य से ही इस रास्ते से चले आये।"

"श्री शारदा देवी ने ही ऐसी प्रेरणा दी होगी। बहुत अच्छा हुआ। अम्माजी में इस छोटी उम्र में ऐसी प्रतिभा है जैसी इस उम्र के बच्चों में सम्भव ही नहीं। आचार्य शंकर भगवत्पाद छोटी उम्र में, सुनते हैं, ऐसे ही प्रतिभासम्पन्न थे।" पुजारी ने कहा।

"न न, ऐसी बात न करें। यों तुलना नहीं करनी चाहिए, यह ठीक नहीं। हमारे गुरुजी ने श्री शंकर भगवत्पाद के बारे में बहुत-सी बातें बतायी हैं। वे विश्ववन्द्य हैं। आठ वर्ष की आयु में चारों वेदों के पारंगत और बारह की आयु में सर्वशास्त्रों के ज्ञाता, सोलह में भाष्यों की रचना करनेवाले वे ज्ञान-भण्डारी जगद्वन्द्य हैं। युग-युगान्तरों में लोकोद्धार के कार्य को सम्पन्न करने के लिए ऐसे महात्मा जन्म धारण करते हैं। हम साधारण व्यक्तियों के साथ ऐसे महान् ज्ञानी की तुलना हो ही नहीं सकती। इतना ही नहीं, तुलना करना बिलकुल ही अनुचित है।" कहकर शान्तला ने बेहद बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा करनेवाले पुजारी को प्रशंसा करने से रोक दिया।

छोटे मुँह में कितनी बड़ी बात! पुजारी को मालूम हो गया था कि अम्माजी संगीत और नृत्य में भी निष्णात हैं। अतः उसने रात की पूजा के समय प्रार्थना की कि संगीत और नृत्य की सेवा देवी के समक्ष हो, जिससे देवी शारदा भी सन्तुष्ट हों। शान्तला ने संगीत और नृत्य की सेवा देवी को अर्पित भी की, बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ। उस दिन लाल चंपक पुष्पों की माला से देवी की मूर्ति सुशोभित थी। पूजा, संगीत-सेवा और नृत्य-सेवा के बाद आरती उतारी गयी। ठीक आरती उतारते समय देवी की दक्षिण भुजा पर से वह माला खिसकी। पुजारी ने उसे उठाया। माला को ज्यों-का-त्यों बाँधा। उसे लाया। अम्माजी से—"यह देवी का प्रसाद है, सेवा से सन्तुष्ट होकर देवी ने यह आपको दिया है। यह केवल मेरे

सन्तोष का प्रतीक मात्र नहीं, बल्कि यह सन्तोष एक नित्य सत्य हो जाये—इसक
यह सूचना है।" कहकर निस्संकोच भाव से वह माला पुजारी ने शान्तला के गले
में पहना दी।

वे लोग वहाँ से पूर्व-निश्चय के अनुसार रास्ते में जहाँ-जहाँ ठहरने की व्यवस्था की गयी थी वहाँ ठहरते हुए, आराम से आगे बढ़े। सुख से रास्ता पार करते हुए एक सप्ताह के बाद वे सब सोसेऊरु पहुँचे।

वहाँ उनका हार्दिक स्वागत हुआ। माचिकब्बे के सारे सन्देह दूर हो गये। खुद रेविमय्या और गोंक ही इनकी व्यवस्था के काम पर नियुक्त थे। सूर्यास्त के पहले वे सोसेऊरु पहुँचे थे। सब लोग थोड़े-बहुत थके हुए-से लग रहे थे। पहाड़ी प्रदेश के ऊबड़-खाबड़ और ऊँची-नीची उतार-चढ़ानोंवाले रास्ते पर गाड़ियों के हिचकोले खाने के कारण थके होने से किसी को कुछ खाने-पीने की इच्छा नहीं थी। फिर भी थोड़े में सब समाप्त कर सब लोग आराम करने लगे।

दूसरे दिन सुबह राजमहल से हेग्गड़ती माचिकब्बे को ले जाने के लिए एक पालकी आयी। माँ माचिकब्बे बेटी शान्तला को साथ ले जाना चाहती थी। इसलिए शीघ्र चलने को तैयार होने के लिए कहा।

शान्तला ने कहा, "माँ, मैं अब नहीं जाऊँगी। आज मेरा नया पाठ शुरू होगा।"

"अगर युवरानीजी पूछें तो मैं क्या जवाब दूँ?"

"युवरानी ने तो मुझको देखा ही नहीं। वे क्यों मेरे बारे में पूछेंगी? आप लोग बड़े हैं। मेरा वहाँ क्या काम है?" शान्तला ने बड़े अनुभवी की तरह कहा।

माचिकब्बे अकेली ही गयी। बड़ी आत्मीयता से युवरानी ने हेग्गड़ती का स्वागत किया। कुशल प्रश्न के बाद कहा, "सभी को राजमहल में ठहराने की व्यवस्था स्थानाभाव के कारण न हो सकी। अन्यथा न समझें। इसीलिए राजमहल से बाहर ही सबके लिए व्यवस्था की गयी है। हमारे प्रभु को बलिपुर के हेग्गड़ेजी के विषय में बहुत ही आदर-भाव है। उनके बारे में सदा बात करते रहते हैं। रेविमय्या, जो आपके यहाँ निमन्त्रणपत्र दे आया था वह बारम्बार हेग्गड़तीजी की उदारता के विषय में कहता ही रहता है। इतना ही नहीं, अम्माजी के बारे में भी कहता रहता है। जब वह अम्माजी के बारे में कहने लगता

है तब उसकी उमंग और उत्साह देखते ही बनता है। आप लोग आये, हमें इससे बहुत आनन्द हुआ। यदि आप लोगों के ठहरने की व्यवस्था में कोई असुविधा हो तो बिना संकोच के कहला भेजें। वहाँ सब सुविधाएँ हैं न?"

"सब हैं। ऐसे अवसर पर कुछ बातों में यदि कमियाँ रह भी जाती हैं तो उनके बारे में सोचना ठीक भी नहीं, उचित भी नहीं।"

"फिर भी राजघराने के लोगों को कर्तव्य से लापरवाह नहीं होना चाहिए न? जो भी यहाँ आते हैं वे सब राजघराने के अपने हैं। सभी का शुभ आशीष राजकुमार को मिलना चाहिए। आये हुए अतिथियों को किसी तरह की असुविधा न हो ऐसी व्यवस्था करना और उनको सन्तुष्ट रखना हमारा कर्तव्य है। तभी उनसे हृदयपूर्वक आशीर्वाद मिलेगा। है न? सुविधाओं की कमी से असन्तुष्ट अतिथियों के मन से वह आशीर्वाद न मिल सकेगा। यह हमारा-आपका प्रथम मिलन है। यह भविष्य की आत्मीयता के विकास का प्रथम चरण है, नान्दी है। क्योंकि प्रजाजन, अधिकारी वर्ग, और उनके परिवार के लोग—इन सबकी आत्मीयता ही राजघराने का रक्षाकवच है। इसीलिए इस मांगलिक अवसर पर सबकी आत्मीयता प्राप्त करने के विचार से ऐसे सभी लोगों को निमन्त्रित किया है।"

माचिकब्बे मौन होकर सब सुनती रही। युवरानी ने बोलना बन्द किया तो भी वे मौन ही रहीं। तब फिर युवरानी ने पूछा, "मेरा कहना ठीक है न?"

"मैं एक साधारण हेग्गड़ती, युवरानीजी से क्या कहूँ?"

"महारानी, युवरानी, दण्डनायक की स्त्री, हेग्गड़ती, ये सब शब्द निमित्तमात्र हैं, केवल कार्य निर्वहण के कारण उन शब्दों का प्रयोग होता है। राज्य-संचालन के लिए अधिकारी, कर्मचारी वर्ग आदि सब उपाधियाँ हैं। चौबीसों घण्टे कोई अधिकारी नहीं, कोई नौकर नहीं। हम सब मानव हैं। जगदीश्वर की सन्तान हैं। सब समान हैं। यदि हम यह समझेंगे तो आत्मीयता सुदृढ़ होती है। आत्मीयता के बिना केवल दिखावे की विनय घातक होती है। इसलिए आपको हमसे किसी तरह का संकोच नहीं करना चाहिए। निस्संकोच खुले दिल से सुविधा-असुविधा, के बारे में कहें। हमारे आपसी व्यवहार में किसी तरह का संकोच न हो।"

"ऐसा ही होगा, युवरानीजी।"

फिर मौन छा गया। माचिकब्बे कुछ कहना चाह रही थी, परन्तु संकोच के कारण असमंजस में पड़ी रही।

"हेग्गड़तीजी क्या सोच रही हैं?"

"कुछ नहीं, यही सोच रही थी और पूछना चाहती थी कि, इस उपनयन के शुभ-अवसर पर महाराज पधारेंगे ही न? परन्तु मन में यह हिचकिचाहट हो रही थी कि पूछूँ या न पूछूँ। यह शंका हो रही थी कि यह पूछा जा सकता है या

नहीं।"

"कोई बुरी बात हो तो कहने-पूछने में संकोच होना चाहिए। ऐसी बात पूछना भी नहीं चाहिए। अच्छी बात के कहने-पूछने में संकोच करने की क्या जरूरत है? महाराज का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है। अतः वे आ न सकेंगे। हम उपनयन के बाद उपनीत वटु के साथ दोरसमुद्र जाएँगे और उनका आशीर्वाद लेंगे। वे बड़े हैं, इस अवसर पर उनकी अनुपस्थिति हमें खटक रही है।"

"इस उपनयन संस्कार को दोरसमुद्र में भी तो सम्पन्न किया जा सकता था?"

"हमने अपने परिवार के इष्टदेव की मनौती मानी थी। अप्पाजी का स्वास्थ्य शुरू से ही अच्छा नहीं रहा करता। बीच-बीच में उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही रहता है। इष्टदेव की उस मनौती को यहीं समर्पित करने के विचार से इस मांगलिक कार्य को यहीं सम्पन्न करने का निश्चय हमने किया। इन सारी बातों से महाराज अवगत हैं।"

ठीक इसी मौके पर नौकरानी बोम्मले ने आकर प्रणाम किया।

युवरानी ने पूछा, "क्या है?"

जवाब में उसने कहा, "दण्डनायक की पत्नी चामव्वाजी, और उनकी पुत्रियाँ दर्शन करने आयी हैं।"

युवरानी कुछ असमंजस में पड़ीं, कहा, "हेग्गडतीजी अब क्या करें? न कहें तो वे असन्तुष्ट होंगी; अगर हाँ कहें तो हमें अपनी बातचीत यहीं खतम करनी पड़ेगी।"

माचिकब्बे ने कहा, "मैं फिर कभी आकर दर्शन कर सकती हूँ। वे बेचारी इतने उत्साह से आयी हैं तो उन्हें बुलवा लीजिए। मुझे आज्ञा दें।"

"आप भी रहिए, उन्हें आने दो।" युवरानी एचलदेवी ने कहा, "बोम्मले! उन्हें बुला लाओ।"

थोड़ी ही देर में दण्डनायक की पत्नी चामव्वा अपनी तीनों बेटियों—पद्मलदेवी, चामलदेवी, बोप्पदेवी के साथ आयीं। अपना बड़प्पन दिखाने के लिए उन लोगों ने आभूषणों से अपने शरीरों को लाद रखा था, ऐसा लगता था कि वे युवरानी को मानो लजाना चाह रही हों। माचिकब्बे स्वयं को उनके सामने देखकर लजा गयी। उसके पास आभूषणों की कमी न थी। वे इस दण्डनायक की पत्नी से भी अधिक जेवरों से लदकर आ सकती थी। परन्तु युवरानीजी के सामने आडम्बरपूर्ण सजावट और दिखावा उसे अनावश्यक लग रहा था। वह अपनी हस्ती-हैसियत के अनुरूप साधारण ढंग से सजकर आयी थीं।

युवरानी एचलदेवी ने आदर के साथ कहा, "आइए, चामव्वाजी, विराजिये। लड़कियाँ बहुत तेजी से बढ़ती जाती हैं; देखिए, अभी पिछले साल यह

"एक तरह से यह ठीक है। भगवान् ने हमें बाँटकर दिया है, मेरी बड़ी बहन को लड़के-ही-लड़के दिये और मुझे दीं लड़कियाँ।"

"परन्तु भगवान् ने आपको एक अधिक भी दिया है न?"

यह सुनकर चामव्वा ने कहा, "अगर यह एक लड़का होता तो कितना अच्छा होता!"

"नहीं, किसने कहा। परन्तु यह तो सब देनेवाले भगवान् की इच्छा है। यह समझकर हमें तृप्त होना चाहिए।" युवरानी ने कहा।

चामव्वा ने कहा, "एक तरह से मुझमें और युवरानी में एक तरह की समानता है।" यह बात हेग्गड़ती माचिकव्वे को ठीक नहीं लगी।

युवरानी ने पूछा, "वह साम्य क्या है?"

"मेरी तीन लड़कियाँ और युवरानीजी के तीन लड़के।"

युवरानी ने कहा, "भगवान् के सन्तुलन की यही रीति है, संसार में लड़के-लड़कियों की संख्या में सन्तुलन हो, यही भगवान् की इच्छा है। एक पुरुष के लिए एक स्त्री।"

"मेरे मन की अभिलाषा को युवरानी जी ने प्रकारान्तर से व्यक्त किया है।"

"मैंने किसी के मन की अभिलाषा या इच्छा की बात नहीं कही। मैंने यही कहा कि यदि ऐसा हो तो अच्छा है, एक साधारण नियम की बात कही। अमुक लड़के के लिए अमुक लड़की हो—यह तो मैंने कहा नहीं।" युवरानी ने स्पष्ट किया।

चामव्वा के चेहरे पर निराशा की एक रेखा दौड़ गयी।

इतने में बच्ची बोप्पदेवी को नींद आ गयी थी। उसे देखकर युवरानी ने नौकरानी बोम्मले को आवाज देकर बुलाया और कहा, "पालकी लाने को कहो, देखो, बेचारी यह बच्ची सो गयी है। चामव्वा को ले जाकर उनके मुकाम पर छोड़ आवें।"

थोड़ी ही देर में नौकरानी ने खबर दी, "पालकी तैयार है।"

युवरानी ने नौकरानी से कहा, "बच्ची को गोद में लो।" फिर एक सोने की डिबिया में रखे हल्दी-कुंकुम से चामव्वा का सत्कार किया। जगी हुई दोनों लड़कियों को भी कुंकुम दिया, बाद में उनके सिर पर हाथ फेरती हुई, "अच्छा, अब आप लोग जाकर आराम करें।" कहकर उन्हें विदा किया।

माचिकव्वे भी जाने को तैयार होकर उठ खड़ी हुई।

"इतनी जल्दी क्यों? अभी आपकी लड़की का पाठ-प्रवचन समाप्त नहीं हुआ होगा। अभी और बैठिए फिर जाइएगा।" कहती हुई युवरानी बैठ गयी।

माचिकव्वे भी युवरानी की ओर आश्चर्य से देखती हुई बैठ गयी।

युवरानी ने कहा, "आपको आश्चर्य करने की जरूरत नहीं। रेविमय्या ने

सारी बातें बतायी हैं। सचमुच अम्माजी को देखने की मेरी बड़ी चाह है। मेरा मन उसे देखने के लिए तड़प रहा है। परन्तु औचित्य के अनुरूप चलना ही ठीक है। राजघराने में रहकर हमने यह पाठ सीखा है, हेग्गड़ती जी। अम्माजी के बारे में सुनकर हमारे मन में एक तरह की आत्मीयता उमड़ आयी है। आत्मीयता को अंकुरित और पल्लवित करना आपका ही काम है।"

"बहुत बड़ी बात कही आपने। हम इस राजघराने के सेवक हैं, युवरानी जी। हमारा सर्वस्व इसके लिए समर्पित है।"

इसी समय एक नौकरानी ने आकर इशारे से ही सूचना दी।

"सभी तैयार हैं, कालब्बे ?"

नौकरानी ने इशारे से 'हाँ' कह दिया।

"चलिए, हेग्गड़तीजी, अभी हमारा प्रातःकालीन उपाहार नहीं हुआ है।"

"मेरा उपाहार अभी हुआ है। आप पधारिए। मुझे आज्ञा दीजिएगा।"

"आत्मीयता की भावना का यह प्रत्युत्तर नहीं है।"

इसके बाद दोनों उठीं। माचिकब्बे ने युवरानी का अनुसरण किया।

शालिवाहन शक सं. १०१४ के आंगीरस संवत्सर शिशिर ऋतु माघमास शुक्ल सप्तमी गुरुवार के दिन शुभ मेष लग्न के कर्काटक नवांश, गुरु त्रिशांश में गुरु लग्न मुहूर्त में अश्विनी नक्षत्र के चौथे चरण में रहते कुमार बल्लाल का उपनयन संस्कार सम्पन्न हुआ। समारम्भ बड़ी धूमधाम से शास्त्रोक्त रीति से सम्पन्न किया गया। महाराजा अस्वस्थता के कारण आ न सके थे। उन्हें उस स्थिति में छोड़कर न आ सकने के कारण प्रधानमन्त्री गंगाराज भी नहीं आ सके। शेष सभी मन्त्री, दण्डनायक आदि उपस्थित रहे। कुछ प्रमुख हेग्गड़े जन भी आये थे। राज्य के प्रमुख वृद्ध व्यावहारिक और प्रमुख नागरिक आदि सभी आये थे।

अब हाल में महाराज के प्रधान मुकाम वेलापुरी और दोरसमुद्र ही थे। अतः समस्त राज-काज वहीं से संचालित होता था। इसलिए सोसेऊरु का प्राधान्य पहले से कम था। परन्तु इस उपनयन समारम्भ के कारण सब तरह से सुसज्जित किया गया था। और वहाँ के सारे भवन अतिथिगृह आदि लीप-पोतकर वन्दनवार आदि से अलंकृत किये गये थे। मुख्य-मुख्य राजपथ एवं रास्ते गोबर से लीप-पोतकर विविध रंगों की रंगोली आदि से सजाये गये थे। प्रत्येक घर सफेदी आदि करके साफ-सुथरा किया गया था। सारा शहर एक परिवार का-सा होकर इस समारोह

में सम्मिलित हुआ था।

युवराज एरेयंग प्रभु के नेतृत्व में समारोह यथाविधि सम्पन्न हुआ। परन्तु इस समस्त समारोह के संचालन की सूत्रधारिणी वास्तव में युवरानी एचलदेवी ही थीं। उन्हीं के हाथों सारा कार्य संचालित होकर सम्पन्न हुआ। इनके साथ युवराज और युवरानी के विश्वस्त व्यक्ति चिण्णम दण्डनाथ और उनकी पत्नी श्रीमती चन्दलदेवी ने रात-दिन एक करके युवराज की और युवरानी के आदेशानुसार बहुत सतर्क होकर सारा कार्य निभाया था। चिण्णम दण्डनाथ से ऊँचे स्थान पर रहने पर भी मरियाने दण्डनायक तथा उनके परिवार के लोग केवल अतिथि ही बनकर रहे और कार्य-कलाप समाप्त होने पर घर लौट गये। अपने से कम हैसियत के चिण्णम दण्डनाथ पर काम-काज की जिम्मेदारी डाली गयी थी इसमें उन्हें थोड़ा-बहुत असमाधान भी हुआ हो—तो कोई आश्चर्य न था। फिर भी किसी तरह के असमाधान अथवा मन-मुटाव को अवकाश ही नहीं मिला।

चामव्वा को तो पूरा असन्तोष रहा। उसकी अभिलाषा को प्रोत्साहन मिल सके, ऐसी कोई बात युवरानीजी के मुँह से नहीं निकली। बदले में उनकी बातों में कुछ उदासीनता ही प्रकट हो रही थी। असमाधान क्यों होना चाहिए—यह बात चामव्वा की समझ से बाहर की थी। उसने क्या चाहा था सो तो नहीं बताया था। इस हालत में इनकार की भावना के भान होने की कौन-सी बात हो गयी थी। स्वार्थी मन इन बातों को नहीं समझता—यों ही क्रोधाविष्ट हो जाता है। उसने सोचा था कि युवरानी के अन्तःपुर में स्वतन्त्र होकर खुलकर मिलने-जुलने और सबसे बातें करने का अवसर मिलेगा। ऐसा सोचना गलत भी नहीं था क्योंकि दोरसमुद्र में उसे इस तरह की स्वतन्त्रता थी। वह स्वातन्त्र्य यहाँ भी रहेगा—ऐसा सोचना भूल तो नहीं थी। परन्तु चामव्वा के इस मानसिक क्षोभ का कारण यह था कि अपने से कम हैसियतवाली चिण्णम दण्डनायक की पत्नी चन्दलदेवी को वह स्वातन्त्र्य मिला था जो इसे मिलना चाहिए था, और एक साधारण हेग्गड़ती को अपने से अधिक स्वतन्त्रता के साथ सबसे मिलने-जुलने का अवसर दिया गया था। इससे वह अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ रही थी। परन्तु अन्दर की इस कुढ़न को प्रकट होने न दिया। दूर भविष्य की आशा-अभिलाषा उसके मन ही में सुप्त पड़ी थी। उसे जागृत कर दूर भगाना किससे सम्भव हो सका था? अपने कोख की तीनों लड़कियों का युवरानी के तीनों लड़कों से परिणय कराने की अभिलाषा को पूरा करने के लिए उपयुक्त प्रभावशाली रिश्ते-नातों के होते हुए, इस कार्य को किसी भी तरह से साधने की इस महत्त्वाकांक्षा को प्रकट करने की मूर्खता वह क्यों करेगी?

उपनयन-समारम्भ के समाप्त होने के बाद एक दिन अन्तःपुर में शान्तला के संगीत और नृत्य का कार्यक्रम रहा। इस समारम्भ में केवल स्त्रियाँ ही उपस्थित रहीं। युवरानी एचलदेवी इस संगीत एवं नृत्य को देखकर बहुत प्रभावित हुईं।

पालक बिट्टिदेव और उदयादित्य तो थे ही। इन बालकों को अन्तःपुर में रहने के लिए मनाही नहीं थी, क्योंकि वे अभी छोटे थे। बटु बल्लाल अभी उपनीत थे, इसलिए उनके लिए खास स्थान था। सभी ने गाना सुना, नृत्य देखा। सभी को बहुत पसन्द आया। नृत्य के बाद शान्तला अपनी माँ के पास जाकर बैठ गयी।

युवरानी ने सहज ही चामव्वा से पूछा, "क्यों चामव्वाजी, आपने अपनी पुत्रियों को नृत्य-संगीत आदि सिखलाया है?"

उन्होंने उत्तर दिया, "नहीं, दण्डनायकजी इन विद्याओं को प्रोत्साहन नहीं देते। उनका मत है कि हमारे जैसे हैसियतवालों को इन विद्याओं में लगना नहीं चाहिए।"

युवरानी ने कहा, "यदि आपकी इच्छा हो तो कहिए, मैं युवराज से ही दण्डनायक जी को कहलवाऊँगी।"

उत्तर में चामव्वा ने कहा, "मैं ही कहूँगी। युवरानी जी का आदेश है कि हमारी बच्चियों को संगीत और नृत्य सिखावें।"

"मेरी इच्छा आपकी अनिच्छा हो सकती है।"

"न, न, आपकी इच्छा ही मेरी इच्छा है।"

"विद्या सिखाने के लिए हमारे नाम का उपयोग करें तो हमें कोई एतराज नहीं।"

"आपकी सम्मति के बिना आपके नाम का उपयोग करें तो जो विश्वास आपने हम पर रखा है उसके लिए हम अयोग्य ठहरेंगे और आपके उन विश्वास को खो बैठेंगे। यह मैं अच्छी तरह समझती हूँ।" चामव्वा ने कहा।

"यही विश्वास राजघराने का भाग्य है। हमारे राज्य के अधिकारी-वर्ग पर जो विश्वास है वह यदि विद्रोह में परिणत हो जाये तब वह राष्ट्रद्रोह में बदल जायेगा क्योंकि राजद्रोह प्रजाद्रोह में परिवर्तित हो जायेगा।"

"राज-काज के सभी पहलुओं को देख-समझकर उसी में मग्न दण्डनायकजी कभी-कभी यह बात कहते ही रहते हैं युवरानीजी, कि श्रीमुनिजी के आदेशानुसार, अंकुरित सल वंश के आश्रम में इस तरह का विश्वासघाती कोई नहीं है, इसमें होय्सल राज्य का विस्तार होगा और इसके साथ यहाँ की प्रजा सुख-शान्ति से रहेगी, इसमें कोई शंका नहीं है।" चामव्वा ने कहा।

"ऐसे लोग हमारे साथ हैं—यह हमारा सौभाग्य है। लोगों के इस विश्वास की रक्षा करना हमारा भी कर्तव्य है। यह एक-दूसरे के पूरक हैं। अधिकार द्वारा या धन के द्वारा विश्वास की रक्षा करना सम्भव नहीं। अब राजभवन में सम्पन्न इस मांगलिक कार्य के अवसर पर सब मिलें, किसी भेदभाव के बिना आपस में मिल-जुलकर रहने और एक-दूसरे को समझने का एक अच्छा मौका प्राप्त हुआ—यह एक बहुत अच्छा उपकार हुआ। हमारे पूर्वजों ने हम स्त्रियों पर

एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी थोपी है। 'कार्येषु मंत्री' कहकर हमें वह उत्तरदायित्व सौंपा है कि पुरुष लोगों को समयोचित रीति से उपयुक्त सलाह देती हुई उन्हें सन्मार्ग पर चलने में सहयोग देती रहें। वे सन्मार्ग से हिगें नहीं—यह देखना हम स्त्रियों की जिम्मेदारी है। इसलिए स्त्री को विद्या-विनय सम्पन्न और सुसंस्कृत होना आवश्यक है। इस दृष्टि में हमारी हेग्गड़ती माचिकब्बे ने समुचित कार्य किया है—यह हमारी धारणा है। उनकी बेटी ने इस छोटी उम्र में जो सीखा है वह हमें चकित कर देता है। इस शुभ समारोह पर आयी परन्तु समय व्यर्थ न हो और पाठ-प्रवचन निर्बाध गति से चले, यह सोचकर शान्तला के गुरुओं को भी साथ लायी हैं। इससे हम उन लोगों की श्रद्धा और विद्यार्जन की आसक्ति की थाह जान सकते हैं। हमें हमारी हेग्गड़ती जी के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।" यों कहती हुई माँ के पास बैठी शान्तला को बुलाया, "अम्माजी, इधर आओ।"

युवरानी के बुलाने पर शान्तला उठकर पास तक जाकर थोड़ी दूर बड़ी गम्भीरता के साथ खड़ी हो गयी।

"दूर क्यों खड़ी हो। पास आओ, अम्माजी" कहती हुई युवरानी ने हाथ आगे बढ़ाये। शान्तला बहुत गम्भीर भाव से ज्यों-की-त्यों खड़ी ही रही। पास नहीं गयी। तब युवरानी ने ही खुद झुककर अपने हाथों से उसके हाथों को पकड़कर उसे अपने पास खींच अपने हाथों से उसके कोमल कपोलों को सहलाकर नजर उतारते हुए, "अम्माजी, तुमने बहुत सुन्दर गाया और नृत्य किया। प्रेक्षक और श्रोताओं की नजर लग गयी होगी। ईश्वर करे कि तुम दीर्घायु हो और तुम्हारी प्रतिभा दिन दूनी-रात चौगुनी बढ़े। यही ईश्वर से मेरी बिनती है।" कहकर शान्तला को अपनी बाँहों में कसकर आलिंगन किया। शान्तला हक्की-बक्की रह गयी। माँ की ओर देखने लगी तो माँ ने इशारे से बताया कि घबड़ाने की जरूरत नहीं। माँ का इशारा पाकर वह सहज भाव से युवरानी के बाँहों में बँधी रही।

युवरानी ने उसे उठाकर अपनी गोद में बैठा लिया और चन्दलदेवी से कहा, "कल हमने जो सामान चुनकर रखा था उसे उठवा लाइये।"

चन्दलदेवी दासी बोम्मले के साथ गयी और शीघ्र ही लौट आयी। बोम्मले दासी ने सन्दूकची आगे बढ़ायी। चन्दलदेवी ने उसे खोलकर उसमें रखी हीरे-जड़ी चमकती हुई माला निकाली।

युवरानी ने कहा, "इसे इस नन्हीं सरस्वती को पहना दीजिए।"

शान्तला युवरानी की गोद से उछलकर दूर खड़ी हो गयी और बोली, "अभी यह मुझे नहीं चाहिए।"

युवरानी यह सुनकर चकित हुईं। राजकुमार बल्लाल और बिट्टिदेव भी चकित होकर शान्तला की ओर देखने लगे। माचिकब्बे संदिग्ध अवस्था में पड़ गयी।

उन्होंने सिर झुका लिया।

चामव्वा को गुस्सा आ गया। कहने लगी, "युवरानीजी दें और उसे इनकार ! वित्ते-भर की लड़की है, ऐंठन दिखाती है। यह भूल गयी कि युवरानी के सामने बैठी है !"

शान्तला चामव्वा की ओर मुंह करके बोली, "क्षमा कीजिएगा। मैंने गर्व से इनकार नहीं किया। विद्या सीखने के बाद, गुरुदक्षिणा देकर विधिपूर्वक गुरु से आज्ञा ले और आशीर्वाद लेकर गाना और नृत्य सार्वजनिकों के सामने प्रदर्शित करने के बाद ही इस तरह के पुरस्कार लेने का विधान है।" इतना कहकर वह सहजभाव से अपनी माँ के पास जाकर बैठ गयी।

शान्तला की बात सुनकर चामव्वा को गुस्सा चढ़ आया, वह बड़बड़ाने लगी। चामव्वा की बेटी पद्मला की आँखें चन्दला के हाथ में चमक रही माला पर लगी थीं। अनजाने ही उसके हाथ अपने गले की ओर गये।

युवरानी ने कहा, "यह बात हमें मालूम नहीं थी। इस हार को शान्तला की धरोहर मानकर एक जगह सुरक्षित रखवाने की व्यवस्था कीजिएगा। पुरस्कार लेने की अनुमति उसके गुरु जब उसे दें यह उसको देंगे।"

माला पेटी में रखी गयी और बोम्मले उसे ले गयी।

"हेग्गड़ती माचिकब्बेजी, आपकी बेटी ने हमारे प्रेमोपहार को लेने से इनकार किया तो आपने कुछ हैरान होकर सिर झुका दिया था। शायद आपने समझा था कि अम्माजी की बात से हम असंतुष्ट हुए होंगे और इसीलिए सिर नीचा कर लिया। इतनी छोटी उम्र में यह संयम! इतनी निष्ठा! इस निष्ठा से वह आगे चलकर कितने महत्त्वपूर्ण कार्य को साधेगी—यह हम कैसे जानें? ऐसी पुत्री की माँ होकर आपको सिर नीचा करने का कोई कारण ही नहीं। आप लोग आये, हमें बड़ा आनन्द हुआ। फिर आप लोग कब वापसी यात्रा करेंगे—इस बात की सूचना पहले दें तो उसके लिए समुचित व्यवस्था कर देंगे। यह बात केवल हेग्गड़ती माचिकब्बे के लिए ही हमने नहीं कही, यह सबके लिए हमारी सलाह है। बोम्मला! जाकर हल्दी-कुंकुम, पान-फल सबको दो।" युवरानी ने कहा।

मंगल द्रव्य के साथ सब लोग वहाँ से चली गयीं। चन्दलदेवी अकेली वहाँ रह गयी।

युवरानी बोलीं, "देखा चन्दलाजी, शान्तला कैसी अच्छी बच्ची है! बच्चे हों तो ऐसे।"

"राजकुमार किस बात में कम हैं? युवरानीजी!"

"ऐसी लड़की का पाणिग्रहण करें तो उनके साहस-पराक्रमों के लिए अच्छा मार्ग-दर्शन मिलेगा।"

"पर करें क्या? वह एक साधारण हेग्गड़ती की गर्भ-प्रसूता है। यदि ऐसा न

होता…"

"हम इस दिशा में नहीं सोच रहे हैं। हम खुद कहें तब भी हमारी बात मान्य हो सकेगी या नहीं, यह हम नहीं जानतीं। इस कन्या का पाणिग्रहण करने लायक भाग्यवान् कौन जन्मा है—यही सोच रहे हैं।"

"अभी उसके लिए काफ़ी समय है न ?"

"यह ठीक है, अभी उसके लिए काफ़ी समय है। फिर भी अभी से इस बारे में सोचना अच्छा है।"

"वह अपने माँ-बाप की इकलौती बेटी है। क्या वे उसके लिए चिन्ता नहीं करते होंगे ? जरूर सोचते होंगे। युवरानी इसके लिए सिर क्यों खपा रही है ?"

"आपका कहना ठीक है। क्या यह सहज बात नहीं कि श्रेष्ठ वस्तु उसके योग्य उत्तम स्थान पर ही हो—यह चाहना स्वाभाविक ही तो है। यदि इस अम्माजी की योग्यता के अनुरूप योग्य वर प्राप्त न कर सके तो तब हमें उनकी सहायता करना क्या गलत होगा ? राजमहल का परिवार केवल कोख के जन्मी सन्तान तक ही तो सीमित नहीं, आप सब हमारे ही परिवार के हैं, यह हमारी मान्यता है। है या नहीं ?"

"हाँ, यह हमारा सौभाग्य है।"

"यदि कल आप ही अपनी सन्तान के लिए राजघराने से ही व्यवस्था कराने की इच्छा करें तो क्या हम नाहीं कर सकेंगे ? हमारा बेटा उदयादित्य और आपका पुत्र उदयादित्य—दोनों का जन्म एक ही दिन हुआ न ? हमारी आपस में आत्मीयता के होने के कारण आपने अपने कुमार का भी वही नाम रखा न, जो हमने अपने बेटे का रखा। कल यदि आपकी पुत्री रविचन्द्रिका और उसकी बहन शान्तिनी के लिए योग्य वर ढूँढ़ना पड़े तब हमारे सहयोग का इनकार सम्भव हो सकेगा ?"

चन्दलदेवी कोई जवाब नहीं दे सकी। उसका मौन सम्मत्ति की सूचना था। इतने में बोम्मले ने आकर बताया कि शान्ति जाग उठी है और हठपूर्वक रो रही है।" चन्दलदेवी और उसके साथ ही बोम्मले भी चली गयी।

अब वहाँ माँ और बच्चे ही रह गये। अब तक वे मौन थे, यह चुप्पी असह्य हो उठी। छोटा उदयादित्य सो चुका था।

"माँ, हमारी शिक्षा पूरी हो गयी न ?" राजकुमार बल्लाल ने पूछा।

"हाँ तो, मैं भूल ही गयी थी। तुम लोग अभी तक यहीं हो ?" कहती हुई निद्रित उदयादित्य की पीठ सहलाती हुई युवरानी ने पूछा, "अप्पाजी, वह लड़की तुम्हें अच्छी लगी ?"

उत्तर में बल्लाल ने पूछा, "कौन लड़की ? दण्डनायक की बड़ी लड़की ?"

युवरानी थोड़ी देर मौन हो उसकी ओर देखती रही, फिर मुस्कुराती हुई

पूछने लगी, "हाँ, बेटा, सुन्दर है न ?"

उसने अपने भाई की ओर देखा और सम्मतिसूचक दृष्टि से माँ को भी देखा।

"भले अप्पाजी ? मेरा पूछने का मतलब हेग्गड़तीजी की लड़की शान्तला के बारे में था। उसका गाना और नृत्य..."

"वह सब अच्छा था। परन्तु उसे राजघरानेवालों के साथ कैसा बरतना चाहिए—सो कुछ भी नहीं मालूम है। खुद युवरानीजी ने जो पुरस्कार देना चाहा, उसे उसने इनकार किया—यह मुझे बरदाश्त नहीं हुआ। मैं गुस्से से जल उठा।"

"जलने की क्या जरूरत है ? वह कोई भिखारिन होती तो हाथ पसारकर ले लेती। वह भिखारिन नहीं। सत्कुल-प्रसूता है। अच्छे गुरु के पास शिक्षा पा रही है। मुझे आश्चर्य इस बात का हुआ कि वह लड़की इस छोटी उम्र में कैसे इतनी औचित्य की भावना रखती है।" बिट्टिदेव ने ऐसे कहा मानो वह बहुत बड़ा अनुभवी हो।

"अगर तुमको अच्छी लगी तो उसे सिर पर उठाकर राजमहल के बाहरी मैदान में नाचो। कौन मना करता है। मुझे तो ठीक नहीं लगी, वह अविनय की मूर्ति..."

"अविनय ! न न, यह कैसा अज्ञान ? भैयाजी, उस अम्माजी की एक-एक बात बहुत स्पष्ट थी, बहुत गम्भीर और विनय से भरी।"

"मन में चाह रही तो सब अच्छा।" बल्लाल ने कहा।

"हाँ, हाँ, चाह न हो तो सभी बुरा ही लगेगा।" बिट्टिदेव ने कहा।

बात को बढ़ने न देने के उद्देश्य से युवरानी ने कहा, "तुम लोग आपस में क्यों झगड़ते हो—सुंदोपसुंदों की तरह।"

"मैं तो सुंदोपसुंदों की तरह उस लड़की को चाहता नहीं।" बल्लाल कुमार ने कहा।

"अच्छा, अब इस बात को बन्द करो। जाओ, अपना-अपना काम करो।" युवरानी ने कहा।

बल्लाल कुमार यही चाहता था, वह वहाँ से चला गया।

"माँ, आप कुछ भी कहें। वह लड़की बहुत बुद्धिमान है, बहुत संयमी और विनयशील है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"हाँ बेटा ! हम भी तो यही कहती हैं। उसके माँ-बाप साधारण हेग्गड़े-हेग्गड़ती न हुए होते तो कितना अच्छा होता !"

"माँ, कल हमारे गुरुजी ने पढ़ाते समय एक बात कही। समस्त सृष्टि के सिरजनहार उस कारणभूत परात्पर सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की इच्छा के अनु-

सार ही समस्त कार्य चलते है। यदि उसकी इच्छा न हो तो एक तिनका भी नहीं हिल सकता। उस घर में ही उस अम्माजी का जन्म यदि हुआ है तो वह भी उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर की इच्छा ही है न ? उसे छोटा या कम समझनेवाले हम कौन होते है ?"

"छोटा या कम नही समझ रही हूँ, अप्पाजी ! जैसे तुमने चाहा है वैसे ही हमने भी चाहा है, इसलिए उसके प्रति अनुकम्पा के भाव हमारे मन में हैं। यदि वह कुछ और ऊँचे घराने में जन्मी होती…"

बीच में ही बिट्टिदेव बोल उठा, "याने हमारा घराना ऊँचा है, यही है न आपका विचार ?"

"तुम्हारा मतलब है कि हमारा घराना ऊँचा नहीं ?" चकित होकर युवरानी ने पूछा।

"व्याहारिक दृष्टि से हमारा घराना अवश्य ऊँचा है। नही कौन कहता है ? परन्तु बड़प्पन और जन्म इन दोनों का गठबन्धन उचित नहीं होगा, माँ। हमारे पूर्वज क्या थे ? हमारे पास राज्य कहाँ था ? हम भी तो साधारण पहाड़ी लोग थे न ? श्रीमुनिजी की करुणा से हमें एक राज्य निर्माण करने की सामर्थ्य प्राप्त हुई। गुरुवर्य के द्वारा प्रणीत सत्-सम्प्रदाय में हम पले और बढ़े। उन्ही के बल से, प्रजा-हित की दृष्टि से हमने राज्य को विस्तृत किया। अभी होय्सलवंश के बारे में लोग समझने लगे हैं। उन महात्मा श्रीमुनि ने हमारे पूर्वज 'सल' को 'पोय्' कहकर सूचना क्यों दी थी ? हो सकता है साधारण पहाड़ प्रान्त के निवासी सलराय में किसी दैवी शक्ति के अस्तित्व को पहचानकर उनको ऐसा आदेश दिया था। उनका वह आदेश हमारे वंश का अंकित नाम हुआ, माँ। इससे भली-भाँति मालूम होता है कि छोटापन या बड़प्पन हमारे व्यवहार के अनुरूप होता है, उसका जन्म से कोई सम्बन्ध नही।"

"क्या ये सब तुम्हारे गुरु ने सिखाया ?"

"हाँ, माँ।"

"तुम्हारे बड़े भैया का ऐसा विशाल हृदय क्यों नहीं ? दोनों के गुरु तो एक ही हैं न ?"

"वे जितना सिखाते हैं और कहते है उतना सुनकर चुप बैठे रहने से ज्ञान-वृद्धि नहीं होती। उनकी उस सीख में, कथन में तत्त्व की खोज हमें करनी चाहिए। उनकी उस उपदेश-वाणी में निहित ज्ञान और तत्त्व को खोजना और समझना ही तो शिष्य का काम है। इसी में शिक्षा की सार्थकता है।"

"उस अम्माजी के गुरु ने भी यही कहा जो तुमने बताया।"

"माँ, आपने उन्हें कब देखा ?"

"वे यहाँ आये हैं। अम्माजी की पढ़ाई में विघ्न न पड़े इसलिए हेग्गड़ेजी

उसके गुरु को भी साथ लेते आये हैं। मैंने एक दिन कवि बोकिमय्या को बुलवाया था और उनसे बातचीत की थी। उन्होंने कहा, 'कभी-कभी अम्माजी के सवालों का उत्तर देना मुश्किल हो जाता है।' ऐसी प्रतिभा है। उस जैसा एक भी विद्यार्थी उन्हें अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। वे कहते हैं कि ऐसी शिष्या को पढ़ाने से हमारी विद्या सार्थक होती है—यही उन गुरुवर्य का विचार है।"

"माँ, मैं भी एक बार उन गुरुवर्य को देखना चाहता हूँ।"

"वे अब बलिपुर लौटने की तैयारी में लगे होंगे। फिर भी देखेंगे, रेविमय्या से खबर भेजूँगी।"

बातें हो ही रही थीं कि इतने में दासी बोम्मले आयी और युवरानीजी की आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ी हो गयी।

"बोम्मले, जाकर देखो रेविमय्या लौटा है या नहीं। वह हेग्गड़ती माचिकब्बेजी को उनके मुकाम पर छोड़ आने के लिए साथ गया था।" युवरानी ने कहा।

दासी बोम्मले परदा हटाकर बाहर गयी और तुरन्त लौट आयी।

"क्या है बोम्मले ?"

"रेविमय्या लौट आया है; उसके साथ बलिपुर के कविजी भी आये हैं।"

"अच्छा हुआ। दोनों को अन्दर बुला लाओ।"

बोम्मले चली गयी।

"बेटा ! तुम्हारी इच्छा अपने आप पूरी हो गयी।" युवरानी ने कहा।

वह कुछ कहनेवाला था कि इतने में रेविमय्या और उसके पीछे कवि बोकिमय्या दोनों ने प्रवेश किया।

बोकिमय्या ने झुककर हाथ जोड़ प्रणाम किया।

"बैठिए कविजी ! इस भीड़-भाड़ में पता नहीं आपको कितनी असुविधाएँ हुई होंगी ?" युवरानी ने कहा।

"सब तरह की सुविधाएँ रहीं, युवरानीजी; रेविमय्या के नेतृत्व में सारी व्यवस्था ठीक ही रही।" कहते हुए कवि बोकिमय्या बैठ गये।

"आप आये, अच्छा हुआ। मैं खुद बुलवाना चाहती थी। हाँ, तो अब आपके पधारने का कारण जान सकती हूँ ?" युवरानी ने पूछा।

"कोई ऐसी बात नहीं। कल प्रातःकाल ही चलने का निश्चय हेग्गड़ेजी ने किया है। अम्माजी के कारण आप लोगों के दर्शन का सौभाग्य मिला। हमारी वापसी की खबर सुनकर आपसे आज्ञा लेने के लिए आया हूँ।"

"क्या सीधे बलिपुर ही जाएँगे ?"

"नहीं, बलिपुर से निकलते समय ही यह निश्चय कर चुके थे कि बेलुगोल होते हुए बाहुबलि के दर्शन करके लौटेंगे। वहाँ जाकर फिर बलिपुर जाएँगे।"

"बहुत अच्छा विचार है। आप हमारी तरफ से हेग्गड़तीजी से एक बात कहेंगे ?"

"आज्ञा कीजिए, क्या कहना है ?"

युवरानी थोड़ी देर मौन रही, फिर कुछ सोचकर बोली, "नहीं, हम ही खुद उन्हें बुलवा लेंगे और कह लेंगे।"

"तो मुझे आज्ञा दीजिए।"

"अच्छा।"

बोकिमय्या उठ खड़े हुए और बोले, "क्षमा करें, भूल गया था। मुझे बुलवाने का विचार सन्निधान ने किया था न ? कहिए, क्या आज्ञा है ?"

"कुछ नहीं, यह हमारा छोटा कुमार बिट्टिदेव है; यह आपसे मिलना चाहता था। इसीलिए अवकाश हो तो कल पधारने के लिए कहला भेजने की बात सोच रही थी। अब तो वह काम हो ही गया। अप्पाजी दर्शन तो हो गये न ? मगर तुम्हारी अभिलाषा अब पूर्ण नहीं हो सकेगी। क्योंकि ये वापसी यात्रा की तैयारी में हैं। अच्छा, कविजी, अब आप जा सकते हैं।" युवरानी ने कहा।

कवि बोकिमय्या चले गये। रेविमय्या ने उनका अनुगमन किया। बिट्टिदेव कुछ असन्तुष्ट हो माँ की ओर देखने लगा।

"क्यों, अप्पाजी, क्या हो गया ? क्रुद्ध हो गये ? बातें करने के लिए अवकाश न मिल सका, इसलिए ?"

"माँ, दर्शन मात्र मैं कहाँ चाहता था ? क्या आपने समझा कि मैंने उन्हें पहले देखा नहीं ?"

"तुमने भी देखा था, और उन्होंने भी देखा था। फिर भी नजदीक की मुलाकात तो नहीं हुई न ? आज वह हो गयी। तुम्हारी जिज्ञासा के लिए आज कहाँ समय था ? इसलिए उन्हें बिदा कर दिया।"

"ठीक है, तब मुझे भी आज्ञा दीजिएगा। मैं चलूँगा।"

"ठहरो तो, रेविमय्या को आने दो।"

"पता नहीं, वह कब तक आयेगा। उन्हें मुकाम पर छोड़ आना होगा।"

"वह उनके मुकाम तक नहीं जायेगा। किसी दूसरे को उनके साथ करके वह लौट आयेगा। उसे मालूम है कि उसके लिए दूसरा भी काम है।" बात अभी पूरी हुई नहीं थी कि इतने में रेविमय्या लौट आया।

"किसे साथ कर दिया रेविमय्या ?" युवरानी ने पूछा।

"गोंक को भेज दिया। क्या अब हेग्गड़ती माचिकब्बे जी को बुला लाना होगा ?" रेविमय्या ने पूछा।

"अभी बुलवा लाने की जरूरत नहीं। कह देना कि कल की यात्रा को स्थगित कर दें। इसका कारण कल भोजन के समय युवरानीजी खुद बताएँगी, इतना

कहकर आओ।"

रेविमय्या चला गया। युवरानीजी की इस आज्ञा से उन्हें बहुत सन्तोष हुआ था। कारण इतना ही था कि अम्माजी शान्तला कम-से-कम कल तो नहीं जायेगी।

"इस बात के लिए मुझे यहाँ क्यों पकड़ रखा, माँ?" बिट्टिदेव ने कहा।

"इतनी जल्दबाजी क्यों अप्पाजी? तुम्हारे बड़े भाई का स्वास्थ्य पहले से भी ठीक नहीं रहता। इसलिए वह जल्दी गुस्से में आ जाता है। कम-से-कम तुम शांत रहने का अभ्यास करो। तुम्हारी सहायता के बिना वह कुछ भी नहीं कर सकेगा। वह बड़ा है, इस कारण से वही महाराजा बनेगा। छोटा होने पर भी सारा राज-काज तुम ही को सँभालना पड़ेगा। इसलिए तुम्हें अभी से शान्त रहने का अभ्यास करना होगा। माँ होकर मुझे ऐसा सोचना भी नहीं चाहिए! फिर भी ऐसी चिन्ता हो आयी है। क्या करूँ? पहले तुम्हारा जन्म होकर बाद को उसका जन्म हुआ होता तो अच्छा होता।" युवरानी ने कहा।

"मुझे सिंहासन पर बैठने की तनिक भी चाह नहीं। भैया कुछ स्वभाव से जल्दबाज हैं, फिर भी उनका हृदय बड़ा कोमल है। आपकी आज्ञा को मैं कदापि न भूलूँगा। भैया का स्वभाव मैं अच्छी तरह समझता हूँ। उनके और सिंहासन के रक्षा-कार्य के लिए यह मेरे प्राण धरोहर है। प्राणपण से उनकी रक्षा करूँगा। आपके चरणों की कसम; यह सत्य है।"

युवरानी एचलदेवी ने बेटे को प्रेम से खींचकर, अपनी बाँहों में उसे कसकर आलिंगन कर लिया और कहा, "सुनो, बेटा, अब सुनाती हूँ। जो आये है वे सभी कल-परसों तक चले जाएँगे। महाराजा से आशीर्वाद लेने के लिए तुम्हारे बड़े भैया को साथ लेकर हमें दोरसमुद्र जाना ही है। हम त्रयोदशी गुरुवार के दिन रवाना होंगे। वे लोग बेलुगोल जानेवाले हैं न? उन्हें हम अपने साथ दोरसमुद्र ले जाएँगे। वहाँ से बेलुगोल नज़दीक भी है। वहाँ से उन्हें विदा करेंगे। यह मैंने सोच रखा है। उस समय तुम्हें कविजी से मिलकर बातें करने के लिए बहुत समय मिलेगा। ठीक है न?"

माँ ने उसके लिए कितना और क्या सोच रखा है, यह जानकर बेटा बिट्टिदेव चकित हो गया। और कहा, 'माँ, मेरी, मैं समझ न सका, अब ठीक हो गया।"

"तुमको जो पसन्द आये, वही करूँगी। अब तुम अपने काम पर जा सकते हो।" आज्ञा पाते ही बिट्टिदेव में नयी जान आ गयी और वह चला गया।

तरह बात रोकने का कारण था कि शान्तला उसी को टकटकी लगाकर देख रही थी।

बोकिमय्या ने पूछा, "क्यों राजकुमार, बात कहते-कहते रुक क्यों गये ? क्या बात है ?"

बिट्टिदेव ने प्रश्न किया, "बाहुबलि स्वामि की भव्यता, त्याग आदि सबकुछ प्रशंसनीय है। परन्तु वे बिलकुल नग्न क्यों खड़े हैं ? क्या यह परम्परागत संस्कृति के प्रतिकूल नहीं है ?"

"मानवातीत, देवतुल्य के लिए साधारण मनुष्यों की तरह के रीति-रिवाजों का बन्धन नहीं, वे अतिमानव हैं।" बोकिमय्या ने जवाब दिया।

"क्या वे अपने जैन बन्धुओं की ही धरोहर हैं?" फिर दूसरा प्रश्न किया बिट्टिदेव ने।

"उसका धर्म के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। निरहंभाव की चरमावधि की प्रतीक है यह नग्नता। सुन्दर वस्त्रों से हम अपने शरीर को आच्छादित क्यों करते हैं ? केवल पसन्द करने के लिए ही न ?" बोकिमय्या ने सवाल किया।

बिट्टिदेव मौन रहा।

बोकिमय्या ने पूछा, "क्यों ? कहिए राजकुमार, मौन क्यों हो गये ?"

बिट्टिदेव कुछ कहना तो चाहता था, परन्तु शान्तला की उपस्थिति ने उसे मौन रखा।

आखिर बोकिमय्या ने समझाया, "वस्त्राच्छादन से उत्पन्न सुन्दरता और नग्नता से लगनेवाली असुन्दरता और असह्य भावना—इन दोनों के मूल में एक ही वस्तु है शरीराभिमान। एक को सुन्दर मानते हैं और दूसरे को असुन्दर। उसको सशक्त समझकर गर्व करते हैं। यह सब दृग्गोचर है। इसलिए ही वस्त्र-विहीन होने पर वह संतोष की भावना क्षीण हो जाती है और असह्य की भावना हो आती है। यह भी बाह्य चक्षु से ही ग्राह्य ज्ञान है। दृश्यमान स्थूल शरीर को भेदकर अन्तश्चक्षु से शुद्ध अन्तःकरण को परखने पर वहाँ सुन्दर-असुन्दर, सह्य-असह्य आदि भावनाओं के लिए कोई गुंजायश ही नहीं। एक तादात्म्य भावना की स्थिति का भान होने लगता है। इसीलिए बाहुबलि की नग्नता में असह्य की भावना उत्पन्न नहीं होती। उसमें एक निर्विकल्प बाल-सौन्दर्य लक्षित होता है।"

बिट्टिदेव ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा, "परन्तु ऐसे रहना मुझसे दुस्साध्य है।"

"सहज ही है। उस स्तर की साधना होने से ही वह सम्भव हो सकता है। साधना से वह अनुभव साध्य है।" बोकिमय्या ने बतलाया।

"हमारे गुरुवर्य ने एक बार सत्य हरिश्चन्द्र की कथा बताते हुए कहा था, 'वसिष्ठ ने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि विश्वामित्र हरिश्चन्द्र को सत्यपथ से डिगा

दें तो मैं दिगम्बर हो जाऊँगा।' अर्थात् उनकी दृष्टि में वह दिगम्बर हो जाना, यहाँ की इस दिगम्बरता में निहित भावना के विरुद्ध ही लगता है न ?"

"वैदिक सम्प्रदाय के अनुसार यह माना जाता है कि दिगम्बर होना अपनी संस्कृति से बाहर होना है।"

"भारतीय धर्म का मूल वही है न ?"

"मूल कुछ भी रहे वह समय-समय पर बदलता आया है। अग्नि पूजा से जिस संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ वह अनेक रूपों में परिवर्तित होती आयी। अपने को ब्रह्मा कहा। त्रिमूर्तियों की कल्पना की उद्भावना हुई। सृष्टि-स्थिति-लय का अधिकार त्रिमूर्तियों को सौंपा गया। इन तीनों मूर्तियों में से सृष्टि के अधिकारी और लयाधिकारी के लिए अवतार-कल्पना नहीं की गयी। स्थितिकर्ता विष्णु में अवतारों की कल्पना की।"

"मतलब क्या यह सब झूठ है ?"

"कल्पना-विलास जब सत्य को अलंकृत करता है तब सत्य उस सम्भावित अलंकार के आधिक्य से असत्य-सा लगने लगता है, यह सम्भव है।"

"तो क्या अवतार केवल कल्पना-विलास मात्र है ?"

"यह क्लिष्ट प्रश्न है। इसका उत्तर देना इतना सहल नहीं।"

"सत्य को सत्य कहने में, असत्य को असत्य बताने में, कल्पना को कल्पना कहने में क्या दिक्कत होती है ?"

"सत्य-असत्य-कल्पना—इन तीनों शब्दों के एक निश्चित अर्थ हैं। परन्तु जो दृष्टिगोचर नहीं और जिस पर हमारा अडिग विश्वास है—ऐसे विषयों को इस मानदण्ड से मापना और तदनुसार निर्णय करना कठिन है।"

"हम इस विषय को लेकर दुनिया में वाद-विवाद कराने, शास्त्रार्थ करवाने लगे तो चलनेवाला नहीं। विषय-ज्ञान से अनभिज्ञ हम जैसे छोटों को इन विषयों के बारे में आप जैसे अभिज्ञों के दृष्टिकोण समझने की जिज्ञासा होती है। इतना समझाइये। इससे हमारी तर्कबुद्धि और जिज्ञासा का समाधान न हो सके तो भी हर्ज नहीं।"

"राजकुमार का कहना ठीक है। एक धर्मावलम्बी का दूसरे धर्मावलम्बी को समझने का दृष्टिकोण क्या हो सकता है, इस बात की जानकारी अलबत्ता हो सकती है। मगर जिज्ञासा का समाधान नहीं हो सकता। क्योंकि वह विषय ही चर्चास्पद है।"

"यहाँ उपस्थित हम सब एक ही विश्वास के अनुगामी हैं। इसलिए आप निस्संकोच अपना विचार बतला सकते हैं।"

"राजकुमार गलत न समझें। यह सही है कि हम तीनों का विश्वास एक है। फिर भी हर विश्वास उतना ही दृढ़ नहीं होता है। तीनों में विश्वास का

परिमाण भिन्न-भिन्न स्तरों का है। इसके अलावा बड़े-बड़े मेधावी विद्वानों के बीच तर्क और शास्त्रार्थ इस कठिन विषय पर चल ही रहा है, चलता ही रहेगा। ऐसे क्लिष्ट विचार को मस्तिष्क में भर लेने योग्य आयु आपकी नहीं; अतः मेरी राय में ऐसे क्लिष्ट विषयों को अभी से दिमाग में भर लेना उतना समीचीन नहीं होगा। क्योंकि अभी विश्वास के बीज अंकुरित होने का यह समय है। उस बीज से अंकुर प्रस्फुटित हुआ है या नहीं इसको जाँच करने उगते बीज को निकालकर देखना नहीं चाहिए। बीज अंकुरित होकर पौधा जब अच्छी तरह जड़ जमा ले तब उसकी शाखा-प्रशाखाओं को हिला-डुलाकर जड़ कितनी गहराई तक जाकर जम गयी है, इस बात की परीक्षा की जाय तो ठीक होगा। विश्वास का बीज उत्तम और अच्छा रहा तो जड़ें गहराई तक पहुँच सकती हैं। बीज साधारण स्तर का होगा तो हिलाने-डुलाने से ही जड़ें उखड़ जाएँगी। जो भी हो, विश्वास की जड़ जमने तक प्रतीक्षा करना ही उत्तम है।"

बिट्टिदेव और बोकिमय्या के बीच हो रही इस चर्चा को तन्मय होकर शान्तला सुनती रही। यह चर्चा आगे बढ़े—यही वह चाह रही थी। बोकिमय्या ने इस चर्चा को अपने उत्तर से समाप्त कर दिया था। इससे वह निराश हुई। वह प्रतीक्षा करती रही कि राजकुमार कुछ पूछेंगे। इसी आशय से उसने राजकुमार को देखा।

राजकुमार कुछ न कहकर उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर बोला, "तो आज्ञा दीजिए, अब शाम हो गयी। मेरा घुड़सवारी के लिए जाने का समय हो गया।"

शान्तला ने सहज ही पूछ लिया, "क्या मैं भी सवारी पर आ सकती हूँ?"

"उसमें क्या है? आ सकती हो। आज बड़े भैया नहीं आएँगे। उनका घोड़ा मैं लूँगा, मेरा घोड़ा तुम ले लेना। मगर तुमको अपने माता-पिता की अनुमति लेकर आना पड़ेगा।"

"मेरा अशोक है।"

"मतलब उसे भी साथ लेती आयीं हैं? रेविमय्या ने कहा था, वह बड़ा ही सुलक्षणोंवाला सुन्दर टट्टू है। मैं जल्दी तैयार होकर प्रतीक्षा करूँगा।" कहकर बिट्टिदेव चला गया।

गुरु का चरणस्पर्श कर शान्तला भी चली गयी।

उस दिन के अश्वारोहियों की यह जोड़ी दोरसमुद्र की यात्रा के लिए भी अपने-अपने घोड़ों पर चली।

पहले से दोरसमुद्र के लोगों को विदित था कि युवराज सपरिवार पधारने-वाले हैं। वहाँ राजमहल के द्वार पर आरती उतारकर लिवा ले जाने के लिए चामव्वा तैयार खड़ी थी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उसकी बेटियाँ भी

सालंकृत उसके साथ खड़ी थीं।

सबसे पहले रेविमय्या, रायण और छोटे राजकुमार बिट्टिदेव और अम्माजी शान्तला पहुँचे और राजमहल के सामने के सजे मण्डप में उतरे। इसे देख चामव्वा उँगली काटने लगी। घोड़े पर से उतरे बिट्टिदेव को चामव्वा ने तिलक लगाया और आरती उतारी।

राजकुमार बिट्टिदेव ने दूर खड़ी शान्तला के पास पहुँचकर, "चलो शान्तला, अन्दर चलें।" कहकर कदम बढ़ाया।

वहाँ उपस्थित सभी प्रमुख व्यक्तियों ने सोसेऊरु में शान्तला को देखा ही था। उनमें से किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया यह बात वह समझ गयी। उन लोगों के वास्ते तो वह नहीं आयी थी। यदि बिट्टिदेव उसे न बुलाता तो दुःख होता अवश्य। परिस्थिति से परिचित राजकुमार ने औचित्य के अनुसार समझदारी से काम लिया। शान्तला उसके साथ अन्दर गयी।

बिट्टिदेव सीधा उस जगह पहुँचा जहाँ महाराजा का खास दीवानखाना था। उसने सुखासन पर आसीन महाराजा के चरण छूकर साष्टांग प्रणाम किया। शान्तला जो उसके साथ थी, उसने भी महाराजा के चरण छुए और प्रणाम किया।

महाराजा विनयादित्य ने दोनों के सिर सहलाये और कहा, "बैठो! इस पलंग पर ही बैठो। क्या सब लोग आ गये? यह अम्माजी कौन है?" महाराज ने पूछा।

बिट्टिदेव दादा के पास पलंग पर ही बैठा। शान्तला वहाँ रखे दूसरे एक आसन पर बैठी। "उनके आने में थोड़ा समय और लगेगा। सब भोजन के बाद बेलापुरी से साथ ही निकले। हम घोड़ों पर चले आये। यह बलिपुर के हेगड़े मारसिंगय्याजी की पुत्री है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"तुम्हारा नाम क्या है, अम्माजी?" विनयादित्य ने पूछा।

"शान्तला।"

"शान्तला, बहुत सुन्दर। परन्तु तुम्हें इस छोटी वय में घोड़े पर सवारी करना आता है, यह बड़े ही आश्चर्य का विषय है। क्या तुम दोनों ही आये?" विनयादित्य ने पूछा।

"नहीं, हमारा रेविमय्या और बलिपुर का इनका रायण—दोनों हमारे साथ आये हैं।"

"अच्छा, यात्रा से थके हैं। इस अम्माजी को अन्तःपुर में ले जाओ। दोनों आराम करो।"

दोनों चले गये।

उन दोनों ने बाहर निकलने के लिए देहली पार की ही थी कि इतने में मरियाने दण्डनायक वहाँ पहुँचे।

दण्डनायक को बैठने के लिए कहकर महाराजा ने पूछा, "अभी हमारे छोटे अप्पाजी के साथ जो अम्माजी गयी उसे आपने सोसऊरु में देखा था न? उसका तो एक बार आपने जिक्र भी किया था।"

"जी हाँ, वह तो हेग्गड़े मारसिंगय्या की बेटी है।" मरियाने दण्डनायक ने कहा।

"ऐसा लगता है कि हेग्गड़ेजी ने अपनी बेटी को बहुत अच्छी शिक्षा दी है।"

"इकलौती बेटी है, राजघराने से उसे किस बात की कमी है?"

"मैंने यह नहीं कहा। उसकी व्यवहार-कुशलता के बारे में बताया। छोटे अप्पाजी और वह अम्माजी दोनों ने आकर नमस्कार किया। दोनों से अपने पलग पर बैठने को कहा। परन्तु वह लड़की दूर पर रखे आसन पर जा बैठी। इस छोटी उम्र की बालिका में इस औचित्य-ज्ञान को देखकर सन्तोष हुआ। सुना है कि वह छोटे अप्पाजी के साथ अपने घोड़े पर ही आयी है।"

"उस हेग्गड़े को अपनी बच्ची से बहुत प्रेम है। शायद यह सोचकर कि अपनी लड़की रानी बनेगी, उसने अश्वारोहण सिखाया हो।" मरियाने दण्डनायक ने कुछ व्यंग्य से कहा।

"जिस किसी ने घोड़े की सवारी करना सीखा हो वह सब राजा या रानी नहीं बन सकते, है न? दण्डनायकजी, आपके मुँह से यह बात सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। आप खुद अपने बाल्यजीवन को याद कीजिए। कोई पूर्व-सुकृत था, हमारी महारानी ने आप पर अपने सगे भाई जैसा प्रेम और विश्वास रखा। आपका विवाह स्वयं उन्होंने कराया। आपकी हैसियत बढ़ायी। आज आप महाराजा और प्रधानमन्त्री के निकट हैं। यह सब हम ही ने तो बाँट लिया है न? सगे भाई न होने पर भी महारानी ने आपको प्रेम से पाला-पोसा तो औरस पुत्री को प्रेम-ममता और वात्सल्य से पाल-पोसने में क्यों दिलचस्पी न ले? उस अम्माजी का भाग्य क्या है—सो हम-आप कैसे जान सकेंगे? अच्छे को अच्छा समझकर उसे स्वीकार करने की उदारता हो तो वही पर्याप्त है। अब हम एक बात सोच रहे हैं। अभी युवराज तो आ ही रहे हैं। हमारा भी स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं रहता। अबकी बार युवराज को सिंहासन देकर एवं उपनीत बटु को युवराज पद देकर विधिवत् पट्टाभिषेक कर लें और हम निश्चिन्त हो जायें। इस बारे में आपकी क्या राय है?"

"हमारे साले गंगराज इस विषय में क्या राय रखते हैं?" झुके सिर को उठाते हुए मरियाने दण्डनायक ने कहा।

"प्रधानमन्त्री से हमने अभी नहीं कहा है।"

"युवराज की भी स्वीकृति होनी है न?"

"स्वीकार करेंगे, जब हमारी आज्ञा होगी तो वे उसका उल्लंघन क्यों

करेंगे ?"

"ऐसी बात नहीं, सन्निधान के रहते सन्निधान के समक्ष ही सिंहासन पर विराजने के लिए उन्हें राजी होना चाहिए न ?"

"आप सब लोग हैं न ? अगर राजी न हों तो समझा-बुझाकर आप लोगों को उन्हें राजी कराना होगा।"

"तुरन्त राय देना कठिन कार्य है। सम्बन्धित सभी मिलकर विचार-विनिमय करने के बाद इसका निर्णय करना अच्छा होगा।"

"ठीक है, वैसा ही करेंगे।"

इसके बाद मरियाने आज्ञा लेने के इरादे से उठ खड़े हुए।

"बलिपुर के हेग्गड़े दक्ष हैं ?"

"युवराज ने बता ही दिया होगा न ?"

"मतलब यह कि आप जवाब देना नहीं चाहते। है न ?"

"ऐसा कुछ नहीं। मेरा उनसे सीधा सम्पर्क उतना विशेष रूप से नहीं हो पाया है। मैंने इतना अवश्य सुना है कि विश्वासपात्र हैं और बलिपुर की जनता उन्हें बहुत चाहती है। हमारे युवराज उन्हें बहुत पसन्द करते हैं और चाहते भी हैं। इससे यह माना जा सकता है कि वे दक्ष भी हैं।"

"बहुत अच्छा।" महाराजा ने कहा।

इसके बाद मरियाने ने सिर झुकाकर प्रणाम किया और चला गया।

महाराजा विनयादित्य को लगा कि दण्डनायक सदा की तरह सहज रीति से आज व्यवहार क्यों नहीं कर रहे हैं। इसी चिन्ता में वे पलंग पर तकिये के सहारे पैर पसारकर लेट गये।

नूतन वटु कुमार बल्लाल के साथ राजपरिवार दोरसमुद्र पहुँचा। नवोपनीत वटु का भव्य स्वागत हुआ। चामव्वा के उत्साह का कोई ठिकाना ही नहीं था। वर-पूजा करने के लिए सन्नद्ध वधू की माता की-सी कल्पना से वह अभिभूत हो गयी थी; इससे उसका मन-मुकुल खुशी से विकसित हो रहा था। सोसेऊर से लौटने के पर दण्डनायक और उनकी पत्नी ने परस्पर विचार-विनिमय के बाद खूब सोच-समझकर यह निर्णय किया था कि राजघराने के समधी-समधिन बनें और अपनी बेटी को पट्टमहिषी बनावें। यह निर्णय तो किया परन्तु उस निर्णय को कार्यान्वित करने का विधि-विधान क्या हो—इस सम्बन्ध में कोई निश्चय नहीं किया था।

युवराज, युवरानी बट्टु के साथ आने ही वाले थे; तब प्रधानमन्त्री गंगराज से आप्त-समालोचना करने और कुछ युक्ति निकालने की बात मन में सोचते रहे।

परन्तु शान्तला को जब से देखा तब से चामव्वा के मन में वह काँटा बन गयी थी। उसने समझा था कि बला टल गयी—मगर यहाँ भी शान्तला को देखकर उसकी धारणा गलत साबित हुई। वास्तव में चामव्वा ने यह सोचा न था कि हेग्गड़े का परिवार दोरसमुद्र भी आयेगा। वह ऐसा महसूस करने लगी कि हेग्गड़ती ने युवरानी पर कुछ जादू कर दिया है। उसने सोचा कि हेग्गड़ती के मन में कुछ दूर भविष्य की कोई आशा अंकुरित हो रही है। कोई आशा क्या? वही उस इकलौती बेटी को सजा-धजाकर खुद राजघराने की समधिन बन जाना चाहती है। मेरी कोख से तीन लड़कियाँ जो जन्मी हैं, तदनुसार युवरानी के भी तीन लड़के पैदा हुए हैं, तो हिसाब बराबर है; ऐसी हालत में यह हेग्गड़ती हमारे बीच कूद पड़नेवाली कौन है? चामव्वा क्या ऐसी स्थिति उत्पन्न होने देगी? इस-लिए उसने पहले से ही सोच रखा था कि परिस्थिति पर काबू लाने के लिए कोई युक्ति निकालनी ही चाहिए।

हँसी-खुशी से स्वागत करने पर भी चामव्वा के हृदयांतराल में बुरी भावना के जहरीले कीड़े पैदा होकर बढ़ने लगे थे। बट्टु को युवरानी-युवराज की आरती उतारने के बाद वे जब अन्दर चलने लगे तब मौका पाकर अपनी बड़ी बेटी पद्मला को ढकेलकर उनके साथ कर दिया। इन सबके पीछे चामव्वा थी। साथ ही हेग्गड़े मारसिंगय्या और हेग्गड़ती माचिकब्बे भी थे। उन्हें देखकर चामव्वा ने माचिकब्बे से पूछा, "हेग्गड़तीजी ने सोसेऊरु में यह नहीं बताया कि यहाँ आएँगी।" पूछने में एक आक्षेप ध्वनित हो रहा था।

हेग्गड़ती माचिकब्बे ने सहज भाव से विनीत हो बताया, "हमने यहाँ आने का विचार ही नहीं किया था। युवरानीजी की आज्ञा हुई, इसलिए आये।"

"हेग्गड़तीजी! आपमें कोई जादू भरा है। नहीं तो युवरानीजी का एक साधारण हेग्गड़ती के साथ इतना लगाव कैसे सम्भव है?" दण्डनायक की पत्नी ने कहा।

कितना व्यंग्य! इस हेठी के भाव से अनभिज्ञ हेग्गड़ती ने सहज भाव से कहा, "हाँ चामव्वाजी, मैं एक साधारण हेग्गड़ती हूँ। पर युवरानीजी की उदारता ने मुझे भी चकित कर दिया है।"

"आपके गुन ही ऐसे हैं।" चामव्वा ने कुछ वक्रोक्ति भरी ध्वनि से यह बात कही।

"यह सब हम क्या जानें, चामव्वाजी! बड़ों के दर्शाये मार्ग पर लीक-लीक चलनेवाले हैं, हम। यदि हमारा व्यवहार दूसरों को पसन्द आया और दूसरों ने उसे अच्छा समझा तो वह हमें मार्गदर्शनिवाले उन बड़ों की श्रेष्ठता का ही परिचय

देता है। वह उन बड़ों के बड़प्पन का साक्षी है।"

"बड़ों का नाम लेकर खिसक जाने की बात छोड़िए, हेग्गड़तीजी; खुद आपने अपनी तरफ से अपने पर लादे बड़प्पन की यह बड़ाई है। यह उसी का प्रतीक है। आप मामूली थोड़े ही हैं।" चामव्वा ने व्यंग्य भरा तीर मारा।

माचिकब्बे ने बात बदलने के इरादे से कहा, "युवरानीजी शायद मेरी प्रतीक्षा करती होंगी।"

"नहीं, अभी तो वे आपकी प्रतीक्षा नहीं करेंगी। उन्हें भी विश्रांति चाहिए न ? ठहरिए, नौकर को साथ कर दूँगी। वह आपको ठहरने के मुकाम पर ले जाकर छोड़ आयेगा।" कहती हुई चामव्वा झटपट चली गयी।

औरतों के बीच मारसिंगय्या मौन खड़े रहे। उनके लिए राजमहल नया नहीं था। वहाँ की गतिविधियाँ भी नयी नहीं थीं। वे चुप रहे।

दो-एक क्षणों में ही राजमहल का नौकर आया। साथ शान्तला भी आयी थी। 'चलिए' कहते हुए वह आगे बढ़ा। शान्तला, माचिकब्बे और मारसिंगय्या तीनों उसके पीछे चले। राजमहल के दक्षिण-पूर्व के कोने के एक अतिथि-भवन में उन्हें छोड़कर यह कहते हुए "आपके सभी अन्य लोगों को भिजवा दूँगा, आप लोग आराम करें"—नौकर चला गया। सभी वहाँ बिछे कालीन पर बैठ गये। नौकर अर्घ्य-पाद्य, पान-पट्टी आदि की व्यवस्था कर चले गये।

माचिकब्बे ने पूछा, "जब से आयी, तुम कहाँ रही अम्माजी ?"

"महाराजा के दर्शन के बाद मैं और राजकुमार उनके अन्तःपुर में रहे।" शान्तला ने कहा।

"तुम लोग बहुत समय पहले आ गये होगे ?"

"हाँ माँ, एक प्रहर हो गया होगा !" शान्तला ने कहा।

"अब तक क्या कर रही थी ?"

"बातचीत करते बैठे रहे।"

"क्या किसी राक्षस की कहानी कहते रहे ?"

"हाँ तो, हम दोनों अभी छोटे बच्चे हैं न ? मनगढ़ंत कहानियाँ कहते-हँसते खेलते-कूदते रहे।" कहती हुई शान्तला के चेहरे पर क्रोध की रेखा खिंच गयी।

"लो, देख लो ! नाक की नोक पर ही गुस्सा उतर आया; देखो, नाक कैसी चढ़ी हुई है। कुछ हँसी-खुशी की बात भी सह न सके—ऐसे बुढ़ापे की शिकार इस छोटी उम्र में ही ? अम्माजी, एक बात समझ लो। तुम्हारे गुरुजी ने भी कहा होगा। परन्तु मैं माँ, अपने अनुभव की बात बताती हूँ। हमेशा हँसमुख रहना सीखो। हँसमुख दीर्घायु का शुभ लक्षण है। इसलिए कभी चेहरे पर गुस्से से सिकुड़न न आने देना।"

"मन में जो पीड़ा हुई उसे भी कहें नहीं ?"

"मन में पीड़ा हो, चाहे असह्य वेदना रहे, फिर भी हँसते रहना चाहिए। अम्माजी, अभी वेलुगोल में स्थित बाहुबलि में भी तुम देखोगी। उन्होंने कितना दुःख सहा; कितनी कसक रही; जब कसक की पीड़ा अधिक हुई तो धीरज के साथ किस तरह अभिमानपूर्वक मुकाबिला किया; उस छिड़ी हुई दशा में कितना दर्द सहना पड़ा। एकबारगी उस अभिमान-अहंकार से छुट्टी पायी तो वहाँ उस कसक या दर्द के लिए स्थान हो न रह गया। यों वहाँ हँसमुख बाहुबलि की मूर्ति स्थायी रूप से स्थित हो गयी। वहाँ जाकर देखोगी तो यह सब समझ में आ जायेगा। तुम अभी छोटी बच्ची हो। पर होशियार और प्रतिभाशाली हो। फिर भी अभी अनुभव नहीं है। अभी से मानसिक दुःख-दर्द के कारणभूत इस अभिमान को दूर कर देना चाहिए। समझी अम्माजी। अब बताओ, तुम लोग क्या-क्या बात कर रहे थे?"

"राजकुमार ने पूछा, 'तुम्हारा गाँव कैसा है और वहाँ क्या-क्या है?' मैंने जो जाना था सो सब बता दिया।"

"क्या उन्हें हमारा गाँव पसन्द आया?"

"क्या-क्या अच्छा लगा—सो तो मैं बता नहीं सकती। परन्तु जब मैंने मानवाकार में स्थित उस गण्डभेरुण्ड के बारे में बताया तो उसके विषय में उनका उत्साह लक्षित हुआ।"

"उसके बारे में राजकुमार ने कुछ बातें कीं?"

"मैंने बताया, 'उस मूर्ति का शरीर, हाथ और पैर तो फौलाद जैसे मजबूत लगते हैं। मगर देखने में बड़ी सुन्दर है।' तब राजकुमार ने कहा, 'मर्द को तो ऐसा ही होना चाहिए।' उन्होंने कहा कि उस मूर्ति को एक बार देखना चाहिए।"

"तुमने बुलाया?"

"मैं बुलाऊँ तो राजकुमारजी आएँगे?"

"बुलाना हमारा धर्म है। आना, न आना उनकी इच्छा।"

"भूल हुई माँ। तब तो उन्हें निमन्त्रित करूँगी।"

"अब बुलाने न जाना। जब बुलाने का मौका था तब नहीं बुलाया; अब बुलाना संगत न होगा। राजकुमार की इच्छा को पूरा करने के लिए दूसरा कुछ और उपाय सोचेंगे।"

इतने में रेविमय्या हाँफता हुआ आया और कहने लगा, "बड़ा गड़बड़ हो गया हेग्गड़तीजी! राजमहल के अन्तःपुर के पास उससे लगे उस दीवानखाने में जिसमें महारानीजी रहा करती हैं, वहीं ठहराने की युवराज की आज्ञा थी। आप लोगों को यहाँ कौन लिवा लाया? उठिए, उठिए, युवरानीजी बहुत गुस्सा कर रही हैं।"

"हमें क्या मालूम, रेविमय्या। हम सहज रीति से युवरानीजी का ही अनुसरण

कर रहे थे। चामव्वा ने हमें यहाँ भेज दिया। यहाँ भी अच्छा है। यहाँ रहने में क्या हर्ज है?" हेग्गड़ती माचिकब्बे ने कहा।

"जो भी हो, अब तो मुझे यह सब सहना है। आप कृपा कर मेरे साथ चलें, नहीं तो मैं जीवित नहीं रहूँगा। मेरा मस्तक उधेड़कर उनका झंडा फहरा दिया जायेगा।"

"तुम्हारी इसमें क्या गलती है, रेविमय्या? जब यह सब हुआ तब तुम वहाँ थे ही नहीं।"

"यह मेरी गलती है। वहीं रहकर आप लोगों को उनके साथ राजमहल में ले जाना चाहिए था। उन्होंने खुद सोसेऊरु में ही ऐसी आज्ञा दी थी। पहले यहीं आगे रहकर मुझे अपना कर्तव्य करना था। नहीं किया। इसीलिए यह सारी गड़बड़ पैदा हो गयी है। एक शुभकार्य समाप्त कर आये, अब इस व्यवहार से मुझे मन मारकर रहना पड़ा है। मुझे इस संकट से बचाइए। आपके पैरों पड़ता हूँ।" कहते हुए रेविमय्या उनके पैरों पर पड़ा।

"उठो रेविमय्या, यह सब क्या? सच तो, हम जहाँ भी रहें, एक जैसा है। हम किसी को दुःखी करना पसन्द नहीं करते।" हेग्गड़े मारसिंगय्या ने कहा। और सबने रेविमय्या का अनुसरण किया।

युवरानी एचलदेवी को जितना जल्दी गुस्सा चढ़ता उतना ही शीघ्र वह उतर भी जाता है। सहज ही वह विशालहृदया है। उसका ध्येय है कि अपनी वजह से किसी को कोई दुःख न हो। उसके बुलावे पर अतिथि बनकर जो आये उनकी देखभाल की व्यवस्था उसकी इच्छानुसार होनी चाहिए; यदि वह न हुआ तो सहज ही क्रोध आता ही है। अब की स्थिति यही थी। इसी वजह से उसे गुस्सा आया था। हेग्गड़े के सारे परिवार के अन्तःपुर में आ जाने के बाद शान्त होकर सोचने पर पता चला कि इसके पीछे क्या कारण था। ऐसा क्यों हुआ था। फिर भी उसने प्रतिक्रिया व्यक्त करने की बात नहीं सोची। इसके साथ ही उसके मन में एक निश्चित निर्णय भी हुआ। पद का मोह किस तरह से स्वार्थ-साधन के मार्ग का अनुगमन करता है—इस बात से परिचित युवरानी ने अबकी बार क्षमा कर देने की बात मन-ही-मन सोची। वहाँ सोसेऊरु में रहते समय भी चामव्वा ने शान्तला के बारे में जो भला-बुरा कहा था, उसीसे वह असन्तुष्ट हुई थी। मगर तब उसने उसे कोई महत्त्व नहीं दिया था। यहाँ जो घटना घटी उसने उसके मन में एक

सुस्पष्ट ही चित्र प्रस्तुत कर दिया था; साथ ही उसके हृदयांतराल पर विषाद की गहरी रेखा भी खिंच गयी थी।

यह सब क्या है? युवरानी एचलदेवी के मन में तरह-तरह के प्रश्न उठ खड़े हुए। निष्कल्मष दृष्टि से एक दूसरे से प्रेम करना क्या असह्य नहीं? मानव ऐसे शुद्ध प्रेम को भी यदि सह नहीं सकता और असूया से नीच भावना का शिकार होकर हीनवृत्तियों का आश्रय ले तो वह पशु से भी बदतर न होगा? पशु इस ऐसे मानव-पशु से कुछ बेहतर मालूम होता है। उससे प्यार के बदले प्यार मिलता है। वह प्रेम करनेवाले की हस्ती-हैसियत, मान-प्रतिष्ठा का ख्याल भी नहीं करता। उसे उम्र की भी परवाह नहीं। एक छोटा बालक उसे प्रेम से खिलाए या बड़े अथवा गरीब या धनी कोई भी प्रेम से खिलाएँ तो वह कुत्ता भी सबको बराबर के प्रेम भाव से देखता है। पर हम कितनी भेद-भावना रखते हैं। क्या यह ईश्वर के वरप्रसाद के रूप में प्राप्त बुद्धि के दुरुपयोग की चरमसीमा नहीं है? उस ईश्वरदत्त बुद्धि के सदुपयोग को छोड़कर उसका अन्यथा उपयोग नीचता की परिसीमा नहीं? जन्म, अधिकार और ऐश्वर्य आदि न जाने कौन-कौन से मानदण्डों का ढेर लगाकर मापते-मापते थक न जाएँगे? अहिंसा, त्याग आदि के बहानों का सहारा लेकर व्रत-नियमों की आड़ में स्वर्ग-साधना करने के बदले मानवता की नींव पर शुद्ध मानव-जीवन जीने का प्रयत्न मानव क्यों नहीं करता? ऐसा अगर हो तो यह भूलोक ही स्वर्ग बन जाए। इसे स्वर्ग बनाने के लिए ही समय-समय पर अलग-अलग रूप धारण कर सच्चे मानव के रूप में ईश्वर अवतरित होकर मानवता के धर्म का उपदेश देता आया है; स्वयं मानवता का आदर्श बनकर उदाहरण देकर मानव-धर्म का अनुष्ठान करके दिखाया है। एक बार उसने जो मार्ग दर्शाया उसमें कँटीले पौधे, झाड़-झंखाड़ जो पैदा हो गये तो कालान्तर में वे विकृत हो जाते हैं। हम जब उसी टेढ़े-मेढ़े रास्ते को अपना विश्वस्त मार्ग मानकर जिद् पकड़कर चलना आरम्भ कर देते हैं तो वह एक नया ही रूप धारण कर लेता है और तब इसी को एक नया नाम देकर पूर्वोपदिष्ट मानव-धर्म का सुसंस्कृत नवीन रूप कहकर मानव अपने उद्धार करने की कोशिश करने लगता है। फिर भी मानव मानव ही है। उस सहज मानव-धर्म का तथाकथित टेढ़े-टेढ़े मार्ग के निर्माण के प्रयत्न में ही उसकी बौद्धिक शक्तियों का अपव्यय होता है। यह मेरे द्वारा प्रणीत नवीन मार्ग है, यह उन सबसे उत्तम मार्ग है—कहते हुए अहंकार से आगे बढ़ने का उपक्रम करने लगता है। यह अहंकार उस पीठ पर के विस्फोटक फोड़े की तरह बढ़कर उसी के सर्वनाश का कारण बनता है। असली मूल वस्तु को छोड़कर इस तथाकथित नवीनता के अहंकार से ऊँच-नीच के भेद-भाव उपजाने से मानव-मानव में भेद पैदा हो जाता है; और मानवता की एकता के उदात्त भाव नष्ट हो जाते हैं।

मानव के साथ मानव बनकर रहने में अड़चन पैदा हो जाती है। मानवता ही खण्डित हो जाती है। कभी मानव को मानव बनकर जीना सम्भव होगा या नहीं भगवान् जिनेश्वर ही जानें।

इस तरह युवरानी एचलदेवी का कोमल मन उद्विग्न हो रहा था। उनके मन की गहराई में तारतम्य की इस विषम परिस्थिति ने पसोपेश पैदा कर दी थी। मन के उस तराजू के एक पलड़े में चामव्वा थी और दूसरे में हेग्गड़ती माचिकव्वे। पद और शिष्टाचार इनमें किसका वजन ज्यादा है, किसका मूल्य अधिक ? तराजू झूलता ही रहा, कोई निश्चित निर्णय नहीं हो पाया। क्योंकि मन की गहराई में उस तराजू को जिस अन्तरंग के हाथ ने पकड़ रखा था वह काँप रहा था। उस हाथ का कम्पन अभी रुका न था। हृदय की भावना कितनी ही विशाल क्यों न हो उस भावना की विशालता को व्यावहारिक जीवन में जब तक समन्वित न करें और वास्तविक जीवन में कार्यान्वित न कर व्यवहार्य न बनावें तो उससे फायदा ही क्या ? कार्यान्वित करने के लिए एक प्रतिज्ञाबद्ध दृढ़ता की जरूरत है। यह दृढ़ता न हो तो कोई काम साध नहीं सकते। क्योंकि उस सहज मार्ग में आगे बढ़ने का यह पहला कदम है। इस सीधे मार्ग पर चले तो ठीक है। चलते-चलते आड़े-तिरछे और चारों ओर घेरे रहकर बहनेवाले षण्टमारुत का शिकार बने और आगे का कदम और आगे चलने को उद्यत हो जाय तो बहुत सम्भव है कि वहीं अटक जाएँ। इससे बचने के लिए मानसिक दृढ़ता चाहिए। एचलदेवी सोचने लगी कि ऐसे बवण्डर से बचकर चलने की दृढ़ता उसमें कितनी है। फिर वह स्वयं सर्वेसर्वा तो है नहीं। युवराज इन सद्भावनाओं को पुरस्कृत करें भी, पर महाराजा की बात का तो वे प्रतिरोध नहीं कर सकते, यह सब वह जानती थी। इसके अलावा महाराजा का मुँह-लगा दण्डनायक राजमहल के वातावरण में पलकर-बढ़कर वहाँ के सुख-सन्तोष में पनपा है और उन पर महाराजा की विशेष कृपा भी है—इस बात से वह परिचित तो थी ही। चामव्वा के मन में क्या-क्या विचार होंगे—इसका अनुमान भी वह कर चुकी थी। वह जिसे अपनी बहू बनाना चाहेगी, इसके लिए यह सारा वातावरण सहयोगी बनकर नहीं रहेगा—इस बात को भी वह समझती थी। इन सबके अलावा एक और मुख्य बात यह थी कि अपने बड़े बेटे का मन चामव्वा की बड़ी लड़की के प्रति विशेष आकर्षित था—यह भी उससे छिपा न था। अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिए एक दूसरी लड़की को बलिवेदी पर चढ़ाना उचित नहीं—इस बात को वह अच्छी तरह समझती थी। यह सब ठीक है। परन्तु चामव्वा को हेग्गड़ती और उसकी उस मासूम बालिका पर विद्वेष की भावना क्यों है ? शायद उसके मन में यह शंका हो कि हेग्गड़ती की लड़की की उसकी लड़की के साथ स्पर्द्धा हो रही है। हो सकता है। इसी वजह से चामव्वा यह सब खेल खेल रही हो।

को बदलना नहीं चाहता।

"छोटे अप्पाजी! महाराज इसे स्वीकार नहीं कर सकेंगे।" एचलदेवी ने अपने इस बेटे के मन की इच्छा को बदलने के इरादे से कहा।

"क्यों नहीं स्वीकार करेंगे?"

"राजकुमार यदि साधारण हेग्गड़े के परिवार के साथ चलेंगे तो लोग तरह-तरह की बातें करने लगेंगे। इस वजह से वे स्वीकार नहीं करेंगे।"

"क्या महाराज के मन में ऐसे विचार हैं?"

"न न, कभी नहीं। उनमें अगर ऐसी भावना होती तो बड़े दण्डनायक मरियानेजी का आज इतना ऊँचा स्थान न होता।"

"यदि ऐसा है तो मेरे जाने में क्या बाधा है?"

"निम्न स्तर के लोगों को ऊपर उठाना ठीक होने पर भी ऊपर के स्तरवालों को नीचे उतरना ठीक नहीं, अप्पाजी।"

"अगर ऊपरवाले नीचे नहीं उतरें तो नीचेवालों को ऊपर उठाना सम्भव कैसे हो सकेगा, माँ?"

"इसीलिए ऐसे लोगों को जो ऊपर उठाने योग्य सब तरह से है, उन्हें चुनकर हम अपने पास बुलवाते हैं—ऊपर उठने के लिए मौका देना हमारा धर्म है। इस काम के लिए हमें नीचे उतरने की आवश्यकता नहीं।"

"तो आपके कहने का मतलब यह कि उन्हें हम अपने साथ ले आ सकते हैं, परन्तु हमें उनके साथ होना ठीक नहीं; यही न माँ?"

"लोग हमसे यही अपेक्षा करते हैं।"

"लोगों को हम ही ने अपने व्यवहार से ऐसा बनाया है।"

"जो भी हो, अप्पाजी, मैं इस विषय में निश्चय कर अपना निर्णय नहीं दे सकती। मैं केवल माँ हूँ। मैं केवल प्रेम करना ही जानती हूँ। ऐसी जिज्ञासा मैं नहीं कर सकती।"

"मतलब, क्या मैं प्रभु से पूछूँ या महाराज से?"

"महाराज से ही पूछो, अप्पाजी।"

"क्या पूछना है?" एरेयंग प्रभु जो तभी वहाँ आये थे, पूछा। परिस्थिति की जानकारी हुई। थोड़ी देर तक सोचकर उन्होंने कहा, "अप्पाजी, क्या कुछ दिन ठहरकर पीछे बलिपुर हो आना न हो सकेगा?"

"बलिपुर में मेरा क्या काम है?"

"उन हेग्गड़े की लड़की के साथ घोड़े की सवारी, इधर-उधर घूमना-फिरना यह सब बेरोकटोक चल सकेगा न?"

"उसके लिए मैं उनके साथ जाना नहीं चाहता। एक दिन बाहुबलि के बारे में कवि महोदय के साथ काफी चर्चा हुई थी। उनके साथ बेलुगोल में बाहु-

बलि का दर्शन कर लूँ तो वह अधूरी बात पूर्ण हो सकेगी; इसी आशा से मैं जाने की अनुमति चाहता था।"

"यदि ऐसा है तो हो आओ अप्पाजी ! पर तुम्हारे साथ···"

"रेविमय्या आयेगा।"

"ओह-ओह, तब तो सारी तैयारी हो गयी है। माँ की स्वीकृति के पहले ही।"

"प्रभु से अच्छे काम में कभी बाधा हो नहीं हुई।" कहते हुए आगे बात के लिए मौका न देकर बिट्टिदेव वहाँ से चल पड़ा।

युवरानी एचलदेवी अपने बेटे की उत्साह-भरी दृष्टि को देखकर मन-ही-मन कुछ सोचती हुई खड़ी रही।

"क्या, युवरानीजी बहुत सोचती हुई-सी लग रही है।"

"कुछ भी तो नहीं।" कहती हुई युवराज की तरफ देखने लगी।

"हमसे छिपाती क्यों हैं ? छोटे अप्पाजी और हेग्गड़ेजी की बेटी की जोड़ी बहुत सुन्दर है—यही सोच रही थी न ?"

"न न, ऐसा कुछ नहीं। हमारी सभी इच्छाओं और आकांक्षाओं के लिए राजमहल की स्वीकृति मिलनी चाहिए न ? लोगों की भी स्वीकृति होनी चाहिए न ?"

"राजपरिवार और प्रजाजन स्वीकार कर लें तो युवरानी की भी स्वीकृति है। यही न ?" युवराज ने स्पष्ट किया।

"क्या युवरानी की स्वीकृति पर्याप्त है ? मुझे अगर स्वातन्त्र्य हो तो मैं स्पष्ट रूप से कहूँगी कि इसमें कोई एतराज नहीं।"

"यदि बड़ा बेटा होता तो प्रश्न कुछ जटिल होता। लेकिन अब ऐसी समस्या के लिए कोई कारण नहीं है।"

"वास्तव में मैंने इस दिशा में कुछ सोचा ही नहीं। हेग्गड़ेजी की लड़की का पाणिग्रहण जो भी करेगा वह महाभाग्यवान् होगा। परन्तु इस सम्बन्ध में जिसने जन्म दिया उसी ने जब सोच-विचार नहीं किया हो तो हम क्यों इस पर जिज्ञासा करें ?"

"रेविमय्या कहता है कि हमारे अप्पाजी का उस लड़की के साथ गाढ़ा स्नेह हो गया है। यह मैत्री—पता नहीं कि इन दोनों को कहाँ ले जायेगी ?"

"इतना सब सोचने जैसी इन बच्चों की उम्र ही कहाँ है ? उन दोनों में जो प्रेम अंकुरित हुआ है वह परिशुद्ध है। दोनों में ज्ञानार्जन की पिपासा बराबर-बराबर है। यही उनके बीच इस मैत्री सम्बन्ध का कारण है। इतना ही।"

"अब तो इतना ही है, परन्तु वह ऐसे ही आगे बढ़ा तो उसका क्या रुख होगा, कौन जाने।"

"यदि प्रभु को यह बात आतंक पैदा करनेवाली लगती है तो अभी प्रभु ने

जाने की अनुमति ही क्यों दी ?" युवरानी एचलदेवी ने दुविधाग्रस्त मन से पूछा।

"इसके लिए कारण है।"

"क्या है वह ?"

"फिर कभी आराम से कहूँगा। अब इस बात को लेकर दिमाग खराब करने की जरूरत नहीं। अधिकार-सुख मिलने पर मनुष्य अपनी पूर्वस्थिति को भूल जाता है, यह बात यहाँ आने के बाद, प्रत्यक्ष प्रमाण से साबित हो गयी। ये सब बातें सोसेऊरु में बताऊँगा। हमें भी कल सोसेऊरु की यात्रा करनी है। अप्पाजी यहीं महाराजा के साथ रहेंगे। छोटे अप्पाजी से कहना है कि वह बेलुगोल से सीधे सोसेऊरु पहुँचें।" इतना कहकर युवराज वहाँ से चल पड़े।

अपने पतिदेव कुछ परेशान हो गये हैं, इस बात को युवरानी एचलदेवी ने समझ लिया। परन्तु इस परेशानी का कारण जानने के लिए उन्हें सोसेऊरु पहुँचने तक प्रतीक्षा करनी ही होगी।

हेग्गडे मारसिंगय्या के परिवार के साथ कुमार बिट्टिदेव, रेविमय्या और राजघराने के चार रक्षकभट भी चले।

दो दिनों में ही चार कोस की यात्रा पूरी कर वे बेलुगोल क्षेत्र जा पहुँचे। शान्तला और बिट्टिदेव ने अपने-अपने घोड़ों पर ही पूरी यात्रा की थी। उन दोनों के अंगरक्षक बनकर रेविमय्या उनके साथ रहा। सबसे आगे हेग्गड़े का रक्षक-दल, सबसे पीछे राजमहल के रक्षा-दल थे। आराम से यात्रा करते हुए उन लोगों ने गोम्मटराय नाम से प्रसिद्ध चामुंडराय से नव-निर्मित बेलुगोल ग्राम में मुकाम किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर कटवप्र और इन्द्रगिरि के बीच नवनिर्मित ग्राम से लगे सुन्दर पुष्करणी दैवर-बेलुगोल में नहा-धोकर बाहुबलि स्वामी के दर्शन करने के लिए सबने इन्द्रगिरि पहाड़ का आरोहण किया। अधिक उम्र होने पर भी मारसिंगय्या-माचिकब्बे कहीं बैठकर सुस्ताये बिना ही पहाड़ पर चढ़ चले। हँसमुख, स्वागत करने के लिए तैयार खड़े विराट् रूप बाहुबलि स्वामी के प्रभावलय से राजित विशाल मुखमण्डल का स्मरण करते हुए आरोहण करनेवालों को थकावट कहाँ ?

बाहुबलि की परिक्रमा कर उनके चरणारविंद में साष्टांग प्रणाम समर्पित किया। इस विराट् मूर्ति को चामुंडराय द्वारा निर्मित कराये एक सदी बीत चुकी

थी। इस मूर्ति ने इस अवधि में उतने ही ग्रीष्म बिताये, फिर भी ऐसा लग रहा था कि मानो अभी हाल प्रतिष्ठित हुई है, उनकी चमक में किंचिन्मात्र भी कमी नहीं हुई है। मूर्ति के चरणों के अँगूठे देखते हुए वे दोनों छोटे बच्चे हाथ जोड़े खड़े-खड़े सोचते रहे कि यह अँगूठा उनके शरीर का कितना अंश है, इस परिमाण के अनुसार मूर्ति की ऊँचाई कितनी होगी। उस ऊँचाई तक पहुँचकर उस मुस्कुराहट से युक्त सुन्दर मुखड़ा देखकर उनकी मुस्कुराहट के आनन्द का अनुभव कर सकेंगे? आदि-आदि ये बच्चे सोचते रहे होंगे। बहुत समय तक हाथ जोड़े खड़े रहकर पीछे की ओर खिसकते-खिसकते कुछ दूर जाकर मूर्ति के पैरों से मस्तक तक नज़र दौड़ायी। हाँ, यह तो नग्न मूर्ति है। फिर भी असह्य भावना नहीं आयी, एकटक देखते ही रहे।

बड़े बुजुर्ग इन बच्चों को देखते हुए दूर बैठे रहे।

शान्तला ने हाथ जोड़े, आँखें बन्द कीं। गाने लगी—

"गोम्मट जिननं नरनागामर दितिज खचरपति पूजितनं।
योगाग्नि हत स्मरनं योगिध्येयननमेयनं स्तुतियिसुवें॥"

इस पद को भूपाली राग में गाया, भगवान् की स्तुति की। बैठे हुए सब उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर प्रणाम किया। बिट्टिदेव भी हाथ जोड़े आँख मूँदे रहा। श्रुतिबद्ध और स्वरयुक्त मुक्त कंठ से शान्तला ने गाना गाया; उस गान-लहरी से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। गिरि-शिखर पर भक्ति-परवश हो तादात्म्य भाव से गाये उस गान ने, उस स्तुति ने, मानो भगवान् के हृदय में एक अनुकंप उत्पन्न कर दिया हो, ऐसा भान हो रहा था। वास्तव में वहाँ जितने जन उपस्थित थे वे सभी एक अनिर्वचनीय आनन्द से पुलकित हो रहे थे।

बाहुबलि के चरणपूजक पुजारी ने स्तोत-पाठ के बाद शान्तला के पास आकर कहा, "संगीत शारदा ने तुम पर प्रसन्न होकर पूर्ण अनुग्रह किया है, अम्माजी; आज तुमने बाहुबलि के हृदय को जीत लिया है।" फिर उन्होंने उस बच्ची के सिर पर आशीर्वादपूर्ण हाथ रखते हुए उसके माता-पिता हेग्गडे दम्पति की ओर मुड़कर कहा, "आपके और आपके पूर्वजों के पुण्य प्रभाव के कारण यह अम्माजी आपकी बेटी होकर जन्मी है। देश-विदेशों से अनेक प्रख्यात गायक आये, उन्होंने स्वामी बाहुबलि को सन्तुष्ट करने के अनेक प्रयत्न किये। अपनी विद्या-प्रौढ़िमा का प्रदर्शन भी किया। लोगों के प्रशंसा-पात्र भी बने। मैंने भी बहुतों के स्तुतिपरक गायन सुने हैं और आनन्द भी पाया। मगर इस अम्माजी के स्वर-माधुर्य में एक दैवी शक्ति है जो अन्यत्र दुर्लभ है। आप भाग्यवान हैं। बाहुबलि की कृपा से अम्माजी एक योग्य घर की गृहिणी होकर पितृकुल और श्वसुर-कुल दोनों की कीर्ति को बढ़ाने लायक बनेगी, इसमें कोई संदेह नहीं। वैरी से प्रेम कर सकनेवाले हमारे बाहुबलि स्वामी इस मासूम बच्ची को उठाकर अपने सिर पर बैठाकर नाच

उठेंगे। उनकी कृपा रही तो असाध्य भी आसानी से साध्य हो जायेगा। राजदृष्टि भी आप पर विशेष रूप से कृपालु है। ऐसी दशा में कहना ही क्या है?"

हेग्गडे मारसिंगय्या ने कहा, "हमारे महाराज प्रजावत्सल हैं। वे सभी से प्रेम करते हैं। हमपर विशेष प्रेम है, यह कहना ज्यादती होगी। उनकी कृपा और प्रेम के हम पात्र हैं, और उस कृपा और प्रेम का हम निर्वहण करने योग्य बने रहें, यही हमारा कर्तव्य है।"

"तो क्या महाराज जिन-लिंग के साथ राजकुमार को भेजेंगे?" पुजारी के सवाल का उत्तर हेग्गडेजी से क्या मिल सकेगा? वे मौन रहे।

परिस्थिति से परिचित राजकुमार बिट्टिदेव ने कहा, "इसमें महाराज की और हेग्गडेजी की इच्छा-अनिच्छा नहीं; मैं स्वयं अपनी इच्छा से आज्ञा लेकर इनके साथ आया हूँ।" उसे अपनी माता की बात याद आ गयी।

"बात तो वही ही हुई न।" पुजारी ने बात को टाल दिया।

बाहुबलि के प्रसाद को सबमें बाँट दिया गया। उसे प्रसाद के बदले भोजन ही कहना ज्यादा संगत होगा। प्रसाद स्वीकार करते वक्त भी बिट्टिदेव की आँखें उस भव्य बाहुबलि की मूर्ति पर ही लगी थीं। बोकिमय्या राजकुमार की उस दृष्टि को पहचान चुका था। उसे उस दिन की चर्चा याद आयी। उन्होंने पूछा, "आज राजकुमार के मन में बाहुबलि की इस नग्नता के कौन-से भाव का स्फुरण हुआ है?"

अन्य सभी लोगों की उपस्थिति में इस प्रश्न के कारण राजकुमार के मन में कुछ कशमकश पैदा हो गयी। उत्तर न देकर बोकिमय्या की ओर और अन्य उपस्थित जनों की ओर भी नजर दौड़ायी।

शान्तला ने परिस्थिति को समझा, और कहा, "गुरुवर्य! इस विषय पर दोपहर के पाठ के समय चर्चा की जा सकेगी न? स्वामी की सन्निधि में नहीं। यह चर्चा करने का स्थान नहीं। भगवान् की सन्निधि में अपने आपको अर्पित किये बिना फल-प्राप्ति नहीं होगी, यह आप ही ने कहा था। अब आप ही चर्चा का आरम्भ करें?"

शान्तला का यह सवाल बाहुबलि के चरणसेवी पुजारी के मन में काँटे की तरह चुभ गया। उसने कुतूहल से बोकिमय्या और शान्तला की ओर देखा। उसने सोचा कुछ गरमी पैदा होगी। परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ।

"अम्माजी, तुम्हारा कहना सच है। आखिर मैं भी तो मनुष्य हूँ न? नई बात याद आती है तो पुरानी बात पिछड़ जाती है। तुम्हारा कहना ठीक है। यहाँ चर्चा करना ठीक नहीं।" कहकर बोकिमय्या ने अपनी सम्मति प्रकट की। प्रसाद स्वीकार करने के बाद सभी वहाँ से चले और पहाड़ पर से उतरकर अपने मुकाम पर पहुँचे।

दोपहर को पाठ-प्रवचन के पश्चात् बिट्टिदेव ने ही बात शुरू की।

"गुरुजी, मैं बाहुबलि का दर्शन अब दूसरी बार कर रहा हूँ। कभी पहले एक बार देखा जरूर था परन्तु उस समय मुझपर क्या प्रभाव हुआ था, सो तो याद नहीं। परन्तु मेरी माताजी कभी-कभी उस सम्बन्ध में कहती रहती हैं कि सब जाने को तैयार होकर खड़े थे तो भी मैं और थोड़ी देर देखने के इरादे से जिद्द पकड़कर वहीं खड़ा रहा था। वे मुझे वहाँ से जबर्दस्ती लाये थे। तब शायद मेरी उम्र चार-पाँच साल की रही होगी। मैंने ऐसा हठ क्यों किया सो मुझे मालूम नहीं। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती आयी, और तदनुसार ज्ञान भी बढ़ने लगा तो बार-बार नग्नता की बात सुन-सुनकर एक असह्य भावना उत्पन्न हुई थी। इसीलिए उस दिन मैंने आपसे प्रश्न किया था। परन्तु आज बाहुबलि की वह नग्नता सह्य मालूम पड़ी। वह नग्नता असंस्कृत नहीं लगी।" खुले दिल से बिट्टिदेव ने कहा।

"इस भाव के उत्पन्न होने का क्या करण है?"

"कारण मालूम नहीं; परन्तु जो भावना उत्पन्न हुई उसे प्रकट किया।"

"वह सान्निध्य का प्रभाव है। इसीलिए हमारे यहाँ क्षेत्र-दर्शन श्रेष्ठ माना गया है। हम कहते हैं कि ईश्वर सर्वान्तर्यामी है। उसकी खोज में हमें क्षेत्रों में क्यों जाना चाहिए? जहाँ हम हैं वहीं हमें वह नहीं मिलेगा? यों कहकर व्यंग्य करने-वालों की कमी नहीं है। अब राजकुमार समझ गये होंगे कि सान्निध्य से उत्पन्न भावना और दूर रहकर अनुभूत भावना, इन दोनों में अन्तर क्या है?"

"अन्तर तो है; परन्तु क्या जहाँ रहें वहीं भगवान् को जानना न हो सकेगा?"

"हो सकेगा। व्यंग्य वचन कहनेवालों को, कहीं भी रहें, ईश्वरीय ज्ञान का बोध नहीं होगा। कुतर्क करनेवालों में निष्ठा और विश्वास का अभाव होता है। जहाँ निष्ठा और विश्वास हो वहाँ ज्ञानबोध अवश्य होता है। परन्तु इनके लिए संयम और सहनशक्ति की आवश्यकता होती है। सबमें दोनों भाव नहीं रहते। इसीलिए क्षेत्र की महत्ता है। ज्ञान के लिए यह सुगम मार्ग है।"

"अनुभव से आज यह तथ्य विदित हुआ।"

शान्तला दत्तचित्त होकर गुरुदेव और बिट्टिदेव के इस सम्भाषण को सुन रही थी। उसने कहा, "गुरुदेव कुडली क्षेत्र में जब हम शारदा माई के दर्शन करने गये थे तब वहाँ के पुजारीजी ने जो कहा था, उसे सुनने के बाद मेरे मन में एक शंका पैदा हो गयी। आप सब लोग जब चुप रहे तो बोलना उचित नहीं है, यह सोचकर मैं चुप रही। अब लगता है कि उस विषय के बारे में पूछकर समझने का मौका आया है। क्या मैं पूछ सकती हूँ?"

"पूछो अम्माजी, किसी भी तरह की शंका को मन में नहीं रहने देना चाहिए। अगर शंका रह जाती है तो वह विश्वास की जड़ को ही उखाड़ देती है।"

"ब्रह्मलोक जाने के लिए उद्यत सरस्वती को शंकर भगवत्पाद ने नवदुर्गा मंत्र से अपने वश में कर लेने की बात पुजारीजी ने कही थी। क्या इस तरह देवी को वश में कर लेना सम्भव हो सकता है? लगाम कसकर अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ चाहे चलाये जानेवाले घोड़े की तरह देवताओं को ले जाना सम्भव है?" शान्तला ने पूछा।

"अपरोक्ष ज्ञानियों की शक्ति ही ऐसी होती है। उनकी उस शक्ति से क्या-क्या साधा जा सकता है, यह कहना कठिन है। जो दुःसाध्य है और जिसे साधा ही नहीं जा सकता वह ऐसे महात्माओं से साधा जा सकता है। यह सांकेतिक भी हो सकता है। शंकर भगवत्पाद महान् ज्ञानी थे, इसमें कोई संदेह नहीं। उनका वशवर्ती ज्ञान ही सरस्वती का संकेत हो सकता है। यों समझना भी गलत नहीं होगा। वशीकरण को जाननेवाले जिसे वश में कर लिया है उसे, सुना है, चाहे जैसे नचा सकते हैं। ऐसी हालत में सात्विक शक्तिसम्पन्न ज्ञानी के वशवर्तिनी होकर ज्ञान की अधिदेवी शारदा रही तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। साधारण लोग जिसे स्थूल चक्षु से नहीं देख सकते ऐसी मानवातीत अनेक वस्तुओं का ज्ञान-चक्षुओं से दर्शन हो सकता है। इसलिए ऐसे विषयों में शंकित नहीं होना चाहिए। इन चर्म-चक्षुओं के लिए जो गोचर होता है उतना ही सत्य नहीं है। इन चर्मचक्षुओं से हम जितना जो कुछ देखते हैं वह दूसरों से देखा जा सकता है। इससे जो परे है वह अविश्वसनीय है, ऐसा नहीं समझना चाहिए। दैवी शक्तियों का विश्लेषण, लौकिक अथवा भौतिक दृष्टि से करना ही उचित नहीं। इसके अलावा इस विषय के लिए कोई आधिकारिक सूत्र नहीं, यह भक्ति का ही फल है, विश्वास का निरूपण है। इसलिए लगाम कसे घोड़े का साम्य यहाँ उचित नहीं। मैंने पहले भी एक बार तुमसे कहा था। मानव-देवताओं की पंक्ति में जैसे हमारे बाहुबलि हैं वैसे ही मानव-देवताओं में शंकर भगवत्पाद भी एक हैं। तुम्हें याद होगा न?"

"हाँ, याद है।"

"तो फिर तुम्हें संदेह क्यों हुआ?"

"मंत्र बल से देवी वशवर्तिनी न हो सकेगी, इस भावना से।"

"मंत्र निमित्त मात्र है। यहाँ मन प्रधान है। सदुद्देश्यपूर्ण निस्वार्थ लोक-कल्याण भावना से प्रेरित सभी कार्यों के लिए देवता वशवर्ती ही रहते हैं। इसी कारण से देवी शंकर भगवत्पाद के वशवर्तिनी होकर उनके साथ चली आयी है।"

"आपकी बात सत्य ही होगी, गुरुवर्य। उस दिन वहाँ देवी के सम्मुख जब मैंने नृत्य किया था तब मेरे घुँघरू के नाद के साथ एक और घुँघरू का नाद मिल-कर गतिलीन हो गया था। शारदा देवी जब भगवत्पाद के साथ आती रही, तब सुना है, घुँघरू का नाद सुनायी पड़ा था। पुजारीजी ने उस दिन जो यह बात कही

वह सत्य प्रतीत हो रही है। परन्तु तब अगर यह बात कहती तो लोग हँसेंगे यह सोचकर चुप रही।"

"देवी के गले से खिसककर जो माला तब नीचे खिसकती आयी उसका कारण अब समझ में आया। पुजारीजी ने जो बात कही वह सत्य है, अम्माजी। देवी तुमपर कृपालु है। तुम्हें वरदान दिया है।"

"बलिपुर से वह स्थान कितनी दूर पर है ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"तीन-चार कोस होगा। क्यों ?" बोकिमय्या ने पूछा।

"कभी अगर बलिपुर आना होगा तो मैं भी वहाँ हो आ सकूँगा और देवी का दर्शनलाभ पा सकूँगा, इस इरादे से पूछा।" बिट्टिदेव ने कहा।

"अभी हमारे साथ चल सकेंगे न ?" शान्तला ने उत्साह से पूछा।

"अब सम्भव नहीं। मुझे आज्ञा नहीं है। मुझे सोसेऊरु लौट जाना है, यह पिताजी की आज्ञा है।"

"तो कब आएँगे ?" शान्तला ने दूसरा प्रश्न किया।

"वैसे हमको राजमहल से अकेले कहीं नहीं भेजेंगे। हमारे गुरुजनों का कभी इस तरफ आने का कार्यक्रम बनेगा तब उनके साथ आने की सहूलियत हो सकेगी।"

ये छोटे, बड़ों के प्रवास के कार्यक्रमों का निर्णय करेंगे भी कैसे ? अनपेक्षित ही अंकुरित इस दर्शनाभिलाषा का अब तो उपसंहार ही करना होगा। बात का आरम्भ कहीं हुआ और अब जा पहुँचे और कहीं। अपने से सीधा सम्बन्ध इस बात में न होने के कारण बोकिमय्याजी इसमें दखल नहीं करना चाहते थे। इसलिए वे मौन रहे। उन लोगों ने भी मौन धारण किया। पता नहीं और कितनी देर वे वहाँ बैठे रहे या किसी अन्य विषय को लेकर चर्चा करते रहे कि इतने में रेविमय्या उधर पहुँचा और बोला, "उठिए, उस छोटे पहाड़ पर भी जाना है।"

उस मौनावृत स्थान में एक नये उत्साह ने जन्म लिया। सब उठ खड़े हुए।

इन्द्रगिरि से भी अधिक आसानी से सब कटवप्र पहाड़ पर चढ़ गये। वहाँ के मन्दिर 'चन्द्रगुप्त बसदि', 'चन्द्रप्रभ' और 'चामुण्डराय बसदि' को देखने के बाद सब आकर एक प्रस्तर पर विश्राम करने बैठे। तब सूर्यास्त का समय हो गया था। सूर्य की लाल सुनहली किरणों की आभा बाहुबलि के मुखारविन्द पर पड़ रही थी और इस आभा ने मूर्ति के मुखारविन्द के चारों ओर एक प्रभावलय का सृजन

किया था। शान्तला ने उस प्रभावलय में प्रकाशमान बाहुबलि के मुखारविन्द को पलक मारे बिना देखा। उसने कहा, "देखिए गुरुजी, बाहुबलि स्वामी के मुखारविन्द पर एक नयी ही प्रभा का उदय हुआ है।"

"हाँ अम्माजी, प्रभा से सदा द्युतिमान बाहुबलि स्वामी के मुखारविन्द पर प्रतिदिन सुबह इस तरह की नयी ज्योति उत्पन्न होती है। दिगम्बर इस बाहुबलि स्वामी के प्रतिदिन की इस नित्यनूतन प्रभा के कारण यह निष्ठावान् प्रभावाहक भगवान् सूर्य है। आवरण रहित इस विराट् रूप के लिए कभी अन्धकार ने आवृत नहीं किया है। चाहे कहीं से तुम स्वामी का दर्शन कर लो यही भव्यता उभरकर दिखायी देगी। ध्रुवतारे को देखने हुए वहाँ स्वयं ध्रुवतारे की तरह प्रकाशमान इन स्वामी का यह रूप अब जिधर खड़ा है, उसी प्रस्तर में से उदित यही रूप, चामुण्डराय को दिखायी पड़ा था।" बोकिमय्या का ध्यान यों ही सहज भाव से भूतकाल की ओर सरक गया।

"तब क्या उस मूर्ति को उसी स्थान पर गढ़ा गया है?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"हाँ तो, नीचे गढ़कर मूर्ति को ऊपर ले जाकर रखी गयी है—ऐसा आप समझते हैं?" बोकिमय्या ने पूछा।

"मान भी लें कि, नीचे गढ़ी ही तो, उसे बिना विकृत किये ऊपर ले जाना सम्भव हो सकता था?" शान्तला ने गुरु की बात का समर्थन करते हुए कहा।

"सम्भवतः चामुण्डराय को अपने नाम से निर्मित करवाये उस मन्दिर के उसी स्थान से इन्द्रगिरि की उस चट्टान पर बाहुबलि की मूर्ति का दर्शन हुआ होगा। इसीलिए यह मूर्ति और यह मन्दिर जहाँ निर्मित हैं वह स्थान बहुत ही पवित्र है। अपनी माता की इच्छा को पूरा करने के इरादे से पोदनपुर की यात्रा पर निकले चामुण्डराय को मध्यवर्ग में ही यहीं, इसी स्थान पर भगवान् ने दर्शन दिये, इसी से यहीं मूर्ति की स्थापना हुई। वहाँ शंकर विद्याशंकर हुए, यहाँ चामुण्डराय गोम्मटराय बने।" बोकिमय्या ने कहा।

"चाहे सम्प्रदाय कोई भी हो भक्ति का फल इसी तरह से मिलता है। क्या ये दोनों स्थान इस बात की गवाही नहीं दे रहे हैं?" शान्तला ने कहा।

"हाँ अम्माजी, इस सबके लिए मूल कारण निश्चल विश्वास है। इस निश्चल विश्वास की नींव पर ही भक्त की सब कल्पनाएँ ईश्वर की कृपा से साकार हो उठती हैं।"

"मतलब यह कि सभी धर्म एक ही आदर्श की ओर संकेत करते हैं—है न?"

"सभी धर्मों का लक्ष्य एक ही है। परन्तु मार्ग भिन्न-भिन्न हैं।"

"यदि ऐसा है तो 'मेरा धर्म श्रेष्ठ है—मेरा धर्म ही श्रेष्ठ 'है'—कह-

कर वाद-विवाद क्यों करना चाहिए ? इस वाद-विवाद के फलस्वरूप एक मानसिक अशान्ति क्यों मोल ली जाय ? धर्म का आदर्श मन को शान्ति और तृप्ति देना है। उसे अशान्ति और अतृप्ति का कारण नहीं बनना चाहिए। है न?" शान्तला ने पूछा।

"सच है अम्माजी ! परन्तु मानव का मन बहुत कमजोर है। इसलिए वह बहुत जल्दी चंचल हो जाता है। वह बहुत जल्दी स्वार्थ के वशीभूत हो जाता है। साथ ही 'मैं मेरा' के सीमित दायरे में वह बँध जाता है। उस हालत में उस मन को कुछ और दिखायी ही नहीं देता और कुछ सुनायी भी नहीं पड़ता। उसके लिए दुनिया वही और उतनी ही प्रतीत होती है। यदि नया कुछ दिखायी पड़ा या सुनायी पड़ा तो वह उसके लिए क्षुद्र प्रतीत होने लगता है। तब वाद-विवाद की गुंजाइश निकल आती है। इन सबका कारण यह है कि हम ऐसी कच्ची नींव पर अपने विश्वास को रूपित करने लगते हैं।" बोकिमय्या ने कहा।

"तो आपका अभिमत है कि मजबूत नींव पर स्थित विश्वास यदि रूपित हो तो यह वाद-विवाद नहीं रहेगा ?" बिट्टिदेव बीच में पूछ बैठा।

"वाद-विवाद हो सकते हैं। वह गलत भी नहीं। परन्तु जब विश्वास सुदृढ़ होता है तब उसमें प्राप्त होनेवाला फल और है। उससे तृप्ति मिलती है और इस तृप्ति में एक विशाल मनोभाव निहित रहता है। तात्पर्य यह कि वाद-विवाद कितना भी हो उससे कड़ुवापन या अतृप्ति पैदा नहीं होती। अब उदाहरण के लिए अपने हेग्गड़ेजी के परिवार को ही देखिए। हेग्गड़े शिवभक्त हैं, हेग्गडती जिन भक्त हैं। एक दूसरे के लिए अपने विश्वास को त्याग देने की जरूरत ही नहीं पड़ी है। भिन्न-भिन्न मार्गावलम्बी होने के कारण पारिवारिक स्थिति में असन्तोष या अशान्ति के उत्पन्न होने की सम्भावना तक नहीं पैदा हुई है। है न हेग्गड़ेजी ?"

"कविजी का कथन एक तरह से सही है। परन्तु हमें इस स्थिति तक पहुँचने के लिए कई कड़ुआहट के दिन गुजारने पड़े।" मारसिंगय्या ने कहा।

"कड़ुआहट आये बिना रहे भी कैसे ? वे कहते है, वह धर्म जिस पर उनका विश्वास है वही भारत का मूल धर्म है; हम जिस पर विश्वास रखते हैं वह परिवर्तित धर्म है। ऐसा कहेंगे तो क्या हमारे मन को बात चुभेगी नहीं ?" किसी पुराने प्रसंग की बात स्मृति-पटल पर उठ खड़ी हुई-सी अभिभूत माचिकब्बे ने कहा।

यह देखकर कि बड़े भी इस चर्चा में हिस्सा ले रहे हैं, उन छोटों में रुचि बढ़ी और वे भी कान खोलकर ध्यान से सुनने लगे।

"कविजी, आप ही कहिए, जिन धर्म का आगमन बाद में हुआ न ?" मारसिंगय्या ने पूछा।

"कौन इन्कार करता है।" बोकिमय्या ने उत्तर दिया।

"जिन धर्म बाद में आया ठीक; परन्तु क्या इसी वजह से वह निम्न-स्तरीय है ? आप ही कहिए !" माचिकब्बे ने फिर सवाल किया।

"कौन ऊँचा, कौन नीचा—इस ऊँच-नीच की दृष्टि को लेकर धर्म-जिज्ञासा करना ही हमारी पहली और मुख्य गलती है। भारतीय मूल धर्म जैसे उद्भूत हुआ वह उसी रूप में कभी स्थिर नहीं रहा। जैसे-जैसे मानव के भाव और विश्वास बदलते गये तैसे-तैसे वह भी बदलता आया है। मानवधर्म ही सब धर्मों का लक्ष्य है और आधार है। हम धर्मों को जो भिन्न-भिन्न नाम देते हैं वे उस लक्ष्य की साधना के लिए अनुसरण करने के अलग-अलग मार्ग-मात्र हैं। जिनाराधना और शिवाराधना दोनों का लक्ष्य एक ही है। सत्य, शिव, सुन्दरं की आराधना ने शक्ति की आराधना का रूप जब धारण किया तब वह मानव के स्वार्थ की ओर अनजाने ही अपने-आप परिवर्तित हो गया। इसके फलस्वरूप हिंसा व्यापक रूप से फैल गयी। हिंसा मानवधर्म की विरोधी है। इसीलिए अहिंसा तत्त्व प्रधान ैन धर्म का आविर्भाव हुआ और मानवधर्म की साधना के लिए एक नये मार्ग का सूत्रपात हुआ। जानते हुए भी हिंसा नहीं करनी चाहिए—इतना ही नहीं, अनजाने में भी हिंसा अगर हो तो उसके लिए प्रायश्चित करके उस हिंसा से उत्पन्न पाप से मुक्त होने का उपदेश दिया। आशा और स्वार्थ दोनों मानव के परम शत्रु हैं। इन्हें जीतने का मार्ग 'त्याग' मात्र है। यही श्रेष्ठ मार्ग है। यह कोई नया मार्ग नहीं। हमने भारतीय-धर्म की भव्य परम्परा में 'त्याग' को बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान इसीलिए दिया है। अतएव सब कुछ त्याग करनेवाले हमारे ऋषि-मुनि एवं तपस्वी हमारे लिए पूज्य हैं एवं अनुकरणीय हैं। वेद ने भी स्पष्ट निर्देश नहीं दिया कि हमें किसका अनुसरण या अनुगमन करना चाहिए। लेकिन यह कहा—अथ यदि ते कर्म विचिकित्सा वा वृत्ति विचिकित्सा वा स्यात्, ये तत्र ब्राह्मणाः संमदर्शिनः, युक्ता आयुक्ताः, अलूक्षा धर्मकामा स्युः, यथा ते तत्र वर्तेरन, तथा तत्र वर्तेथाः।' बताया।"

"इसका अर्थ बताइए, कविजी।" मारसिंगय्या ने पूछा।

"हम जिन कर्मों का आचरण करते हैं, जिस तरह के व्यवहार करते हैं, इसके विषय में यदि कोई सन्देह उत्पन्न हो तो युक्तायुक्त ज्ञान सम्पन्न, सदा सत्कर्मनिरत, क्रूरता रहित, सद्गुणी एवं दुर्मार्गानुसरण करनेवालों के प्रभाव से मुक्त, स्वतन्त्र मार्गावलम्बी ब्रह्मज्ञानी महात्मा जैसे बरतते हैं, वैसा व्यवहार करो, यह इसका भाव है।" कवि बोकिमय्या ने कहा।

"यह इस बात की सूचना देती है कि हमें किनका अनुकरण करना चाहिए और जिनका अनुकरण किया जाय उनको किस तरह रहना चाहिए, इस बात की भी सूचना इससे स्पष्ट विदित है। है न गुरुजी ?" शान्तला ने पूछा।

"हाँ, अम्माजी, जब वे जो अनुकरणीय हैं, युक्तायुक्त ज्ञान रहित होकर सत्कार्य करना छोड़ देते हैं और क्रूर कर्म एवं हिंसा मार्ग का आचरण करने लगते हैं, तब वे अनुकरणीय कैसे बनेंगे? उनके ऐसे बन जाने पर मानव धर्म का वह राज-मार्ग गलत रास्ता पकड़ता है। तब फिर अन्य सही मार्ग की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। उस मार्ग को दर्शानेवाले महापुरुष के नाम से लोग उस धर्म को पुकारते हैं, वह नया धर्म बनता है।"

"नये धर्म के नाम से जो ऊधम मचता है वही आपसी संघर्ष का कारण बनता है न?" मारसिगय्या ने प्रश्न किया।

"हाँ, अब देखिए, चोल राज्य में ऐसा संघर्ष हो रहा है सुनते हैं। वहाँ के राजा शैव हैं। जो शिवभक्त नहीं उन्हें बहुत तंग किया जा रहा है। शैवधर्म को छोड़कर अन्य धर्म के अनुसरण करनेवालों को गुप्त रीति से अपने घरों में अपने धर्म का आचरण करना पड़ रहा है।" बोकिमय्या ने बताया।

"यह हमारा सौभाग्य है कि हमारे होय्सल राज्य में उस तरह का बन्धन नहीं। किसी से डरे बिना निश्चिन्त होकर हम अपने धर्म का पालन कर सकते हैं। जैन प्रमुखों ने शैव भक्तों को कभी सन्देह की दृष्टि से नहीं देखा। जब उनमें किसी तरह का सन्देह ही नहीं तो हम अपनी निष्ठा को छोड़कर क्यों चलने लगे?" मारसिगय्या ने कहा।

"धर्म भिन्न-भिन्न होने पर भी परस्पर निष्ठा-विश्वास ही मानव का लक्ष्य है; इस लक्ष्य की साधना ही मानव-समाज का ध्येय बनना चाहिए। ईश्वर एक है। हम अपनी-अपनी भावनाओं के अनुसार मूर्ति की कल्पना कर लेते हैं। भिन्न-भिन्न रूपों में कल्पित अपनी भावना के अनुरूप मूर्तियों की पूजा निडर होकर अपनी आराध्य मूर्ति को साक्षात् करने का मौका सबको समान रूप से मिलना चाहिए। यदि राजाओं के मनोभाव विशाल न हों तो प्रजा सुखी नहीं होगी। जिस राज्य की प्रजा सुखी न हो वह राज्य बहुत दिन नहीं रहेगा। यह सारा राज्य प्रजा का है। मैं इसका रक्षक हूँ, मैं सर्वाधिकारी नहीं हूँ, मैं प्रजा का प्रतिनिधि मात्र हूँ, ऐसा मानकर जो राजा राज्य करता है उसका राज्य आचन्द्रार्क स्थायी रहेगा। जो राजा यह समझता है कि मैं सर्वाधिकारी हूँ, प्रजा मेरी सेवक मात्र है, जैसा मैं कहूँगा वैसा उन्हें करना होगा, ऐसी स्थिति में तो वह खुद अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मार लेता है। 'मैं केवल प्रतिनिधि मात्र हूँ, प्रजा की धरोहर का रक्षक मात्र हूँ, राज्य प्रजा का है' ऐसा मानकर जो राजा राज करता है वह निर्लिप्त रहकर जब चाहे तब उसका त्याग कर सकता है। अब हम जिस पहाड़ पर बैठे हैं उसका नाम चन्द्रगिरि है। यह इसका दूसरा नाम है। यह नाम इसे इसलिए मिला है कि यह उस महान् चक्रवर्ती राजा के त्याग का प्रतीक है। हिमा-लय से लेकर कुन्तल राज्य तक फैले इस विशाल साम्राज्य का त्याग करके यहाँ

आकर व्रतानुष्ठान में रत रहनेवाले सम्राट् चन्द्रगुप्त ने यहीं से इन्द्रलोक की यात्रा की थी। इसीलिए इस कटवप्र का नाम 'चन्द्रगिरि' पड़ा।"

"आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ मूर्ति के इस पर्वत पर स्थापित होने के कारण ही न इसका नाम 'चन्द्रगिरि' हुआ ?" शान्तला ने पूछा।

"हो सकता है। परन्तु किंवदन्ती तो यह है कि उस राजा का नाम इस पहाड़ के साथ जुड़ा हुआ है। तुम्हारा कहना भी युक्तियुक्त ही नहीं प्रशंसनीय भी है, ऐसा लगता है।" बोकिमय्या ने कहा।

बिट्टिदेव मौन हो सुनता रहा। उसके मन में बोकिमय्या की कही राज्य और राजपद की सम्बन्धित बातें थीं, जो बार-बार चक्कर काट रही थीं।

"गुरुजी, महान हठी नन्दों से साम्राज्य छीनकर अपने अधीन करनेवाले चन्द्रगुप्त अर्थशास्त्र विशारद कौटिल्य पंडित के प्रिय शिष्य थे न ? महान् मेधावी शास्त्रवेत्ता चाणक्य के आज्ञाधारी थे न ?" शान्तला ने पूछा।

"हाँ, अम्माजी।"

"तब वह चन्द्रगुप्त जिनभक्त कब बना ? क्यों बना ? यहाँ क्यों आया ? राज्य को क्यों छोड़ा ? क्या राज्यभार सँभालते हुए अपने धर्म का पालन नहीं कर सकता था ? इस बात में कहीं एक-सूत्रता नहीं दिखती। इसपर विश्वास कैसे किया जाय ?"—इस तरह शान्तला ने सवालों की एक झड़ी ही लगा दी।

बिट्टिदेव के अन्तरंग में जो विचारों का संघर्ष चल रहा था वह थोड़ी देर के लिए स्तब्ध रह गया और उसका ध्यान उस ओर लग गया।

बोकिमय्या जितना ऐतिहासिक तथ्य इस विषय में जानता था बताया और आगे कहा, "चौबीस वर्ष राज्य करने के बाद इस राजकीय लौकिक व्यवहारों से विरक्त हो जाने की भावना उनके मन में उत्पन्न हुई तो उन्होंने त्याग को महत्त्व देकर राज्य की सीमा से बाहर दूर जाकर रहने की सोची होगी। क्योंकि निकट रहने पर राज्याधिकार की ओर मन आकर्षित हो सकता है, इसीलिए इतनी दूर यहाँ आकर रहे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। मनुष्य जब आशा-आकांक्षाओं के अधीन होकर उनका शिकार बनता है तो अन्य सब बातों की ओर अन्धा होकर अपनी आशा-आकांक्षाओं को साधने की ओर लगातार संघर्ष करने लगता है। वर्षों तक संघर्ष करने के बाद अपनी साधना के फलस्वरूप उपलब्ध समस्त प्राप्तियों को क्षणभर में त्यागने को तैयार हो जाता है, ऐसे मंगलमय मुहूर्त के आने की देर है। क्योंकि ज्ञान की ज्योति के प्रकाश में उसे सारी उपलब्धियाँ महत्त्वहीन प्रतीत होने लगती हैं। कब और किस रूप में और क्यों यह ज्ञान-ज्योति उसके हृदय में उत्पन्न हुई, इसकी ठीक-ठीक जानकारी न होने पर भी, इस ज्योति के प्रकाश में जो भी कर्म वह करने लगता है, वह लोक-विदित होकर मानवता के स्थायी मूल्यों का एवं चरम सत्य का उदाहरण बन जाता है। साधारण जनता के

लिए अनुकरणीय हो जाता है। चन्द्रगुप्त के इस महान् त्याग से यहाँ उनकी महत् साधना ने स्थायी रूप धारण किया। उन्होंने यहाँ आत्मोन्नति पाकर सायुज्य प्राप्त किया, इतना स्पष्ट रूप से विश्वसनीय हो सकता है।"

"उन्होंने आत्मोन्नति प्राप्त की होगी; परन्तु इससे क्या उनका कर्तव्य-लोप नहीं हुआ?" राजकुमार बिट्टिदेव सहसा पूछ बैठा।

"इसमें कर्तव्य-लोप क्या है, राजकुमार!" बोकिमय्या ने जवाब में पूछा।

"अपना रक्षक मानकर उनपर इतना बड़ा विश्वास रखनेवाली समस्त प्रजा को क्षणभर में छोड़ आने से कर्तव्य-लोप नहीं होता? कर्तव्य निर्वहण न करने में उनकी कमज़ोरी का परिचय नहीं मिलता? राजा का पूरा जीवन आखिरी दम तक प्रजा-हित के ही लिए धरोहर है न?"

"आपके कथन का भी महत्त्वपूर्ण अर्थ है। परन्तु हमें एक बात नहीं भूलनी चाहिए। जो जन्मता है उसे मरना भी होता है, है न?"

"हाँ।"

"मरण कब होता है, इस बात की सूचना पहले से तो नहीं मिलती?"

"नहीं।"

"क्या सभी मानव अपनी इच्छा के अनुसार मरते हैं?"

"नहीं।"

"ऐसी हालत में जब अचानक राजा की मृत्यु हो जाय तो उसकी रक्षा में रहनेवाली प्रजा की देखभाल कौन करेगा! जो मरता है उस पर कर्तव्य-लोप का आरोप लगाया जा सकता है?"

"मरण हमारा वशवर्ती नहीं। परन्तु प्रस्तुत विषय तो ऐसा नहीं है। यह स्वयंकृत है। जो वशवर्ती नहीं उसकी तुलना इस स्वयंकृत के साथ करना ठीक है?"

"दोनों परिस्थितियों का परिणाम तो एक ही है न। अतएव निष्कर्ष यह है कि कर्तव्य-निर्वहण के लिए भी कुछ सीमा निर्धारित है। इस निर्धारित सीमा में रहने न रहने का स्वातन्त्र्य हर व्यक्ति को होना चाहिए। इस व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को छीनने का अधिकार किसी को नहीं। तिस पर भी आत्मोन्नति के संकल्प से किये जानेवाले सर्वसंग परित्याग पर कर्तव्य-च्युति का दोष नहीं लगता। क्योंकि कर्तव्य निर्वहण की उचित व्यवस्था करके ही वे सर्वसंग परित्याग करते हैं। वे कायरों की तरह कर्तव्य से भागते नहीं। मौर्य चक्रवर्ती चन्द्रगुप्त भी योग्य व्यवस्था करके ही इधर दक्षिण की ओर आये होंगे।"

"नहीं, सुनने में आया कि उनके गुरु भद्रबाहु मुनि ने मगध राज्य में बारह वर्ष तक भयंकर अकाल के पड़ने की सूचना दी थी जिससे डरकर बहुत-से लोगों को साथ लेकर वह चक्रवर्ती दक्षिण की ओर चले आये।"

"लोग कैसी-कैसी कहानियाँ गढ़ते हैं ! यह तो ठीक है कि भद्रबाहु मुनिवर्य त्रिकाल ज्ञानी थे। उन्होंने कहा भी होगा। उनके उस कथन पर विश्वास रखने वालों को उन पर दया करके उन्होंने साथ चलने के लिए कहा भी होगा। उस विश्वास के कारण कई लोग आये भी होंगे। परन्तु इसे भय का आवरण क्यों दें? वास्तविक विषय को तो कोई नहीं जानता। इस तरह भाग आनेवाला प्रभाचन्द्र नामक मुनि हो सकता है। वह तो भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त से आठ सौ वर्ष बाद का व्यक्ति है। उसने भी इसी कटवप्र पहाड़ पर 'सल्लेखनव्रत' किया, सुनते हैं। त्रिकाल ज्ञानी भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त को उनके द्वारा दीक्षित होने के बारे में अनेकों ने लिखा है। परन्तु कथा के निरूपण विधान में अन्तर है। इसलिए चन्द्रगुप्त की दीक्षा का लक्ष्य जब त्याग ही है तो इन कही-सुनी कथाओं का कोई मूल्य न भी दें तो कोई हर्ज नहीं। इसी पहाड़ में भद्रबाहु गुफा भी है। उसमें उस महामुनि का पदछाप भी है। उस चरणछाप की पूजा चन्द्रगुप्त ने की थी, ऐसी भी एक कहानी है। भद्रबाहु यहाँ आये ही नहीं। अकाल पीड़ित राज्य में खुद रहकर अपने शिष्याग्रणी चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में शिष्यों को पुन्नाट राज्य में भेजकर स्वयं उज्जयिनी में रहकर वहाँ सायुज्य प्राप्ति की, ऐसी भी एक कथा है। इसलिए उनकी साधना की उपलब्धि मात्र की ओर ध्यान देना सही है। ऐसा समझने पर कि गुरु की आज्ञा पालन करने के इरादे से दक्षिण की ओर प्रस्थान किया, उसमें कायरता की बात कहाँ उठती है?"

"आपके इस कथन से यह विदित हुआ कि लिखनेवाले के कल्पना-विलास के कारण वस्तुस्थिति बदल जाती है। इसके आधार पर किसी बात का निर्णय करना ठीक नहीं, उचित भी नहीं।" बिट्टिदेव ने कहा।

"यों विचार कर सबकुछ को त्यागने की आवश्यकता नहीं। हमें भी अपने अनुभव के आधार पर इन कथानकों में से उत्तम विषयों को ग्रहण कर उन्हें अपने जीवन में समन्वित कर उत्तम जीवन व्यतीत करने में कोई आपत्ति नहीं। दूसरों के अनुभवों से उत्तम अंशों का ग्रहण करना उचित होने पर भी सब प्रसंगों में उनका यथावत् अनुकरण ठीक नहीं। समय और प्रसंग तथा परिस्थिति के अनुसार जिसे हम सही समझते हैं—उसके अनुसार चलना उत्तम है।"

"आपका यह कथन स्थितिकर्ता के समय-समय के अवतारों के लिए भी लागू हो सकता है न गुरुजी?" अब तक केवल सुनती बैठी शान्तला ने पूछा।

"कहाँ-से-कहाँ पहुँची अम्माजी?"

"धर्मग्लानि जब होगी और अधर्म का बोलबाला अधिकाधिक व्याप्त जब हो जायेगा तब स्वयं अवतरित होकर धर्म का उद्धार करने का वचन भगवान् कृष्ण ने गीता में स्पष्ट कहा है न?"

"हाँ, कहा है।"

"उन्होंने पहले मत्स्यावतार लिया, फिर कूर्म, वराह और नरसिंह के रूप में क्रमशः अवतरित हुए। वामन, त्रिविक्रम का अवतार लेकर फिर अवतरित हुए, वही; परशुराम और राम बनकर पुनः अवतरित हुए। फिर कृष्ण के रूप में भी अवतरित हुए अर्थात् एक जलचर मत्स्य के रूप से आरम्भ होकर उनके अवतार ज्ञानयोगी कृष्णावतार तक क्रमशः बदलते ही आये। इस क्रमशः अवतार क्रिया पर ध्यान दिया जाय तो यह विदित होता है कि परिस्थिति को समझकर समय के अनुसार धर्म-संस्थापन को ही लक्ष्य बनाकर अवतरित इन अवतारों में कितना रूपान्तर है। है न गुरुजी?" शान्तला ने कहा।

"तो मतलब यह हुआ कि छोटी हेग्गड़ती अवतारों पर विश्वास रखती है, यही न?" बीच में बिट्टिदेव ने कहा।

"हम विश्वास करते हैं—यह कहने से भी यों कहना अधिक उचित होगा कि दूसरों का जिसपर दृढ़ विश्वास है उसे हम योग्य मूल्य देते हैं।"

"अम्माजी, आपका यह दृष्टिकोण बहुत ही उत्तम है। हममें रूढ़ मूल विश्वास जो है उससे भिन्न किसी और विश्वास रखनेवालों के दृढ़ विश्वास पर छींटाकशी न करके उदार दृष्टि से परखना वास्तव में सही मानवधर्म है। यदि प्रत्येक व्यक्ति इसी नीति का अनुसरण करे तो धर्म द्वेष का रूप न धरेगा और अनावश्यक दुःख क्लेश आदि के लिए भी स्थान नहीं रहेगा। खासकर राज्य-निर्वहण करनेवाले राजाओं के लिए यह अत्यन्त आवश्यक और अनुकरणीय नीति है। हम जिस पर विश्वास रखते हैं और हम जिस मार्ग का अनुसरण करते है वही सही है—ऐसा मानकर चलें तो वे राज्य के पतन के लिए निश्चित आधार बन जाते हैं। इसीलिए मैंने पहले ही कहा कि इन हमारे हेग्गड़ेजी का परिवार एक बहुत ही उत्तम उदाहरण है। इसी तरह की प्रवृत्ति के कारण उनके परिवार में शान्ति विराज रही है। हेग्गड़ेजी की विशाल दृष्टि के कारण हेग्गड़तीजी को अपने विश्वास के अनुसार चलने में कोई बाधा नहीं हो पायी है। इसी तरह से राजा की नीति और कर्तव्य बड़े पैमाने पर व्यापक है। जब भी मैं हेग्गड़ेजी के विषय में सोचता हूँ तो मुझे वे सदा पूजनीय ही लगते है। यह उनके समक्ष उनकी प्रशंसा करने की बात नहीं। यदि उनकी इच्छा होती तो हमें यहाँ भेजकर वे सीधे जा सकते थे। ऐसा न करके हेग्गड़ती के एवं हमारे विश्वास को प्रोत्साहन देकर साथ चले आये। इतना ही नहीं, हम जहाँ भी गये वहाँ साथ रहकर हमारी पूजा-अर्चा में भाग लेते रहे। सम्भवतः जहाँ हम जिननाथ के दर्शन करते है वहीं वे अपने आराध्य शिव का दर्शन भी करते होंगे। यों राज्य संचालन में निरत राजाओं के मन में भी विशाल भावना का उद्गम होना चाहिए। हेग्गड़ेजी में यह विशालता है, इसे मैंने कई बार अनुभव किया है।"

"तो आपका तात्पर्य है कि बाहुबलि में, चन्द्रप्रभ स्वामी में, पार्श्वनाथ स्वामी

बातचीत के इस उत्साह में किसी को समय का पता ही नहीं चला। कृष्ण पक्ष की रात्रि का समय था। सारा आकाश तारामय होकर विराज रहा था। शिशिर की ठण्डी हवा के झोंके क्रमशः अधिकाधिक तीव्र होने लगे। तपा हुआ प्रस्तर शीतल होने लगा। और उस पर बैठे हुए उन लोगों को सरदी का अनुभव होने लगा।

"कविजी, बातों की धुन में समय का पता ही नहीं चला। आज हेग्गड़ती को और आप लोगों को निराहार ही रहना पड़ा।"

"क्षेत्रोपवास भी महान् श्रेयस्कर है। यह कटवप्र पर्वत उपवास व्रत से सायुज्य प्राप्ति करानेवाला स्थान है। इसलिए चिन्ता की कोई बात नहीं। यह अच्छा ही हुआ। परन्तु अब और देर करने से आपके भोजन का समय भी बीत जायेगा। अब चलें।" बोकिमय्या ने कहा।

"आज सोमवार है न? हमें भी भोजन नहीं करना है।"

"मतलब हमें भी सोमवार के निराहार व्रत का फल मिलेगा न, अप्पाजी?" शान्तला ने प्रश्न किया।

"हाँ अम्माजी, तुम्हें सदा दोनों तरफ से भी फल मिलता है। जैन-शैव धर्मों का संगम बनी हो। मेरी और हेग्गड़ती की समस्त पूजा-आराधना का फल तुम्हारे लिए धरोहर है। राजकुमार जी क्या करेंगे पता नहीं।" कहते हुए मारसिंगय्या ने उनकी ओर देखा।

"प्रजा को सुख पहुँचाने का मार्ग ही पोय्सल वंश का अनुसरणीय मार्ग है, हेग्गड़ेजी। राजकुमार होने मात्र से मैं उससे भिन्न पृथक् मार्ग का अनुसरण कैसे कर सकता हूँ? मुझे भी आप लोगों के पुण्य का थोड़ा फल मिलना चाहिए।"

"प्रजा के हित के लिए हम सबके पुण्य का फल पोय्सल वंश के लिए धरोहर है। इसके लिए हम तैयार हैं।" मारसिंगय्या ने कहा।

कहीं से घण्टानाद सुन पड़ा। बिट्टिदेव और शान्तला में एक तरह का कम्पनयुक्त रोमांच हुआ। उनकी दृष्टि बाहुबलि की ओर लगी थी। अँधेरी रात में चमकते तारों के प्रकाश से बाहुबलि का मुखारविंद चमक उठा था। वहाँ प्रशान्त मुद्रा दृष्टिगोचर हो रही थी। किसी आन्तरिक प्रेरणा से प्रेरित होकर दोनों ने दीर्घदण्ड प्रणाम किया।

द्वारपाल रेविमय्या ने उनको कुतूहलपूर्ण दृष्टि से देखा। कुछ क्षण बाद दोनों उठे।

"अब चलें।" कहते हुए मारसिंगय्याजी भी उठ खड़े हुए। क्या यह कहना होगा कि सबने सम्मति दी? एक प्रशान्त मनोभाव के साथ सब अपने-अपने शिविर पर वापस आ गये।

यह निश्चय हुआ था कि दूसरे दिन वेलुगोल से प्रस्थान किया जाये। बिट्टिदेव को सोसेऊरु लौटना था, अतः निर्णय किया गया कि बाणऊरु तक वह इन लोगों के साथ चलें, फिर जावगल्लु से होकर सोसेऊरु जायें। इस निश्चय के बाद आखिरी वक़्त शान्तला ने कहा, "अप्पा जी, सुनते हैं कि शिवगंगा शैवों के लिए एक महान् पुण्यक्षेत्र है। यह बात गुरुजी ने कही थी। वहाँ होते हुए बलिपुर जाया जा सकेगा न ?"

"पहले ही सोचा होता तो अच्छा था न, अम्माजी ! हमारे साथ राजकुमार भी तो आये हैं।" कहकर यह बात जताई कि अब न जायें तो अच्छा है। मारसिंगय्या ने अपना अभिमत स्पष्ट किया, सलाह का निराकरण नहीं किया था।

"आप लोग शिवगंगा जायेंगे तो मैं भी साथ चलूंगा।" बिट्टिदेव ने कहा।

"युवराज को बताकर नहीं आये हैं। यदि आपको सोसेऊरु पहुँचने में विलम्ब हो गया तो हमें उनका कोपभाजन बनना पड़ेगा।"

"रक्षक दल से किसी एक आदमी द्वारा चिट्ठी लिख भेजी जाय वह उसे पहुँचा-कर सीधा शिवगंगा को ही पहुँच जायेगा।" बिट्टिदेव ने कहा।

मारसिंगय्या ने रेविमय्या की ओर देखा।

परिस्थिति को समझकर उसने कहा, "हेग्गड़ेजी, आप चिन्ता न करें; मैं खुद हो आऊँगा। युवरानी जी से कहकर उनसे पहले स्वीकृति पा लें तो बाद को कोई अड़चन नहीं रहेगी।" रेविमय्या के इस कथन में मारसिंगय्या और बिट्टिदेव की सहायता मात्र की नहीं, शान्तला की सलाह की मान्यता भी थी। अब यात्रा का मार्ग बदल दिया गया। रेविमय्या सोसेऊरु की तरफ रवाना हुआ। इन लोगों ने शिवगंगा की ओर प्रस्थान किया।

हिरेसावे, यडियूरु, सोलूरु होते हुए वे शिवगंगा जा पहुँचे। चारों दिशाओं से चार अलग-अलग रूपों में दिखनेवाले शिवगंगा के इस पहाड़ को देखकर बिट्टिदेव और शान्तला सोचने लगे कि इसे किसी शिल्पी ने गढ़ा होगा। इन्द्रगिरि चट्टान में बाहुबलि के रूप को गढ़नेवाले उस शिल्पी ने यहाँ भी चारों दिशाओं से दर्शनीय चार रूपों में गढ़कर निर्माण किया है, उसमें उस महान् शिव-शक्ति की विशिष्ट महिमा की प्रतीति इन दोनों बच्चों के मन में होने लगी। पूरब की ओर से देखने पर शिव जी के वाहन नन्दी का दर्शन होता है, उत्तर की तरफ से लिंग रूप में, पश्चिम दिशा से कुमार गणपति जैसा और दक्षिण से शिव जी के आभूषण नागराज जैसा दिखनेवाला वह पर्वत शिव जी का एक अपूर्व संदेश-सा लगा उन दोनों को। वे प्रातःकाल उठकर नहा-धोकर पहाड़ पर चढ़े। माँ-बेटी ने अन्तरगंगा की पूजा की। फिर भगवान के दर्शन किये। पहाड़ की सीधी चढ़ाई और शरीर की स्थूलता के कारण हेग्गड़ती

माचिकब्बे ने उस चट्टान पर के नन्दी तक पहुँचने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

"इन्द्रगिरि पर एकदम चढ़ गयी थीं न अम्मा ?" शान्तला ने सवाल किया।

"वहाँ चढ़ने की शक्ति बाहुबलि ने दी थी।" माचिकब्बे ने कहा।

"वहाँ अप्पाजी को शिवजी ने जैसी शक्ति दी, वैसी यहाँ बाहुबलि तुम्हें शक्ति देंगे, चलिए।" शान्तला ने अपना निर्णय ही सुना दिया।

"उसको क्यों जबरदस्ती ले जाना चाहती हो, उसे रहने दो, अम्माजी। वह जब महसूस करती है कि चढ़ नहीं सकती तो उसे ऐसा काम नहीं करना चाहिए। अपने पर भरोसा न हो तो किसी को उस कार्य में नहीं लगना चाहिए। चलो, हम चलें। कविजी आप आयेंगे न ?" मारसिंगय्या ने पूछा।

"क्यों चढ़ नहीं सकूँगा, ऐसी शंका है ?" बोकिमय्या ने सवाल किया।

"ऐसी बात नहीं, सीधी चढ़ाई है। जो आदी नहीं उन्हें डर लगता है। इसलिए पूछा।"

"डर क्यों ?"

"कहीं अगर फिसल जायें तो हड्डी तक नहीं मिलेगी।"

"यदि ऐसा है तो क्षेत्र-मरण होगा। अच्छा ही है न ?"

"ऐसा विश्वास है तो चढ़ने में कोई हर्ज नहीं।"

सब चढ़ चले। माचिकब्बे भी पीछे न रही। संक्रांति के दिन पहाड़ के शिखर पर जलोद्भव होनेवाले तीर्थस्तम्भ को देखा। लेकिन पहाड़ी की चोटी पर के नन्दी की परिक्रमा के लिए माचिकब्बे तैयार नहीं थीं, इतना ही नहीं, बिट्टिदेव और शान्तला को भी परिक्रमा करने से रोका। इसका कारण केवल डर था। क्योंकि नन्दी के चारों ओर परिक्रमा करनेवालों को पैर जमाने के लिए भी पर्याप्त स्थान नहीं था, इसके अलावा चारों ओर गिरने से बचाने के लिए कोई सहारा भी नहीं था। नन्दी का ही सहारा लिया जा सकता था। थोड़ी भी लापरवाही हुई कि फिसलकर पाताल तक पहुँचेंगे। ऐसे कठिन परिसर में स्थित नन्दी को देखने मात्र से ऐसा लगता है कि बस दूर से ही दर्शन-प्रणाम कर लें। स्थिति को देखते हुए सहज ही ऐसा लगता है। मरण कौन चाहता है ? फिर भी माचिकब्बे की मनाही को किसी ने नहीं माना। सबने नन्दी की परिक्रमा की। आगे-आगे मारसिंगय्या, उनके पीछे बिट्टिदेव और उसके पीछे शान्तला, शान्तला के पीछे बोकिमय्या, गंगाचारी और उनके परिवार थे; इन सबके पीछे सेवकवृन्द।

मारसिंगय्या जो सबसे आगे थे, एक बार फांदकर नन्दी के पास के मूल पहाड़ पर जा पहुँचे। बिट्टिदेव भी फांदकर उसी मूल पहाड़ पर पहुँच गया। परन्तु शान्तला को ऐसा फांदना आसान नहीं लगा। यह देख बिट्टिदेव ने हाथ आगे बढ़ाये। उनके सहारे शान्तला भी फांद गयी। फांदने के उस जोश में सीधे

खड़े न होकर वह जैसे बिट्टिदेव के हाथों में लटक गयी। पास खड़े मारसिंगय्या ने तुरन्त दोनों को अपने बाहुओं में सँभाल लिया। यदि ऐसा न करते तो दोनों लुढ़क जाते और घायल हो जाते। माचिकब्बे ने स्थिति को देखा और कहा, "मैंने पहले ही मना किया था, मेरी बात किसी ने नहीं मानी।"

"अब क्या हुआ ?" मारसिंगय्या ने पूछा।

"देखिए, दोनों कैसे काँप रहे हैं।" व्यग्र होकर माचिकब्बे ने कहा।

"नहीं तो।" दोनों ने एक साथ कह उठे।

कहा तो सही। परन्तु उन दोनों में पुलकित कम्पन जो हुआ उसने, भय का नहीं, किसी अपरिचित सन्तोष का आनन्द पैदा कर दिया था। उसका आभास माचिकब्बे को नहीं हुआ था।

सभी सेवक-वृन्द परिक्रमा कर आये। इस क्षेत्र दर्शन का पुण्य फल प्राप्त करना हो तो यहाँ इस नन्दी की परिक्रमा अवश्य करनी चाहिए, सो भी प्राणों का मोह त्यागकर। यह आस्था सभी भक्तों में हो गयी थी और सभी इस विधान को आचरण में लाते थे।

शान्तला के मन में यह भावना बनी रही कि माँ को क्षेत्र-दर्शन का वह भाग्य नहीं मिल सका। इसलिए उसने माँ से कहा, "माँ, आप भी इस नन्दी की परिक्रमा करतीं तो क्षेत्र-दर्शन के पुण्य को प्राप्त कर सकती थीं।"

"वह तो बेलुगोल में ही मिल चुका है।" माचिकब्बे ने कहा।

"यहाँ भी मिले तो अच्छा ही होगा न ?" शान्तला ने फिर सवाल किया।

"उसकी तरफ से उसके लिए मैं ही एक बार और परिक्रमा कर आऊँगा।" कहते हुए मारसिंगय्या किसी की सम्मति की प्रतीक्षा किये बिना ही चले गये और एक परिक्रमा के बाद लौटकर बेटी के पास खड़े हो गये और बोले, "अम्माजी, अब तो समाधान हुआ न ? तुम्हारी माँ को भी उतना ही पुण्य मिला जितना हमें।"

"सो कैसे अप्पाजी, आपने जो पुण्य अर्जन किया वह आपका। वह बाँटकर अम्मा को कैसे मिलेगा ?" शान्तला ने पूछा।

"पाप का फल बँटता नहीं, अम्माजी। वह अर्जित स्वत्व है। परन्तु पुण्य ऐसा नहीं, वह पति-पत्नी में बराबर बँट जाता है। यह हमारा विश्वास है।"

"माँ को यहाँ पुण्यार्जन जब नहीं चाहिए तब उसे आर्जित करके देने की आपको क्या आवश्यकता है ?" शान्तला ने प्रश्न किया।

"यही तो दाम्पत्य जीवन का रहस्य है। जो माँगा जाय उसे प्राप्त करा दें तो वह सुख देता है। परन्तु वांछा को समझ, माँगने से पूर्व ही यदि प्राप्त करा दिया जाय तो उससे सुख-संतोष अधिक मिलेगा। यही तो है एक दूसरे को समझना और परस्पर अटल विश्वास।"

"पुरुष और स्त्री दोनों जब पृथक्-पृथक् हैं तब एक-दूजे को सम्पूर्ण रूप से समझना कैसे सम्भव ? अनेक विचार अन्तरंग में ही, एक दूसरे की समझ में न आकर, टकराकर रह जाते हैं।"

"जब तक पृथकत्व की भावना बनी रहेगी तब तक यही हाल रहता है। अलग-अलग होने पर भी पुरुष और स्त्री एक हैं, अभिन्न हैं, एक दूसरे के पूरक हैं। अर्धनारीश्वर की यही मधुर कल्पना है। शरीर का आधा हिस्सा पुरुष और शेष आधा स्त्री रूप होता है। ये जब एक भाव में संयुक्त हो जायें तो अभिन्न होकर दिखते हैं। यही अर्धनारीश्वरत्व का प्रतीक दाम्पत्य है। इसी में जीवन का सार है। क्यों कविजी, मेरा कथन ठीक है न ?"

"सभी दम्पतियों को ऐसा अभिन्न भाव प्राप्त करना सम्भव है, हेग्गड़ेजी ?"

"प्रयत्न करने पर ही तो दाम्पत्य सुख मिलता है। पृथक्-पृथक् का, एक बनना ही तो दाम्पत्य है। पृथक् पृथक् ही रह गया तो उसे दाम्पत्य कहना ही नहीं चाहिए। उसे स्त्री-पुरुष का समागम कह सकते हैं।"

"यह बहुत बड़ा आदर्श है। परन्तु ऐसी मानसिकता अभी संसार को नहीं हुई है।"

"हमारी अयोग्यता इस बुनियादी तत्त्व को गलत अर्थ देने का साधन नहीं होना चाहिए।"

"हाँ ठीक है; इसीलिए लक्ष्मीनारायण, सीता-राम, उमा-शंकर कहते हैं। है न ?"

"दुनिया का सिरजनहार परमात्मा अपना कार्य, यह सृष्टि, करके उसकी इस विविधता और विचित्रता को देखकर सन्तोष पाता होगा।"

"हम सब जब उसकी संतान हैं तब उसे सन्तोष ही होगा। मुझे एक नया अनुभव आज हुआ है, हेग्गड़ेजी।" बोकिमय्या ने कहा।

दोनों शिष्य गुरुजी की बात सुनकर उनकी ओर देखने लगे। उनकी उस दृष्टि में उस नये अनुभव की बात सुनने का कुतूहल था। बोकिमय्या को इसका भान हुआ तो उन्होंने कहा, "नन्दी के सींगों के बीच से वहाँ के शिवलिंग को क्यों देखना ही चाहिए, यह मेरे मन में एक समस्या है।"

"आपने भी देखा था ?" मारसिंगय्या ने प्रश्न किया।

"इसके पहले नहीं देखा था। यहाँ नन्दी के सामने तो लिंग है नहीं। फिर भी परिक्रमा के बाद आपने सींगों पर उँगलियाँ रखकर उनके बीच में से क्या देखा, सो तो मालूम नहीं पड़ा। आपकी यह क्रिया भी मुझे विचित्र लगी। इसीलिए मैंने भी देखा।"

"आश्चर्य की बात यह है। आँखों को चकचौंधिया देनेवाला प्रकाश दिखायी पड़ा मुझे !"

"तब तो आप धन्य हुए, कविजी ? शिव ने आपको तेजोरूप में दर्शन दिया।"

"तेजोरूप या ज्वालारूप ?"

"मन्मथ कामदेव के लिए यह ज्वाला है। भक्तों के लिए वह तेजोरूप है। इसलिए ईश्वर आपसे प्रसन्न है।" मारसिंगय्या ने कहा।

"जिनभक्त को शिव साक्षात्कार ?"

"यही तो है भिन्नता में एकता। इसके ज्ञान के न होने से ही हम गड़बड़ में पड़े हुए हैं। जिन, शिव, विष्णु, बुद्ध, सब एक हैं। आपको जो साक्षात्कार हुआ वह केवल मानव मात्र को हो सकनेवाला देव साक्षात्कार है, यह जिनभक्त को प्राप्त शिव साक्षात्कार नहीं।"

"बहुत बड़ी बात है। मैं आज का यह दिन आजीवन नहीं भूल सकता, हेगड़ेजी। आपकी इस अम्माजी के कारण मुझे महान् सौभाग्य प्राप्त हुआ।"

"असूया-रहित आपके विशाल मन की यह उपलब्धि है। इसमें और किसी का कुछ भी नहीं। चलें, अब उतर चलें।" मारसिंगय्या ने सूचित किया।

"अप्पाजी, मैंने नन्दी के सींगों के बीच से नहीं देखा। यों ही चली आयी। एक बार फिर परिक्रमा कर देख आऊँ ?" शान्तला ने पूछा।

"आज नहीं, अम्माजी। भाग्य की बात है कि कल ही शिवरात्रि है। यहाँ रहेंगे ही। फिर अमावस्या है, उस दिन प्रस्थान नहीं। तात्पर्य यह कि अभी तीन-चार दिन यहाँ रहेंगे ही। और एक बार हो आयेंगे।"

सब उतर आये। इस बीच रेविमय्या भी आ पहुँचा था। सबको आश्चर्य हुआ। मारसिंगय्या ने पूछा, "रेविमय्या, यह क्या, बिना विश्राम किये ही चले आये ? राजकुमार की रक्षा क्या हमसे नहीं हो सकेगी, इसलिए इतनी जल्दी लौट आये ?"

"राजकुमार और अम्माजी को सदा देखता ही रहूँ, यही मेरी आशा-आकांक्षा है हेगड़ेजी। मेरी इस अभिलाषा का पोषण कौन करेगा ? और फिर इन दोनों को देखते रहने का जो मौका अब मिला है, इसका भरपूर उपयोग करने की मेरी अपनी आकांक्षा थी, इसी कारण भाग आया। आप लोगों के पहाड़ पर चढ़ने से पहले ही आना चाहता था। पर न हो सका। वह मौका चूक गया।" रेविमय्या ने कहा।

"कुछ भी नहीं चूका। यहाँ तीन-चार दिन रहना तो है ही। यहाँ दूसरा क्या काम है। पहाड़ पर चढ़ आयेंगे एक और बार।" मारसिंगय्या ने कहा।

"युवराज और युवरानी ने तो कोई आपत्ति नहीं की रेविमय्या ?" माचिकब्बे ने पूछा।

"राजकुमार को अभी यहाँ से आप लोग बलिपुर ले जायेंगे तो भी वे आपत्ति

नहीं करेंगे।"

तुरन्त शान्तला बोली, "वैसा ही करेंगे।"

बिट्टिदेव ने उत्साह से उसकी ओर देखा।

"परन्तु अब की बार ऐसा कर नहीं सकेंगे। शिवगंगा से राजकुमार को मुझे सीधा सोसेऊरु ले जाना है। अब आपके साथ इधर आने में उनको कोई आपत्ति नहीं होगी।"

"रेविमय्या, यह क्या ऐसी बातें कर रहे हो? अभी हमारे साथ आये तो आपत्ति नही की और अब यहाँ से बलिपुर ले जायें तो आपत्ति नही करेंगे। दोनों बातें कहते हो। उसी मुँह से यह भी कहते हो कि अब ऐसा नही हो सकता। कथन और क्रिया में इतना अन्तर क्यों?" शान्तला ने सीधा सवाल किया।

"अम्माजी, आपका कहना सच है। कथन और क्रिया दोनों अलग-अलग है। कुछ प्रसंगों के कारण ऐसा हुआ है। राजकुमार आप लोगों के साथ कही भी जाये, उन्हें कोई आक्षेप नही। परन्तु अभी कुछ राजनैतिक कारणों से राजकुमार को सोसेऊरु लौटना ही होगा। और हाँ, राजकुमार के आप लोगों के साथ यहाँ आने की खबर तक दोरसमुद्रवालों को मालूम नही होनी चाहिए।" रेविमय्या ने कहा।

बात को बढ़ने न देने के इरादे से मारसिंगय्या बोले, "प्रभु संयमी है, बहुत दूर की सोचते हैं। उनके इस आदेश के पीछे कोई विशेष कारण ही होगा; इसलिए आदेशानुसार वही करो।"

"ठीक है, हेग्गड़ेजी। पता नही क्यों अब की बार दोरसमुद्र से लौटने के बाद प्रभुजी स्फूर्तिहीन से हो गये है। इसका रहस्य मालूम नही हुआ।" रेविमय्या ने कहा।

"तुम्हारा स्नान आदि हुआ।"

"नहीं, अभी आधा घण्टा ही तो हुआ है।"

"जल्दी जाकर नहा आओ। भोजन आदि की तैयारी कराकर प्रतीक्षा करेंगे।" कहकर मारसिंगय्या अन्दर चले गये। साथ ही और सब लोग चले गये।

शिवभक्त मारसिंगय्या, शिवभक्त शिल्पी गंगाचारी, और उनके साथ के जिनभक्तों के दल ने शिवरात्रि के शुभ-पर्व पर निर्जल उपवास कर जागरण किया, गंगाधरेश्वर के मन्दिर में चारों प्रहरों की पूजा-अर्चा में शामिल हुए, उस दिन प्रातः-

काल रेविमय्या, शान्तला, बिट्टिदेव और बोकिमय्या ने पर्वतारोहण किया, और उस चोटी पर चढ़कर नन्दी की परिक्रमा की। नन्दी के सींगों के बीच से पर्वत शिखर को देखा। शान्तला और बिट्टिदेव को सींगों तक पहुँच पाना न हो सकने के कारण रेविमय्या ने उन दोनों को उठाकर उनकी मदद की।

चारों प्रहर की पूजा के अवसर पर शान्तला की नृत्य-गान-सेवा शिवार्पित हुई। नृत्य सिखानेवाले गंगाचारी बहुत प्रसन्न हुए। अपनी शिष्या को जो नृत्य सिखाया था वह नादब्रह्म नटराज को समर्पण करने से अधिक संतोष की बात और क्या हो सकती है? गंगाचारी ने कहा, "अम्माजी, ज्ञानाधिदेवी शारदा तुम पर प्रसन्न है। तुम्हारे इष्टदेव बाहुबलि भी प्रसन्न हैं। और अब यह नादब्रह्म नटराज भी तुम पर प्रसन्न हो गये। शिवगंगा में प्रादुर्भूत शुद्ध निर्मल अन्तरगंगा की तरह तुम्हारी निर्मल आत्मा की अधिकाधिक प्रगति के लिए एक सुदृढ़ नींव बन गयी। है न कविजी?" गंगाचारी ने कहा।

"हाँ आचार्य, इस बार की यात्रा के लिए प्रस्थान एक बहुत अच्छे मुहूर्त में हुआ है। इस सबका कारण यह रेविमय्या है।" बोकिमय्या ने कहा।

"मैं एक साधारण सेवक, बलिपुर भेजना मेरा अहोभाग्य था। मेरे मन में ही सड़े पुराने दुःख को बहाकर उसके स्थान पर पवित्र और नयी प्रेमवाहिनी बहाने में यह सब सहायक हुआ। यह किसी जन्म के पुण्य का फल है। भिन्न-भिन्न स्तरों के अनेक लोगों को इस प्रेम-सूत्र ने एक ही लड़ी में पिरो रखा है। राजमहल के दौवारिक मुद्दा जैसे छोटे साधारण सेवक से लेकर हम सबसे ऊपरी स्तर पर रहनेवाले प्रभु तक—सभी वर्गों के लोग इस प्रेम-सूत्र में एक हो चुके हैं। क्या यह महान् सौभाग्य की बात नहीं? परन्तु अब शीघ्र ही अलग-अलग हो जाने का समय आ गया लगता है, इससे मैं बहुत चिन्तित हूँ।" रेविमय्या ने कहा।

"दूर रहते हुए भी निकट रहने की भावना रखना बहुत कठिन नहीं, रेविमय्या। ईश्वर दृग्गोचर न होने पर भी वह है, सर्वत्र व्याप्त है, ऐसी भावना क्या हममें नहीं है? वैसे ही…।"

"वह कैसे सम्भव है, कविजी!"

"तुम्हें कौन-सा पक्वान्न इष्ट है?"

"तेल से भुना बैंगन का शाक।"

"इस शाक को खाते समय यदि रेविमय्या की याद आ जाय और यह तुम्हारे लिए अत्यन्त प्रिय है, इसकी कल्पना ही से यह तुम्हारे पास ही है, ऐसा लगेगा। इसी तरह मेवियों की खीर जब तुम आस्वादन करोगे और सोचोगे कि यह अम्माजी के गुरु के लिए बहुत प्रिय है तो मैं और अम्माजी तुम्हारे ही पास रहने के बराबर हुए न? ऐसा होगा। क्या यह आसान नहीं?"

"प्रयत्न करूँगा। सफल हुआ तो बताऊँगा।" रेविमय्या ने कहा।

"वैसा ही करो। मेरा अनुभव बताता है कि वह साध्य है।"

शिवार्चन का कार्य सम्पूर्ण कर सब लोग चरणामृत और प्रसाद लेकर गंगाधरेश्वर की सन्निधि से अपने मुकाम पर पहुँचे। थोड़ी देर में सूर्योदय हो गया।

फिर सब लोगों ने स्नानादि समाप्त कर अपना-अपना पूजा-पाठ करके शिवरात्रि के दिन के व्रत को तोड़ा। भोजन आदि किया। उसके बाद वे वहाँ दो दिन जो रहे, शान्तला और बिट्टिदेव दोनों आग्रह करके पहाड़ पर पुनः गये, गंगोद्भव स्तम्भ, नन्दी की परिक्रमा आदि करके आये। रेविमय्या की संरक्षकता में यह काम सुरक्षित रूप में सम्पन्न हुआ। दूसरे दिन ही वहाँ से प्रस्थान निश्चित था, इसलिए बिट्टिदेव और शान्तला ने नन्दी के शृंगों के बीच से बहुत देर तक देखा। रेविमय्या ने भी सबकी तरफ देखा।

जब उतरने लगे तब शान्तला ने राजकुमार से पूछा, "आपको क्या दिखायी दिया?"

"तुमने क्या देखा?" राजकुमार ने पूछा।

"पहले आप बतावें।"

"न, तुम ही बताओ।"

"नहीं, आप ही बतावें। मैंने पहले पूछा था।"

"मुझे पहले नीलाकाश में एक बिजली की चमक-सी आभा दिखायी पड़ी।" रेविमय्या ने बीच में ही बोल उठा।

"मैंने तुमसे नहीं पूछा; पहले राजकुमार बतावें।" शान्तला ने कहा।

"बताना ही होगा?"

"हाँ तो, इसीलिए तो पूछा।"

"विश्वास न आये तो?"

"मुझपर अविश्वास?" शान्तला ने तुरन्त कहा।

"तुमपर अविश्वास नहीं। मैंने जो देखा वह बहुत विचित्र विषय है। मैं स्वयं अपनी ही आँखों पर विश्वास नहीं कर सकता, इसलिए कहा। बाहुबलि स्वामी चीनांबरालंकृत हो वैजयन्तीमाला धारण किये किरीट शोभित हो हाथों में गदा चक्र धरे से दिखायी पड़े।"

"सच?"

"झूठ क्यों कहूँ? परन्तु मुझे यह मालूम नहीं पड़ा कि ऐसा क्यों दिखायी पड़ा। बाहुबलि और चीनांबर? सब असंगत।" बिट्टिदेव ने कहा।

"गुरुजी से पूछेंगे, वे क्या बताते हैं!" शान्तला ने सलाह दी।

"कुछ नहीं। अब तुम बताओ, क्या दिखायी पड़ा?"

"प्रकाश, केवल प्रकाश। दूर से वह प्रकाश-बिन्दु क्रमशः पास आता हुआ बढ़ते-बढ़ते सर्वव्यापी होकर फैल गया। इस प्रकाश के अलावा और कुछ नहीं दीखा।"

"यहाँ विराजमान शिव ने दर्शन नहीं दिया ?"

"न।"

"देना चाहिए था न ? नटराज तुमसे प्रसन्न है, कहा न नाट्याचार्य ने ?"

"भावुकतावश कहा होगा। वह शिष्य-प्रेम का संकेत है; उनकी प्रसन्नता का प्रदर्शन, इतना ही।"

"जिस प्रकाश को देखा उसका क्या माने है ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"मुझे मालूम नहीं। गुरुजी से ही पूछना पड़ेगा। वह सब बाद की बात है। कल चलने पर बाणऊरु तक ही तो राजकुमार का साथ है। बाद को हम हम हैं और आप आप ही। जब से सोसेऊरु में आये तब से समय—करीब-करीब एक महीने का यह समय क्षणों में बीत गया-सा लगता है। फिर ऐसा मौका कब मिलेगा, कौन जाने।"

"मुझे भी वैसा ही लगता है। बाणऊरु पहुँचने का दिन क्योंकर निकट आता जा रहा है ?" बिट्टिदेव ने कहा।

"युवरानीजी और युवराज को मेरे प्रणाम कहें। आपके छोटे भाई को मेरी याद दिलावें। आपके बड़े भाई जी तो दोरसमुद्र में हैं, उन्हें प्रणाम पहुँचाने का कोई साधन नहीं। रेविमय्या ! राजकुमार को शीघ्र बलिपुर लाने की तैयारी करेंगे ?"

"अम्माजी, यह मेरे हाथ की बात नहीं। फिर भी प्रयत्न करूँगा। यहाँ कोई और नहीं। मैं और आप दोनों। और वह अदृश्य क्षेत्रनाथ ईश्वर, इतना ही। अन्यत्र कहीं और किसी से कहने का साहस मुझमे नहीं है। अगर कहूँ तो लोग मुझे पागल समझेंगे। परन्तु कहे बिना अपने ही मन में दबाकर रख सकने की शक्ति मुझमें नहीं है। आप लोग भी किसी से न कहें। अपने मन के बोझ को उतारने के लिए मैं कह देता हूँ। यदि आप लोग भी मुझे पागल कहें तो भी कोई चिन्ता नहीं। उस दिन रात को कटवप्र पहाड़ पर आप दोनों ने माथा टेककर बाहुबलि को प्रणाम किया था, याद है ?"

"हाँ है।" दोनों ने एकसाथ कहा। कहते हुए दोनों उतरना बन्द कर खड़े हो गये। तब तक वे मन्दिर के द्वार तक नीचे उतर चुके थे।

"तभी मैंने एक अद्भुत दृश्य देखा। इन्द्रगिरि के बाहुबलि स्वामी की सचेतन मूर्ति अलंकृत होकर जैसे अभी यहाँ चिक्कप्पाजी को जिस रूप में दर्शन हुआ, ठीक वैसे ही दिखायी पड़े और उन्होंने अपने दीर्घ बाहुओं को पसारकर आप दोनों को आशीर्वाद दिया। अम्माजी और चिक्कप्पाजी, आप दोनों का जीवन उस भगवान के आशीर्वाद से एक-दूसरे में समाविष्ट हो, यह मेरी हार्दिक आकांक्षा है। मैं एक साधारण व्यक्ति राजमहल का द्वारपाल मात्र हूँ। मेरी इस

आकांक्षा का मूल्य आँकेगा कौन ? इस तरह से आप लोगों के विषय में आशा भरी आकांक्षा रखने का मुझे क्या अधिकार है ? खैर; इस बात को रहने दें। यह जो मैंने कहा इसे आप लोग अपने तक ही सीमित रखें। किसी से न कहें।" यह कहकर चकित हो सुनते खड़े उन बच्चों को अपलक देखने लगा।

फिर सर्वत्र मौन व्याप गया। शान्तला और बिट्टिदेव का अन्तरंग क्या कहता था सो अन्तर्यामी ही जाने। परन्तु दोनों की आँखें मिलीं। मुँह पर स्नेह के लघु हास्य की एक रेखा खिंच गयी। कोई कुछ न बोला। ज्यों-के-त्यों मौन खड़े रहे।

"किसी से नहीं कहेंगे न ? वचन दीजिए !" कहते हुए रेविमय्या ने अपनी दायीं हथेली आगे बढ़ायी। शान्तला ने उसके हाथ पर अपना हाथ रखा। बिट्टिदेव ने भी अपना हाथ रखा। रेविमय्या ने उन दोनों के छोटे शुद्ध हाथों को अपने दूसरे हाथ से ढँक लिया और उन्हें वैसे ही छाती से लगाकर कहने लगा, "हे परमेश्वर ! ये दोनों हाथ ऐसे ही सदा के लिए ही जुड़कर रहे, यह आश्वासन दें।" कहते-कहते आँखें डबडबा आयीं।

तुरन्त हाथ छुड़ाकर बिट्टिदेव ने पूछा—

"क्यों, क्या हुआ, रेविमय्या ?"

"कुछ नहीं हुआ। रेविमय्या का हृदय बहुत कोमल है। उसे जब बहुत आनन्द होता है तब उसकी स्थिति ऐसी ही होती है। अब चलें, देर हुई जा रही है। कोई फिर खोजता हुआ इधर आ जायेगा।" शान्तला ने कहा।

तीनों नीचे उतरे। कोई किसी से बोला नहीं। मौन रहे। बाणऊरु तक दोनों के अलग-अलग होने तक यह मौन बना रहा। हेब्बूरु, कडब, तुरुवेकेरे होते हुए बाणऊरु पहुँचने में तीन दिन लगे। तीनों दिन सबको मौन रहते देख रेविमय्या ने पूछ ही लिया—

"यह मौन क्यों ?"

"जब एक दूसरे के अलगाव का समय निकट होने लगता है तब ऐसा ही हुआ करता है।" मारसिंगय्या ने कहा। बिट्टिदेव और शान्तला मौन भाषा में ही एक दूसरे से विदा हुए। शेष लोगों ने युवराज और युवरानी के पास अपनी कृतज्ञतापूर्वक वन्दना पहुँचाने को कहा। विदा के समय माचिकब्बे की आँखें आँसुओं से भरी थीं। सोसेऊरु और बलिपुर जानेवाले दोनों दल पृथक्-पृथक् अपने-अपने गन्तव्य स्थान पहुँचे।

दिन व्यतीत होने लगे।

वाणऊरु से बिदा होने के बाद बिट्टिदेव, रेविमय्या वगैरह, यदि चाहते तो जावगल्लु, दोरसमुद्र और वेलापुरी से होकर सोसेऊरु पहुँच सकते थे। परन्तु रेविमय्या ने प्रभु से जो आदेश पाया था उसके कारण इस रास्ते से जाना नहीं हो सका था। इसलिए वे जावगल्लु, वसुधारा से होकर सोसेऊरु पहुँचे। वास्तव में वे रास्ते में कहीं नहीं ठहरे; वाणऊरु से सुबह का नाश्ता कर रवाना होने के बाद एकदम सीधा शाम तक सोसेऊरु ही पहुँचे।

युवरानी जी राजकुमार के सकुशल पहुँचने पर बहुत खुश थीं। उनको इसमें कोई सन्देह नहीं था कि राजकुमार की सुरक्षा व्यवस्था में कमी न रहेगी। फिर भी मन में एक आतंक छाया रहा। खासकर दोरसमुद्र में अपने पतिदेव के मन को परेशान करनेवाली घटना जो घटी, उसका परिचय होने के बाद युवरानी के मन में, पता नहीं क्यों, एक तरह का आतंक अपने-आप पैदा हो गया था। जिस बात से प्रभु परेशान थे उसका इस आतंक भावना से कोई सरोकार न था। फिर भी सदा कल्पनाशील मन को समझाना भी सम्भव नहीं।

राजकुमार, जो सकुशल लौटा था, कुशल समाचार और कुछ इधर-उधर की बातें जानने के बाद, विदा होकर युवराज के दर्शन करने उनके पास गया। बिट्टिदेव से बातें करने के बाद माँ एचलदेवी अनुभव करने लगी कि स्वभाव से परिशुद्ध हृदय और अधिक परिशुद्ध हुआ। वह उसके विशाल से विशालतर मनोभाव को जानकर बहुत सन्तुष्ट हुई। वह सोचने लगी कि इस तरह का विशाल मन और शुद्ध हृदय सिंहासनारूढ़ होनेवाले में हो तो प्रजा के लिए और उसकी उन्नति के लिए कितना अच्छा रहेगा। सोसेऊरु लौटने के बाद रात को अपने पतिदेव युवराज एरेयंग प्रभु ने जो बातें बतायी थीं वे सारी बातें एक-एक कर स्मरण हो आयीं।

"इसका तात्पर्य यह कि मेरे स्वामी एरेयंग प्रभु का महाराजा बनना इस मरियाने दण्डनायक को वांछनीय नहीं। कैसी विचित्र बात है। खुद महाराजा ने इस बात की स्वयं इच्छा प्रकट की, उसी बात को एक पेचीदगी में उलझाकर युवराजा के ही मुँह से नाहीं कहलाना हो तो इस कुतन्त्र के पीछे कोई बहुत बड़ा स्वार्थ निहित होना चाहिए। प्रधान गंगराज ने भी दण्डनायक मरियाने की बात को पुष्ट करते हुए प्रकारान्तर से उसी का अनुमोदन किया। इससे यह स्पष्ट मालूम होता है कि पहले से ही विचार-विनिमय कर लिया गया है। बड़ी महारानी केलेयब्बरसि जी ने भ्रातृ-वात्सल्य से इस मरियाने को कहीं से उठाकर आज उसे इस स्तर तक ला बिठाया। उसका विवाह कराकर बड़ा बनाया। अपनी योग्यता से अधिक अधिकार पा जाने पर अधिकार की पिपासा बढ़ती गयी। अपने अधिकार को दृढ़ बनाकर अधिक से अधिक लाभ उठाने का प्रयत्न कर रहा है वह। इस अधेड़ उम्र में भी पुनः प्रधान जी की बहन से अपना

दूसरा विवाह करके उसे भी अपने वश में कर लिया है। अब चामव्वा राजघराने की समधिन बनने की तैयारी में लगी हुई है। अगर उसे अपनी इस आशा में सफलता पानी हो तो मेरे और मेरे पतिदेव की सम्मति तो होनी चाहिए न! इस स्थिति में हमें छोड़कर दण्डनायक का मन अन्यत्र क्यों वांछा-पूर्ति की योजना में लगा है! वात बहुत पेचीदी है और हल करना कठिन है। इस सबके पीछे कोई बहुत बड़ा स्वार्थ छिपा हुआ है—यों युवरानी एचलदेवी विचारमग्न हो सोच में पड़ गयी। सच है, जिस महान् स्वार्थ से प्रेरित होकर यह सब हो रहा है, वह क्या हो सकता है? एचलदेवी इस उलझन को सुलझा न सकी।

मोसेऊरु से लौटने के बाद अपने माता-पिता के मन में हो रही एक तरह की परेशानी और एक कशमकश का स्पष्ट अनुभव बिट्टिदेव को हो रहा था। इस सम्बन्ध में वह सीधा कैसे पूछ सकता है? पूछकर जाने बिना रहना भी उससे नहीं हो पा रहा था। लौटने के दो-तीन दिन बाद वह और रेविमय्या दोनों, घोड़ों को लेकर सवारी करने चले। उस एकान्त में यह सोचकर कि शायद रेविमय्या इस परेशानी का कारण जानता होगा, बिट्टिदेव ने बात छेड़ी।

"रेविमय्या! माता जी और युवराज कुछ चिन्तित से दिखायी पड़ते हैं। हो सकता है कि मेरा सोचना गलत हो। फिर भी जो मैं महसूस करता हूँ उसे उन्हीं से पूछने को मेरा मन नहीं मान रहा है। उनकी इस मानसिक अस्वस्थता का कारण क्या हो सकता है; इस सम्बन्ध में तुमको कुछ मालूम है?" बिट्टिदेव ने पूछा।

रेविमय्या ने कुछ जवाब नहीं दिया। उसने घोड़े को रोका। बिट्टिदेव ने भी अपना घोड़ा रोक लिया। दोनों आमने-सामने हो गये। रेविमय्या ने बिट्टिदेव को इस तरह देखा कि मानो वह उनके हृदयान्तराल में कुछ खोज रहा हो। बिट्टिदेव प्रतीक्षा में कुछ देर तक मौन रहा। जब रेविमय्या ने कुछ कहा नहीं तो पूछा, "क्यों रेविमय्या, चुप क्यों हो? क्या कोई रहस्य है?"

रेविमय्या ने बहुत धीमे स्वर में कहा, "अप्पाजी, राजघराने की बातों के विषय में इस तरह सैर करते समय बोलना होता है?"

बिट्टिदेव ने होंठ दबाकर चारों ओर नजर दौड़ायी। और कहीं कोई नजर नहीं आया। फिर कहा, "हाँ रेविमय्या, ठीक है। मुझे इसका ध्यान नहीं रहा। इन माँ के चेहरे पर कभी किसी तरह की चिन्ता की रेखा तक नहीं देखी, पर [illegible] चिन्तित देखकर मैं बहुत परेशान हो गया हूँ। यह मुझसे सहा नहीं [illegible], [illegible] पूछा।"

"यहाँ कोई नहीं है, ठीक है। फिर भी हमें चौकन्ना रहना [illegible]। सुना है कि दीवारों के भी कान होते हैं; वैसे ही इन पेड़-पौधों [illegible] कान हो सकते हैं। इसलिए यहाँ इन विषयों पर बातें नहीं करनी [illegible]।" रेविमय्या

ने कहा।

"मतलब कि तुम्हें सब बातें मालूम है?"

सब कुछ सभी को मालूम नहीं होता। राजमहल में बहुत-सी बातों को देख-कर वातावरण को परखकर समझना पड़ता है। अन्तरंग सेवक होने के कारण वह एक तरह से हमारी समझ में आ तो जाती है। यह अनुभव से प्राप्त वरदान भी हो सकता है और एक अभिशाप भी।" रेविमय्या ने कहा।

"वरदान शाप कैसे हो सकता है, रेविमय्या ?"

"अप्पाजी, आपको इतिहास भी पढ़ाया गया है न?"

"हाँ, पढ़ाया है।"

"अनेक राज्यों के पतन और नये राज्यों के जन्म के विषय में आपको जानकारी है न? इसका क्या कारण है?"

"स्वार्थ! केवल स्वार्थ।"

"केवल इतना ही नहीं, छोटे अप्पाजी; विश्वासद्रोह। अगर मुझ जैसे विश्वास-पात्र व्यक्ति द्रोह कर बैठें तो वह शाप न होगा? समझ लो कि मैं सारा रहस्य जानता हूँ और यदि मैं उस रहस्यमय विषय को अपने स्वार्थ-साधन के लिए उपयोग करूँ या उपयोग करने का प्रयत्न करूँ तो वह द्रोह की ओर मेरा प्रथम चरण होगा। है न? प्रभु से सम्बन्धित किसी भी बात को उनकी अनुमति के बिना हमें प्रकट नहीं करना चाहिए।"

"मतलब है कि यदि मुझसे कहें तब भी वह द्रोह होगा, रेविमय्या? मैं तुम्हारे प्रभु का पुत्र और उनके सुख-दुःखों में सहभागी हूँ।"

"पिता पर बेटे ने, भाई पर भाई ने विद्रोह किया है, इसके कितने ही उदाहरण मिलते हैं, अप्पाजी। हैं न? आपके विषय में मुझे ऐसा सोचना नहीं चाहिए। मैंने केवल बात बतायी। क्योंकि बड़े होने पर कल आप पर कैसी-कैसी जिम्मेदारियाँ आ पड़ेंगी, ईश्वर ही जाने। खासकर तब जब बड़े अप्पाजी का स्वास्थ्य सदा ही चिन्ताजनक रहा करता है तो वह जिम्मेदारी ज्यादा महान् होगी।" रेविमय्या ने कहा।

"माँ ने कई बार इस बारे में कहा है। मैंने माँ की कसम खाकर यह वचन दिया है कि भैया की रक्षा में मेरा समग्र जीवन धरोहर है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"यह मैं जानता हूँ, छोटे अप्पाजी। अब यहाँ इस विषय को छोड़ दें। रात में महल में चर्चा करेंगे।"

"तो इस बीच तुम प्रभु से अनुमति पा लोगे, रेविमय्या? वही करो। तुम्हारी स्वामिनिष्ठा मेरे लिए भी रक्षा कवच बने।"

रेविमय्या का घोड़ा दो कदम आगे बढ़ा। बिट्टिदेव के घोड़े से हाथ-भर की दूरी पर रेविमय्या खड़ा रहा। "छोटे अप्पाजी, आपने कितनी बड़ी बात कही।

मुझमें उतनी योग्यता कहाँ ? मुझे आपने एक दुविधा से पार कर दिया। मैं इसके लिए आपका सदा के लिए ऋणी हूँ। यह मेरा जीवन प्रभु के लिए और उनकी संतति के लिए धरोहर है।" कहते हुए उनकी आँखें आँसुओं से भर आयीं।

बिट्टिदेव ने इसे देखा और यह सोचकर कि इसके मन को और अधिक परेशानी में नहीं डालना चाहिए, कहा, "अब चलो, लौट चलें।" उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही अपने टट्टू को मोड़ दिया।

दोनों राजमहल की ओर रवाना हुए।

उधर दोरसमुद्र में मरियाने दण्डनायक के घर में नवोपनीत वटु बल्लाल कुमार के उपनीत होने के उपलक्ष्य में एक प्रीतिभोज का आयोजन किया गया था। महाराजा विनयादित्य ने इसके लिए सम्मति दे दी थी। इसीलिए प्रबन्ध किया जा सका। आमतौर पर ऐसे प्रीति-भोजों के लिए स्वीकृति मिल जाना आसान नहीं था। प्रभु एरेयंग और एचलदेवी यदि उस समय दोरसमुद्र में उपस्थित रहते तो यह हो सकता था या नहीं, कहा नहीं जा सकता। अब तो चामव्वा की इच्छा के अनुसार यह सब हुआ है। कुछ भी हो वह प्रधान मन्त्री गंगराज की बहन ही तो है। इतना ही नहीं, वह मरियाने दण्डनायक को अपने हाथ की कठपुतली बनाकर नचाने की शक्ति और युक्ति दोनों में सिद्धहस्त थी। उसने बहुत जल्दी समझ लिया कि कुमार बल्लाल का मन उसकी बेटी पद्मला की ओर आकर्षित है। ऐसी हालत में उसके मन की अभिलाषा को पूरा करने के लिए बहुत प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं, इस बात को वह अच्छी तरह समझ चुकी थी। ऐसा समझने में भूल ही क्या थी ? उसे इस बात का पता नहीं था कि अभी से उनके मन को अपनी ओर कर लूँ तो पीछे चलकर कौन-कौन से अधिकार प्राप्त किये जा सकेंगे ? वह दुनियादारी को बहुत अच्छी तरह समझती थी। इसी वजह से आयु में बहुत अन्तर होने पर भी वह मरियाने दण्डनायक की दूसरी पत्नी बनी थी। उसे पहले से यह मालूम भी था मरियाने की पहली पत्नी के दो लड़के पैदा हुए थे। बाद में सात-आठ वर्ष बीतने पर भी वह गर्भ धारण न कर सकी थी। वह बीमार थी और उसे बच्चे न हो सकने की स्थिति का पता भी चामव्वा ने दाई से जान लिया था। ऐसी ऊँची हैसियतवालों के घर में लड़कियाँ जन्म लें तो उन्हें राजघराने में सम्मिलित करना उस जमाने में कठिन नहीं था। पर राजघराने की लड़की को अपने घर लाकर अपनी प्रतिष्ठा-हैसियत बढ़ाने का मौका कम मिलता

था। इसलिए युवराज के लड़के के लिए, खुद लड़की की माँ बन जाने और महा-राज की सास बनने की बलवती इच्छा चामव्वा की रही आयी। प्रतिदिन अपनी आराध्या वासन्तिका देवी से भी यही प्रार्थना करती थी।

मानव-स्वार्थ को मानो भगवान् भी पूरा करने में सहायक होता हो; विवाह के थोड़े ही दिनों के बाद चामव्वा के गर्भधारण के लक्षण दिखायी दिये। अब उसकी इच्छाएँ सब ओर से बढ़ने लगीं। समय आने पर चामव्वा ने पद्मला को जन्म दिया। बच्ची को गोद में ले पति के सामने जाकर उसे दिखाते हुए कहा, "देखिए, मैंने महारानी को जन्म देकर आपकी कीर्ति में चार-चाँद लगा दिये हैं।" यों उकसाकर मरियाने के मन में कुतूहल पैदा करके उसे अपने वश में कर लिया। उसकी आराध्या वासन्तिका देवी ने प्रार्थना स्वीकार करके और उसे उसकी इच्छा से भी अधिक फल देकर उसे निहाल कर दिया। पद्मला के जन्म के दो ही वर्ष बाद उसने चामला को जन्म दिया। इस बार चामव्वा ने दण्डनायक से कहा, "दण्डनायकजी, अब आपकी चारों उँगलियाँ घी में। युवराज के दोनों लड़कों के लिए ही मैंने दो लड़कियों को जन्म दिया है। जिस मुहूर्त में हमारा पाणिग्रहण हुआ था वह कितना अच्छा मुहूर्त था!" यह सुनकर दण्डनायक मरियाने खुशी से फूलकर कुप्पा हो गया था। तब मरियाने इतना बूढ़ा तो नहीं, शायद पचास और पचपन के बीच की उसकी आयु रही होगी। पहले उसके प्रत्येक कार्य में स्वामि-निष्ठा और देशहित स्पष्ट था; अब उसका प्रत्येक कार्य अपनी आकांक्षाओं को सफल बनाने के लिए होने लगा। उन्हीं दिनों युवरानी ने एक और पुत्र, तीसरे पुत्र, को जन्म दिया। चामव्वा का स्वभाव ही कभी पिछड़े रहने का नहीं था। मानसिक और दैहिक दोनों तरह से वह बहुत आगे रही। इस कारण उसने एक तीसरी लड़की को जन्म दिया। जिस वासन्तिका देवी की वह आराधना करती थी वह बहुत उदार है, इसकी गवाही उसे मिल गयी। इसी वजह से वह साल में किसी-न-किसी बहाने चार-छः बार वासन्तिका देवी की पूजा-अर्चा करवाती और राज्य के प्रतिष्ठित लोगों को निमन्त्रण देकर बुलवाती। इस प्रकार वह अपने साध्वीपन, पतिपरायणता, और औदार्य आदि का प्रदर्शन करती थी। हर कोई कम-से-कम दिन में एक बार दण्डनायक की पत्नी का नाम ले, इस तरह से उसने कार्य का नियोजन कर रखा था। इस सबके पीछे छिपे उसके स्वार्थ का आभास तक किसी को नहीं हो पाया था। मन की बात को प्रकट न होने दें, ऐसा अनु-शासन दण्डनायक पर भी लागू करा रखा था। उपनयन के अवसर पर जब सोसेऊरु गये थे तभी उसने अपने मन की अभिलाषा प्रकट कर दी थी। युवरानी की ओर से अपेक्षित प्रतिक्रिया न दिखने पर भी भावी दामाद से उसकी इच्छा के अनुकूल प्रतिक्रिया स्पष्ट मालूम पड़ गयी थी; इससे उसको आगे के कार्य करने में बल मिला। इसी कारण सोसेऊरु से लौटने के बाद अपने पतिदेव के साथ उसने

क्या-क्या विचार-विनिमय किया सो तो वे ही जाने।

चामब्बे के कार्यक्रम बराबर जारी थे, परन्तु उसकी अपेक्षा के विरुद्ध शान्तला, उसके माता-पिता, किसी कोने में पड़े हेग्गड़े-हेग्गड़ती, दोरसमुद्र पहुँच गये थे। उनकी इतनी बढ़ायी? कहीं सम्भव है? जो स्थान-मान उसे भी मयस्सर नहीं वह इस साधारण हेग्गड़ती को मिले? उसकी अपनी बेटी को जो प्रेम प्राप्त होना चाहिए था वह इस हेग्गड़ती की बेटी को मिले? इस हेग्गड़ती ने, कुछ भी हो, युवरानी को किसी तरह से अपने वश में कर रखा है। इसीलिए यह वैपरीत्य। युवरानी की हैसियत क्या और साधारण हेग्गड़ती की हस्ती क्या? कहीं ऐसा होना सम्भव है? इन दोनों में कितना अन्तर है! युवरानी से बुलावा आया नहीं कि सीधे राजमहल में पहुँच गयी और वहीं बस गयी। मैंने ही खुद उसके ठहरने की व्यवस्था करके उसे और उसकी बेटी को वहाँ भेज दिया था। उस चोबदार के आकर बुलाने पर एकदम अपने समस्त कुनबे को उठाकर राजमहल में ही उसने अड्डा जमा लिया! कैसी औरत है? देखने में अनजान-सी, पर अँगूठा दिखाने पर हाथ ही को निगलने की सोचती है यह औरत! अभी से हमें इससे होशियार रहना चाहिए। नहीं तो वह येनकेन प्रकार से अपनी लड़की को महारानी बनाने की युक्ति जरूर निकालेगी। बड़ी भयंकर है, यह तो! इसके योग्य कुछ दवा करनी ही होगी।

यह विचार आते ही चामब्बे ने अपने पतिदेव मरियाने से सलाह करने की ठानी। सोसेऊरु से युवराज के परिवार समेत पहुँचने के समय से ही उसने अपना काम शुरू कर दिया। बिस्तर पर लेटे अपने पतिदेव के पास पान-बीड़ा देते हुए बात छेड़ी :

"दण्डनायक जी आजकल, पता नहीं क्यों, पारिवारिक कार्यकलापों की ओर ध्यान कम देने लगे हैं। इतने व्यस्त है?"

"आपकी इच्छा के अनुसार कार्य निर्विघ्न चल ही रहे है तो हमें इसमे सिर खपाने की क्या जरूरत है? हम आराम से है।"

"हम भला क्या कर सकेंगी? दण्डनायक से पाणिग्रहण होने से दण्डनायक की पत्नी का खिताब मिला है; यही पुण्यफल है। आपके प्रेम और विश्वास से ही मेरा सिर ऊँचा है। नहीं तो···"

उसने बात को वहीं रोका। आगे नहीं बोली।

दण्डनायक मरियाने पान चबा रहे थे। होंठ सफेद मूँछों के नीचे लाली से रँगे गये थे। कोहनी टेककर थोड़ा-सा उठे और बोले, "क्यों कहना रोक दिया, कहो। तुम्हारी बातों से लगता है कि कुछ अनहोनी बात हुई है।"

"अगर आप इन बातों की ओर से आँखें मूँद लें तो क्या मैं भी अन्धी होकर बैठी रह सकती हूँ?"

"क्या ? क्या हुआ ?"

"क्या होगा ? क्या होना चाहिए था ? यह सोचकर कि युवरानीजी हेग्गड़ती पर सन्तुष्ट हैं, मैंने उस वलिपुर की हेग्गड़ती की ठहरने की व्यवस्था वहाँ की थी। पर मेरे ही पीछे-पीछे कुछ कुतन्त्र करके वह राजमहल में ही घुस बैठी। उस साधारण हेग्गड़ती के साहस को तो देखिए ? मतलब यह हुआ कि मेरी व्यवस्था का कोई मूल्य ही नहीं है। यही न ?"

"ओह ! इतना ही। इसके लिए तुम्हें यह असमाधान ? जैसा तुमने कहा, वह एक साधारण हेग्गड़ती है सही। पर जब युवराज और युवरानी ने जब राजमहल में खुद बुलवा भेजा तो कौन क्या कर सकता है ?"

"ठीक है, तब छोड़िए। आप भी ऐसा सोचते है ! एक युवरानी कही ऐसा कर सकती है ? आपने देखा नहीं कि सोसेऊरु जब गये थे तब हमें दूर ही ठहराया नहीं था ?"

"तुम्हें एक यह बात समझनी चाहिए। यह ठीक भी है। इसमें हेग्गड़ती का कोई षड्यंत्र नही है। खुद युवराज ने ही मुझे बताया। मैंने ही रेविमय्या को बुलाकर पूछा, 'तुमने इन लोगों को अलग क्यों ठहराया।' उसने कहा, 'यह विषय मुझे मालूम नहीं।' युवरानी जी की इच्छा के अनुसार उन्हें बुला लाने के लिए मैंने ही रेविमय्या से कहा। युवरानी जी सचमुच बहुत गुस्से में आयी थी। परन्तु मुझे यह मालूम नहीं था कि तुमने उन लोगों को अन्यत्र भेज रखा था। तुम्हें यह सब क्यों करना चाहिए था, किसने करने को कहा था ?"

"जाने दीजिए। कल महाराज के ससुर बनकर इतराते बड़प्पन दिखानेवाले आप ही ऐसा कहें तो मैं ही आशा लेकर क्या करूँ ? प्रयोजन ही क्या है ? अपनी इन बच्चियों को किसी साधारण सैनिक अधिकारी को या पटवारी को देकर उनसे विवाह कर दीजिएगा और वह साधारण हेग्गड़ती अपनी लड़की को भावी महाराजा की रानी बनाकर बड़प्पन दिखाती फिरे ? इसे देखने के लिए मैं जीवित रहूँगी। ठीक है न ?"

"क्या बात कह रही हो ? ऐसा होना कहीं सम्भव है ?"

"सम्भव है, मैं कहती हूँ यह होकर रहेगा। हज़ार बार कहूँगी। वह हेग्गड़ती कोई साधारण स्त्री नहीं। उसने युवरानी को वशीकरण से अपने वश में कर रखा है। आप मर्द इन सब बातों को नहीं समझते। अभी से आप चेते नहीं तो फिर हमारी अभिलाषाएँ धरी-की-धरी रह जायेंगी। मैंने सोसेऊरु में ही कह दिया था कि युवरानी ने मेरी सलाह को कोई मान्यता नहीं दी। अभी भी एक भरोसा है। वह यह कि कुमार बल्लाल का मन हमारी बेटी से लगा हुआ है। लेकिन उनके मन के इस रुझान को भी अंकुश लग सकता है। इसलिए आप कुछ भी सही, अब ऐसा करें कि कुमार यहीं ठहरें। उन्हें अपने माँ-बाप के साथ सोसेऊरु जाने न दें। यदि

वहाँ चले गये तो हमारा काम ही ठप हो जायेगा।"

मरियाने दण्डनायक ने यह सब सोचा न था। उसने केवल इतना ही समझा था कि छोटी उम्र की बच्ची शान्तला की बुद्धिमानी, उसका कार्य-कौशल्य आदि से युवरानी प्रभावित हुई हैं और इसी वजह से वे उसपर सन्तुष्ट हैं। यह तो केवल युवरानी की सहज उदारता मान रहा था। परन्तु युवरानी की प्रसन्नता पीछे चलकर यों रिश्तेदारी में परिणत होगी, इसका उसे भान नहीं था। चामव्वा की बातों में कुछ तथ्य का भान होने लगा। सम्भवतः युवरानी की प्रसन्नता ऐसे सम्बन्ध की नान्दी हो सकती है, यह उसकी समझ में नहीं आया। स्त्री की चाल स्त्री ही जाने। इस हालत में यह नहीं हो सकता था कि कुछ दिनों तक और वे चुप बैठे रहें।

यों मन में एक निश्चय की भावना के आते ही उस दिन दोपहर के समय महाराज के साथ जो उसकी बातचीत हुई थी उसका सारा वृत्तान्त उसने पत्नी को बताया। मरियाने से सारी बातें सुन चामव्वा अप्रतिभ-सी हो गयी।

"तो महाराज अब भी आपके बाल्यकाल की उस स्थिति-गति का स्मरण रखते हैं। आपके वर्तमान पद के अनुरूप आपके प्रति गौरव की भावना नहीं रखते?"

"गौरव की भावना है, इसमें कोई शक नहीं। परन्तु उनका मत है कि हमारी हैसियत कितनी भी बढ़े, हमें अपनी पूर्वस्थिति को नहीं भूलना चाहिए।"

"तो मतलब यह कि हमारे मन की अभिलाषाएँ उन्हें स्वीकार्य नहीं हो सकेंगी। हमारी बच्चियों को युवराज के बच्चों के लिए स्वीकृत करने पर उन्हें एतराज होगा।"

"वैसे सोचने की जरूरत नहीं। हमारे बच्चों को भी स्वीकार कर सकेंगे, वैसे ही हेग्गड़ती की बच्ची को भी स्वीकार कर सकेंगे।"

"हमें अपने कार्य को शीघ्र साध लेना चाहिए। भाग्यवश हमारी पद्मला विवाह-योग्य तो हो ही गयी है। एक-दो साल में विवाह करवा देना चाहिए। तब तक कुमार बल्लाल को यहीं रोक रखना चाहिए; उन्हें अपने माँ-बाप के पास रहने न दें, ऐसी व्यवस्था करनी होगी।"

"बेहतर है कि अब तुम अपनी सारी आशा-आकांक्षाओं को भूल जाओ। मेरी लड़की की किस्मत में रानी होना न लिखा हो तो वह रानी नहीं बन सकेगी। रानी बनना उसके भाग्य में बदा हो तो कोई नहीं रोक सकेगा। इन बातों को लेकर माथापच्ची करना इस प्रसंग में ठीक नहीं।"

"ऐसा प्रसंग ही क्या है?"

"महाराज राजकाज से निवृत्त होना चाहते हैं। युवराज को राजगद्दी पर बिठाने की उनकी इच्छा है। आगे क्या होगा सो अब कहा नहीं जा सकता। इस

विषय में महाराज ने मुझसे पूछा भी। यह सुनकर मेरे भी मन में कुछ खलवली हुई। मुझे तो गद्दी मिलनेवाली नहीं। अगर पिता ने वेटे को गद्दी पर विठाना चाहा तो मेरे मन में खलवली क्यों हो? यह मेरी समझ में नही आया। यदि ऐसा हो जाय तो हमें अपनी अभिलाषाओं को तिलांजलि देनी होगी। शायद इसी कारण से यह खलवली हुई हो। फिर भी मैंने पूछा कि प्रधानमन्त्रीजी इस वारे में क्या कहते हैं। महाराज ने वताया कि अभी उनसे वात नहीं हुई है। इसके अलावा युवराज की भी स्वीकृति होनी चाहिए न? मैंने पूछा। जवाव मिला—ऐसी हालत में आप सभी लोग तो समझाने के लिए हैं न? आप लोग समझाकर स्वीकार करा सकते हैं। स्पष्ट है कि महाराज के विचार किस ओर हैं। ऐसी स्थिति में हम भी क्या कर सकेंगे? युवराज को गद्दी पर विठाने पर युवरानीजी महारानी बनेंगी।"

"ऐसा हुआ तो वे इस रिश्ते को स्वीकार नहीं कर सकेंगे।"

"तव हम क्या कर सकते हैं?"

"यों हाथ समेटे वैठे रहने पर क्या होगा? हमारी अभिलाषाओं को सफल बनाने के लिए हमें कुछ मार्ग निकालना होगा। इसपर विचार-विनिमय करना पड़ेगा। फिलहाल इस पट्टाभिषेक की वात को स्थगित तो करावें?"

"जिस पत्तल मे खाया उसी में छेद? यह सम्भव है? अपने स्वार्थ के लिए मैं ऐसा नही कर सकता। मुझे ऐसा नहीं लगता कि इससे कोई प्रयोजन सिद्ध होगा।"

"दण्डनायकजी इसपर कुछ सोच-विचार करें। फिलहाल पट्टाभिषेक न हो, यह हमारी अभिलाषा है। पद्मला का पाणिग्रहण कुमार वल्लाल कर लें, इसके लिए महाराज की ओर से कुछ दवाव पड़े—ऐसा करना चाहिए। इसके पश्चात् ही युवराज एरेयंग प्रभु का पट्टाभिषेक हो। ऐसा करने पर दोनों काम सध जायेंगे। हमारी आकांक्षा भी पूरी हो जायेगी। युवराज भी महाराजा हो जायेंगे। उनके बाद कुमार वल्लालदेव महाराजा होंगे ही, तब पद्मला महारानी होगी। यदि यों दोनों कार्यों को साधने की योजना वनायें तो इसमें द्रोह की कौन-सी वात होगी?"

"यह मध्यम मार्ग है। फिर भी यह योजना कुछ ताल-मेल नहीं रखती। तुम अपने भाई से सलाह कर देखो। उनका भी अभिमत जान लो। वाद में सोचेंगे, क्या करना चाहिए।"—यह कहकर इस वात पर रोक लगा दी, और सो गये। वे आराम से निश्चिन्त होकर सोये, यह कैसे कहें?

प्रधानमन्त्री गंगराज मितभाषी है। उनका स्वभाव ही ऐसा है। अपनी वहन की सारी वातें उन्होंने सावधानी से सुनी। इसमें कोई गलती नहीं—कहकर एक तरह मे अपनी सम्मति भी जता दी। अपनी वहन की वेटी महारानी वने—यह तो खुशी की वात है न? उनके विचार में यह रिश्ता सब तरह से ठीक ही लगा।

परन्तु युवरानी की इच्छा क्या है, यह स्पष्ट रूप से उन्हें विदित नहीं था। इसलिए गंगराज ने अपनी बहन से कहा, "चामू, तुमने युवरानी से सीधे इस विवाह के बारे में बात तो नहीं की और उनसे इनकार की बात भी नहीं जानी। तब तुमने यह निर्णय कैसे किया कि उनकी इच्छा नहीं?"

"जब मैंने इसका संकेत किया तो उसके लिए कोई प्रोत्साहन नहीं मिला, तब यही समझना चाहिए कि उनकी इच्छा नहीं है।"

"सास की जब इच्छा न हो तो उस घर की बहू बनाने की तुम्हारी अभिलाषा ठीक है—यह मैं कैसे कहूँ?"

"एक बार सम्बन्ध हो जाने पर, बाद में सब अपने आप ठीक हो जायेगा, भैया। युवरानीजी का मन साफ़ है।"

"ऐसा है तो सीधी बात करके उनसे मनवा लो।"

"उनकी सम्मति के बिना विवाह करना सम्भव नहीं, भैया जी! परन्तु आसानी से सम्मति मिल जाय—ऐसा कार्यक्रम बनाना अच्छा होगा न? कुमार बल्लालदेव की भी अनुकूल इच्छा है। पद्मला का भी उनमें लगाव है। विवाह का लक्ष्य ही वर-वधू का परस्पर प्रेम है, एक-दूसरे को चाहना है। है न? शेष हम, हमारा काम उन्हें आशीष देना मात्र है। महाराजा विनयादित्य के सिंहासनासीन रहते यह कार्य सम्पन्न हो जाय; फिर उनकी इच्छा के अनुसार एरेयंग प्रभु का पट्टाभिषेक हो; और कुमार बल्लाल को युवराज बना दें—तो यह अच्छा होगा न? दण्डनायकजी पर महाराज का पुत्रवत् वात्सल्य है ही। अतः उनके सिंहासनासीन रहते उनकी स्वीकृति पा लें और इस विवाह को सम्पन्न करा दें, ठीक है न, भैया जी? आप इस प्रसंग में कैसे बरतेंगे—इसपर हमारी पद्मला का भविष्य निर्भर है। इस काम में न तो स्वामिद्रोह है नहीं राष्ट्रद्रोह। बल्कि इस कार्य से महाराजा, प्रधानमन्त्री और दण्डनायक के बीच अच्छी तरह से जोड़ बैठ जायेगा। आप ही सोच देखिए, भैया।"

"अच्छी बात है चामू, मैं सोचूँगा। दण्डनायकजी मुझसे मिले थे। कल दोपहर आगे के कार्यक्रम के बारे में महाराजा के साथ मन्त्रणा करनी है। इसलिए हम सुबह ही विचार कर लें—यह अच्छा है।"

"कुछ भी हो, भैया, मेरी आशा को सफल बनाने का यत्न करो।"

"इसमें राजद्रोह और राष्ट्रद्रोह के न होने की बात निश्चित हो जाय। और फिर इस कार्य से किसी को किसी तरह की मानसिक वेदना न हो यह भी मालूम हो जाय, तभी इस दिशा में प्रयत्न करूँगा।"—इतना कहकर प्रधान गंगराज ने बहन को विदा कर दिया। वह विचार करने लगा। मन-ही-मन वह कहने लगा : बहन की अभिलाषा में कोई गलती नहीं। परन्तु युवराज के राज्याभिषेक होने पर उसकी इच्छा की पूर्ति न हो सकेगी—इस बात में कोई सार नहीं। उसकी

समझ में नहीं आया कि ऐसा कैसे और क्यों होगा ? निष्कारण भयग्रस्त है मेरी बहन । दण्डनायक के विचार जानकर ही आगे के कार्यक्रम का निश्चय करेंगे—प्रधान गंगराज ने निर्णय लिया ।

दूसरे दिन बहनोई दण्डनायक के साथ प्रधान गंगराज की भेंट हुई । दोनों ने इस विषय पर विचार-विनिमय किया । खून-पानी से गाढ़ा होता है न ? दोनों के विचार चामव्वा के विचार से प्रायः मेल खाते थे ।

उस दिन दोपहर को महाराजा के साथ की मन्त्रणा-गोष्ठी में कुछ नयी स्फूर्ति लक्षित हो रही थी ।

महाराजा विनयादित्य ने कहा, "प्रधान जी ! दण्डनायक जी ! आप सभी को यह बात विदित है कि हमारा स्वास्थ्य उस स्थिति में नहीं कि हम राजकाज सँभाल सकें । इसलिए इस दायित्व से मुक्त होकर हम आपके युवराज एरेयंग प्रभु को अभिषिक्त कर निश्चिन्त होने की बात सोच रहे हैं । अब तो मैं नाममात्र का महाराजा हूँ । वास्तव में राज्य के सारे कारोबार उन्हीं के द्वारा सँभाले जा रहे हैं; इस बात से आप सभी लोग भी परिचित हैं । वह कार्य निर्वहण में दक्ष हैं, यह हम जानते हैं । उनकी दक्षता की बात दूसरों से सुनकर हमें सन्तोष और तृप्ति है । उनपर हमें गर्व है । पोय्सल राज्य स्थापित होने के समय से गुरुजनों की कृपा से राज्य क्रमशः विस्तृत भी होता आया है । प्रजा में वह प्रेम और विश्वास के पात्र बने है । हमें विश्वास है कि हमारे पुत्र इस प्रजाप्रेम और उनके इस विश्वास को बराबर बनाये रखेंगे । जैसा आप लोगों ने हमारे साथ सहयोग किया और हमें बल दिया तथा राष्ट्ररक्षा के कार्य में निष्ठा दिखायी वैसे ही हमारे पुत्र के प्रति भी, जो भावी महाराजा है, दिखावेंगे । आप सब राजी हों तो हम कोई शुभ मुहूर्त निकलवाकर उनके राज्याभिषेक का निश्चय करें !"

महाराजा की बात समाप्त होने पर भी तुरन्त किसी ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखायी । कुछ समय के मौन के बाद, महाराजा विनयादित्य ने ही फिर कहा, "ऐसे विषय पर तुरन्त कुछ कह पाना कठिन है । इसमें क्या सही है, क्या गलत है—यह बात सहज ही में नहीं समझी जा सकती । वास्तव में यह पिता-पुत्र से सम्बन्धित बात है, ऐसा समझकर हमें ही निर्णय कर लेना चाहिए था । और उस निर्णीत विषय को आप लोगों के समक्ष कह देना ठीक था । परन्तु आप सब राष्ट्रहित के लिए समर्पित, निष्ठावान, और विश्वासपात्र हैं; एकान्त में हमारे कुमार हमारी सलाह को स्वीकार करेंगे—इसमें हमें सन्देह है । इसलिए हमने अपने मित्रों के सामने इस बात को प्रस्तुत किया है । हम अपने कुमार की मनःस्थिति से अच्छी तरह परिचित हैं । हमारे जीवित रहते इस हमारे विचार को वे स्वीकार नहीं करेंगे । उनका स्वभाव ही ऐसा है, वे यही कहेंगे कि अभी जैसा चल रहा है वैसा ही चलता रहे । वे दिखावे के धोखे में नहीं आते । भेदभाव रहित

परिशुद्ध मन है उनका; यह अनुभव हम स्वयं कर चुके हैं। आप सबसे विचार-विनिमय करने के पीछे हमारा यही उद्देश्य है कि उन्हें समझा-बुझाकर उनसे 'हाँ' करा लें। सिंहासन त्याग का हमें कोई दुःख नहीं है। जिस किसी तरह सिंहासन पर बैठने की इच्छा हमारे कुमार की कभी नहीं रही। इसलिए यदि सर्व-सम्मति से यह कार्य सम्पन्न हो जाय तो इसका विशेष मूल्य होगा। खुले दिल से आप लोग कहें। हमारी इच्छा के विरुद्ध कहना चाहें तो भी निडर होकर कहें। संकोच की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि यह एक तरह से आत्मीय भावना से विचार-विनिमय करने के लिए आयोजित अपनों की ही गोष्ठी है। हमारे निर्णय के अनुकूल आप लोग चलेंगे तो हमें लौकिक विचारों से मुक्त होकर पारलौकिक चिन्तन के लिए अवकाश मिलेगा। हमारे कुमार युवराज पर अधिक उत्तरदायित्व का भार पड़ेगा जरूर, पर निर्वहण करने की दक्षता, प्रबुद्धता उनमें है।"

प्रधान गंगराज ने मरियाने दण्डनायक की तरफ देखा।

"इस उत्तरदायित्व को निभानेवाले युवराज ही तो है; अतः वे इस बारे में स्वयं अपनी राय बता दें तो अच्छा होगा।"—मरियाने दण्डनायक ने निवेदन किया।

"एक दृष्टि से दण्डनायक की बात ठीक जँचती है। जैसे महाराज ने स्वयं ही फरमाया कि युवराज शायद स्वीकार न करें। इसलिए इस सम्बन्ध में निर्णय अभी नहीं करना चाहिए—ऐसा मुझे लगता है। युवराज भी सोचें और हम भी सोचेंगे। अभी तो युवराज यहाँ रहेंगे ही। सबके लिए स्वीकार्य हो—ऐसा निर्णय करेंगे वे।"—प्रधान गंगराज ने कहा।

फिर थोड़ी देर के लिए वहाँ खामोशी छा गयी।

युवराज एरेयंग के मन में विचारों का तुमुल चल रहा था। वे सोच रहे थे—'इन सब लोगों के समक्ष यह सलाह मेरी ही उपस्थिति में मेरे सामने खुद महाराज ने रखी है; इसका कोई कारण होना चाहिए। यदि सभी को मेरा पट्टाभिषिक्त होना स्वीकार्य होता तो तुरन्त स्वीकृति की सूचना देनी चाहिए थी; किसी ने यह नहीं कहा, ऐसा क्यों? महाराज ने स्वयं इस बात को स्पष्ट किया है कि मेरा मन क्या है और मेरे विचार क्या है। उन्होंने जो कहा वह अक्षरशः सत्य है। मेरे स्पष्ट विचार है कि महाराज के जीवित रहते मेरा सिंहासनासीन होना उचित नहीं। तिस पर भी मेरे सिंहासनासीन होने के बाद मेरी सहायता करनेवाले इन लोगों को यह बात स्वीकार्य न हो तो पीछे चलकर कठिनाई उत्पन्न हो सकती है। तब महाराज की इस सलाह को न माननेवाले भी कोई है? अगर नहीं मानते हों तो उसका कारण क्या है? युवराज होने के नाते मुझे प्राप्त होनेवाला सिंहासन का अधिकार यदि मुझे मिले तो इसमें किसी और को कष्ट क्यों? हकदार को उसका हक मिले तो किसी को क्या आपत्ति?

कौन क्या सोचता है पता नहीं, भगवान् ही जाने। सीधे किसी ने हृदय से यह स्पष्ट नहीं किया, इसलिए लोगों को समझाना मेरा पहला कर्तव्य है।' यह विचार कर एरेयंग प्रभु ने कहा, "दण्डनायक ने सही कहा है। उत्तरदायित्व हम पर होगा; तो यह उचित है हमारी राय भी जान लेनी चाहिए। महाराज ने स्वाभाविक रूप से अपने विचार रखे। प्रधानजी ने उनके उन विचारों को पुष्टि देते हुए हमें उत्साहित एवं प्रेरित भी किया है। हम अपने पूज्य जन्मदाता और हम सबके वयोवृद्ध महाराज की सेवा में निरत रहकर उनकी चरण-सेवा करते रहनेवाले सेवक मात्र हैं। उन पूज्य के जीवित रहते और सिंहासनासीन रहते हम सिंहासन पर नहीं बैठेंगे। इस विषय पर विचार करने की बात प्रधान जी ने भी कही। इसमें विचार करने जैसी कोई बात ही नहीं है; यह मेरी भावना है। विचार करने जैसी कोई बात हो तो वे ही जानें। और फिर, महाराज से मेरी एक प्रार्थना है। सन्निधान के रहते उन्हीं के समक्ष हमारा सिंहासनारूढ़ होना हमारे इस राजवंश पर कलंक का टीका लगाना है। कोई हमें ऐसा काम करने के लिए न उकसावें। यह अविनय नहीं, प्रार्थना है। हम पर इतना अनुग्रह करें।" कहकर प्रभु एरेयंग ने झुककर प्रणाम किया।

तुरन्त मरियाने दण्डनायक के मुँह से निकला, "युवराज ने हमारे मन की ही बात कही।"

गंगराज बोले, "अपने वंश की प्रतिष्ठा के अनुरूप ही युवराज ने व्यवहार किया है। जैसे हम महाराजा के प्रति निष्ठा रखते हैं, युवराज के प्रति भी वही निष्ठा है। हम व्यर्थ ही दुविधा में पड़े रहे। युवराज ने उदारता से हमें उस दुविधा से पार लगा दिया।"

मरियाने दण्डनायक ने फिर कहा, "हमने उसी वक्त अपना अभिमत नहीं दिया; इसका कारण इतना ही था कि युवराज स्वयं अपनी राय बतावें या सम्मति दें—यही हम चाहते थे। इस विषय में युवराज को अन्यथा सोचने या सन्देह करने की कोई जरूरत नहीं है, न ऐसा कोई कारण ही है जिससे वे शंकित हों। हम पोय्सल वंश के ऋणी हैं। आपने इस वंश की परम्परा के अनुरूप ही किया है और हमारी भावना के ही अनुरूप समस्या हल हो गयी। इससे हम सभी को बहुत सन्तोष हुआ है। जैसा प्रधान जी ने कहा, हम किसी भेदभाव के बिना पोय्सल वंश के प्रति निष्ठा रखनेवाले हैं, इसमें किसी तरह की शंका नहीं। इस बात पर जोर देकर दुबारा यह विनती है।"

महाराजा विनयादित्य कुछ अधिक चिन्तित दिखे, "मैंने चाहा क्या? आप लोगों ने किया क्या? क्या आप लोग चाहते हैं कि हमें मुक्ति न मिले? यहाँ जो कुछ हुआ उसे देखने से लगता है कि आप सबने मिलकर, एक होकर, हमें अपने भाग्य पर छोड़ दिया। हमने आप लोगों से विनती की कि युवराज को समझा-बुझा लें और हमें

इस दायित्व से मुक्त करें। पर आप लोगों ने हमारी इच्छा के विरुद्ध निश्चय किया है। हमें सिंहासन पर ही रहने देकर आप लोगों ने यह समझ लिया होगा कि हम पर बड़ा उपकार किया। हम ऐसा मानने को तैयार नहीं। आप लोगों का यह व्यवहार परम्परागत क्रम के विरुद्ध न होने पर भी, हमारे कहने के बाद, हमारे विचारों की उस पृष्ठभूमि में देखने पर यह निश्चय ठीक है ऐसा तो हमें नहीं लगता। यह गोष्ठी बिलकुल व्यर्थ साबित हो गयी। इसकी जरूरत ही क्या थी?" महाराज के कहने के ढंग में असमाधान स्पष्ट लक्षित हो रहा था।

एरेयंग प्रभु ने कहा, "महाराज को असन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। सबकी सम्मति के अनुसार बरतने में राष्ट्र का हित है—ऐसा समझने पर शेष स्वार्थ गौण हो जाता है। अतः महाराज को इस सर्व-सम्मति के अनुकूल होकर रहना ही उचित है। आपकी छत्रछाया हम सबको शक्ति देती रहेगी। आपकी सन्निधि राष्ट्र के लिए रक्षा-कवच है।"

चिण्णम दण्डनाथ अब तक मौन होकर सारी बातें सुन रहे थे। अब वे उठ खड़े हुए और बोले, "एक तरह से बात अब निश्चित हो गयी है, ठीक। फिर भी महाराजा और युवराज की अनुमति से मैं भी कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। यह गोष्ठी आत्मीयों की है, आत्मीयता से विचार-विनिमय करने के इरादे से बुलायी गयी है—स्वयं महाराज ने ही यह बात स्पष्ट कर दी है। एक तरह से समस्या के सुलझ जाने की भावना तो हो आयी है; फिर भी महा सन्निधान ने जो विचार प्रस्तुत किये उन विचारों पर बिना किसी संकोच के निश्शंक होकर हमें सोचना चाहिए। बस यही मेरी विनती है। प्रायः साथ रहकर मैं अपने श्रीमान युवराज की पितृभक्ति, राज्यनिष्ठा और उनके मन की विशालता आदि को अच्छी तरह समझता हूँ। उनका व्यवहार उनके व्यक्तित्व की दृष्टि से बहुत ही उत्तम और आदरणीय है। उनके आज के वक्तव्य और व्यवहार ने उन्हें और भी ऊँचे स्तर पर पहुँचा दिया है। महासन्निधान की इच्छा उनके अन्तःकरण से प्रेरित होकर अभिव्यक्त हुई है। इस तरह उनकी यह सहज अभिव्यक्ति किसी बाहरी प्रभाव के कारण नहीं। हमारी इस पवित्र पुण्यभूमि पर परम्परा से ही अनेक राजे-महाराजे और चक्रवर्ती वार्धक्य में स्वयं प्रेरित होकर अपना सिंहासन सन्तान को सौंप राज्य भार से मुक्त हुए हैं। उसी परम्परा के अनुसार, महराज ने भी अपनी ही सन्तान, युवराज-पद पर अभिषिक्त, ज्येष्ठ पुत्र को अपने जीवित रहते सिंहासनारूढ़ कराने का अभिमत व्यक्त किया है। यह इसलिए भी कि पिता के जीवित रहते, युवराज सिंहासन पर बैठने में संकोच करेंगे, यह सोचकर ही युवराज को समझा-बुझाकर उन्हें स्वीकृत कराने के उद्देश्य से महाराज ने अपना मन्तव्य आप लोगों के समक्ष रखा। परन्तु हम इस दिशा में कुछ प्रयत्न किये बिना ही निर्णय पर पहुँच रहे हैं—ऐसा लग रहा है। इसलिए मैं अपनी ओर से और आप

सभी की तरफ से आग्रहपूर्वक यह विनती करता हूँ कि इस समय महाराज के आदेशानुसार, सिंहासनारूढ़ होकर राज्याभिषेक के लिए युवराज की आत्मस्वीकृति सभी दृष्टियों से उचित होगी। कृपा करके युवराज ऐसा करें, यह मेरी विनीत प्रार्थना है।"

मरियाने दण्डनायक झट से बोल उठे, "इस तरह युवराज पर ज़ोर डालने के लिए हमारी कोई विशेष इच्छा नहीं है।"

चिण्णम दण्डनाथ ने फिर प्रश्न किया, "तो फिर जैसा है वैसा ही बने रहने में आपका स्वार्थ है—यह मतलब निकाला जाये ?"

"मैंने ऐसा नहीं कहा। हमारे कथन का आपने विपरीतार्थ लगाया।" मरियाने दण्डनायक ने उत्तर दिया।

"विपरीतार्थ या वैकल्पिक अर्थ करने के लिए मैं कोई व्याकरणवेत्ता नहीं हूँ। महाराज का आदेश था सो मैंने अपना निष्कर्ष बताया। इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है। मेरे लिए तो दोनों पूज्य और वन्दनीय हैं।" चिण्णम दण्डनाथ ने कहा।

मरियाने दण्डनायक कुछ व्यंग्य भरे शब्दों में बोले, "तो दोनों हमारे लिए पूज्य नहीं हैं—यही आपका मतलब हुआ न ?"

प्रधान गंगराज ने सोचा कि बात को बढ़ने न देना चाहिए; इसलिए उन्होंने कहा, "दण्डनायक जी, हम यहाँ इस तरह के वाग्युद्ध करने के लिए एकत्र नहीं हुए हैं। जैसा कि मैंने पहले ही कहा कि इस विषय का जल्दबाजी में कोई निर्णय लेना उचित नहीं होगा, सब लोग बहुत शान्त मन से सोच-विचार करेंगे—यह सलाह दी थी। अब भी हमारा यही मन्तव्य है। महासन्निधान से आज्ञा लेकर आज की इस विचार गोष्ठी को समाप्त करेंगे।" यह कहकर उन्होंने महाराज की ओर देखा। महाराज ने अपनी सम्मति जता दी। सभा समाप्त हुई।

खूब सोच-विचार कर निर्णय करने के लिए सबको पर्याप्त समय देकर छोटे पुत्र उदयादित्य को साथ लेकर सोसेऊरु के लिए युवराज ने प्रस्थान कर दिया।

चामब्बे की इच्छा पूरी हुई। मरियाने के आग्रह से स्वयं गंगराज ने कुमार बल्लाल को यहीं ठहराने के लिए महाराज से विनती की थी। एरेयंग प्रभु के बाद पट्टाभिषिक्त होनेवाले राजकुमार हैं न ? अभी से उनके योग्य शिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए; फिर सारे राजकाज से परिचित भी कराना होगा—इसलिए उन्हें यहाँ रखना अच्छा है। इस बात की सलाह दी थी। इन सबके अलावा महाराज के संग में रहने के लिए भी उनका ठहरना उचित है—यह भी उनकी सलाह थी।

कुमार बल्लालदेव के ठहर जाने में वास्तव में कोई विरोध भावना नहीं थी।

इस समय एचलदेवी के मन में यह शंका हुई होती कि यह सब चामव्वा का षड्यन्त्र है, तो सम्भव था कि वे इसका विरोध करतीं। फिर भी जितनी खुशी से वे राजधानी दोरसमुद्र में आये थे, लौटते समय उसी सन्तोष से युवराज और युवरानी सोसेऊरु नहीं लौट पाये। हाँ, चामव्वे को जरूर असीम आनन्द हुआ।

फलस्वरूप चामव्वा ने अपने यहाँ आज के इस आनन्दोत्सव का आयोजन किया था। यह आनन्दोत्सव सभारम्भ भावी सम्बन्ध के लिए एक सुदृढ़ नींव बने, इसलिए उसने सब तरह से अच्छी व्यवस्था की थी। बेटी पद्मला को समझाकर अच्छी तरह से पाठ पढ़ाया था। उसने बल्लाल का कभी साथ नहीं छोड़ा। उसकी सारी आवश्यकताओं को पूरा करने की जिम्मेदारी उसी पर थी। उसका गोल चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें, जरा फैले होंठ, विशाल भाल, सहज ही नखरे दिखाकर अपनी तरफ़ आकर्षित करने योग्य लम्बी ग्रीवा, ये सब तारतम्य ज्ञानशून्य उस बल्लालदेव को भा गयी थीं।

भोजनोपरान्त आराम करने जब राजकुमार निकला तो पद्मला भी उसके साथ थी। शेष समयों में भी वह उसके सामने रहती लेकिन तब अन्य लोग भी होते थे। इसलिए थोड़ा संकोच रहा करता। पर अब तो केवल दो ही थे। राजकुमार को पलंग दिखाकर आराम करने के लिए पद्मला ने कहा। यह भी बता दिया कि यदि कोई आवश्यकता हो तो यहाँ जो घंटी टँगी है उसे बजा दें, वह आ जायेगी। यह कहकर वह जाने लगी।

"तुम दोपहर के वक्त आराम नहीं करोगी?"

"करूँगी।"

"तब घंटी बजाने से भी क्या होगा!"

"आज नहीं सोऊँगी।"

"क्यों?"

"जब राजकुमार अतिथि बनकर आये हों, तब भला सो कैसे सकती हूँ?"

"अतिथि को नींद नहीं आ रही हो तो?"

"मतलब?"

"क्या माताजी ने यहाँ न रहने को कहा है?"

"उन्होंने तो ऐसा कुछ नहीं कहा।"

"ऐसा नहीं कहा तो और क्या कहा है?"

"आपकी आवश्यकताओं की ओर विशेष ध्यान देते रहने को कहा है।"

"तुम्हें यह कहना चाहिए था, क्या नौकर नहीं हैं?"

"मुझ-जैसी देखभाल नौकर कर सकेंगे?"

"क्या माताजी ने ऐसा कहा है?"

"हाँ, प्रत्येक कार्य ध्यान देकर करना और सब तरह से ठीक-ठीक करना—

उनकी इच्छा रहती है। कहीं भी कुछ कमी-बेशी नहीं होनी चाहिए। उसमें भी आपके प्रति जब विशेष प्रेम गौरव है तब और अधिक ध्यान देकर देखभाल करनी होगी।"

"ऐसा क्यों? मुझमें ऐसी विशेष बात क्या है?"

"आप तो भावी महाराजा हैं न?"

"उसके लिए यह सब क्यों?"

"हाँ तो।"

"यदि मेरा महाराजा बनना सम्भव नहीं हुआ तो यह सब…"

"ऐसा क्यों सोचते हैं आप?"

"यों ही।"

"मैं आपको बहुत चाहती हूँ।"

"मतलब?"

राजकुमार के इस प्रश्न से पद्मला को ध्यान आया कि उसने एकाएक क्या कह दिया। उसका चेहरा सहज लज्जा से लाल हो आया। दृष्टि जमीन की ओर झुक गयी।

कुमार बल्लाल उत्तर की प्रतीक्षा में उसे देखने लगा।

"अभी आयी," कहती हुई पद्मला वहाँ से भाग गयी।

कुमार बल्लाल ने पुकारा, "पद्मला…पद्म…।" उसे आवाज तो सुनायी दी, मगर लौटी नहीं।

भागते वक्त जो दरवाज़े का परदा हटाया था वह वैसे ही हिलता रहा। बल्लाल ने समझा वह परदे के पीछे खड़ी होकर उँगली से परदा हिला रही होगी। वह पलंग से धीरे से उठा और परदे की ओर गया। उधर परदे का हिलना बन्द हो गया। सावधानी से उसने परदा हटाया। कोई नहीं था। पलंग की ओर लौटा, और पैर पसारकर लेट गया।

घण्टी बजाने के इरादे से बजाने का डण्डा उठाना चाहा। फिर उसका मन बदला। डण्डे को वहीं रख दिया।

'आपको मैं चाहती हूँ'—यह ध्वनि सजीव होकर उसके कानों में झंकृत हो रही थी। एक हृदय की बात ने दूसरे हृदय में प्रविष्ट होकर उसमें स्पन्दन पैदा कर दिया था। इस स्पन्द से वह एक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव कर रहा था। हृदय प्रतिध्वनित हो कह रहा था: 'ठीक, मैं भी तो तुम्हें चाहता हूँ। मुझे भी तुमसे प्यार है।'—होंठ हिले नहीं, जीभ भी गतिहीन थी, गले की ध्वनि-तन्त्रियाँ भी ध्वनित नहीं हुईं, कहीं कोई स्पन्दन नहीं। साँस चल रही थी, उसी निश्वसित हवा पर तैरती हुई बात निकली थी। भाव समाधि से जागे तो मन में एक नयी स्फूर्ति भर आयी। उसने घण्टी बजायी और परदे की तरफ देखने लगा।

परदा हटा। जो आयी वह पद्मला नहीं। उसकी बहन चामलदेवी थी। अनजाने ही बल्लाल के मन में पद्मला छा गयी थी। इस धुन में उसने सोचा न था कि पद्मला के बदले कोई दूसरी आयेगी। किसी दूसरे की वह कल्पना ही नहीं कर सकता था। क्योंकि घण्टी बजने पर खुद उपस्थित होने की बात स्वयं पद्मला ने कही थी न?

"बुलाते रहने पर भी भागी क्यों? मैं भी तो तुम्हें चाहता हूँ।" बल्लाल ने कहा।

चामलदेवी कदम आगे न रखकर वहीं खड़ी रही। वहीं से पूछा, "क्या चाहिए था राजकुमार?"

"तुम्हें ही चा···" बात वहीं रुक गयी। उसने वहाँ खड़ी हुई चामला को एक पल देखा। और फिर "तुम्हारी बहन कहाँ है?" कुछ संकोच से पूछा।

"उसे ही चाहिए क्या? मुझसे न हो पायेगा क्या? कहिए, क्या चाहिए?" चामलदेवी मुसकुराकर बोली। उसके बात करने के ढंग में कोई व्यंग्य नहीं था, सीधी-सादी भावना थी। अपनी बहन को जो काम करना था उसे वह करे तो उसमें तो कोई गलती नहीं—यह उसकी बातों से ध्वनित हो रहा थ ।

"नहीं, कुछ भी नहीं चाहिए···" बल्लाल ने कहा।

साड़ी पहनकर यदि चामला आयी होती तो वह भी पद्मला ही की तरह लगती। उसने लहँगा-कुरती पहन रखी थी। वास्तव में वह पद्मला से दो वर्ष छोटी थी। मझोली होने के कारण कुछ हृष्ट-पुष्ट भी थी। यदि दोनों को एक ही तरह का पहनावा पहना दें तो जुड़वाँ-सी लगतीं। ऐसा रूप-साम्य था। केवल आवाज़ में फ़र्क था। पद्मला की आवाज़ कांस्य के घण्टे की आवाज़ की तरह थी तो चामला की मधुर और कोमल।

'उसे ही चाहिए क्या?'—चामला की इस स्वर-लहरी में जो माधुर्य था वह कुमार बल्लाल के हृदय में स्पन्दित हो रहा था। कहने में कुछ अटपटा होने पर भी वह अपने भाव को छिपाने की कोशिश कर रहा-सा लगता था। फिर भी उसकी दृष्टि चामला पर से नहीं हट पायी थी।

चामला भी कुछ देर ज्यों-की-त्यों खड़ी रही। उसे कुमार बल्लाल के अन्तरंग में क्या सब हो रहा है, समझ में न आने पर भी, इतना तो समझ गयी कि वे कोई बात अपने मन में छिपाये रखना चाहते हैं।

"यदि रहस्य की बात हो तो बहन को ही भेजती हूँ।" कहती हुई जाने को तैयार हुई।

झट बल्लाल कुमार ने कहा, "रहस्य कुछ नहीं। अकेले पड़े-पड़े ऊब गया था; यहाँ कोई साथ रहे, इसलिए घण्टी बजायी।"

जाने के लिए तैयार चामला फिर वैसे ही रुक गयी।

बल्लाल ने प्रतीक्षा की कि वह शायद पास आये। प्रतीक्षा विफल हुई। तब उसने कहा, "पुतली की तरह खड़ी रहना और किसी का न रहना दोनों बराबर है। आओ, यहाँ पास आकर बैठो।" कहकर पलंग पर अपने ही पास जगह दिखायी।

वह उसके पास गयी, पर पलंग पर न बैठकर, पास ही दूसरे आसन पर जा बैठी। बोली, "हाँ, बैठ गयी; अब बताइए क्या करूँ।" उसकी ध्वनि में कुछ नट-खटपन से मिश्रित ढीठपन था।

"तुम्हें गाना आता है?" बल्लाल ने पूछा।

"आता है, परन्तु दीदी की तरह मेरी आवाज भारी नहीं।"

"मधुर लगती है न।"

"मैंने अभी गाया ही नहीं।"

"तुम्हारी बातचीत ही मधुर है। गाना तो और ज्यादा मधुर होगा। हाँ, गाओ न!"

चामला गाने लगी। बल्लाल को वह अच्छा लगा। उसने पूछा, "तुम्हारे गुरु कौन हैं?"

"दण्डनायकजी को यह सब पसन्द नहीं। इसलिए गुरु नहीं।"

"तो फिर तुमने सीखा कैसे?"

"किसी-किसी को गाते सुनकर सीखा है; पता नहीं कितनी गलतियाँ हैं!"

"मुझे क्या मालूम? तुमने गाया। मैंने सुना; अच्छा लगा। एक गाना और गाओगी?"

"हाँ"—चामला ने गाना शुरू किया।

कुमार बल्लाल वैसे ही लेट गया। भोजन गरिष्ठ था। एक, दो, तीन गाने गा चुकी। समय सरकता गया। कुमार बल्लाल को नींद आ गयी। चामव्वा भावी जामाता को देख जाने के इरादे से उधर आयी तो देखा वहाँ चामला है। तब पद्मला कहाँ गयी? यहाँ न रहकर क्यों चली गयी? क्या हुआ? दरवाजे पर लटके परदे की आड़ में से गाने की ध्वनि सुनकर धीरे से परदा हटाकर झाँका और बात समझ गयी। चामव्वा समझ गयी कि राजकुमार सन्तुष्ट है। उसका अभीष्ट भी यही था।

उसके उधर आने की खबर किसी को न हो, इस दृष्टि से चामव्वा चली गयी।

एक गाना समाप्त होने पर दूसरा गाने के लिए कहनेवाले राजकुमार ने तीसरा गाना पूरा होने पर जब कुछ नहीं कहा, तो चामला ने पलंग की ओर देखा। वह इसकी ओर पीठ करके सोया हुआ था। चामला चुपचाप पलंग के चारों ओर चक्कर लगा आयी। उसने देखा कि राजकुमार निद्रामग्न है। वह

भागी और अपनी बड़ी बहन पद्मला को खबर दी।

"ओह, मैं तो भूल ही गयी थी। तुम्हारा गाना सुनते-सुनते वोप्पी सो जाती है। राजकुमार तुम्हारे गाने को सुन खुश हो गये, लगता है।"

"तुम ही उनसे पूछकर देख लो।"

"न न, मैं तो उनसे कुछ नहीं पूछूँगी।"

"क्यों ?"

"यह सब तुम्हें क्यों ? जाओ।"

"तुम न कहो तो क्या मुझे मालूम नहीं होगा ? संकोच और लज्जा है न ? क्योंकि आगे पति होनेवाले हैं ? इसलिए न ?"

"है, नहीं, देखो। फिर···"

"क्या करोगी ? महारानी हो जाने पर क्या हमें सूली पर चढ़वा दोगी ?"

"अभी क्यों कहूँ !"

"देखा न ! मुंह से बात कैसे निकली, महारानी बनेगी।" कहती हुई खुशी से ताली बजाती हुई भाग गयी।

"ठहर, मैं बताती हूँ तुझे···।" कहती हुई पद्मला ने उसका पीछा किया। अपनी माँ को उधर आयी हुई देखकर दोनों जहाँ थीं वहीं सिर झुकाकर खड़ी हो गयीं। इतने में माँ ने दोनों बहनों की करतूत देखकर कहा, "बहुत अच्छा है; दोनों बिल्ली की तरह क्यों झगड़ रही हो ?"

माँ को कोई उत्तर देने का प्रयत्न दोनों ने नहीं किया। दोनों आपसी बात को आगे बढ़ाना उचित न समझकर वहाँ से भाग निकलीं।

चामव्वा ने सुख निद्रा से मग्न बल्लाल कुमार को फिर से एक बार देखा, और तृप्ति का भाव लिये अन्दर चली गयी।

उधर बिट्टिदेव रेविमय्या के पीछे पड़ा ही था। उसने जो बात घूमते समय के समय नहीं कही उसे अब कहे—रेविमय्या इस असमंजस में पड़ा था, तो भी वह चाहता था कि राजकुमार बिट्टिदेव को निराश न करें। इससे भी बढ़कर उनके मन में किसी तरह का कड़ुआपन पैदा न हो—इस बात का ध्यान रखकर रेविमय्या किसी के नाम जिक्र न करके बोला, "दोरसमुद्र में जो बातें हुई थीं—सुनते हैं, किसी के स्वार्थ के कारण, तात्कालिक रूप से ही सही, युवराज का पट्टाभिषेक न हो—इस आशय को लेकर कुछ बातें हुई हैं। इससे युवराज कुछ परेशान हो

गये हैं।" रेविमय्या ने बताया।

"मतलब यह कि युवराज शीघ्र महाराजा न बनें? यही न?" बिट्टिदेव ने कहा।

"न, न, ऐसा कहीं हो सकता है, अप्पाजी?" रेविमय्या ने कहा।

"ऐसा हो तो यह परेशानी ही क्या है?"

"नमक खाकर नमकहरामी करनेवालों के बरताव के कारण यह परेशानी है। सचमुच अब युवराज पर महाराजा का प्रेम और विश्वास दुगुना हो गया है।"

"ठीक ही तो है। परन्तु इससे बाकी लोगों को क्या लाभ? यदि सिंहासन पर अधिकार जमाने की ताक में कहीं और से उसको मदद मिल रही हो तो चिन्ता की बात थी। पर ऐसा तो कुछ है नहीं।"

"मेरे लिये भी वही हल न होनेवाली समस्या बनी हुई है। युवराज या युवरानी ने—किसी ने इस बारे में कुछ कहा भी नहीं। ये सारी बातें तो मैंने दूसरों से जानी हैं।"

"फिर तो मैं माँ से ही पूछ लूंगा।"

"नहीं, अप्पाजी, कुछ पूछने की आवश्यकता नहीं। समय आने पर सारी बातें अपने आप सामने आ जायेंगी।"

"कैसा भी स्वार्थ क्यों न हो, इस तरह का बरताव अच्छा नहीं, रेविमय्या। युवराज को और जरा स्पष्ट कहना चाहिए था।"

"युवराज का स्वभाव तो खरा सोना है। किसी को किसी तरह का दर्द न हो, इसलिए सबका दुःख-दर्द खुद झेल लेते हैं।"

"सो तो ठीक। अब भैया क्यों नहीं आये? वहीं दोरसमुद्र में क्यों ठहरे हुए हैं?"

"सुनते हैं, महाराजा ने खुद ही उन्हें अपने पास रख लिया है। खासकर मरियाने दण्डनायक ने इस बात पर विशेष जोर दिया था। वे सेना और उसके संचालन आदि के बारे में अप्पाजी को शिक्षित करना चाहते हैं। युवराज जब महाराजा बनेंगे तब तक अप्पाजी को महादण्डनायक बन सकने की योग्यता प्राप्त हो जानी चाहिए—ऐसा उनका विचार है। यह सब सीखने के लिए यही उपयुक्त उम्र है।"

"प्रारम्भ से ही भैया का स्वास्थ्य अच्छा नहीं। बार-बार बिगड़ता रहता है। इस शिक्षण में कहीं थक जाय और कुछ-का-कुछ हो जाय तो? भैया का स्वभाव भी तो बहुत नाजुक है। क्या दण्डनायक को यह बात मालूम नहीं?"

"सो तो ठीक है। अब तो अप्पाजी को वहाँ ठहरा लिया!"

"माँ ने कैसे इसके लिए स्वीकृति दे दी?"

"वास्तव में युवराज और युवरानी की इच्छा नहीं थी। खुद अप्पाजी ही ठहरने के लिए उत्साही थे—ऐसा सुनने में आया है। महाराजा का कहना था, तुरन्त खुशी से माँ पर जोर डालकर ठहरने की स्वीकृति अप्पाजी ने ले ली—यह भी सुनने में आया।"

"ऐसा है? आखिर भैया को वहाँ ठहरने में कौन-सा विशेष आकर्षण है?"

"मैं कैसे और क्या कहूँ, अप्पाजी? जो भी हो, महाराज की सलाह को इनकार न करते हुए उन्हें वहाँ छोड़ आये हैं।"

"तो हमारे लिए युवराज ने ऐसी आज्ञा क्यों दी कि लौटते समय दोरसमुद्र न जाकर सीधे यहीं आवें?"

"वह तो युवरानी की इच्छा थी।"

"यह सब पहेली-सी लग रही है, रेविमय्या। मैं माँ से अवश्य पूछूँगा कि यह सब क्या है।"

"अप्पाजी, अभी कुछ दिन तक आप कुछ भी न पूछें। बाद में सब अपने-आप सामने आ जायेगा। आप पूछेंगे तो वह मेरे सिर पर बन आयेगी। इसलिए अभी जितना जान सके उतने से संतुष्ट रहना ही अच्छा है। मैं यह समझूँ कि अब आगे इस बारे में आप बात नहीं छेड़ेंगे?"

"ठीक है। यदि कभी ऐसी बात पूछ भी लूँ तो तुम्हारा नाम नहीं लूँगा।"

"कुछ भी हो, अब न पूछना ही अच्छा। फिर आप जैसा सोचते हों!"

"ठीक है, जैसी तुम्हारी इच्छा।"

रेविमय्या की बात पर बिट्टिदेव ने सम्मति दे दी। परन्तु उसके मन में अनेक विचार उठते रहे। उस ऊहापोह में वह किसी एक का भी समाधान करने में अपने को असमर्थ पा रहा था। यदि युवराज महाराजा बनें तो उससे किसी को क्यों तक़लीफ होगी? भैया के वहाँ रह जाने की इच्छा युवराज और युवरानी—दोनों की नहीं थी। इसका परिणाम क्या होगा? जानते हुए भी भैया वहाँ ठहरने के लिए उत्साही क्यों हुए? माता से यों जबरदस्ती अनुमति लेने की कोशिश भैया ने क्यों की? मुझे दोरसमुद्र होकर लौटने की मनाही क्यों हुई? मेरी शिवगंगा जाने की बात दोरसमुद्रवालों को क्यों मालूम नहीं होनी चाहिए?—आदि-आदि इन सारे सवालों का उठना तो सहज ही है। इन सब बातों की उलट-पुलट उसके मन में होती रही। इनमें से किसी एक प्रश्न का भी समाधान उसे नहीं मिल रहा था। समाधान न मिलने पर भी इन सवालों के बारे में सोचे बिना रहना भी तो नहीं हो सकता था। छोटी-छोटी बातों पर भी गम्भीर रूप से सोचना उसका जैसे स्वभाव बन गया था। कुछ तो पता लगना चाहिए। यह कहना उचित न होगा कि उसे कुछ सूझा ही नहीं। माँ की इच्छा के विरुद्ध कुछ हुआ जरूर है। भैया के वहाँ ठहरने, एवं हेगड़े परिवार के साथ इसके शिवगंगा जाने और इस बात को गोप्य रखने—

इन बातों में अवश्य कोई कार्य-कारण सम्बन्ध होना चाहिए। इतना ही नहीं, युवराज के पट्टाभिषेक समारम्भ को स्थगित करने के साथ भी इन बातों का सम्बन्ध हो सकता है। अनेक तरह की बातें सूझ तो रही थीं, परन्तु इस सूझ मात्र से वस्तुस्थिति को समझने में कोई विशेष मदद नहीं मिल पायी। काफी देर तक दोनों मौन बैठे रहे।

खामोशी को तोड़ते हुए बिट्टिदेव ही बोला, "रेविमय्या!"

"क्या है अप्पाजी?"

"माँ ने मेरे हेग्गड़े परिवार के साथ शिवगंगा जाने की बात को गुप्त रखने के लिए तुमसे क्यों कहा?"

रेविमय्या अपलक देखता रहा, बिट्टिदेव की ओर।

"लगता है इसका कारण तुम्हें मालूम नहीं, या तुम बताना नहीं चाहते?"

"अप्पाजी, मैं केवल एक नौकर मात्र हूँ। जो आज्ञा होती है उसका निष्ठा से पालन करना मात्र मेरा कर्तव्य है।"

"तुम्हारी निष्ठा से हम परिचित हैं। तो तुम्हें कारण मालूम नहीं है न?"

"जी नहीं।"

"मालूम होता तो अच्छा होता।"

"हाँ, अप्पाजी। पर अभी मालूम नहीं है।"

"क्या मालूम नहीं है रेविमय्या?" अचानक आयी एचलदेवी पूछ बैठी।

रेविमय्या झट से उठ खड़ा हुआ।

बिट्टिदेव भी उठा। माँ से बोला, "आओ माँ, बैठो।" कहते हुए आसन दिखाया। युवरानी बैठ गयी। बिट्टिदेव भी बैठ गया। क्षण भर वहाँ खामोशी छायी रही।

युवरानी एचलदेवी ने मौन तोड़ते हुए कहना शुरू किया, "आप लोगों के सम्भाषण में बाधा पड़ गयी, छोटे अप्पाजी? क्यों, दोनों मौन क्यों हो गये?"

बिट्टिदेव ने एक बार रेविमय्या को देखा, फिर माँ की ओर मुख करके बोला, "कोई बाधा नहीं। सचमुच आप ठीक समय पर आयीं।"

"कैसा ठीक समय?"

"मैं रेविमय्या से पूछ रहा था—मेरे शिवगंगा जाने की बात दोरसमुद्र में किसी को विदित न हो, यह गुप्त रखने के लिए आपने कहला भेजा था। मैंने उससे इसका कारण जानना चाहा तो वह कह रहा था कि मैं तो नौकर मात्र हूँ। मुझे जो आदेश होता है उसका निष्ठा के साथ पालन करना मात्र मेरा कर्तव्य है। इतने में..."

"मैं आ गयी। इसीलिए यह ठीक समय हुआ, है न?"

"जी हाँ। इसका मतलब क्या है, माँ?"

"अप्पाजी, हम सब पहले मानव हैं। फिर उस मानवत्व के साथ 'पद' भी लग गया। पद की परम्परा रूढ़िगत होकर हमसे चिपक गयी है। मानव होने की हमारी आशा सफल हुई; पर उसके बाद यह पदवी जो लगी उससे अड़चन पैदा होने पर कुछ बातें सब लोगों को मालूम न होना ही अच्छा रहता है। यहाँ भी कुछ ऐसी ही बात थी, इसलिए ऐसा कहला भेजा था।"

"मतलब यह कि कुछ लोगों को यह बात मालूम हो गयी तो आपकी किसी सहज आशा में अड़चन पैदा हो सकती है—ऐसी शंका आपके मन में आयी होगी। यही न?"

"एक तरह से तुम्हारा कहना भी ठीक है।"

"युवरानी होकर भी कुछ लोगों के कारण आपको ऐसा डर?"

"अप्पाजी, अभी तुम छोटे हो। सफ़ेद पानी को भी दूध मान लेना तुम्हारे लिये सहज है। मैं युवरानी हूँ, सच है। परन्तु मानव-सहज कुछ मेरी भी अपेक्षाएँ हो सकती हैं। हाल की घटनाओं पर ध्यान देने से लगता है कि हमें भी सावधान रहना होगा। वृद्ध महाराज की अभिलाषाएँ उनकी इच्छा के अनुसार फलीभूत हो सकने में भी आशंका हो तो हमारी आकांक्षाओं का क्या हाल होगा?"

"तो महाराज की कोई आशा पूरी नहीं हुई?"

युवरानी चुप रही। कुछ सोचने लगी। रेविमय्या भी सोचने लगा, आखिर बात यहाँ तक आ पहुँची!

"यदि न कहने की बात है तो मैं आग्रह नहीं करूँगा, माँ। कल जब मैं बड़ा हो जाऊँगा तब यदि राजा नहीं होऊँ तब भी अनेक जिम्मेदारियाँ मुझपर पड़ सकती हैं। ऐसी स्थिति में मुझे कैसे बरतना होगा—इसके लिए मुझे शिक्षा देकर उस योग्य बनाना चाहिए। ऐसी विरोधी शक्ति संगठित हो रही है इस राज्य में जो महाराज को भी झुका दे, आपकी बातों से ऐसा ही मालूम पड़ता है।"

"नहीं अप्पाजी, ऐसी कोई विरोधी शक्ति संगठित नहीं हुई है।"

"तो फिर?"

"मानव का मन आम तौर पर दुर्बल है। नियम और संयम से उसे अपने अधीन रखना होता है। परन्तु जब स्वार्थ प्रबल हो आता है तब वही सबकुछ बनकर अन्य विषयों की ओर से अन्धा हो जाता है। बहुमत के सहयोग और निष्ठा से ही राजाओं के अस्तित्व का मूल्य होता है।"

"तो क्या राजा को ऐसे लोगों के स्वार्थ के वशीभूत होना चाहिए? क्या इसका प्रतिकार नहीं किया जा सकता?"

"सब कुछ मानवीय पहलू से देखना होता है, अप्पाजी। स्वार्थ भी मानव का एक सहज गुण है। एक हद तक वह क्षम्य होता है। पर यदि वही स्वार्थ राष्ट्रहित में बाधक बने तो उसे खतम ही करना होगा।"

"राष्ट्रसेवक स्वार्थवश यदि कभी ऐसा बने तो राजा को भी झुकना होगा?"

"झुकने के माने यही नहीं, उसे क्षमा का एक दूसरा रूप माना जा सकता है।"

"माँ, क्षमा यदि अति उदार हो जाय तो दण्डनीय गलतियाँ भी उस उदारता में अनदेखी हो जाती है। न्याय के पक्षपाती राजाओं को इस विषय में बहुत जागरूक रहना चाहिए। उदार हृदय राजाओं के लिए एक बहुत ही श्रेष्ठ गुण है। फिर भी उसका दुरुपयोग न हो, ऐसी बुद्धिमत्ता तो होनी ही चाहिए—गुरुवर्य ने मुझसे यह बताया है।"

"औदार्य, दया, क्षमा—ये तीनों राजाओं के श्रेष्ठ गुण हैं, अप्पाजी। जैसा तुमने कहा, इनका दुरुपयोग नहीं होने देना चाहिए। इस विषय में सतर्क रहना आवश्यक होता है। अतएव···" युवरानी कहते-कहते रुक गयी। और फिर जाने को उद्यत हो गयी।

"क्यों माँ, बात अधूरी ही छोड़ दी?" कहते हुए बिट्टिदेव भी उठ खड़ा हुआ।

"घण्टी की आवाज नहीं सुनी, अप्पाजी? प्रभुजी पधार रहे हैं।"

रेशम का परदा हटा। युवराज एरेयंग प्रभु अन्दर आये। रेविमय्या बाहर चला गया। युवराज के बैठ जाने पर युवरानी और बिट्टिदेव दोनों बैठ गये।

"क्यों अप्पाजी, आज गुरुजी नहीं आये?" युवराजा ने पूछा।

बिट्टिदेव उठ खड़ा हुआ। "नहीं, आज अध्ययन का दिन नहीं है।" फिर माँ की तरफ़ मुड़कर कहने लगा, "माँ, यह घुड़सवारी का समय है, जाऊँगा।" कह-कर वहाँ से निकल गया।

अन्दर युवराजा और युवरानी दो ही रहे। कुछ देर तक मौन छाया रहा। फिर युवराज एरेयंग ने ही बात छेड़ी, "चालुक्यराज त्रिभुवनमल्ल विक्रमादित्य की ओर से एक बहुत ही गुप्त पत्र आया है। क्या करना चाहिए—इस सम्बन्ध में मन्त्री और दण्डनायक से सलाह करने के पहले अन्तःपुर का मत जानने के लिए यहाँ आया हूँ।"

"हम स्त्रियाँ भला क्या समझें? जैसा आप पुरुष लोग कहते हैं, हम तो बस स्त्री ही हैं।"

"स्त्री, स्त्री होकर रह सकती है। और चाहे तो मर्दाना स्त्री भी हो सकती है, पौरुष की प्रतीक। मृदु-स्वभाव का कवियों ने जैसा वर्णन किया है, वह सब अपने पर क्यों आरोपित किया जाये? उस वर्णित मार्दव को दीनभाव से क्यों देखा-समझा जाये? हमारे इस भव्य राष्ट्र की परम्परा में स्त्री के लिए परमोच्च स्थान है। वाक्-शक्ति ने सरस्वती का रूप धारण किया है। अर्थ-शक्ति ने लक्ष्मी का रूप

धारण किया है। बाहुबल ने स्वयं-शक्ति का रूप धारण किया। जीवन के लिए आधारभूत शक्ति ने अन्नपूर्णा का रूप धारण किया। पुरुष और प्रकृति के बारे में कल्पना की आँख ने जो भी देखा वह सब भी भव्य-स्त्री के रूप में निरूपित किया गया। वास्तव में स्त्री-रूप कल्पना की यह विविधता ही इस राष्ट्र की परम्परा की भव्यता का प्रमाण है।"

"हाँ हाँ, यों प्रशंसा करके ही स्त्रियों को वश में कर पुरुष हम अबलाओं को जाल में फँसा लेते हैं। और फिर 'अबला-रक्षक' पद से अलंकृत हो विराजते हैं। इस सबके मूल में पुरुष का स्वार्थ है। इसमें स्त्री होकर कोई भव्यता नहीं देखती हूँ।"

"देखने की दृष्टि मन्द पड़ गयी है।"

"न, न आचरण की रीति बदल गयी है। वह परम्परागत भव्य कल्पना अब केवल कठपुतली का खेल बन गयी है।"

"इधर-उधर की बातें समाप्त करके, अभी जिस विषय को लेकर विचार-विनिमय करने आया उसे बताऊँ या नहीं?"

"ना कहने का अधिकार ही कहाँ है मुझे?"

"फिर वही व्यंग्य!"

"व्यंग्य नहीं; हम, याने स्त्रियाँ अपने आपको सम्पूर्ण रूप से समर्पण कर देती हैं। हमारे पास अपना कुछ भी नहीं रह जाता। ऐसी दशा में हमारे हाथ में कोई अधिकार ही नहीं रह जाता। अच्छा, कहिए क्या आज्ञा है?"

"मालव के राजा का विक्रमादित्य से वैर पहले से ही है। चालुक्य और परमारों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी से यह शत्रुता चली आती रही है। पहले परमार राजा मुंज को हराकर चालुक्य तैलप चक्रवर्ती ने परमारों की सारी विरुदावली को छीन लिया था। अब धारानगरी पर हमला करना है। यदि हम साथ न दें तो उनका दायाँ हाथ ही कट जायेगा। चक्रवर्ती ने यह बात स्पष्ट कहला भेजी है। अब क्या करना चाहिए?"

"विश्वास रखकर सहायता चाहनेवालों के तो आप सदा आश्रयदाता रहे हैं; इस बारे में सोचने-विचारने जैसी कोई बात ही नहीं है।"

"वाह! आपने अपने घराने के अनुरूप बात कही।"

"किस घराने के?"

"हेम्माडी अरस के गंगवंशी घराने के, जिसमें तुमने जन्म लिया और वीरगंग पोय्सल घराने के जिसमें तुम पहुँची। इतनी आसानी से स्वीकृति मिल जायेगी—इसकी मुझे कल्पना भी नहीं थी।"

"क्यों? आप जैसे वीरश्रेष्ठ का पाणिग्रहण करनेवाली मुझको आपने कायर कैसे समझ लिया?"

"ऐसा नहीं, राजमहल में एक शुभकार्य सम्पन्न हुए अभी एक महीना भी पूरा नहीं हुआ है। अभी युद्ध के लिए जाने की बात पर शायद कोई स्वीकृति नहीं दे सकेगा—ऐसा लग रहा था मुझे।"

"वर्तमान प्रसंग में यह सचमुच अच्छा है। दोरसमुद्र में जो नाटक हुआ, यहाँ बैठे-बैठे उसे बार-बार स्मरण करते हुए मन को कड़आ बनाकर परेशान होने के बदले, सबको भूल-भालकर जयमाला पहनने को सिर आगे बढ़ाना अच्छा ही है न? इसमें कीर्ति तो मिलती ही है, मन को शान्ति भी प्राप्त होती है। और भरोसा रखनेवालों को मदद देने के कर्तव्य-निर्वहण का आत्म-संतोष भी। ये सब एक साथ प्राप्त नहीं होंगे क्या?"

"हमें तो ये सब प्राप्त होंगे ही। परन्तु यहाँ एकाकी रहकर ऊब उठेंगी तो?"

"इस विषय में प्रभु को चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। हमारे छोटे अप्पाजी ऐसा मौका ही नहीं देंगे।"

"अब तो वही हमारा सहारा है। अप्पाजी अभी दोरसमुद्र में ठहर गये हैं; वहाँ उनका मन कब किस तरह परिवर्तित हो जाये या कर दिया जाये, कहा नहीं जा सकता।"

"यह तो सही है। अप्पाजी को वहाँ ठहराने की बात पर आप राजी ही क्यों हुए?"

"जिस उद्देश्य से हमने सिंहासन को नकार दिया, उसी तरह से इसे भी हमने स्वीकार किया। दूसरा चारा भी न था। महाराज की अब उम्र भी बहुत हो गयी है, काफ़ी वृद्ध हो गये हैं। वास्तव में वे नचानेवालों के हाथ की कठपुतली बन गये हैं।"

"कल राज्य ही दूसरों के हाथ में हो जाये तो?..."

"वह सम्भव नहीं। पिछले दिनों जिस-जिसने उस नाटक में भाग लिया है, उनका लक्ष्य राजद्रोह नहीं था—इतना तो निश्चित है।"

"यदि यह बात निश्चित है, तो इस नाटक का उद्देश्य क्या है—आपको मालूम रहना चाहिए न?"

"उसका कुछ-कुछ आभास तो हुआ है।"

"यदि अपनी इस अर्धांगिनी को बता सकते है तो बताइये न?"

"हमारी अर्धांगिनी हमसे भी ज्यादा निपुण है। हमारा अनुमान था कि आपने पहले से ही इस बारे में कुछ अन्दाज लगा लिया होगा।"

"प्रशंसा नहीं, अब वस्तुस्थिति की जानकारी चाहिए।"

"चामव्वे की इच्छा है कि वह युवरानी की समधिन बने। इस इच्छा की पूर्ति के लिए यह सारा नाटक रचा जा रहा है।"

एचलदेवी हँस पड़ी।

"हँसती क्यों हो ?"

"बात कुछ अटपटी लगी। कहावत है, 'अफारा गाय को, दाग दिया बैल को।' इसलिए हँसी आ गयी।"

"राजनीति तो ऐसी ही होती है।"

"होती होगी ! फिर भी मुझे, इसका सिर-पैर क्या है—सो तो मालूम नहीं पड़ा।"

"ठीक ही तो है। दिये तले अँधेरा। अपने ही पाँव तले जो होता रहा, वह दिखायी नहीं दिया।"

"क्या सब हुआ ?"

"एक साधारण हेगड़ती को जितना गौरव मिलना चाहिए उससे कहीं सौ गुना अधिक गौरव पा जाने से, राजघराने से मिल सकनेवाले समस्त गौरव को मात्र अपने ही लिए माननेवालों के मन में असहिष्णुता और सन्देह के लिए युवरानी ने मौका ही क्यों दिया ?"

"किसी को कुछ विशेष गौरव दिया तो दूसरों के मन में असहिष्णुता और सन्देह क्यों ?"

"हमसे पूछने से क्या लाभ ? प्रधानमन्त्रीजी की बहन आपकी समधिन बनना चाहती है; आपकी ओर से कोई प्रोत्साहन नहीं मिला, सुनते हैं।"

"तो क्या चामव्वा की राय में हमें जैसी बहू चाहिए वैसी चुनने की स्वतन्त्रता भी नहीं और हमारे बेटे को अपनी जीवनसंगिनी बनने योग्य कन्या को चुनने की आज़ादी भी नहीं ! ऐसी है उसकी भावना ? मेरी स्वीकृति से ही तो वह समधिन बन सकेगी ?"

"उसने तुम्हारे स्वातन्त्र्य के बारे में सवाल नहीं उठाया। बल्कि ख़ुद को निराश होना पड़ा, उसकी यह प्रतिक्रिया है। अपने प्रभाव और शक्ति को प्रकारान्तर से दिखाकर हममें भय उत्पन्न करने की सूत्रधारिणी बनी है, वह दण्डनायकिनी !"

"तो क्या हमें डरकर उसकी इच्छा के आगे समर्पित होना होगा ?"

"आप झुकें या न झुकें, वह तो अपना काम आगे बढ़ायेगी ही।"

"यदि हम यह कह दें कि हम यह रिश्ता नहीं चाहते, तब क्या कर सकेगी ?"

"इतनी आसानी से ऐसा कह नहीं सकते। इस सवाल पर अनेक पहलुओं से विचार करना होगा। माता-पिता होने पर भी सबसे पहले हमें कुमार की राय जाननी होगी।"

"तब तो काम बिगड़ गया समझो ! आप अब कृपा करके तुरन्त अप्पाजी को

दोरसमुद्र से वापस बुला लें।"

"तो क्या यह रिश्ता आपको पसन्द नहीं ?"

"अब तक मेरे मन में ऐसी भावना नहीं थी। परन्तु अब इस कुतन्त्र की बात सुनकर लगता है, यह रिश्ता नहीं चाहिए। घर-फोड़ स्वभाववाले लोगों की रिश्तेदारी घराने की सुख-शान्ति के लिए घातक होगी। यह अच्छा नहीं।"

"इतनी दूर तक सोचने की जरूरत नहीं। यद्यपि किसी हद तक यहाँ स्वार्थ है, तो भी जैसा तुम समझती हो वैसे घर-फोड़ स्वभाववाले हैं—ऐसा मुझे नहीं लगता।"

"आप कुछ भी कहें, मैं इससे सहमत नहीं हो सकती। उनके स्वार्थ को मैं समझ सकती हूँ। परन्तु स्वार्थ के कारण उत्पन्न होनेवाली असूया बड़ी घातक है। निःस्वार्थ और सरल स्वभाव की उस हेग्गड़ती और उसकी मासूम बेटी से इस चामव्वा को डाह क्यों ?"

"उसके दिल में ईर्ष्या पैदा हो—ऐसा सन्निवेश ही तुमने पैदा क्यों किया? लोग आँखें तरेरकर देखें—ऐसा काम ही क्यों किया ?"

"मैंने कौन-सा गलत काम किया ?"

"हम यह तो नहीं कह सकते कि गलत काम किया। लेकिन जो किया सो सबको ठीक लगेगा—ऐसा नहीं कहा जा सकता। राजघराने के परम्परागत सम्प्रदाय में आदर और गौरव स्थान-मान के अनुसार चलता है। निम्न वर्गवालों को उच्च वर्ग के साथ बिठावें तो उच्च वर्गवाले सह सकेंगे ?"

"तो क्या दण्डनायक अपनी पूर्वस्थिति को भूल गये हैं ?"

"वे भूल गये हैं या नहीं, मालूम नहीं। परन्तु महाराजा अब भी स्मरण रखते है।"

"सो कैसे मालूम ?"

उन लोगों से पहले बिट्टिदेव और शान्तला जब दोरसमुद्र में पहुँचे, उसके बाद वहाँ राजमहल में, मरियाने दण्डनायक की जो बातचीत महाराजा से हुई, और उसका सारांश जितना कुछ रेविमय्या से मालूम हुआ था, वह पूरा युवराज एरेयंग प्रभु ने अपनी पत्नी को कह सुनाया।

"हमारे महाराजा तो खरा सोना हैं। उनका नाम ही अन्वर्थ है। अर्हन! अब निश्चिन्त हुई। तब तो मेरे मन की अभिलाषा पूरी हो सकेगी।" युवरानी ने जैसे स्वयं से कहा। उसके कथन का प्रत्येक शब्द भावपूर्ण था जो एरेयंग प्रभु के हृदयस्थल में पैठ गया।

अभिलाषा ऐसी नहीं थी जो समझ में न आ सके। अभिलाषा का सफल होना असम्भव भी नहीं लगता था। परन्तु उनकी दृष्टि में अभी वह सफल होने का समय नहीं आया था।

युवराज ने कहा।

"तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी परन्तु उसे अभी प्रकट नहीं करना।"

"महाराजा का आशीर्वाद मिलेगा। युवराज की भी सम्मति है। इसी एक विश्वास से अपेक्षित को पाने में चाहे समय जितना भी लगे, मैं निश्चिन्त रह सकूँगी।"

"तो कल प्रस्थान करने में कोई अड़चन न होगी न!"

"नहीं, मुझसे इसके लिए कभी अड़चन न होगी। परन्तु इस युद्ध का कारण क्या है कुछ मालूम हुआ? यदि कह सकते हों तो कहें।"

"विक्रमादित्य ने अपना 'शक' जो आरम्भ किया वह परमारों के लिए द्रोह का कारण बना है।"

"विक्रमी शक का आरम्भ हुए अब तक सोलह साल पूरे हो गये। सत्रहवाँ शुरू हुआ है। इतने साल बीतने पर भी अभी वह द्रोह की आग बुझी नहीं?"

"द्रोह अब सोलह वर्ष का युवा है। यौवन में गर्मी चढ़ती है। इसके साथ यह भी कि सिलहार राजपुत्री चंदलदेवी ने विक्रमादित्य चक्रवर्ती के गले में स्वयंवर-माला पहना दी। इस घटना ने अनेक राजाओं में द्रोह पैदा कर दिया है। उस समय परमार भोजराज का भी जलन रही आयी। वे स्वयंवर में भी हारे। उस अनिन्द्य सुन्दरी ने इन राजाओं के समक्ष इनके परम शत्रु के गले में माला पहनायी तो उनके दिलों में कैसा क्या हुआ होगा? परमार की इस विद्वेषाग्नि को भड़काने में कश्मीर के राजा हर्ष ने जो स्वयं इस सुन्दरी को पाने में असफल रहा, उसने भी शायद मदद दी हो। इन सबके कारण भयंकर युद्ध होना सम्भव है।"

"स्वयंवर-विधि तो इसलिए बनी है जिससे कन्या को उसकी इच्छा और भावनाओं को उचित गौरव के साथ उपयुक्त स्थान प्राप्त हो। तो यह स्वयंवर विधान क्या सिर्फ़ नाटक है?"

"किसने ऐसा कहा?"

"हमारे इन राजाओं के बरताव ने। स्वयंवर के कारण एक राज्य दूसरे राज्य से लड़ने को उद्यत हो जाय तो इसका मतलब यह तो नहीं कि स्वयंवर पद्धति को ही व्यर्थ कहने लगें।"

"पद्धति की रीति, उसके आचरण का चाहे जो भी परिणाम हो; स्त्री, धन और ज़मीन—इसके लिए लड़ाइयाँ हमेशा से होती रही हैं। होती ही रहेंगी। खुद सिरजनहार भी इसे नहीं रोक सके। सीता के कारण रामायण, द्रौपदी की वजह से महाभारत के युद्ध हुए। यों स्त्री के लिए लड़कर मर मिटना मानव समाज के लिए कलंक है। ये घटनाएँ जोर देकर इस बात की साक्षी दे रही हैं। जानते हुए भी हम बार-बार वही करते हैं। यह छूटता ही नहीं। हमारे लिए अब यही एक संतोष की बात है कि आत्म-समर्पण करनेवाली एक स्त्री की स्वतन्त्रता

की रक्षा करने जा रहे हैं।"

"ऐसी हालत में खुद स्त्री होकर नाहीं कैसे कर सकती हूँ। फिर भी एक स्त्री को लेकर इन पुरुषों में जो झगड़े होते हैं वे खतम होने ही चाहिएँ।···हाँ, तो कल प्रस्थान किस वक्त होगा ?"

"यह अभी निश्चित नहीं किया है। गुरुवर्य गोपनन्दी जो समय निश्चित करेंगे, उसी समय रवाना होंगे। यहाँ के रक्षा कार्य में चिण्णम दण्डनाथ रहेंगे। महामात्य मानवेगड़े कुन्दमराय, हमारे साथ चलेंगे।"

"इस बात को महाराजा के समक्ष निवेदन कर उनकी सम्मति ले ली गयी है ?"

"नहीं, अब इसके लिए समय ही कहाँ है ! विस्तार के साथ सारी बात लिखकर पत्र द्वारा उनसे विनती कर लेंगे।"

"उनकी सम्मति मिलने के बाद ही प्रस्थान करते तो अच्छा होता। प्रस्थान के पहले बड़ों का आशीर्वाद भी तो लेना उचित होता है।"

"मतलब यह कि हम खुद जावें, महाराजा को सारी बात समझावें और उनसे स्वीकृति लें एवं आशीर्वाद पावें; इसके बाद यहाँ लौटकर आ जायें—तभी यहाँ हमारी वीरोचित विदाई होगी, अन्यथा नहीं; यही न ? ठीक है, वही करेंगे। शायद इसीलिए कहा है—स्त्री, कार्येषु मन्त्री।" यह कहकर उन्होंने घण्टी बजायी।

रेविमय्या अन्दर आया।

"रेविमय्या, शीघ्र ही हमारी यात्रा के लिए एक अच्छा घोड़ा तैयार किया जाय। साथ में···न···न···कोई भी नहीं चाहिए। चलो, जाओ।"

रेविमय्या वहाँ से चला गया।

"साथ एक रक्षकदल नहीं चाहिए ?"

"हमें वेष बदलकर ही आना होगा। इसलिए रेविमय्या को साथ लेता जाऊँगा। वह भी वेष बदलकर ही साथ आयेगा।"

दोरसमुद्र पहुँचकर वहाँ महाराजा विनयादित्य के सामने सबकुछ निवेदन कर उनकी स्वीकृति और आशीर्वाद के साथ युवराज एरेयंग प्रभु ने गुरु गोपनन्दी द्वारा निश्चित मुहूर्त पर प्रस्थान किया।

दोरसमुद्र के लिए रवाना होने के पहले ही विश्वासपात्र गुप्तचरों द्वारा

आवश्यक सूचना धारानगरी भेज दी गयी थी। दो प्रमुख गुप्तचरों को पत्र देकर वलिपुर और कल्याण भी भेज दिया था।

वलिपुर के हेग्गड़े मारसिंगय्या ने वनवासी प्रान्त के ख्यात युद्धवीरों का एक जत्था प्रातःकाल के पूर्व ही तैयार कर रखा था। इस सैन्य-समूह की निगरानी के लिए अपने साले हेग्गड़े सिंगिमय्या को नियुक्त कर रखा था।

युवराज एरेयंग प्रभु की सेना ने वलिपुर में एक दिन विश्राम करके हेग्गड़े का आतिथ्य पाकर उन योद्धाओं को भी साथ लेकर, जिन्हें हेग्गड़े ने तैयार रखा था, आगे कूच किया। वास्तव में युवराज से हेग्गड़े का अब तक सम्पर्क ही न हो सका था। इस अवसर पर पहली बार उनका भेंट-परिचय हुआ। युवराज को इसी अवसर पर यह भी मालूम हुआ कि हेग्गड़ती माचिकब्बे कुन्तल देश के ख्याति-प्राप्त नागवर्मा दण्डनाथ की पौत्री एवं बहुत उदार दानी, धर्मशील बलदेव दण्डनायक की पुत्री हैं। वलिपुर में युवराज खुद आये-गये, पर यह बात तब मालूम नहीं हुई थी।

इस सम्मिलित सेना के साथ एरेयंग प्रभु आगे बढ़े। गुप्तचरों की कार्यदक्षता के फलस्वरूप नेरँगल के निवासी मंगलवेड़े के महामण्डलेश्वर जोगिमरस की पुत्री विक्रमादित्य की रानी सावलदेवी के द्वारा संगठित एक हज़ार से भी अधिक योद्धाओं का एक जत्था भी इस सेना में आ मिला। फिर छोटे केरेयूर में बसी विक्रमादित्य की एक दूसरी रानी मलयामती ने अपनी सेना की टुकड़ी को भी इसके साथ जोड़ दिया। वहाँ से आगे विक्रमादित्य के समधी करहाट के राजा मारसिंह, चालुक्य महारानी चंदलदेवी के पिता ने एक भारी सेना को ही साथ कर दिया। यों एरेयंग प्रभु के नेतृत्व में ज़मीन को ही कँपा देनेवाली एक भारी फौज दक्षिण दिशा से पूर्व-नियोजित स्थान की ओर बढ़ चली। उधर विक्रमादित्य की सेना के साथ कदम्बराज तिक्कम की पुत्री, विक्रमादित्य की रानी जक्कलदेवी ने, इंगुणिगे से भी अपनी सेना भेज दी। इसी तरह उनकी अन्य रानियों—बेंबलगी की एंगलदेवी और रंगापुर की पद्मलदेवी ने भी अपनी-अपनी सेनाओं को भेज दिया था। ये दोनों सेनाएँ अपने-अपने निर्दिष्ट मार्ग से धारानगरी की ओर रवाना हो गयीं।

वलिपुर से युवराज एरेयंग प्रभु अपनी सेना के साथ आगे की यात्रा के लिए रवाना हुए। जिस दिन वे चले उस दिन दो-पहर के पाठ के समय शान्तला ने

गुरुवर्य बोकिमय्या से युद्ध के विषय में चर्चा की। उसने अपने पिता से इस विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर ली थी। वह इस सैन्य-संग्रह के पीछे छिपे रहस्य को जानने का प्रयत्न करती रही। परन्तु इसके सही या गलत होने के विषय में पिताजी के समक्ष अपनी जिज्ञासा प्रकट नहीं कर पायी। सोसेऊरु से जब दूत आये तभी से उसके पिता ने जो परिश्रम किया यह उसने प्रत्यक्ष देखा था। उस परिश्रम का औचित्य वह समझ रही थी। उसमें कोई गलती नहीं है—इस बात की सही जानकारी जब तक न हो तब तक कोई इतनी निष्ठा से काम नहीं कर सकता, यह बात भी वह जानती थी। फिर भी, जिस जैन धर्म का मूलतत्त्व ही अहिंसा हो और जो उसके अनुयायी हों, उन्हें इस मार-काट में भला क्यों लगना चाहिए ?—यह बात उसकी समझ में नहीं आ रही थी।

इसीलिए उसने गुरुजी से पूछा, "गुरुजी, युद्ध का लक्ष्य हिंसा ही है न ?"

"लक्ष्य हिंसा है, यह नहीं कहा जा सकता अम्माजी। मगर इसकी क्रिया हिंसायुक्त है—यह बात अक्षरशः सत्य है।"

"तब जैन धर्म का मूल्य ही क्या रहा ?"

"राजा धर्मरक्षा ही के लिए है। प्रजा की रक्षा भी धर्मरक्षा का एक अंग है। प्रजा को दूसरों से जब कष्ट उठाने पड़ते हैं या उसे हिंसा का शिकार बनना पड़ता है, तब उसके निवारण के लिए यह अनिवार्य हो जाता है।"

"क्या अहिंसक ढंग से निवारण करना सम्भव नहीं ?"

"यदि इस तरह हिंसा के बिना निवारण सम्भव हो जाता तो कभी युद्ध ही न होता, अम्माजी।"

"मतलब यह कि युद्ध अनिवार्य है—यही न ?"

"मनुष्य जब तक स्वार्थ एवं लिप्सा से मुक्त नहीं होगा तब तक यह अनिवार्य ही लगता है।"

"भगवान् बुद्ध ने भी यही बात कही कि हमारे सभी दुःख-क्लेश का कारण ये ही स्वार्थ और लिप्सा है।"

"महापुरुष जो भी कहते है यह अनुकरणीय है, अम्माजी। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सभी व्यक्ति महान नहीं होते।"

"महापुरुषों के उपदेश का प्रयोजन क्या है ?"

"केवल उपदेश से कोई प्रयोजन नहीं सधता। उसके अनुष्ठान से प्रयोजन की सिद्धि होती है। और फिर, अनुकरण मानव-स्वभाव है। हाव-भाव, चाल-चलन, रीति-नीति, बोल-चाल, भाषा-बोली—सब कुछ अनुकरण से ही तो हम सीखते हैं। महापुरुष जो उपदेश देते हैं उसका वे स्वयं अनुष्ठान भी करते हैं। तभी तो वे महात्मा कहलाते हैं। लोग बड़ी आस्था से उनके मार्ग का अनुसरण

करते हैं। परन्तु अनुसरण की यह प्रक्रिया पीढ़ी-दर-पीढ़ी शिथिल होकर दुर्बल होने लगती है। उसमें वह शक्ति या प्रभाव कम हो जाता है जो आरम्भ में था। तब हम, जो इस शैथिल्य के स्वयं कारण हैं, उस तथाकथित धर्म के विरुद्ध नारे लगाने लगते हैं। कुछ नयी चीज़ की खोज करने लगते हैं। जो इस नवीनता की ओर हमें आकर्षित कर लेते हैं उनका हम अनुसरण करने लगते हैं। उसे अपनी स्वीकृति देते हैं। उस नवीनता को दर्शानेवाले व्यक्ति को महापुरुष की उपाधि देते हैं। यह एक चक्र है जो सदा घूमता रहता है। रूढ़िगत होकर प्रचलित सात्विक भावनाओं को इस नयी रोशनी में नया जामा पहनाकर, नया नाम देकर, इसे उस पुराने से भिन्न मानकर उसपर गर्व करते हैं। परन्तु गहरे पैठने पर दोनों में अभिन्नता ही पाते हैं। तब समझते हैं दोनों एक हैं। उस तब से इस अब तक सब एक हैं। मानवातीत प्रेममय उस सात्विक शक्ति पर जो एकनिष्ठ और अचल विश्वास होता है, वही सारे धर्मों का मूल है।"

"सभी व्यक्तियों को यदि यह मालूम हो जाय तो ये झगड़े-फसाद ही क्यों होते, है न?"

"सो तो ठीक है, अम्माजी। तथ्य को समझने का सभी लोग प्रयास ही कहाँ करते, यही तो इस सारे कष्ट का कारण है!"

"सभी को प्रयास करना चाहिए।"

"इसी को तो साधने में मनुष्य असफल रहा है! कोई छोटा-बड़ा या ऊँच-नीच नहीं—यह भावना उत्पन्न करना ही धर्म का प्रयोजन है। मगर हम ऊँच-नीच, उत्तम-अधम की मोहर लगाने के लिए धर्म की आड़ लेते हैं। यही सारे संघर्ष की जड़ है। किसी एक के बड़प्पन को दुनिया में घोषित करने, किसी की आशा-आकांक्षा को पूर्ण करने, किसी को श्रेष्ठ कहने, कोई महान् शक्तिशाली है—यह बताने और उसकी प्रशंसा करने के ये सब साधन हैं। इस घोटाले में पड़कर असली बात को भूलकर, अहिंसा को छोड़ हिंसा में लोगों की प्रवृत्ति हो जाती है। और तब, जब न्याय का कोई मूल्य नहीं रह जाता, बल प्रयोग के लिए अवकाश मिल ही जाता है।"

"सभी राजा प्रजापालक होते हैं न?"

"हाँ अम्माजी। प्रजापालक को ही तो राजा कहते हैं। वे ही राजा कहलाने योग्य माने जाते हैं।"

"ऐसी हालत में एक राजा दूसरे राजा के विरुद्ध अपनी-अपनी प्रजा को भड़काते क्यों हैं? यह प्रजापालन नहीं, प्रजाहनन है।"

"स्वार्थी राजा के लिए यह प्रजाहनन है। जब उसे वह अनुभव करता है कि यह स्वार्थ से प्रेरित हत्या है, तब वह युद्ध का त्याग भी कर बैठता है। सम्राट् अशोक ने इसी वजह से तो शस्त्र-परित्याग किया था। प्रजा का रक्तपात

क्षेमंकर नहीं होता—इस बात का ज्ञान उसे एक ऐसे सन्निवेश में हुआ जब वह एक महायुद्ध में विजयी हुआ था। तभी उसने शस्त्र-त्याग कर दिया था। क्या यह सचमुच अहिंसा की जीत नहीं, अम्माजी ?"

"तब तो हिंसा का प्रत्यक्ष ज्ञान ही अहिंसा के मार्ग को दर्शानेवाला प्रकाश है, यही हुआ न ?"

"हाँ अम्माजी, हिंसा होती है, इसी से अहिंसा का इतना बड़ा मूल्य है। अँधेरे का ज्ञान होने से ही प्रकाश का मूल्य मालूम होता है। अज्ञान की रूक्षता के कारण ही ज्ञान के प्रकाश से विकसित सुन्दर और कोमल संस्कृति का विशेष मूल्य है। दुर्जन के अस्तित्व से ही सज्जन का मूल्य है। यह तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के अभाव में दूसरा नहीं। रावण न होता तो सीता-राम का वह मूल्य न होता। पाण्डवों के मूल्य का कारण कौरवों का अत्याचार था। हिरण्यकशिपु का द्वेष-द्वेष ही प्रह्लाद की भक्ति को मूल्य दे सका।"

"जो अच्छा है, वही दुनिया में सदा मानव को देवता बनाये रखेगा—यह सम्भव नहीं। यही कहना चाहते हैं न आप ?"

"हाँ अम्माजी, बुरे का मूलोच्छेदन करना सम्भव ही नहीं।"

"फिर तो जो अच्छा है, उसे भी बुरा निगल सकता है ?"

"वह भी सम्भव नहीं, अम्माजी। जब तक संसार है तब तक अच्छा-बुरा दोनों रहेंगे। इसीलिए मनु ने एक बात कही है—'विषादपि अमृतं ग्राह्य'। जो सचमुच मानव बनना चाहता है वह विष को छोड़कर अमृत को ग्रहण करता है। विष में से अमृत का जन्म हो तो उसे भी स्वीकार कर लेता है। परन्तु इस तारतम्य औचित्यपूर्ण ज्ञान को प्राप्त करने की शक्ति मनुष्य में होनी चाहिए। उसकी शिक्षा-दीक्षा का लक्ष्य भी वही हो तब न !"

"यह सब कथन-लेखन में है। जीवन में इनका आचरण दुर्लभ है, है न ? यदि सभी लोग मनु के कथन के अनुसार चलें तो 'बालादपि सुभाषितं' चरितार्थ होता। है न गुरुजी ?"

बोकिमय्या ने तुरन्त जवाब नहीं दिया। वे शान्तला की ओर कुतूहल से देखने लगे। शान्तला भी एक क्षण मौन रही। फिर बोली, "क्यों गुरुजी, मेरा प्रश्न अनुचित तो नहीं ?"

"नहीं, अम्माजी। इस प्रश्न के पीछे किसी तरह की वैयक्तिक पृष्ठभूमि के होने की शंका हुई। मेरी यह शंका ठीक है या गलत—इस बात का निश्चय किये बिना कुछ कहना उचित मालूम नहीं पड़ा। इसलिए चुप रहा।"

"आपकी शंका एक तरह से ठीक है, गुरुजी।"

"आपके कथन के पीछे आपकी मनोभूमि में एकाएक क्या प्रसंग आया !"

"कैसा प्रसंग ?"

"हमारी अम्माजी की एक अच्छी भावना से कथित बात के बदले में बड़ों द्वारा खण्डन।"

"ऐसी बात का अनुमान आपको कैसे हुआ गुरुजी ?"

"अम्माजी ! व्यक्ति जब अच्छी बात बोलता है तथा अच्छा व्यवहार करता है तब उसके कथन एवं आचरण में एक स्पष्ट भावना झलकती है। ऐसे व्यक्ति का आयु से कोई सरोकार नहीं होता। ऐसे प्रसंगों में अन्य जन भिन्न मत होकर भी औचित्य के चौखट की सीमा के अन्दर बँध जाता है। और जब मौक़ा मिलता है, उसकी प्रतिक्रिया की भावना उठ खड़ी होती है। ऐसा प्रसंग आने से अब तक इस सम्बन्ध में दूसरों से कहने का अवकाश आपको शायद नहीं मिल सका होगा। इस वजह से वह प्रतिक्रिया दूसरा रूप धरकर आपके मुँह से व्यक्त हुई। यही न ?"

"शायद !"

"वह क्या है, बताइए तो ?"

उस दिन सोसेऊरु में नृत्य-गान के बाद, जब युवरानी ने प्रसन्न होकर शान्तला को पुरस्कृत करना चाहा तब चामव्वे ने जो बातें कहीं उस सारे प्रसंग को शान्तला ने बड़े संकोच के साथ बता दिया।

"चामव्वा जैसे लोगों के होने से ही मनु ने 'बालादपि सुभाषितं' कहा है, अम्माजी। अच्छी बात जो है वह सदा अच्छी ही रहेगी। जिसके मुँह से यह बात निकलती है, उसकी हैसियत, उम्र आदि ऐसी बात का मूल्य अवश्य बढ़ा देती है। यह दुनिया की रूढ़ि है। परन्तु अच्छी बात किसी के भी मुँह से निकले, चाहे अप्रबुद्ध बालक के मुँह से ही, वह ग्रहण करने योग्य है। लोग ऐसे विषय को ग्रहण नहीं करते, इसीलिए मनु ने इसे ज़ोर देकर कहा है। अच्छा हमेशा अच्छा ही है चाहे वह कहीं से प्रसूत हो। चामव्वा जैसी अप्रबुद्ध अधिकारमत्त स्त्रियों के ही कारण बहुत-सी अनहोनी बातें हो जाती हैं।"

"गुरुजी, बड़े बुज़ुर्ग कहते हैं कि मानव-जन्म बहुत ऊँचा है, बड़ा है। फिर यह सब क्यों हो रहा है ?"

इतना सब होते हुए भी मानव-जन्म महान् है, अम्माजी। हमारे ही जैसे हाथ-पैर, आँख-नाक-कानवाले सब बाह्य रूप की दृष्टि से मनुष्य ही हैं। मानव रूप-धारी होकर तारतम्य और औचित्य के ज्ञान के बिना व्यक्ति वास्तविक अर्थों में मानव नहीं बन सकते। जन्म मात्र से नहीं, अपने अच्छे व्यवहार से मानव मानव बनता है। ऐसे लोगों के कारण ही मानवता का महत्त्व है।"

"वास्तविक मानवता के माने क्या ?"

"यह एक बहुत पेचीदा सवाल है, अम्माजी। इसकी व्याख्या करना बहुत कठिन है। मानवता मनुष्य के व्यवहार एवं कर्म से व्यक्त होती है। वह बहुरूपी

है। मनुष्य के किसी भी व्यवहार से, क्रिया से दूसरों को कष्ट न हो, कोई संकट पैदा न हो। मानवता की महत्ता तभी है जब व्यक्ति के व्यवहार और कर्म में दूसरों का उपकार हो।"

"बड़ी हैसियतवालों को ऐसी मानवता का अर्जन करना चाहिए, अपने जीवन में उसे व्यवहार में उतारना चाहिए; ऐसा करने से संसार का भी भला हो जाये। है न ?"

"हाँ अम्माजी। इसीलिए तो हम 'राजा को प्रत्यक्ष देवता' कहकर गौरव देते हैं।"

"उस गौरव के योग्य व्यवहार उनका हो तब न ?"

"हाँ, व्यवहार तो ऐसा होना ही चाहिए। परन्तु हम किस दम से कहें कि ऐसा है ही ?"

"पोय्सल राजकुमार बिट्टिदेव ऐसे ही बन सकेंगे—ऐसा मान सकते हैं न ?"

वार्तालाप का विषय अचानक बदलकर व्यक्तिगत विषय में परिवर्तित हो गया। गुरु बोकिमय्या ने इसकी अपेक्षा नहीं की थी। शान्तला ने भी ऐसा नहीं सोचा था। यों अचानक ही उसके मुँह से निकल गया था।

बोकिमय्या एकटक उसे देखता रहा। तुरन्त उत्तर नहीं दिया। शान्तला को ऐसा नहीं लगा कि अपने उस प्रश्न में उसने कुछ अनुचित कह दिया है। सहज भाव से ही उसने ऐसा पूछा था। इसलिए उत्तर की भी प्रतीक्षा की। कुछ देर चुप रहकर कहा, "गुरुजी, क्या मेरा विचार सही नहीं है ?"

"मैंने ऐसा कब कहा, अम्माजी ?"

"आपने कुछ नहीं कहा। इसलिए…"

"ऐसा अनुमान लगाया ? ऐसा नहीं है, परन्तु…" बोकिमय्या आगे नहीं बोले।

"परन्तु क्या गुरुजी ?" शान्तला ने फिर पूछा।

"परन्तु वे युवराज के दूसरे पुत्र हैं, अम्माजी।"

"दूसरे पुत्र होने से क्या ? यदि उनमें मानवता का विकास होता है तो भी कोई लाभ नहीं—यही आपका विचार है ?"

"ऐसा नहीं अम्माजी। ऐसे व्यक्ति का राजा बनना बहुत जरूरी है। तभी मानवता इस जगत् का कितना उपकार कर सकती है—यह जाना जा सकता है।"

"तो आपका अभिमत है कि उनमें ऐसी शक्ति है, यही न ?"

"अम्माजी, मानवता को तराजू पर तौला नहीं जा सकता। वह मोल-तोल के पकड़ के बाहर की चीज है। परन्तु मानवता की शक्ति उसके व्यक्तित्व से रूपित होकर अपने महत्त्व को व्यक्त करती है। उन्होंने हमारे साथ जो थोड़े दिन बिताये वे हमारे लिए सदा स्मरणीय रहेंगे।"

"उनके बड़े भाई उनके जैसे प्रतिभाशाली क्यों नहीं हो पायेंगे ?"

"जिस विषय की जानकारी नहीं, उसके बारे में अपना मत कैसे प्रकट करूँ, अम्माजी। कसौटी पर रगड़कर देखने से ही तो सोने के खरे-खोटेपन का पता चलता है। जो पीला है वह सब सोना नहीं।"

"तो आपकी उस कसौटी पर बिट्टिदेव खरा सोना निकले है ?"

"हाँ अम्माजी।"

"तो वे कहीं भी रहें, सोना ही तो हैं न ?"

"यह सवाल क्यों अम्माजी ?"

"वे राजा नहीं बन सकेंगे, इसलिए आपको पछतावा हुआ। फिर भी लोक-हित और लोकोपकार करने के लिए उनका व्यक्तित्व पर्याप्त नहीं ?"

"पर्याप्त नहीं—यह तो मैंने नहीं कहा, अम्माजी। जिसके हाथ में अधिकार हो उसमें वह गुण रहने पर उसका फल कहीं अधिक होता है। अधिकार के प्रभाव की व्याप्ति भी अधिक होती है—यही मैंने कहा। मैं ब्रह्मा तो नहीं। वे युवराज के दूसरे पुत्र हैं। उनसे जितनी अपेक्षा की जा सकती है उतना उपकार उनसे शायद न हो—ऐसा लगा, इसलिए ऐसा कहा।"

"बड़े राजकुमार को परख लेने के बाद ही अपना निर्णय देना उचित होगा, गुरुजी !"

"विशाल दृष्टि से देखा जाय तो तुम्हारा कहना ठीक है, अम्माजी।"

"विशालता भी मानवता का एक अंग है न, गुरुजी ?"

"कौन नहीं मानता, अम्माजी ? विशाल हृदय के प्रति हमारा आकृष्ट होना स्वाभाविक है। हमारी भावनाओं की निकटता भी इसका एक कारण है। इसका यह अर्थ नहीं कि शेष सभी बातें गौण हैं। तुम्हारा यह बोल-चाल का ढंग, यह आचरण···यह सब भी तो मनुष्य की विशालता के चिह्न हैं।"

शान्तला झट उठ खड़ी हुई। बोली, "गुरुजी, संगीत-पाठ का समय हो आया, संगीत के गुरुजी आते ही होंगे।"

"ठीक है। हेग्गड़ेजी घर पर हों तो उनसे विदा लेकर जाऊँगा।" बोकिमय्या ने कहा।

"अच्छा, अन्दर जाकर देखती हूँ।" कहती हुई शान्तला भीतर चली गयी।

बोकिमय्या भी उठे और अपनी पगड़ी और उपरना सँभालकर चलने को हुए कि इतने में हेग्गड़तीजी वहाँ आयी।

"मालिक घर पर नहीं है। क्या कुछ चाहिए था ?" हेग्गड़ती माचिकब्बे ने पूछा।

"कुछ नहीं। जाने की आज्ञा लेना चाहता था। अच्छा, मैं चलूँगा।" कहते

हुए नमस्कार कर बोकिमय्या वहाँ से चल पड़े ।

माचिकब्बे भी उनके पीछे दरवाजे तक दो-चार कदम चली ही थी कि इतने में संगीत के अध्यापक ने प्रवेश किया । उन्होंने शान्तला को पुकारा । "अम्माजी, संगीत के अध्यापक आये हैं ।"

शान्तला आयी और संगीत का अभ्यास करने चली गयी ।

धारानगर का युद्ध बड़ा व्यापक रहा । स्वयं हमला करने के इरादे से भारी सेना को तैयार कर बड़ी योजना परमार ने तैयार की थी । परन्तु चालुक्य और पोय्सलों के गुप्तचरों की चतुरता से उनकी योजना, धरी-की-धरी रह गयी । धारानगर की रक्षा के लिए वहाँ पर्याप्त सेना रखकर, परमारों की वाहिनी हमला करने के लिए आगे बढ़ रही थी । इधर स्वयं विक्रमादित्य के नेतृत्व में सेना बढ़ी चली आ रही थी । परमारों को उस सेना का मुकाबिला करना पड़ा । दो बराबरवालों में जब युद्ध हो तब हार-जीत का निर्णय जल्दी कैसे हो सकता है । युद्ध होता रहा । दिन, हफ्ते, पखवारे और महीने गुजर चले । बीच-बीच में चरों के द्वारा सोसेऊरु को खबर पहुँचती रही । इधर से आहार-सामग्री और युद्ध-सामग्री के साथ नयी-नयी सेना भी युद्ध के लिए रवाना हो रही थी ।

एरेयंग प्रभु के नेतृत्व में निकली सेना ने, धारानगर और हमला करने को तैयार परमारों की सेना के बीच पड़ाव डाल दिया । इससे परमारों की सेना को रसद पहुँचना और नयी सेना का जमा होना दोनों रुक गये । परमार ने यह सोचा न था कि उनकी सेना को सामने से और पीछे से—दोनों ओर से शत्रुओं का सामना करना पड़ेगा । स्थिति यहाँ तक आ पहुँची कि परमार को यह समझना कठिन न था कि वह निःसहाय है और हार निश्चित है; धारानगर का पतन भी निश्चित है। इसलिए उन्होंने रातों-रात एक विशाल व्यूह की रचना कर युद्ध जारी रखने का नाटक रचकर मुख्य सेना को दूसरे रास्ते से धारानगर की रक्षा के लिए भेजकर अपनी सारी शक्ति नगर-रक्षण में केन्द्रित कर दी ।

युद्धभूमि में व्यूहबद्ध सैनिक बड़ी चतुराई से लुक-छिपकर युद्ध करने में लगे थे । हमला करने के बदले परमार की यह सेना आत्मरक्षा में लगी है, इस बात का अन्दाज एरेयंग और विक्रमादित्य दोनों को हो चुका था । रसद पहुँचाने का मार्ग नहीं था, पहले से ही वहाँ एरेयंग-विक्रमादित्यों की सेना ने मुकाम किया था। आहार-सामग्री के अभाव में समय आने पर परमार की सेना स्वयं ही शरणागत

हो जायेगी—यह सोचकर चालुक्य और पोय्सल युद्ध-नायकों ने भी कुछ ढील दे दी थी। लुका-छिपी की यह लड़ाई दो-एक पखवारे तक चलती रही। परिणाम वही हुआ—परमार मुकाबिला न कर सकने के कारण पीछे हट गये और राजधानी धारानगर पहुँच गये—यह समाचार गुप्तचरों द्वारा धारानगर से चालुक्य-पोय्सल सेना-नायकों को मिला।

एरेयंग और विक्रमादित्य—दोनों ने विचार-विनिमय किया। दोनों ने आगे के कार्यक्रम के विषय में गुप्त मन्त्रणा की। विक्रमादित्य ने वापस लौटने की सलाह दी किन्तु एरेयंग ने कुछ और ही मत प्रकट किया। उन्होंने कहा, "अब हम लौटते हैं तो इसे उचित नहीं कहा जायेगा। लौटने से इस बात का भी झूठा प्रचार किया जा सकता है। हम डरकर भाग आये। अब पोय्सल-चालुक्यों का गौरव धारानगर को जीतने में ही। हमें गुप्तचरों द्वारा जो समाचार मिला है उसके अनुसार सन्निधान के साथ महारानी चन्दलदेवी भी आयी हैं; उन्हें उड़ा ले जाने का षड्यन्त्र रचा गया था—यह भी मालूम हुआ है।"

"तो क्या हमारी महारानीजी हमारे साथ आयी है? यह खबर भी उन्हें लग गयी होगी?"

"लग ही गयी होगी। नहीं तो पहले अनुमान करके फिर गुप्तचरों द्वारा पता लगा लिया होगा। वह न आयी होती तो अच्छा होता।"

"मेरा भी यही मत है। परन्तु उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। कहने लगीं, 'यह युद्ध मेरे ही लिए तो हो रहा है। मैं खुद उसे अपनी आँखों देखना चाहती हूँ।' यह कहकर हठ करने लगीं। हमने तब यह सलाह दी कि हमारे साथ न आवें। चाहें तो बाद में वृद्ध-व्यावहारिकों के साथ भेष बदलकर आ जायें। वास्तव में हमारे बहुत-से लोगों को भी यह बात मालूम नहीं। फिर उनको आये अभी बहुत दिन नहीं हुए है, इसलिए आपकी यह खबर हमारे लिए बड़ी ही आश्चर्यजनक है।"

"आश्चर्य की बात नहीं! अपने ही व्यक्तियों द्वारा यह खबर फैली है।"

"ऐसे लोग हममें हों तो यह तो हानिकर है न? तुरन्त उनका पता लगाना चाहिए।"

थोड़ी देर के लिए खामोशी छा गयी। एरेयंग कुछ देर तक बैठे सोचते रहे। इस बात को जानते हुए भी कि वहाँ कोई दूसरा नहीं और केवल वे दो ही हैं, एरेयंग प्रभु ने विक्रमादित्य के कान में कहा, "आज ही रात को बड़ी रानीजी को वेष बदलकर एक विश्वस्त व्यक्ति के साथ कल्याण या करहाट भेज देना चाहिए और सुबह-सुबह यह खबर फैला देनी चाहिए कि बड़ी रानीजी नहीं हैं, पता नहीं रातों-रात क्या हुआ। तब उन द्रोहियों के पता लगाने में हमें सुविधा हो जायेगी।"

"यह कैसे सम्भव होगा ?"

"आप हमपर विश्वास करें तो हम यह काम करेंगे। द्रोहियों का पता लगाकर उन्हें सूली पर चढ़ा देंगे। आगे के कार्यक्रम पर बाद में विचार करेंगे।" एरेयंग ने कहा।

"एरेयंग प्रभु, चालुक्य-सिंहासन को हमें प्राप्त कराने में आपने जो सहायता की थी, उसे हम भूल नहीं सकते। इसीलिए हमने आपको अपना दायाँ हाथ मान लिया है। राष्ट्र का गौरव और हमारी जीत अब आप ही पर अवलम्बित है। आप जैसा चाहें, करें। इस युद्ध के महा-दण्डनायक आप ही हैं। आज से हम और शेष सब, आप जो कहेंगे उसी के अनुसार चलेंगे। ठीक है न?"

"आप यदि इतना विश्वास हमपर रखते हैं तो यह हमारा सौभाग्य है।"

"एरेयंग प्रभु, यदि यह हमारी जीत होगी तो हम अपनी विरदावली में से एक आपको दे देंगे।"

"विरद प्राप्त करने की लालच से जीत हमारी नहीं होगी। एक मात्र राष्ट्र-प्रेम और निष्ठा से जीत सम्भव है। हम इस लालच में पड़नेवाले नहीं।"

"हम याने कौन-कौन ?"

"बाकी लोगों की तो बात हम नहीं कह सकते। हम याने उन्नत कन्नड़-संस्कृति को अपनाकर उसी में पले पोय्सलवंशी।"

"तो क्या चालुक्यवंशीयों में यह कन्नड़ संस्कृति नहीं है—यह आपका अभिमत है?"

"न न, ऐसा कहीं हो सकता है? इस उन्नत संस्कृति की स्थापना का स्वर्ण-युग चालुक्यों ने ही करुनाडु में आरम्भ किया, उन्होंने ही इसे संस्कृति की स्वर्ण-भूमि बनायी। इसी भूमि में तो पोय्सल अंकुरित हुआ है।"

"ऐसी दशा में हम आपको विरुद प्रदान करें तो हमारा खो क्या जायेगा। विरुद पाकर आप पायेंगे ही क्या?"

"देना ही हमारी संस्कृति की रीति है। उसके लिए हाथ पसारकर कार्य में प्रवृत्त होना उस संस्कृति के योग्य कभी नहीं हो सकता। इसलिए अब इस बात को छोड़ दें। पहले हमें जो कार्य करना है उसमें प्रवृत्त हो जायें।"

"ठीक है, एरेयंग प्रभु। वही कीजिए।"

"आज्ञा हो तो मैं विदा लेता हूँ।" कहते हुए एरेयंग प्रभु उठ खड़े हुए। विक्रमादित्य भी उठे और उनके कन्धे पर हाथ रखकर बोले, "अब हम निश्चिन्त हुए।"

दोरसमुद्र से महाराजा की आज्ञा आयी। इस वजह से युवरानी एचलदेवी और दोनों बालक—बिट्टिदेव और उदयादित्य को दोरसमुद्र जाना पड़ा। गुप्तचरों द्वारा प्राप्त समाचार के अनुसार युद्ध जल्दी समाप्त न होनेवाला था। युद्ध समाप्त होने के लिए सम्भव है महीनों या वर्षों लग जायें। यह सोचकर महाराज ने युवरानी और बच्चों को सोसेऊरु में रखना उचित न समझकर उन्हें दोरसमुद्र में अपने साथ रहने के लिए बुलवाया था।

एचलदेवी को वहाँ जाने की जरा भी इच्छा नहीं थी।

यदि चामव्वे दोरसमुद्र में न होती तो शायद खुशी से एचलदेवी वहाँ जाने को तैयार भी हो जाती। या उसके पतिदेव के युद्ध के लिए प्रस्थान करते ही स्वयं महाराजा को सूचना देकर अपनी ही इच्छा से शायद जाने को तैयार हो जाती। जो भी हो, अब तो असन्तोष से ही दोरसमुद्र जाना पड़ा। युवरानी और दोनों राजकुमारों—बिट्टिदेव और उदयादित्य—के साथ दोरसमुद्र में आने के समाचार की जानकारी चामव्वे को हुए बिना कैसे रह जाती? जानकारी क्या, इन लोगों को दोरसमुद्र में बुलाने की बात उसी के मन में पहले पहल अंकुरित हुई थी। प्रधानमन्त्री और दण्डनायक के जरिये महाराजा के कानों तक बात पहुंचाने की योजना उसी की थी, उसी कारण महाराजा ने यह आदेश दिया। जब युवरानी पुत्रों के साथ आयी है तो चामव्वा भला चुपचाप कैसे रह सकती थी?

जिसे देखने से असन्तोष होता हो, मन खिन्न होता हो, दोरसमुद्र में आते ही सबसे पहले उसी से भेंट हो गयी। युवरानी एचलदेवी ने अपनी खिन्नता प्रकट नहीं होने दी।

"महावीर स्वामी की दया से और देवी वासन्तिका की कृपा से, युवरानीजी ने दोरसमुद्र में पदार्पण तो किया।" चामव्वा ने कहा।

"ऐसी साधारण और छोटी-छोटी बातों में महावीर स्वामी या वासन्तिका देवी हस्तक्षेप नहीं करते, चामव्वाजी। भयग्रस्त व्यक्ति कुछ-की-कुछ कल्पना कर लेते हैं और भगवान् की कृपा का आश्रय लेकर युक्ति से काम बना लेते हैं।" कहती हुई एचलदेवी ने एक अन्दाज से चामव्वा की ओर देखा।

चामव्वा के दिल में एक चुभन-सी हुई। फिर भी वह बोली, "इसमें युक्ति की क्या बात है? आप यहाँ आयीं मानो अँधेरे घर में रोशनी ही आ गयी। जहाँ अँधेरा हो वहाँ रोशनी के आने की आशा करना तो कोई गलत नहीं युवरानी जी?"

"जहाँ अँधेरा हो वहाँ प्रकाश लाने की इच्छा करना अच्छा है। परन्तु अँधेरे का परिचय जब तक न हो तब तक प्रकाश के लिए स्थान कहाँ? आप और प्रधानमन्त्रीजी की धर्मपत्नी लक्ष्मीदेवीजी जब यहाँ हैं तो अँधेरा कैसा?"

"हमारी आपकी क्या बराबरी? आज आप युवरानी हैं और कल महारानी

होंगी। पोय्सल वंश की बड़ी सुमंगली।"

"तो पदवी की उन्नति होने के साथ-साथ प्रकाश भी बढ़ता है—यही न?"

"हाँ···बत्ती बढ़ाने चलें तो प्रकाश बढ़ता ही है।"

"प्रकाश तेल से बढ़ता है या बत्ती से?"

"बत्ती से, जिसमें लौ होती है।"

"खाली बत्ती से प्रकाश मिलेगा?"

"नहीं।"

"मतलब यह हुआ कि तेल के होने पर ही बत्ती की लौ को प्रकाश देने की शक्ति आती है। तेल ख़तम हुआ तो प्रकाश भी ख़तम। तात्पर्य यह कि बत्ती केवल साधन मात्र है। बत्ती को लम्बा बनावें तो वह प्रकाश देने के बदले खुद जलकर ख़ाक हो जाती है। तेल, बत्ती और लौ—तीनों के मिलने से ही प्रकाश मिलता है। तेल मिट्टी की ढिबरी में हो या लोहे की, उसका गुण बदलता नहीं। हमारे लिए प्रकाश मुख्य है। तेल की ढिबरी नहीं। इसी तरह से हमारे घर को हमारा सुहाग प्रकाश देता है, हमारी पदवी नहीं, चामव्वाजी। है या नहीं, आप ही बताइये?"

"युवरानीजी के सामने मैं क्या चीज हूँ? जब कहती हैं तो ठीक ही होना चाहिए।"

"जो ठीक है वह चाहे कोई भी कहे, ठीक ही होगा। युवरानी ने कहा इस-लिए वह ठीक है ऐसी बात नहीं। ख़ैर, छोड़िए इस बात को। इस बात की जिज्ञासा हमें क्यों? दण्डनायकजी कुशल हैं न? आपकी बेटियाँ पद्मला, चामला और बोप्पदेवी—सब ठीक तो है न? देकव्वे के बच्चे माचण, डाकरस···आपके बड़े भाई के घर पर—सब सानन्द है न? और उनके पुत्र एचम और बोप्पदेव···कैसे हैं सब?"

"राजमहल के आश्रय में सब स्वस्थ-सानन्द हैं। महाराजा ने हमारे लिए किस बात की कमी कर रखी है? उनकी उदारता से आनन्दमंगल है।"

"हमारा अप्पाजी कभी-कभी आप लोगों से मिलता रहता होगा। पहली बार है जब वह माँ-बाप से दूर रहा है। फिर भी वह छोटा बच्चा तो नहीं है; इस नये वातावरण के साथ घुलमिल गया होगा। उसकी अब ऐसी ही उम्र है।"

'आप बड़ी ही भाग्यवान् हैं, युवरानीजी। राजकुमार बड़े ही अक्लमन्द हैं। बहुत तेज बुद्धि है उनकी। यह हमारे पूर्वजन्म के पुण्य का फल है। वे जितना प्रेम-आदर आपके प्रति रखते हैं, अपने भी प्रति वैसा ही पाया।"

"मतलब यह कि माँ-बाप से दूर रहने पर भी ऐसी भावना उसके मन में बराबर बनी रहे—इस जतन से आप उसकी देखभाल कर रही हैं। माँ होकर मैं इस कृपा के लिए कृतज्ञ हूँ।"

"न न, इतनी बड़ी बात, न न। यह तो हमारा कर्तव्य है। अन्दर पधारियेगा।"

"आपके बच्चे दिखायी नहीं दे रहे हैं।...कहाँ हैं?"

"वे नाच-गाना सीख रही हैं। यह उनके अभ्यास का समय है।" चामव्वा ने कुछ गर्व से कहा।

चामव्वा ने सोचा था कि युवरानीजी इस बात को आगे बढ़ाएँगी। परन्तु युवरानी 'ठीक है' कहकर अन्दर की ओर चल दी।

चामव्वा को बड़ी निराशा हुई। अपने बच्चों के बारे में बढ़ा-चढ़ाकर बखान करने का एक अच्छा मौका उसे मिला था। अपनी भावना को प्रदर्शित किये बिना उसने भी युवरानी का अनुसरण किया।

अन्तःपुर के द्वार पर युवरानीजी जाकर खड़ी हो गयीं। बोलीं, "दण्डनायिका-जी, आपने बहुत परिश्रम किया। वास्तव में हम अपने घर आये तो इतना स्वागत करने की भला जरूरत ही क्या थी? हम अपने घर आयें और अपने ही घर में स्वागत करायें तो इस स्वागत का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। परन्तु प्रेम से आपने जब स्वागत किया तो उसे हमें भी प्रेम से स्वीकारना चाहिए। अब आप हमारी चिन्ता छोड़ अपना काम देखियेगा।"

"मुझे भी ऐसा कोई काम नहीं है। युवरानीजी को यदि कोई आवश्यकता हुई तो..."

"रेविमय्या और दूसरे लोग भी हैं; वे देख लेंगे। अच्छा चामव्वाजी"—कह-कर एचलदेवी अन्दर चली गयी।

बिट्टिदेव का भाग्य ही अच्छा था। नहीं तो चामव्वा से धक्का खाकर उसके पैरों के नीचे गिर सकता था।

दो-तीन कदम आगे बढ़ने के बाद ही चामव्वा खड़ी हो पायी। उसने पीछे की ओर मुड़कर देखा तो वह छोटे अप्पाजी बिट्टिदेव थे।

कोई और होता तो पता नहीं क्या हुआ होता। राजकुमार था, इसलिए चामव्वा के क्रोध का शिकार नहीं बन सका। बिट्टिदेव चलने लगा।

उसने बड़े प्रेम से पुकारा, "छोटे अप्पाजी, छोटे अप्पाजी!"

बिट्टिदेव रुका। मुड़कर देखा।

चामव्वा उसके पास आयी। बोली, "बेलुगोल से सोसेऊरु जाते वक्त अप्पाजी को देखकर जायेंगे—ऐसा मैंने निश्चय किया था।"

"यह मालूम था कि युवराज और माँ सोसेऊरु जायेंगे। इसलिए सीधा वहीं चला गया।"

"बेलुगोल कैसा रहा?"

"अच्छा रहा।"

"अगले महीने हम सब जायेंगे। तुम भी चलोगे?"

"मैंने पहले ही देख लिया है न ?"

"एक बार और देख सकते हो।"

"वह वहीं रहेगा। कभी भी देख सकते हैं।"

"बड़े अप्पाजी भी चलने को राजी हैं। तुम भी चलो तो अच्छा !"

"हो सकता है। यहाँ माँ अकेली हो जायें।"

"उदय रहेगा न !"

"अभी कल-परसों ही तो मैंने बेलुगोल देखा है।"

"तुम्हें खेलने के लिए साथ मिल जायेगा। हमारी चामला खेल में बहुत होशियार है। और फिर, जब हम सब चले जायेंगे तो यहाँ तुम्हारे साथ कोई न रहेगा।"

"सोसेऊरु में कौन था ?"

"वह दोरसमुद्र है, छोटे अप्पाजी।"

"तो क्या हुआ ? मेरे लिए सब बराबर हैं।"

"अच्छा, जाने दो। हमारे साथ चलोगे न ?"

"माँ से पूछूँगा।"

"कहें तो मैं ही पूछ लूँगी !"

"वही कीजिए।" कहकर वह वहाँ से चला गया।

वह जिधर से गया, चामव्वा उसी तरफ़ कुछ देर देखती रही। फिर भौंह चढ़ाकर, झटके से सिर हिलाकर वहाँ से चली गयी।

उस दिन रात को मरियाने दण्डनायक के कान गरम किये गये। चामव्वे की योजना का कुछ तो कारगर हो जाने का भरोसा था। बल्लाल कुमार के मन को उसने जीत लिया था। अपनी माँ से दूर रहने पर भी माँ से जितना वात्सल्य प्राप्त हो सकता था उससे अधिक वात्सल्य चामव्वा से उसे मिल रहा था। सोसेऊरु में माँ का वह वात्सल्य तीन धाराओं में बहता था। यहाँ सब तरह का वात्सल्य, प्रेम, आदर एक साथ सब उसी की ओर बह रहा है। उसके मन में यह बात बैठ गयी कि मरियाने दण्डनायक, उनकी पत्नी और उनकी बेटियाँ पद्मला, चामला—सब-के-सब कितना प्रेम करते हैं उसे ! कितना आदर देते हैं, कितना वात्सल्य दिखाते हैं ! परन्तु अभी, यौवन की देहरी पर खड़े बल्लाल कुमार को यह समझने का अवसर ही नहीं मिला था कि इस सबका कारण उनका स्वार्थ है। यह बात समझे

बिना ही महीनों गुज़र गये। फलस्वरूप चामव्वे के मन में यह भावना घर कर गयी थी कि यह बड़ा राजकुमार उसका दामाद बन जायेगा और बड़ी बेटी पद्मला रानी बनकर पोय्सलों के राजघराने को उजागर करेगी। लेकिन इतने से ही चामव्वा तृप्त नहीं थी। क्या करेगी? उसकी योजना ही बहुत बड़ी थी। उसे कार्यान्वित करने की ओर उसकी दृष्टि थी। इसीलिए युवरानी, छोटे अप्पाजी और उदयादित्य को उसने दोरसमुद्र बुलवा लिया।

प्रथम भेंट में ही उसे मालूम हो गया था कि युवरानी भीतर-ही-भीतर कुछ रुष्ट हैं। इस बात का उसे अनुभव हो चुका था कि पहले युवरानी के बच्चों को अपनी ओर आसानी से आकर्षित किया जा सकता है। यह पहला काम है। बच्चों को अपनी ओर कर लेने के बाद युवरानी को ठीक किया जा सकता है। बड़ा राजकुमार ही जब वश में हो गया है तो ये छोटे तो क्या चीज़ हैं? परन्तु राजकुमार बिट्टिदेव के साथ जो थोड़ी-सी बातचीत हुई थी उससे उसने समझ लिया था बड़े राजकुमार बल्लाल और छोटे बिट्टिदेव के स्वभाव में बड़ा अन्तर है। बिट्टिदेव को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए कोई नया तरीका ही निकालना होगा।

इसी वजह से उसे अपने पतिदेव के कान गरम करने पड़े थे। उसी रात उसने नयी तरक़ीब सोची थी। फलस्वरूप दण्डनायक के परिवारवालों के साथ, प्रधानजी की पत्नियाँ—नागलदेवी, लक्ष्मीदेवी, उनके बच्चे बोप्पदेव और एचम—इन सबको लेकर बेलुगोल जाने का कार्यक्रम बना। इस कार्यक्रम में युवराज एरेयंग प्रभु के विजयी होकर लौटने के लिए विशेष पूजा-अर्चना कराने का आयोजन भी था। महाराज की सम्मति से युवरानीजी को भी साथ ले चलने में इससे सुविधा रहेगी।

युवरानी की इन लोगों के साथ जाने की इच्छा सचमुच नहीं थी। फिर भी पतिदेव की विजय के लिए करायी जानेवाली इस पूजा-अर्चना में सम्मिलित होने से इनकार भी वह कैसे कर सकती थी? और महाराजा का आदेश मिलने पर तो एचलदेवी के लिए कोई दूसरा चारा ही नहीं रहा इसलिए वह बिट्टिदेव और उदयादित्य को भी साथ लेकर चल पड़ी। युवरानी के आने पर सारी व्यवस्था तो ठीक होनी ही थी।

इस यात्रा में युवरानी ने अपना समय प्रधान की पत्नियों के साथ बिताया जिनके अभी तक कोई लड़की नहीं थी। इसलिए बिट्टिदेव, उदयादित्य, एचम और बोप्पदेव इनके साथ रहते थे। बल्लाल इनके साथ रहने पर भी जब समय मिलता तब चामव्वा की टोली में शामिल हो जाता।

युवरानी के साथ प्रधानजी की पत्नियों के होने से चामव्वे का दर्जा कुछ कम हो गया। दण्डनायक के कारण उसका मूल्य था। परन्तु अब उसे अपनी मान-प्रतिष्ठा से भी आगे की योजना सूझी। वह अपने समस्त अभिमान को एक ओर

रखकर युवरानी को हर तरह से प्रसन्न करने के उपाय करने लगी। यह देखकर युवरानी एचलदेवी ने शुरू-शुरू में कहा, "चामव्वाजी, आप क्यों इतना परिश्रम करती है जबकि हर काम के लिए नौकर-चाकर प्रस्तुत हैं।" उत्तर में चामव्वा ने कहा, "हमारे युवराज के विजयी होकर लौटने की प्रार्थना के लिए की गयी पूजा-अर्चना की व्यवस्था और उसके लिए की जा रही इस यात्रा में कहीं कोई कमी न रह जाय, इसकी ओर विशेष ध्यान देने का आदेश स्वयं दण्डनायकजी ने दिया है मुझे। इस उत्तरदायित्व को मैं नौकरों पर न छोड़कर सारी व्यवस्था स्वयं करूँगी। दोरसमुद्र लौटने के बाद ही मैं चैन से बैठ पाऊँगी, इस समय तो कदापि नहीं।" चामव्वे के इस उत्तर पर युवरानी एचलदेवी कुछ नहीं बोलीं।

बाहुबली स्वामी की अर्चना और पदाभिषेक के बाद अर्चक ने युवरानी को प्रसाद दिया और कहा, "आपकी सेवा में एक निवेदन है जो यदि ग़लत हो तो क्षमाप्रार्थी हूँ। पिछली बार राजकुमार के साथ उन हेग्गड़ेजी की जो पुत्री आयी थीं उन्होंने स्वामीजी के समक्ष ऐसा गान किया कि आज महीनों बीत गये फिर भी वह कानों में गूंज रहा है। प्रतिदिन पूजा के समय उस गायिका कन्या का स्मरण हो आता है। स्वामीजी के आने के समाचार से मुझे आशा बँधी कि वह गायिका भी उनके साथ आयेंगी।"

"वे अपने गाँव चले गये। यह तो हो नहीं सकता था कि वे सदा दोरसमुद्र में ही रहे आते।"

"वह गायिका लाखों में एक है। बाहुबली स्वामी की क्या इच्छा है, कौन जाने! लेकिन ऐसी कन्या को तो राजघराने में ही जन्म लेना चाहिए था।"

"अच्छी वस्तु को श्रेष्ठ स्थान पर ही रहना चाहिए, यही आपकी अभिलाषा है, ठीक है न?"

"आपके समक्ष हम और क्या कह सकते हैं?" कहकर पुजारी प्रसाद देता आगे बढ़ चला। पद्मला को प्रसाद देते हुए उसने पूछा, "आप गा सकती हैं, अम्माजी? गा सकती हों तो भगवान् के सामने प्रार्थना का एक गीत गाइये।" पद्मला ने अपनी माँ की ओर देखा जिसने आँखों ही से कुछ ऐसा इशारा किया कि युवरानी को सलाह के तौर पर कहना पड़ा, "चामव्वाजी, आपने बताया था कि पद्मला को संगीत का शिक्षण दिलाया जा रहा है।" लेकिन चामव्वे ने ही टाल दिया, "अभी तो वह सीख ही रही है, सबके सामने गाने में अभी संकोच होता है उसे।"

"पद्मला को हो लेकिन चामला को तो संकोच नहीं है, माँ?"

बीच में कुमार बिट्टिदेव बोल उठा और युवरानी ने उसका समर्थन किया, "गाओ बेटी, भगवान की सेवा में संकोच नहीं करना चाहिए।"

अब माँ की ओर दोनों बच्चियों ने देखा। माँ ने दण्डनायक की ओर देखा। उसने भौंहें चढ़ा लीं। संगीत उसे पहले ही पसन्द न था। उतने पर भी इस तरह

का सार्वजनिक प्रदर्शन तो उसे तनिक भी अभीष्ट नहीं था। किन्तु यह कहने का साहस वह नहीं जुटा पाया क्योंकि युवरानी को सब तरह से सन्तुष्ट कर अपना इष्टार्थ पूरा कर लेने के पति और पत्नी के बीच हुए समझौते का रहस्य बनाये रखना अनिवार्य था। इसलिए दण्डनायक को आख़िर कहना पड़ा, "चामू, यदि गा सकती हो तो गाओ, बेटी।"

जबकि चामला ने बात सँभाली, "इस खुले में गाना मुश्किल है, पिताजी।" इस मनचाहे उत्तर का लाभ उठाते हुए दण्डनायक ने, "अच्छा जाने दो, निवास-स्थान पर गाना," कहकर यह प्रसंग समाप्त किया।

उस दिन शाम को सब लोग कटवप्र पर्वत पर चामुण्डराय बसदि में बैठे थे। रेविमय्या ने बिट्टिदेव के कान में कहा, "छोटे अप्पाजी, हम उस दिन जहाँ बैठे थे वहाँ हो आयें?"

"माँ से अनुमति लेकर आता हूँ।" बिट्टिदेव ने कहा।

रेविमय्या के साथ चला तो कुमार बल्लाल ने पूछा, "कहाँ चले, छोटे अप्पाजी?"

"यहीं बाहर; बाहुबली का दर्शन उधर से बड़ा ही भव्य होता है," कहकर चलते बिट्टिदेव के साथ चामव्वे आदि भी चल पड़े।

उस रात को जिस स्थान से शान्तला के साथ बिट्टिदेव ने बाहुबली को साष्टांग प्रणाम किया था वह रेविमय्या के साथ वहीं से बाहुबली को अपलक देखता खड़ा हो गया जबकि और लोगों को वहाँ कोई विशेष आकर्षण नहीं दिखा।

"स्वामी का दर्शन यहाँ से सम्पूर्ण रूप से नहीं होता। और फिर पास जाकर दर्शन कर लेने के बाद यहाँ से देखना और न देखना दोनों बराबर हैं," बल्लाल ने कहा और बिट्टिदेव की ओर देखकर पूछा, "इसमें तुम्हें कौन-सी भव्यता दिखायी पड़ी छोटे अप्पाजी।" बिट्टिदेव को शायद यह सुनायी नहीं पड़ा; वह हाथ जोड़े और आँख बन्द किये खड़ा रहा।

रेविमय्या कभी बिट्टिदेव की ओर कभी बाहुबली की ओर देखता रहा। उसे वह रात फिर याद हो आयी। "उस दिन जो आशीर्वाद दिया था उसे भूलना नहीं, भगवन्," कहते हुए उसने बाहुबली को दण्डवत् प्रणाम किया। उसे ध्यान ही न रहा कि उसके चारों ओर लोग भी हैं। उठा तो उसका मुख आनन्द से विभोर था, आँखों में आनन्दाश्रु थे। वहाँ जो लोग थे वे इस रहस्य को समझने में लगे रहे और वह आँसू पोंछकर सिर झुकाये खड़ा हो गया।

चामला और पद्मला को इस दृश्य में कोई दिलचस्पी नहीं थी। कहीं-कहीं पत्थर पर खुदे कइयों के नाम देखे तो दोनों एक शिला पर अपना-अपना नाम खोदने लगीं।

एचलदेवी ने रेविमय्या को इशारे से पास बुलाकर कहा, "छोटे अप्पाजी को

इस दृश्य में जो भी आकर्षण हो, हम तो निवास पर जाते हैं। तुम उसे साथ लेकर आ जाना।" दूसरे लोगों ने भी उसका अनुसरण किया किन्तु अपना-अपना नाम खोदने में लगी पद्मला और चामला की ओर किसी का ध्यान नहीं गया। पहाड़ से उतरने के बाद ध्यान आने पर दो नौकर पहाड़ पर भेजे गये।

नाम खोदती-खोदती पद्मला और चामला ने यों ही मुड़कर देखा तो कोई नहीं था। बसदि में भी कोई नहीं दिखायी पड़ा। बाहर बिट्टिदेव और रेविमय्या को देखकर घबड़ाहट कम हुई, यद्यपि इतने में ही वे पसीने से तर हो गयी थीं। वहाँ आयी और पूछा, "रेविमय्या, वे सब कहाँ गये ?"

"चले गये। आप लोग नहीं गयीं ?"

"हमें पता ही नहीं लगा।"

"तब आप दोनों कहाँ थीं ?"

"बसदि के पीछे पत्थर पर अपने नाम खोद रही थीं।"

"अब यहीं रहिए, एक साथ चलेंगे।"

बिट्टिदेव को बाहुबली को देखने में ही दत्तचित्त पाकर वे थोड़ी देर तो बैठीं किन्तु फिर चामला से न रहा गया, "कितनी देर से देख रहे हो, एक भी दिखायी दी ?"

बिट्टिदेव ने आँख खोलकर उस तरफ़ देखा और रेविमय्या से पूछा, "यहाँ ये दो ही हैं, बाकी लोग कहाँ गये ?"

"वे सब तभी नीचे चले गये।"

"और ये ?"

"ये तुम्हारे साथ के लिए हैं।" चामला चहकी।

"क्यों तुम लोग न होतीं तो क्या मुझे चिड़ियाँ उड़ा ले जातीं ?"

"क्या पता ?"

दोनों नौकर अब वहाँ आ चुके थे और सब निवास की ओर चल पड़े।

शिविर के बरामदे में दण्डनायक बैठे कुछ लोगों से बातचीत कर रहे थे। रेविमय्या, बिट्टिदेव, चामला, पद्मला और दोनों नौकर, सब आये। पद्मला और चामला अन्दर आयीं। मरियाने ने उन्हें देखकर तृप्ति की साँस ली।

दण्डनायक मरियाने के साथ बैठे बात करनेवालों में से एक ने बिट्टिदेव को प्रणाम करके पूछा, "राजकुमार, मुझे भूले नहीं होंगे न ?"

"आप शिवगंगा के धर्मदर्शी हैं न ? सकुशल तो हैं ? आपके घर में सब सकुशल हैं ? वहाँ वाले सब अच्छे हैं ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"सब कुशल हैं। एक वैवाहिक सम्बन्ध पर विचार कर निर्णय लेने को मेरा यहाँ आना एक आकस्मिक घटना है। आप लोगों का दर्शनलाभ मिला, यह अलभ्य-लाभ है।"

"दण्डनायकजी से वातचीत कर रहे थे। अच्छा। अभी आप यहीं हैं न ?"

"कल लौटूंगा।"

"अच्छा।" विट्टिदेव उसे प्रणाम करके अन्दर चला गया।

धर्मदर्शी फिर दण्डनायक के पास आकर बैठ गया।

"कुमार विट्टिदेव का परिचय आपसे कव हुआ, धर्मदर्शीजी ?"

"जव वे वलिपुर के हेग्गड़ेजी के साथ शिवगंगा आये थे तव।"

"क्या कहा ?" दण्डनायक ने कुछ आश्चर्य से पूछा।

उसने फिर उसी वात को समझाया।

"यह वात मुझे मालूम नहीं थी," कहता हुआ वह मूँछ की नोंक काटने लगा।

कुछ समय तक सब मौन रहे।

खवर सुनने पर मौन क्यों ?—यह वात धर्मदर्शी की समझ में नहीं आयी। ठीक ही तो है। दण्डनायक के अन्तरंग को समझना उस सरल स्वभाव के धर्मदर्शी के लिए कैसे सम्भव था ?

चालुक्य चक्रवर्ती त्रिभुवनमल्ल विक्रमादित्य सारी जिम्मेदारी एरेयंग प्रभु को सौंपकर स्वयं निश्चिन्त हो गये। यह उत्तरदायित्व कितना वड़ा है, इस ओर उनका ध्यान नहीं भी गया हो परन्तु एरेयंग प्रभु ने यह जिम्मेदारी लेने के वाद एक क्षणमात्र भी व्यर्थ न खोया। अपने खास तम्बू में गुप्त मन्त्रणा की। उसमें भी अधिक लोगों के रहने से रहस्य खुल जायेगा, यह सोचकर उन्होंने केवल तीन व्यक्ति रखे : महामात्य मानवेगडे कुंदमराय, अंगरक्षक सेना के नायक हिरिय चलिकेनायक। वर्तमान प्रसंग का सूक्ष्म परिचय देने के वाद एरेयंग प्रभु ने इनसे सलाह माँगी।

महामात्य ने कहा, "प्रभो, वड़ी रानी चंदलदेवी को अन्यत्र भेजने का वड़ा ही कठिन उत्तरदायित्व समुचित सुरक्षा व्यवस्था के साथ निभाना होगा; उन्हें, जैसा आपने पहले ही चालुक्य महाराज के समक्ष निवेदन किया था, कल्याण या करहाट भेज देना उचित है। सैन्य की एक दक्ष टुकड़ी भी उनके साथ कर देना अत्यन्त आवश्यक है। मेरा यही सुझाव है।"

यह सुनकर एरेयंग ने कहा; "इस तरह की व्यवस्था करके गोपनीयता वनाये रखना कठिन होगा। इसलिए वड़ी रानी के साथ दो विश्वस्त व्यक्ति वेषांतर में रक्षक वनकर यहाँ से रातों-रात रवाना हो जायें तो ठीक होगा। कल्याण में उतनी

सुरक्षा की व्यवस्था न हो सकेगी जितनी आवश्यक है क्योंकि वहाँ परमारों के गुप्तचरों का जाल फैला हुआ है। इसलिए करहाट में भेज देना, मेरी राय में, अधिक सुरक्षित है।"

कुंदमराय ने कहा, "जैसा प्रभु ने कहा, बड़ी रानी को करहाट भेजना तो ठीक है, परन्तु वेषांतर में केवल दो अंगरक्षकों को ही भेजना पर्याप्त नहीं होगा, रक्षक दल में कम-से-कम चार लोगों का होना उचित होगा। यह मेरी सलाह है।"

प्रभु एरेयंग ने सुझाया, "बड़ी रानी के साथ एक और स्त्री का होना अच्छा होगा न ?"

कुंदमराय ने कहा, "जी हाँ।"

अब तक के मौन श्रोता हिरिय चलिकेनायक ने पूछा, "सेवा में एक सलाह देना चाहता हूँ। आज्ञा हो तो कहूँ ?"

"कहो नायक। तुम हमारे अत्यन्त विश्वस्त व्यक्ति हो, इसीलिए हमने तुमको इस गुप्त मन्त्रणा सभा में बुलाया है।"

"रक्षकों का वेषांतर में भेजा जाना तो ठीक है परन्तु परमार गुप्तचरों का जाल कल्याण से करहाट में भी जाकर फैल सकता है। वास्तव में अब दोनों जगह निमित्तमात्र के लिए रक्षक सेना है। बड़ी रानीजी यदि यहाँ नहीं होंगी तो उनके बारे में जानने का प्रयत्न गुप्तचर पहले कल्याण में करेंगे। यह मालूम होने पर कि वे वहाँ नहीं है, इन गुप्तचरों का ध्यान सहज ही उनके मायके की ओर जायेगा। इसलिए कल्याण और करहाट दोनों स्थान सुरक्षित नहीं। उन्हें किसी ऐसे स्थान में भेजना उचित होगा जिसकी किसी को किसी तरह की शंका या कल्पना तक न हो सके; यह अच्छा होगा।"

प्रभु एरेयंग ने हिरिय चलिकेनायक की ओर प्रशंसा की दृष्टि से देखा और अमात्य की ओर प्रश्नार्थक दृष्टि से, तदन्तर कुंदमराय की ओर।

"सलाह उचित होने पर भी हमारी पोय्सल राजधानी को छोड़कर ऐसा विश्वस्त एवं सुरक्षा के लिए उपयुक्त स्थान अन्यत्र कौन-सा है, प्रभु ?"

"वहाँ भेजना हमें ठीक नहीं लगता। तुमको कुछ सूझता है, नायक ?"

कुछ देर मौन छाया रहा। फिर अमात्य ने कहा, "सोसेऊरु में भेज दें तो कैसा रहेगा प्रभु ? वहाँ तो इस वक़्त युवरानीजी अकेली ही हैं।"

प्रभु एरेयंग ने कहा, "नहीं, युवरानीजी अब दोरसमुद्र में है।"

आश्चर्य से महामात्य की भौंह चढ़ गयी। यह खबर उन्हें क्यों न मिली यह सोच परेशान भी हुए। किन्तु अपनी भावना को छिपाते हुए बोले, "ऐसी बात है, मुझे मालूम ही नहीं था।"

एरेयंग प्रभु ने सहज ही कहा, "गुप्तचरों के द्वारा यह खबर अभी-अभी आयी है; ऐसी दशा में आपको मालूम कब कराया जाता ?" इसके पूर्व महामात्य

ने समझा था कि खबर हमसे भी गुप्त रखी गयी है। महामात्य होने पर
की हर छोटी बात की भी जानकारी होनी क्यों जरूरी है? प्रभु की बात सुनने पर
परेशानी कुछ कम तो अवश्य हुई थी।

"तब तो अब प्रभु की क्या आज्ञा है ?" कुंदमराय ने पूछा।

"बलिपुर के हेग्गड़ेजी के यहाँ भेज दें तो कैसा रहे ?" हिरिय चलिकेनायक ने सुझाव दिया, लेकिन डरते-डरते क्योंकि चालुक्यों की बड़ी रानी को एक साधारण हेग्गड़े के यहाँ भेजने की सलाह देना उसके लिए असाधारण बात थी।

"बहुत ही अच्छी सलाह है। मुझे यह सूझा ही नहीं। वहाँ रहने पर बड़ी रानीजी के गौरव-सत्कार आदि में कोई कमी भी नहीं होगी और किसी को पता भी नहीं लगेगा। ठीक, किन-किनको साथ भेजेंगे, इस पर विचार करना होगा।" कहते हुए उन्होंने अमात्य की ओर प्रश्नार्थक दृष्टि से देखा।

"प्रभु को मुझपर भरोसा हो तो अन्य किसी की जरूरत नहीं। मैं उन्हें बलिपुर में सुरक्षित रूप से पहुँचा दूँगा। प्रभु की ओर से एक गुप्त पत्र भी मेरे साथ रहे तो अच्छा होगा।" हिरिय चलिकेनायक ने कहा।

"ठीक," कहकर प्रभु एरेयंग उठ खड़े हुए।

कुंदमराय ने खड़े होकर कहा, "एक बार प्रभु से या बड़ी रानीजी से बातें करके निर्णय करना अच्छा होगा।" यह एक सूचना थी।

"अच्छा, वही करेंगे। नायक, तुम मेरे साथ चलो," कहकर प्रभु एरेयंग विक्रमादित्य के शिविर की ओर चल पड़े।

योजना के अनुसार सारा कार्य उसी रात सम्पन्न हो गया।

दूसरे दिन सुबह सारे फौजी शिविरों में सनसनी फैल गयी कि बड़ी रानी चंदलदेवीजी युद्ध के शिविर में से अचानक अदृश्य हो गयी हैं; कहाँ गयीं, किसी को मालूम नहीं। बोलनेवालों को रोकनेवाला कोई न था, सुननेवालों के कान खुले ही रहे और सारी खबर प्रभु एरेयंग के पास पहुँचती रही।

प्रभु एरेयंग ने चालुक्यों की अश्व सेना के सैनिकों जोगम और तिक्कम को शिविर में बुलवाया। वे क्यों बुलवाये गये, यह उन्हें न तो मालूम हुआ और न जानने की उनकी कोशिश सफल हुई। गोंक जो इन दोनों को बुला लाया था।

प्रभु एरेयंग ने इन दोनों को सिर से पैर तक देखा, भावपूर्ण दृष्टि से नहीं, यों ही। जरा मुसकराये और कहा, "आप लोगों की होशियारी की खबर हमें मिली है।"

वे दोनों सन्तोष व्यक्त करने की भावना से कुछ हँसे। इस तरह बुलाये जाने पर उनके मन में जो कुतूहल पैदा हुआ था वह दूर हो गया। लम्बी साँस लेकर दोनों ने एक-दूसरे को देखा।

"क्या तुम लोग साधारण सैनिक हो ?"

"नहीं, मैं घुड़सवारों का नायक हूँ। मेरे मातहत एक सौ घुड़सवार हैं।" जोगम ने कहा।

"मेरे मातहत भी एक सौ सिपाही हैं।" तिक्कम ने कहा।

"क्या वे सब जो तुम लोगों के मातहत हैं विश्वासपात्र हैं? तुम लोगों के आदेशों का पालन निष्ठा से करते हैं? क्या इनमें ऐसे भी लोग हैं जो अड़ंगा लगाते हैं।"

"नहीं प्रभु, ऐसे लोग उनमें कोई नहीं।"

"वे लोग तुम्हारे आदेशों का भूल-चूक के बिना पालन करते हैं?"

"इस विषय में संदेह करने की कोई गुंजायश ही नहीं।"

"बहुत अच्छा। तुम लोगों के उच्च अधिकारी कौन हैं?"

"हम जैसे दस लोगों पर एक महानायक होता है। उनके मातहत में एक हजार घुड़सवारों की सेना होती है और दस अश्वनायक भी।"

"तुम लोगों ने यह समझा है कि यह बात हमें मालूम नहीं? तुम्हारे ऐसे अधिकारी कौन हैं? इसके बारे में हमने पूछा था।"

"महानायक वल्लवेग्गड़ेजी," जोगम ने कहा।

"गोंक! उस महानायक को बुला लाओ।"

गोंक झुककर प्रणाम कर चला गया।

"तुम लोगों के मातहत रहनेवाले जैसे तुम्हारे आज्ञाकारी हैं वैसे जिनके अधीन तुम लोग हो उनके प्रति तुम लोग भी निष्ठा के साथ उनकी आज्ञाओं का पालन करते हो न?"

"यदि हम ऐसे न होते तो हमें यह अश्वनायक का पद ही कौन देता, प्रभु? हम शपथ लेकर चालुक्य राजवंशियों के सेवातत्पर निष्ठावान् सेवक बने हैं।"

"तुम जैसे निष्ठावान् सेवकों को पानेवाले चालुक्य राजवंशियों का भाग्य बहुत ही सराहनीय है।"

दोनों खुशी से फूले न समाये। पोय्सल वंशीय राजा हम लोगों के बारे में इतनी अच्छी जानकारी रखते हैं और ऐसी प्रशंसा की बातें करते हैं, यह उनकी खुशी का कारण था। प्रशंसा सुनकर उन लोगों ने सोचा कि उनकी सेना में उन्हें और ज्यादा ऊँचे पद की प्राप्ति होगी। उस कल्पना से मन-ही-मन लड्डू फूटने लगे।

"तुम लोगों को बुलाया क्यों गया है, जानते हो?"

"नहीं प्रभु! आज्ञा हुई, आये।" उन्होंने कहा।

"बड़ी रानी चंदलदेवीजी लापता है, मालूम है?" एरेयंग ने प्रश्न किया।

"समूचे सैनिक शिविर में यही शोरगुल है।" तिक्कम ने कहा।

"यह खाली शोरशराबा नहीं। यह समाचार सच है।" एरेयंग ने स्पष्ट

किया।

"यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।" जोगम ने कहा।

"नहीं तो क्या ? आप जैसे विश्वस्त सेनानायकों के रहते, उसी सेना के शिविर में से बड़ी रानीजी गायब हो जायें तो इससे बढ़कर आश्चर्य की बात क्या होगी ?"

गोंक के साथ आये बल्लवेग्गड़े ने झुककर प्रणाम किया और कहा, "प्रभु ने कहला भेजा था, आया। अब तक प्रभु को प्रत्यक्ष देखने का मौक़ा नहीं मिला था। आज्ञा हो, क्या आदेश है।" उसने खुले दिल से कहा।

"बैठिये, महानायकजी; तुम लोग भी बैठो।" एरेयंग ने आदेश दिया।

महानायक बैठे। उन दोनों ने आगे-पीछे देखा।

"तुम लोग इस समय हमारे बराबर के हो क्योंकि हम यहाँ विचार-विनिमय करने बैठे हैं इसलिए आप बिना संकोच के बैठिए।" एरेयंग ने आश्वासन दिया।

दोनों ने बल्लवेग्गड़े की ओर देखा। उसने सम्मति दी। वे बैठ गये।

एरेयंग ने गोंक को आदेश दिया, "चालुक्य दण्डनायक रविनभट्ट से हमारी तरफ से कहो कि सुविधा हो तो यहाँ पधारने की कृपा करें।" प्रभु का आदेश पाकर गोंक दण्डनायक रविनभट्ट को बुलाने चला गया।

"महानायक, बड़ी रानीजी के यों अदृश्य हो जाने का क्या कारण हो सकता है?" प्रभु एरेयंग ने पूछा।

बल्लवेग्गड़े ने कहा, "मेरी अल्प मति समझ नहीं पा रही है यह कैसे हो सका। सुबह उठते-उठते यह बुरी खबर सुनकर बहुत परेशानी हो रही है; किसी काम में मन नहीं लग रहा है।"

"ऐसा होना तो सहज है। परन्तु हम हाथ समेटे बैठे रहें तो आगे क्या होगा ?"

"सेना की उस टुकड़ी को चारों ओर भेज दिया जाय जिसे खोजबीन करने के लिए ही नियुक्त किया है ?"

"सो तो भेजा जा चुका है। अब तक आपको यह समाचार नहीं मिला, यह आश्चर्य की बात है। खबर मिलते ही, हमारे निकटवर्ती लोगों ने यह सलाह दी और सेना की एक टुकड़ी तुरन्त भेज दी गयी। परन्तु अब कुछ सावधानी के साथ विचार करने पर हमें ऐसा लग रहा है कि यों लोगों को बेहिसाब भेजने से लाभ के बदले हानि ही ज्यादा हो सकती है। मगर अब तो जिन्हें भेज दिया गया है उन्हें वापस बुलाया नहीं जा सकता। उसे रहने दें। अब क्या करें ?"

"किस प्रसंग में, प्रभु ?"

"उनके गायब होने का कारण जानने के लिए।"

"मैं अकेला कैसे क्या जान सकता हूँ ? अन्य सेनानायकों, नायकों, पटवारियों और अश्व सेना के नायकों को बुलवाकर विचार-विनिमय करना उचित है।"

"वह भी ठीक है। देखें, दण्डनायकजी को आने दीजिए। जैसा वे कहेंगे वैसा करेंगे।" एरेयंग ने कहा।

"सन्निधान क्या कहते हैं ?" बल्लवेग्गड़े ने पूछा।

"उन्हें दुःख और क्रोध दोनों हैं। अब वे किसी पर विश्वास करने की स्थिति में नहीं हैं। अब हमें ही आपस में मिलकर विचार-विनिमय करके पता लगाना होगा; और यदि कोई अनहोनी बात हुई हो तो वह किसके द्वारा हुई है इसकी जानकारी प्राप्त करनी होगी। इन्हीं लोगों को उनके सामने खड़ा कर उन्हीं के मुँह से निर्णय प्राप्त करना होगा कि इस सम्बन्ध में क्या कार्रवाई की जाये। तब तक हम सन्निधान के सामने कुछ नहीं कह सकेंगे। कर्नाटक महासाम्राज्य के इस अभेद्य सेना शिविर से रातों-रात बड़ी रानी अदृश्य हो गयी हो तो ऐसी सेना का रहना और न रहना दोनों बराबर है। महासन्निधान यही कहेंगे। उनका दुःख और क्रोध से जलता हुआ मुँह देखा न जा सकेगा।"

दण्डनायक राविनभट्ट के आते ही एरेयंग ने बात बन्द कर दी और उठकर कहा, "आइये अमात्य, हम खुद ही आना चाहते थे; परन्तु यहाँ विचार-विनिमय करते रहने के कारण आपको कष्ट देना पड़ा।"

"नहीं प्रभो, आना तो मुझे चाहिए; आपको नहीं। यह खबर मिलते ही वास्तव में किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया और खुद सन्निधान का दर्शन करने गया। यह मालूम होने पर कि दर्शन किसी को नहीं मिलेगा, तब आपके दर्शन के लिए निकला ही था कि इतने में आदेश मिला।" राविनभट्ट ने कहा।

"बैठिए," कहते हुए स्वयं एरेयंग भी बैठे। शेष लोग भी बैठे। फिर विचार-विनिमय आरम्भ हुआ।

प्रभु एरेयंग ने ही बात आरम्भ की। "चालुक्य दण्डनायकजी, आपके सेना नायकों में, सुनते हैं, ये बल्लवेग्गड़ेजी बहुत होशियार हैं। साहणीयों में भी, सुनते हैं, ये दोनों बड़े बुद्धिमान् हैं। वे भी मौजूद हैं। आपके आने से पहले इसी विषय पर बात चल रही थी। तब बल्लवेग्गड़े ने बताया था कि सभी सेनानायकों, पटवारियों और अश्वनायकों को बुलाकर विचार-विनिमय करना अच्छा होगा। अगर आप भी सहमत हों तो वैसा ही करेंगे।" एरेयंग ने कहा।

दण्डनायक राविनभट्ट ने एकदम कुछ नहीं कहा। उनके मन में आया कि मेरे आने से पहले, मुझसे विचार-विनिमय करने से पूर्व मेरी ही सेना के तीन लोगों को बुलवाने में कोई खास उद्देश्य होना चाहिए, उद्देश्य कुछ भी हो, ऐसे प्रसंग में अधिक लोगों का न रहना ही ठीक है, इसीलिए एरेयंग प्रभु ने ऐसा किया होगा। बोले, "अब हम पाँच लोग विचार-विनिमय कर लें; कोई हल न निकला तो तब

सोचेंगे कि और किस-किसको बुलवाना चाहिए।"

एरेयंग प्रभु ने प्रशंसा की दृष्टि से चालुक्य दण्डनायक की ओर देखा। "किस-किसके द्वारा बड़ी रानी का अदृश्य होना सम्भव हुआ है, इस सम्बन्ध में आपको कुछ सूझ रहा है, दण्डनायकजी?"

दण्डनायक राविनभट्ट ने कहा, "हो सकता है कि किसी कारण से बिना बताये वे खुद अदृश्य हो गयी हों।"

"यों अदृश्य हो जाने का कोई लक्ष्य, कोई उद्देश्य होना चाहिए न?" एरेयंग ने प्रश्न किया।

"हाँ, यों अदृश्य हो जाने में उनका उद्देश्य कुछ नहीं होगा अतः वे स्वयं प्रेरणा से तो कहीं गयी न होंगी।"

"किसी की आँखों में पड़े बिना यों चले जाना भी कैसे सम्भव हुआ? यह तो सैन्य शिविर है। रात-दिन लगातार पहरा रहता है। सब ओर पहरेदारों की नजर रहती है।" बल्लवेग्गड़े ने कहा।

"समझ लें कि जिन्होंने देखा उनका मुँह बन्द करने के लिए हाथ गरम कर दिया गया हो, तब क्या हमारी संरक्षक सेना में ऐसे भी लोग हैं?" एरेयंग ने सवाल किया।

राविनभट्ट ने धड़ल्ले से कहा, "चालुक्यों की सेना में ऐसे लोग नहीं हैं।"

"आपकी सेना ने आपके मन में ऐसा विश्वास पैदा कर दिया है तो यह आपकी दक्षता का ही प्रतीक है। यह तो सन्तोष का विषय है। लेकिन क्या आपका यह अनुमान है कि बनवासियों, पोय्सलों, करहाटों की सेना में ऐसे लोग होंगे?"

"यह मैंने अपने लोगों के बारे में कहा है। इसका यह मतलब नहीं कि मुझे दूसरों की सेनाओं पर शंका है।"

"करहाट की बात आयी; इसलिए मुझे कुछ कहने को जी चाहता है। कहूँ? यद्यपि वह केवल अनुमान है।" बल्लवेग्गड़े ने कहा।

"कहिए, महानायकजी।"

"हमारे सैनिकों की आँखों में धूल झोंककर परमारों की सेना युद्धक्षेत्र से खिसक गयी थी, इसलिए यह सम्भव है कि बड़ी रानीजी ने अपने मायके की तरफ के कुछ सैनिकों से सलाह-मशविरा करके यहाँ शिविर में रहना क्षेमदायक न समझकर, मायके जाना सही मानकर, यह खबर लोगों में फैलने के पहले ही बिलकुल गुप्तरूप से जाकर रहना सुरक्षा के ख्याल से उत्तम समझा हो, बल्कि यह काम उन्होंने वहाँ के लोगों की प्रेरणा से ही किया हो।" बल्लवेग्गड़े ने अपना अनुमान व्यक्त किया।

"हो सकता है। फिर भी, इतना तो है ही कि बड़ी रानीजी सन्निधान को

"मैं अकेला कैसे क्या जान सकता हूँ ? अन्य सेनानायकों, नायकों, पटवारियों और अश्व सेना के नायकों को बुलवाकर विचार-विनिमय करना उचित है।"

"वह भी ठीक है। देखें, दण्डनायकजी को आने दीजिए। जैसा वे कहेंगे वैसा करेंगे।" एरेयंग ने कहा।

"सन्निधान क्या कहते हैं ?" वल्लवेगड़े ने पूछा।

"उन्हें दुःख और क्रोध दोनों हैं। अब वे किसी पर विश्वास करने की स्थिति में नहीं हैं। अब हमें ही आपस में मिलकर विचार-विनिमय करके पता लगाना होगा; और यदि कोई अनहोनी बात हुई हो तो वह किसके द्वारा हुई है इसकी जानकारी प्राप्त करनी होगी। इन्हीं लोगों को उनके सामने खड़ा कर उन्हीं के मुँह से निर्णय प्राप्त करना होगा कि इस सम्बन्ध में क्या कार्रवाई की जाये। तब तक हम सन्निधान के सामने कुछ नहीं कह सकेंगे। कर्नाटक महासाम्राज्य के इस अभेद्य सेना शिविर से रातों-रात बड़ी रानी अदृश्य हो गयी हों तो ऐसी सेना का रहना और न रहना दोनों बराबर है। महासन्निधान यही कहेंगे। उनका दुःख और क्रोध से जलता हुआ मुँह देखा न जा सकेगा।"

दण्डनायक राविनभट्ट के आते ही एरेयंग ने बात बन्द कर दी और उठकर कहा, "आइये अमात्य, हम खुद ही आना चाहते थे; परन्तु यहाँ विचार-विनिमय करते रहने के कारण आपको कष्ट देना पड़ा।"

"नहीं प्रभो, आना तो मुझे चाहिए; आपको नहीं। यह खबर मिलते ही वास्तव में किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया और खुद सन्निधान का दर्शन करने गया। यह मालूम होने पर कि दर्शन किसी को नहीं मिलेगा, तब आपके दर्शन के लिए निकला ही था कि इतने में आदेश मिला।" राविनभट्ट ने कहा।

"बैठिए," कहते हुए स्वयं एरेयंग भी बैठे। शेष लोग भी बैठे। फिर विचार-विनिमय आरम्भ हुआ।

प्रभु एरेयंग ने ही बात आरम्भ की। "चालुक्य दण्डनायकजी, आपके सेना नायकों में, सुनते हैं, ये वल्लवेगड़ेजी बहुत होशियार हैं। साहणीयों में भी, सुनते हैं, ये दोनों बड़े बुद्धिमान् हैं। वे भी मौजूद हैं। आपके आने से पहले इसी विषय पर बात चल रही थी। तब वल्लवेगड़े ने बताया था कि सभी सेनानायकों, पटवारियों और अश्वनायकों को बुलाकर विचार-विनिमय करना अच्छा होगा। अगर आप भी सहमत हों तो वैसा ही करेंगे।" एरेयंग ने कहा।

दण्डनायक राविनभट्ट ने एकदम कुछ नहीं कहा। उनके मन में आया कि मेरे आने से पहले, मुझसे विचार-विनिमय करने से पूर्व मेरी ही सेना के तीन लोगों को बुलवाने में कोई खास उद्देश्य होना चाहिए, उद्देश्य कुछ भी हो, ऐसे प्रसंग में अधिक लोगों का न रहना ही ठीक है, इसीलिए एरेयंग प्रभु ने ऐसा किया होगा। बोले, "अब हम पाँच लोग विचार-विनिमय कर लें; कोई हल न निकला तो तब

सोचेंगे कि और किस-किसको बुलवाना चाहिए।"

एरेयंग प्रभु ने प्रशंसा की दृष्टि से चालुक्य दण्डनायक की ओर देखा। "किस-किसके द्वारा बड़ी रानी का अदृश्य होना सम्भव हुआ है, इस सम्बन्ध में आपको कुछ सूझ रहा है, दण्डनायकजी ?"

दण्डनायक राविनभट्ट ने कहा, "हो सकता है कि किसी कारण से बिना बताये वे खुद अदृश्य हो गयी हों।"

"यों अदृश्य हो जाने का कोई लक्ष्य, कोई उद्देश्य होना चाहिए न ?" एरेयंग ने प्रश्न किया।

"हाँ, यों अदृश्य हो जाने में उनका उद्देश्य कुछ नहीं होगा अतः वे स्वयं प्रेरणा से तो कहीं गयी न होंगी।"

"किसी की आँखों में पड़े बिना यों चले जाना भी कैसे सम्भव हुआ ? यह तो सैन्य शिविर है। रात-दिन लगातार पहरा रहता है। सब ओर पहरेदारों की नजर रहती है।" बल्लवेग्गड़े ने कहा।

"समझ लें कि जिन्होंने देखा उनका मुँह बन्द करने के लिए हाथ गरम कर दिया गया हो, तब क्या हमारी संरक्षक सेना में ऐसे भी लोग हैं ?" एरेयंग ने सवाल किया।

राविनभट्ट ने धड़ल्ले से कहा, "चालुक्यों की सेना में ऐसे लोग नहीं हैं।"

"आपकी सेना ने आपके मन में ऐसा विश्वास पैदा कर दिया है तो यह आपकी दक्षता का ही प्रतीक है। यह तो सन्तोष का विषय है। लेकिन क्या आपका यह अनुमान है कि बनवासियों, पोय्सलों, करहाटों की सेना में ऐसे लोग होंगे ?"

"यह मैंने अपने लोगों के बारे में कहा है। इसका यह मतलब नहीं कि मुझे दूसरों की सेनाओं पर शंका है।"

"करहाट की बात आयी; इसलिए मुझे कुछ कहने को जी चाहता है। कहूँ ? यद्यपि वह केवल अनुमान है।" बल्लवेग्गड़े ने कहा।

"कहिए, महानायकजी।"

"हमारे सैनिकों की आँखों में धूल झोंककर परमारों की सेना युद्धक्षेत्र से खिसक गयी थी, इसलिए यह सम्भव है कि बड़ी रानीजी ने अपने मायके की तरफ के कुछ सैनिकों से सलाह-मशविरा करके यहाँ शिविर में रहना क्षेमदायक न समझकर, मायके जाना सही मानकर, यह खबर लोगों में फैलने के पहले ही बिलकुल गुप्तरूप से जाकर रहना सुरक्षा के ख्याल से उत्तम समझा हो, बल्कि यह काम उन्होंने वहाँ के लोगों की प्रेरणा से ही किया हो।" बल्लवेग्गड़े ने अपना अनुमान व्यक्त किया।

"हो सकता है। फिर भी, इतना तो है ही कि बड़ी रानीजी सन्निधान को

भी बताये बिना चली गयी है; इस स्थिति में हम यह मानने के लिए तैयार नहीं कि इस तरह जाने में उनकी सम्मति थी।" एरेयंग ने कहा।

"मुझे कुछ और सूझता नहीं। आपका कथन भी ठीक है।" बल्लवेग्गड़े ने कहा। थोड़ी देर तक कोई कुछ न बोला।

प्रभु एरेयंग ने कहा, "गोंक। चाविमय्या को बुला लाओ।" गोंक चला गया। दण्डनायक राविनभट्ट ने पूछा, "यह चाविमय्या कौन है?"

एरेयंग ने कहा, "वह हमारे गुप्तचर दल का नायक है। शायद उसे कोई नयी खबर मिली हो;" फिर नायक की ओर मुखातिब होकर पूछा, "आप कुछ भी नहीं कह रहे हैं; क्या आपको कुछ सूझ नहीं रहा है?"

"प्रभो! आप जैसों को और चालुक्य दण्डनायक-जैसों को भी जब कुछ नहीं सूझ रहा है तो हम जैसे साधारण व्यक्तियों को क्या सूझेगा?" तिक्कम ने कहा।

"कभी-कभी अन्तःप्रेरणा से किसी के मुँह से बड़े पते की बात निकल जाती है। इसलिए यहाँ व्यक्ति मुख्य नहीं; किस मुँह से कैसा विचार निकलता है, यह मुख्य है। इससे यह बात मालूम होते ही आपके भी मन में कुछ विचार, अनुमान, उत्पन्न हुआ होगा, है न?" कुछ छेड़ने के अन्दाज से एरेयंग ने चेतावनी दी।

"हाय, समूचे शिविर में प्रत्येक मुँह से बातें निकलती हैं लेकिन ऐसी बातों से क्या पता लग सकता है।" जोगम ने कहा।

"ऐसी कौन-सी बातें आपके कानों में पड़ीं?" एरेयंग ने पूछा।

इतने में चाविमय्या आया। झुककर प्रणाम किया और दूर खड़ा हो गया।

"क्या कोई नयी बात है, चाविमय्या?"

"कुछ भी मालूम नहीं पड़ा, प्रभो।"

"इन लोगों को तुम जानते हो?" एरेयंग ने तिक्कम और जोगम की ओर उँगली से इशारा किया।

"मालूम है।"

"तुम लोगों को चाविमय्या का परिचय है?"

"नहीं," दोनों ने कहा।

एरेयंग हँस पड़ा। चूँकि हँसने लायक कोई बात नहीं थी इसलिए लोगों ने उनकी ओर देखा।

"अश्व सेना के नायकों और सैन्य टुकड़ी के नायकों को सदा सर्वदा चौकन्ना रहना चाहिए न?"

"हाँ, प्रभो।"

"जब आप लोग यह कहते हैं कि आप लोगों का परिचय चाविमय्या से नहीं है, तब यही समझना होगा कि आप लोग चौकन्ने नहीं रहे।"

"जब हमने इन्हें देखा ही नहीं तो हमें पता भी कैसे लगे?" तिक्कम ने

कहा।

"परन्तु वह तुम लोगों को जानता है न ? जब उसने तुम लोगों को देखा तब तुम लोगों को भी उसे देखना चाहिए था न ?"

"हो सकता है, देखा हो; परन्तु गौर नहीं किया होगा।"

"सैनिक लोगों को सब कुछ गौर से देखना चाहिए। तभी न हमारे उनपर रखे विश्वास का फल मिलेगा ?"

"हम सतर्क रहते हैं। पर इनके विषय में ऐसा क्यों हुआ, पता नहीं, प्रभो।"

"ख़ैर, छोड़िए। आइन्दा हमेशा सतर्क और चौकन्ना रहना चाहिए, इसीलिए चाविमय्या को आप लोगों के समक्ष बुलवाया। अच्छा, चाविमय्या, तुमने इन लोगों को कहाँ देखा था ? कब देखा था ?"

"आज सुबह, इनके शिविर में, इनके तम्बू के पास।"

"तुम उधर क्यों गये ?"

चाविमय्या ने इर्द-गिर्द देखा।

"अच्छा, रहने दो। कारण सबके सामने बता नहीं सकोगे न ? कोई चिन्ता नहीं, छोड़ो।"

"ऐसा कुछ नहीं प्रभो। आज्ञा हुई थी, उसका पालन करने जा रहा था। रास्ते में ये लोग नज़र आये। इनके शिविर के पास और तीन चार लोग थे। बड़ी रानीजी के गायब होने के बारे में बातचीत कर रहे थे। सबमें कुतूहल पैदा हुआ उस समाचार से। मुझे भी कुतूहल हुआ तो मैं वहीं ठहर गया।"

"तो, खबर सुनते ही तुम लोगों में भी कोई कारण की कल्पना हुई होगी न ?" साहणी लोगों से एरेयंग ने पूछा।

"कुछ सूझा ज़रूर; बाद को लगा कि यह सब पागलपन है।"

"हमसे कह सकते हैं न ? कभी-कभी इस पागलपन से भी कुछ पता-अन्दाजा लग सकता है। कहिए, याद है न ?"

"तब क्या कहा सो तो स्मरण नहीं। पर जो विचार आया वह याद है।"

"कहिए।"

दोनों ने एक-दूसरे को देखा।

"उसके लिए आगा-पीछा क्यों ? धैर्य के साथ कहिए। कुछ भी हो; तुम लोगों में भी इस बारे में कोई प्रतिक्रिया सहज ही हुई होगी।" वल्लवेगड़े ने उन्हें उकसाया।

"और कुछ नहीं। वह कल्पना भी एक पागलपन है। हमारी बड़ी रानीजी को परमारों की तरफ के लोग आकर चोरी से उड़ा ले गये होंगे—ऐसा लगा।" तिक्कम ने कहा।

"मुझे भी ऐसा होना सम्भव-सा लगा। शेष और दो व्यक्तियों ने स्वीकार नहीं किया। इस बारे में कुछ चर्चा हुई। बाद को हमें लगा कि हमारी यह कल्पना गलत है।" जोगम ने कहा।

"ठीक है। तुम लोगों ने अपने मन में जो भाव उत्पन्न हुए वे बताये। अच्छा, चाविमय्या, ये जो कहते हैं, क्या वह ठीक है?" एरेयंग ने पूछा।

चाविमय्या ने कहा, "ठीक है।"

"बाकी लोगों में किस-किसने क्या-क्या कहा?"

"कुछ लोगों ने केवल आश्चर्य प्रकट किया। कुछ ने दुःख प्रकट किया। परन्तु अनेकों को यह मालूम ही नहीं था कि युद्ध शिविर में वड़ी रानीजी हैं भी। अनेकों को बड़ी रानीजी के गायब होने की ख़बर मिलने के बाद ही मालूम हुआ कि वे आयी हुई थीं।"

"अच्छा चाविमय्या, तुम जा सकते हो। तुम लोग भी जा सकते हो।" एरेयंग ने साहणीयों से कहा।

वे लोग चले गये। वे लोग शिविर में जब आये थे तब जिन भावनाओं का बोझा साथ लाये थे, वह थोड़ी देर के लिए जरूर भूल-से गये थे। मगर जाते वक्त उससे भी एक भारी बोझ-सा लगने लगा।

"गोंक! इन दोनों पर और इनके मातहत सैनिकों पर कड़ी नज़र रखने और सतर्क रहने के लिए हेग्गड़े सिंगमय्या से कहो।" एरेयंग ने आज्ञा दी। गोंक चला गया।

राविनभट्ट और वल्लवेग्गड़े विचित्र ढंग से देख रहे थे।

"दण्डनायकजी! अब मालूम हुआ? विद्रोह का बीज हमारे ही शिविर में बोया गया है।" एरेयंग ने कहा।

"मुझे स्पष्ट नहीं हुआ।" राविनभट्ट ने कहा।

"बड़ी रानीजी शिविर में हैं, इसका पता ही बहुतों को नहीं। ऐसी हालत में उनके गायब होने की ख़बर फैलने पर लोगों के मन मे यह बात उठी कि उन्हे शत्रु उड़ा ले गये होंगे। जब यह बात उनके मन में उठी तो सहज ही सोचना होगा कि बड़ी रानीजी शिविर में हैं,--इतना ही नहीं, उनके शिविर में होने की बात शत्रुओं को भी मालूम हो गयी है। यह उसी हालत में सम्भव है कि जब लोग ऐसी बातों की जानकारी रखते ही हों। इसलिए ये नायक विश्वास करने योग्य नहीं। इन्हीं लोगों की तरफ से शत्रुओं को यह खबर मिली है कि बड़ी रानीजी युद्ध शिविर में हैं। इसमें सन्देह ही नहीं। इन सब बातों को बाद में उन्हीं के मुँह से निकलवाएँगे। मेरे ये विचार ठीक लगें तो आपके महाराज उनको जो दण्ड देना चाहें, दें। बल्लवेग्गड़ेजी, आप जैसे लोगों को, जो उत्तरदायित्वपूर्ण स्थान पर रहते हैं, केवल निष्ठा रखना काफी नहीं, आप लोगों को अपने मातहत वालों से भी सतर्क

रहना चाहिए। अब देखिये, आपकी एक हज़ार अश्व सेना में दो सौ सैनिक इस तरह के फिजूल साबित हो सकते हैं। अब आइन्दा आपको बहुत होशियार एवं सतर्क रहना चाहिए।"

"जो आज्ञा, प्रभो। जिस पत्तल में खाये उसी में छेद करनेवाले नमकहराम कहे जाते हैं।"

"मनुष्य लालची होता है। जहाँ ज्यादा लाभ मिले उधर झुक जाता है। ऐसी स्थिति में निष्ठा पीछे रह जाती है। इसलिए जब हम उन लोगों से निष्ठा चाहते हैं, तब हमें भी यह देखना होगा कि वे तृप्त और सन्तुष्ट रहें। उन्हें अपना बनाने की कोशिश करना और उन्हें खुश और सन्तुष्ट रखने के लिए उपयुक्त रीति से बरतना भी जरूरी है। केवल अधिकार और दर्प व हाकिमाना ढंग दिखाने पर उल्टा असर हो सकता है; इसलिए अपने अधीन रहनेवालों में हैसियत के अनुसार बड़े-छोटे का फरक रहने पर भी, उनसे व्यवहार करते समय इस तारतम्य भाव को प्रकट होने दें तो उसका उल्टा असर पड़ सकता है। यह सब हमने अनुभव से सीखा है। अच्छा अब आप जा सकते हैं। आइन्दा बहुत होशियारी से काम लेना चाहिए।"

"जो आज्ञा।" दोनों को प्रणाम करके बल्लवेग्गड़े चला गया।

"प्रभो! अब द्रोहियों का पता लगने पर भी बड़ी रानीजी का पता लगेगा कैसे?" राविनभट्ट ने पूछा।

"द्रोहियों का पता लगाने के ही लिए यह सब कुछ किया जा रहा है।"

"मतलब?"

"जो कुछ भी किया गया है, वह सब सन्निधान की स्वीकृति से ही किया गया है।"

"क्या-क्या हुआ है, यह पूछ सकते हैं?"

"हम सब सन्निधान के आज्ञाकारी हैं न?"

"मुझपर विश्वास नहीं?"

"इन सब बातों को उस दृष्टि से नहीं देखना चाहिए, दण्डनायकजी।"

"सन्निधान की आज्ञा का जितना अर्थ होता है, उससे अधिक कुछ करना गलत होता है।"

"मतलब?"

"जो कुछ भी जिस किसी को कहना हो उसे सन्निधान स्वयं बतायेंगे। सब बातें जानने पर भी कहने का अधिकार मुझे या आपको नहीं। इसलिए सन्निधान स्वयं उपयुक्त समय में आपको बता देंगे।"

"अब आगे का काम?"

"कल गुप्त मन्त्रणा की सभा होगी। उसमें फैसला करेंगे।"

कहती माचिकब्बे हाथ मे पूजा-सामग्री का थाल और फूलों की टोकरी लेकर शान्तला को साथ ले बाहर निकली; दरवाजे के पास पहुँची ही थी कि नौकर लेंक बोला, "कोई इधर आ रहे हैं।"

माचिकब्बे ने अहाते की तरफ देखा। एक छोटी उम्र की स्त्री और अधेड उम्र का पुरुष अन्दर आ रहे है। बहुत दूर की यात्रा की थी, इससे वे थके मालूम पडते थे। उस स्त्री का सिर धूल भरा, बाल अस्तव्यस्त और चेहरा पसीने मे तर था।

माचिकब्बे ने कहा, "लेंक, गालब्बे को बुला ला।" लेंक एकदम भागा अन्दर। माचिकब्बे वही खडी रही। नवागतों के पास पहुँचने से पहले ही अन्दर से गालब्बे आ गयी। इतने में शान्तला चार कदम आगे बढ़ी। माचिकब्बे ने इन नवागन्तुकों का स्वागत मुसकुराहट के साथ किया। इर्द-गिर्द नजर दौड़ाकर देखा। कहा, "आइये, आप कौन है, यह तो नहीं जानती, फिर भी इतना कह सकती हूँ कि आप लोग बहुत दूर से आये हैं। मैं बसदि में पूजा के लिए निकली हूँ इसलिए, अतिथियों को छोडकर मालकिन चली गयी, ऐसा मत सोचिए। गालब्बे, इन्हें इनकी सहूलियत के अनुसार सब व्यवस्था करो। हम जल्दी ही लौटेंगी। लौटते ही बात करेंगे। समझी।" गालब्बे को आदेश देकर उसने नवागतों से कहा, "आप निःसंकोच रहिए। मैं शीघ्र लौटूंगी। चलो अम्माजी।" और माचिकब्बे शान्तला के साथ चल पड़ी। लेंक ने उनका अनुगमन किया।

नवागतों को साथ लेकर गालब्बे अन्दर गयी। माचिकब्बे द्वारा उनके लिए निर्दिष्ट कमरों में उन्हें ठहराया। उनकी आवश्यकताओं की सारी व्यवस्था की। दोनों यात्रा की थकावट दूर करने के लिए विश्राम करने लगे। थोड़ी ही देर में गालब्बे नवागता के कमरे में आयी और बोली, "पानी गरम है, तैलस्नान करना हो तो मैं आपकी सेवा में हाजिर हूँ।"

"मैं स्वयं नहा लूँगी।"

"तो मैं पानी तैयार रखूँ? तैल-स्नान करती हों तो वह भी तैयार रखूँगी। आपको एरण्डी का तेल चाहिए या नारियल का?" गालब्बे ने पूछा।

"मुझे तेल-वेल नहीं चाहिए।" देवी ने कहा।

"यह पहाड़ी देश का स्नानागार है। यहाँ फिसलने का डर रहता है। यदि कुछ चाहिए तो बता दीजियेगा। मैं यहीं दरवाज़े पर हूँ। मेरा नाम गालब्बे है।"

"तुम्हारा नाम तो जानती हूँ। तुम्हारी हेग्गड़ती ने पुकारा था न?"

"धुली रेशमी साड़ी तैयार है जो अतिथियों ही के लिए रखी है। ले आती हूँ।" गालब्बे ने कहा।

"मेरे पास अपने कपड़े हैं। उस अलमारी के ऊपर के खाने में रखे हैं।"

"अभी लायी," कहती हुई गालब्बे दौड़ पड़ी।

'अभ्यास के कारण खाली हाथ आयी थी। आवश्यक वस्तुओं को साथ ले जाने की आदत नहीं। परन्तु अब रहस्य तो खुलना नहीं चाहिए न? आखिर यह तो नौकरानी है, इतनी दूर तक वह सोच नहीं पायेगी। कुछ भी हो, आगे से होशियार रहना होगा।' देवी ने मन में सोचा। इतने में गालब्बे वस्त्र लेकर आयी और वहाँ अरगनी पर टाँग दरवाजे के बाहर ठहर गयी।

मन्दिर से शीघ्र लौट आयी माचिकब्बे। अपने अतिथि को नहाने गयी जान-कर अतिथि महाशय से बात करने लगी।

"आपके आने की बात तो मालूम थी। फिर भी हेग्गड़ेजी इस स्थिति में नहीं थे कि वे यहाँ ठहरते।"

"हमारे आने की बात आपको मालूम थी?"

"हाँ, श्रीमद्युवराज ने पहले ही खबर भेजी थी। परन्तु यह मालूम नहीं था कि आप लोग आज इस वक्त पधारेंगे। वैसे हम करीब एक सप्ताह से आप लोगों की प्रतीक्षा में है।"

"रास्ता हमारी इच्छा के अनुसार तो तय नही हो सकता था, हेग्गड़तीजी। इसके अलावा, देवीजी को तो इस तरह की यात्रा की आदत नही है। इसीलिए हम देर से आ सके।"

"सो भी हमें मालूम है।"

"तो देवीजी कौन है यह भी आप जानती हैं?"

"यह सब चर्चा का विषय नहीं। आप लोग जिस तरह से अपना परिचय देंगे उसी तरह का व्यवहार आप लोगों के साथ करने की आज्ञा दी है हेग्गड़ेजी ने।"

"मैं यहाँ नहीं रहूँगा, हेग्गड़तीजी। देवीजी को सुरक्षित यहाँ पहुँचाकर लौटना ही मेरा काम है। उन्हें सही-सलामत आपके हाथों सौंप दिया है। हेग्गड़ेजी के लौटते ही उनसे एक पत्र लेकर एक अच्छे घोड़े से मुझे जाना होगा। मेरा शरीर यहाँ है और मन वहाँ प्रभुजी के पास।"

"ठीक ही तो है। इसीलिए प्रभु-द्रोहि-दण्डक अर्थात् प्रभु के प्रति विश्वास-घात करनेवालों का घोर शिक्षक, प्रसिद्ध विशेषण आपके लिए अन्वर्थ है।" माचिकब्बे ने कहा।

वह चकित हो हेग्गड़ती की ओर देखने लगा।

"आप चकित न हों, हमें सबकुछ मालूम है।"

अतिथि देवी के स्नान की सूचना अतिथि महाशय को देने आयी गालब्बे ने वहाँ मालकिन को देखा तो उसने अपने चलने की गति धीमी कर दी, यद्यपि उसकी पैजनियाँ चुप न रह सकीं।

हेग्गड़तीजी समझ गयीं कि देवीजी का नहाना-धोना हो चुका है। "आप नहाने जाते हों तो गालब्बे आपके लिए पानी तैयार कर देगी।" कहती हुई

हेग्गड़ती चली गयी।

स्नान करते वक्त इस हिरिय चलिकेनायक को अचानक कुछ सूझा। इसलिए स्नान शीघ्र समाप्त करना पड़ा। मार्ग की थकावट की ओर उसका ध्यान ही नहीं गया। गुसलखाने से जल्दी निकला और गालब्बे से बोला, "कुछ क्षणों के लिए हेग्गड़तीजी से अभी मिलना है।"

"आपका शुभनाम ?"

"नायक।"

"कौन-सा नायक ?"

" 'नायक' कहना काफी है।" उसने हेग्गड़तीजी को खबर दी। वे आयीं। हिरिय चलिकेनायक ने इर्द-गिर्द देखा। माचिकब्बे ने गालब्बे को आवाज दी, वह आयी, तो कहा, "देखो, अम्माजी क्या कर रही है।"

इसके बाद नायक हेग्गड़तीजी के नजदीक आया और कहा, "इन देवीजी का परिचय आपको और हेग्गड़ेजी को है, यह बात देवीजी को मालूम नहीं होनी चाहिए। इस विषय में होशियार रहना होगा, यह प्रभु की आज्ञा है।"

"इसीलिए हमने यह बात अपनी बेटी से भी नहीं कही।" माचिकब्बे ने कहा।

"नहाते वक्त भी यह निवेदन उसी क्षण करना आवश्यक जान पड़ा। इसे आप अन्यथा न समझें।" नायक ने विनीत भाव से कहा।

"ऐसा कहीं हो सकता है? ऐसी बातों में भूल-चूक होना स्वाभाविक है। इसलिए होशियार करते रहना चाहिए। बार-बार कहकर होशियार कर देना अच्छा ही है। अच्छा, अब और कुछ कहना है?"

"कुछ नहीं।"

"देवीजी को अकेलापन नहीं अखरे इसलिए मैं चलती हूँ। लॆंक को भेज दूँगी। आपको कोई आवश्यकता हो तो उससे कहिएगा।" कहकर माचिकब्बे चली गयी।

अब हिरिय चलिकेनायक वास्तव में निश्चिन्त हो गया और हेग्गड़ेजी के शीघ्र आगमन की प्रतीक्षा में बैठा रहा।

हेग्गड़ेजी के घर का आतिथ्य राजमहल के आतिथ्य से कम नहीं रहा। इनके आने के दो-एक दिन बाद ही हेग्गड़ेजी आये।

महारानी चन्दलदेवीजी को अपने पास सुरक्षित रूप से पहुँचाने-सौंपने की पुष्टि में एक सांकेतिक पत्र देकर हेग्गड़े मारसिंगय्याजी ने हिरिय चलिकेनायक को बिदा किया। महारानी चन्दलदेवीजी ने भी यथोचित आदर-गौरव के साथ यहाँ तक ले आने और सुरक्षित रूप से पहुँचाने के लिए अपनी तृप्ति एवं सन्तोष व्यक्त करके नायक को महाराज के लिए एक सांकेतिक पत्र दे बिदा किया।

मरियाने दण्डनायक ने युद्ध-शिक्षण के उद्देश्य से कुमार बल्लाल को दोरसमुद्र में ठहराया, यह तो विदित ही है। परन्तु बल्लाल कुमार की शारीरिक शक्ति इस शिक्षण के लिए उतनी योग्य नहीं थी। फिर भी उसने शिक्षा नहीं पायी, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। शारीरिक बल की ओर विशेष ध्यान रखने के कारण मरियाने दण्डनायक ने राजकुमार को ऐसी ही शिक्षा दी जिसमें बल-प्रयोग की उतनी आवश्यकता नहीं पड़ती थी। तलवार चलाना, धनुर्विद्या आदि सिखाने का प्रयत्न भी चला था। बहुत समय तक अभ्यास कर सकने की ताकत राजकुमार में नहीं, यह जानने के बाद तो शिक्षण देने का दिखावा भर हो रहा था। परन्तु उसे और उससे बढ़कर चामव्वे को एक बात की बहुत तृप्ति थी। जिस उद्देश्य से राजकुमार को वहाँ ठहरा लिया गया था उसमें वह सफल हुई थी। राजकुमार बल्लाल का मन पद्मला पर अच्छी तरह जम गया था। कभी-कभी चामला पर भी उसका मन आकृष्ट होता था। परन्तु इस ओर उसके माँ-बाप का ध्यान नहीं गया था क्योंकि यह निर्णय चामव्वे का ही था कि उसने चामला को जन्म बिट्टिदेव के ही लिए दिया है। इस दिशा में प्रयत्न आगे बढ़ाने के लिए ही खुद उसने युवरानी एचलदेवी को दोरसमुद्र बुलवाया था। परन्तु···?

इन सब प्रयत्नों का कोई फल नहीं निकला। उनको आये काफी समय भी बीत चला था। आने के बाद एक महीने के अन्दर सबको बेलगोल भी ले जाया गया था। चामव्वे किसी-न-किसी बहाने युवरानी और बिट्टिदेव पर प्रेम और आदर के भाव बरसाती रही। परन्तु उसके प्रेम और आदर की कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई जिसकी वह प्रतीक्षा कर रही थी। यह खबर मालूम होने पर कि बिट्टिदेव शिवगंगा भी गया था, उसकी कल्पना का महल एक ओर से ढह गया-सा प्रतीत होने लगा था। उसके अन्तरंग के किसी कोने में एक सशय ने घर कर लिया था। ऐसी हालत में वह चुप कैसे बैठी रह सकती थी? स्वभाव से ही वह चुप बैठनेवाली नहीं थी। सरस्वती की कृपा से उसे जितनी बुद्धिशक्ति प्राप्त थी उस सबका उसने उपयोग किया। किये गये सभी प्रयत्न निष्फल हुए थे, इसे वह जानती थी, फिर भी वह अपने प्रयत्नों से हाथ धोकर नहीं बैठी। वह निराश नहीं हुई। आशावादी और प्रयत्नशील व्यक्ति थी वह।

दण्डनायक के घर से निमन्त्रण मिलता तो वह चामला को ही आगे करके जाती। युवरानी और राजकुमारों के सामने एक दिन पद्मला और चामला का गाना और नृत्य हुआ था। माचव्वा सोच रही थी कि संगीत के बारे में बेलुगोल में बात उठी थी तो दोरसमुद्र में पहुँचने के बाद युवरानीजी कभी-न-कभी कहेंगी, 'चामव्वाजी अभी तक आपकी बच्चियों के संगीत एवं नृत्य का हमें परिचय ही नहीं मिला।' तब कुछ नखरे दिखाकर उनके सामने नाच-गान कराने की बात सोच रही थी। मगर युवरानीजी ने इस सम्बन्ध में कभी कोई बात उठायी ही

नहीं। चामव्वा के मन में एक बार यह बात भी आ गयी कि शायद युवरानीजी यह बात उठायेंगी ही नहीं। पूछने या न पूछने में होना-जाता क्या है—यह सोच-कर ऐंठने से तो उसका काम बनेगा नहीं। वह विचार-लहरी में डोल ही रही थी कि महाराज के जन्मदिन के आ जाने से उसे अपनी इच्छा पूर्ण करने का एक मौका मिला। इस मौके पर पद्मला और चामला का नृत्य-गान हुआ। महाराज ने उनकी प्रशंसा भी की। बल्लाल कुमार का तो प्रशंसा करना सहज ही था। वहाँ मौजूद अधिकारियों में एक प्रधान गंगराज को छोड़ अन्य सब दण्डनायक से निम्न स्तर के थे। वे तो प्रशंसा करते ही। और गंगराज के लिए तो ये बहन की बच्चियाँ ही थीं। युवरानी ने जरूर "अच्छा था।" ही कहा।

तब चामव्वा ने कहा, "बेचारी बच्चियाँ हैं और अभी तो सीख ही रही हैं। वह भी आपने कहा इसलिए दण्डनायकजी ने इन्हें सीखने की अनुमति दी। फिर भी हमारी बच्चियाँ होशियार हैं। जल्दी-जल्दी सीख रही हैं। आपका प्रेम और प्रोत्साहन तो है ही।"

"इसमें मैंने क्या किया। लड़कियों के वश में तो यह विद्या स्वयं आती है। हम तो इतना ही कह सकते हैं कि ये सीखें। मेहनत करनेवाली तो वे ही हैं।"

"सच है। बच्चियों को तो सीखने की बड़ी चाह है। सचमुच उन्होंने उस हेग्गड़ती की लड़की से भी अच्छा सीखने का निश्चय किया है।"

"तो यह स्पर्धा है!"

चामव्वा यह सुन कुछ अप्रतिभ-सी हुई। उसे ऐसा लगा, उसके गाल पर चुटकी काट ली गयी हो। पूर्ववत् बात करने की स्थिति में आने में उसे कुछ वक्त लगा। हँसने की चेष्टा करते हुए कहा, "स्पर्धा नहीं···अच्छी तरह सीखने की इच्छा से, दिलचस्पी से सीखने का निश्चय किया गया है।"

"बहुत अच्छा," युवरानी ने कहा। यह प्रसंग उस दिन भी इसी ढंग से समाप्त हुआ था। यह प्रसंग आगे कहीं न उभरे तो अच्छा हो।

इस घटना के तीन-चार दिन बाद भोजन करते वक्त बल्लाल कुमार ने पूछा, "माँ, पद्मला और चामला का नृत्य-गान अच्छा था न?"

"अच्छा था, अप्पाजी।" युवरानी ने कहा।

"कौन सिखा रहे हैं?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"उत्कल से किसी को बुलवाया है।" बल्लाल ने कहा।

"तुम उन्हें जानते हो?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"हाँ, क्यों? तुम उन्हें देखना चाहते हो?"

"मुझे क्या काम है?"

"तो फिर पूछा क्यों?"

"उन लड़कियों के चेहरे पर जो भाव थे वे निखरे हुए नहीं थे। शिक्षक अभी

ठीक कर दें तो अच्छा होता हो। इस ओर ध्यान देने के लिए उनसे कहो।" बिट्टिदेव ने कहा।

"तुम चाहते हो तो कह दूँगा। लेकिन भाव? निखार? ऐसी कौन-सी गलती देखी तुमने?" कुछ गरम होकर बल्लाल ने पूछा। जिस पद्मला को मैंने चाहा है, उसके नाच के बारे में गलत-सलत कहनेवाला यह कौन है? यह, मुझसे चार साल छोटा। इस छोकरे की बात का क्या मूल्य?

"अप्पाजी, मैंने तो यह बात एक अच्छे उद्देश्य से कही है। आप नहीं चाहते हों तो छोड़ दें।"

"तुम बहुत जानते हो। क्या गलती थी? बताओ तो? माँ भी थीं। उनको ही कहने दो।"

"अच्छा, छोड़ो। तुम लोग आपस में इसपर क्यों झगड़ते हो?" युवरानी एचलदेवी ने कहा।

"शायद उस हेग्गड़े की लड़की से ज्यादा बुद्धिमान इस दुनिया में कोई दूसरी है ही नहीं, ऐसा इसने समझा होगा। इस वजह से अन्यत्र कहीं कुछ गलती ढूँढ़ता है।" बल्लाल ने कुछ गरम ही होकर कहा।

"मैंने किसी का नाम नहीं लिया, अप्पाजी।" बिट्टिदेव बड़े शान्तभाव से बोला।

"नाम ही बताना चाहिए क्या? कहने के ढंग से यह मालूम पड़ता है कि लक्ष्य किस ओर है। बड़े मासूम बनकर उस लड़की के पीछे, बिना किसी को बताये, सुनते हैं कि शिवगंगा गये।"

बात कहीं से कहीं पहुँची थी, यह युवरानीजी को ठीक नहीं लगा। इसलिए उन्होंने कहा, "इस बात को अब खतम करो। यह बात आगे बढ़ायी तो मैं खाना छोड़कर चली जाऊँगी।"

"मैंने कौन-सी गलत बात कही, माँ!" बिट्टिदेव रुआँसा हो आया।

बल्लाल की टीका उसी ढंग से चली, "भाव? बहुत जानता है, न यह।"

"आखरी बार कह रही हूँ। बात बन्द करो।" एचलदेवी कुछ और गरम हुईं।

दोनों मुँह फुलाकर चुप हो गये। भोजन चुपचाप ही चला। मासूम बनकर···बिना किसी को बताये लड़की के पीछे गये—ये बातें बिट्टिदेव के मन में चुभ रही थीं।

बिट्टिदेव को उस दिन किसी बात में उत्साह नहीं रहा। रेविमय्या को बुलाकर कहा, "चलो, घोड़े पर कहीं दूर तक हो आयें।"

"छोटे अप्पाजी, आज कुछ अनमने लग रहे हैं?"

उत्तर में बिट्टिदेव ने पहली बात को ही दुहरा दिया। रेविमय्या वहाँ से सीधा

युवरानीजी के पास गया; और चुपचाप खड़ा हो गया।

"क्या है, रेविमय्या ?"

"छोटे अप्पाजी उदास लग रहे हैं।"

"हाँ, मालूम है।"

"कहीं कुछ दूर हो आने की बात कह रहे हैं।"

"हाँ, हो आओ; अब उसे इसकी ज़रूरत है।"

आज्ञा मिलने के बाद भी वह वहीं खड़ा रहा।

"और क्या चाहिए ?"

"वे क्यों ऐसे हैं, यह मालूम हो जाता तो अच्छा रहता। अगर मुझसे कुछ पूछें तो मुझे क्या कहना होगा ?"

"नादान बच्चों ने आपस में कुछ बहस कर ली। अप्पाजी की कोई गलती नहीं। कुछ नहीं, सब ठीक हो जायेगा। हमें इस बहस को प्रोत्साहित नहीं करना है। भाई-भाई के बीच अभिप्रायों की भिन्नता से द्वेष नहीं पैदा होना चाहिए। बहस एक-दूसरे को समझने में सहायक होनी चाहिए। यह मैं सँभाल लूँगी। तुम लोग हो आओ।"

रेविमय्या चला गया।

युवरानी एचलदेवी ने चर्चा सम्बन्धी सभी बातों का मन-ही-मन पुनरावर्तन किया। चामव्वा की प्रत्येक बात और हर एक चाल और रीत निर्विवाद रूप से स्वार्थ से भरी हुई ही लगी। लेकिन उसकी इच्छा को गलत कहनेवाले हम कौन होते हैं ? यदि यही भगवान की इच्छा हो तो उसे हम बदल ही नहीं सकते। खासकर बल्लाल को उस हालत मे रुकावट क्यों हो जबकि वह पद्मला पर आसक्त है ? हेग्गड़ती और उसकी बच्ची के बारे में चामव्वा की असूया और उनके बारे में बल्लाल के दिल में बुरी भावना पैदा करने की चेष्टा के कारण युवरानी एचलदेवी के मन में उसके प्रति एक जुगुप्सा की भावना पैदा हो गयी थी। यों तो बल्लाल कुमार का मन निर्मल है। वह पद्मला की ओर आकृष्ट सहज ही है। इसपर हमें कोई एतराज़ नहीं। वह उसके भाग्य से सम्बद्ध विषय है। छोटे अप्पाजी बिट्टिदेव के शिवगंगा हो आने की बात जिस प्रसंग में और जिस ढंग से उठायी गयी उससे ऐसा लगता है कि कुमार बल्लाल के दिल में उनके प्रति बहुत ही बुरी भावना पैदा की गयी है। यह सारी कार्रवाई चामव्वा ने ही की है, इसमें कोई सन्देह ही नहीं। अपनी लड़की की शादी के बाद वह इस काम से तटस्थ रह जायें तो कोई आपत्ति नहीं; लेकिन बाद में और भी ज़ोर से इस तरह की कार्रवाई करने लगी तो भाई-भाई एक दूसरे से दूर होते जायेंगे। तब भविष्य क्या होगा ? हे अर्हन्, ऐसी स्थिति मत लाना। माँ के लिए सब बच्चे बराबर हैं। उसकी प्रार्थना तो यही होगी कि वे सब आपस मे प्रेम-भाव रखें और उनमें एकता हो। युवरानी वहाँ से

पूजागृह में गयी और आँख मूँदकर मातृहृदय की पुकार को भगवान् के सामने निवेदन करने लगी।

उधर, भोजन के वक़्त जो वाद-विवाद हुआ था वह चामव्वा तक पहुँच चुका था। यह खबर देनेवाला स्वयं राजकुमार बल्लाल ही था; खबर देकर समझा कि उसने एक बहुत बड़ा काम साध लिया। ऐसा करने का क्या परिणाम होगा, उनपर ध्यान ही न गया। खुद चामव्वा ने यह जानना चाहा था कि उसकी बच्चियों के नाच-गान के बारे में युवरानीजी की राय क्या है। बल्लाल ने, इसीलिए, समय पाकर यह प्रसंग छेड़ा था। बीच में इस छोटे अप्पाजी, बिलस्त भर के लड़के को, क्यों बोलना चाहिए था? इसीलिए मैं उसपर झपट पड़ा। वह कहने लगा था कि भावाभिव्यक्ति कम रही। जब खुद माँ ने कहा था कि अच्छा है तब इसकी टीका की जरूरत किसे थी? इससे मैंने तो राय नहीं माँगी थी। इसी-लिए उसे मैंने आड़े हाथों लिया। और हेग्गड़ती की बेटी, वह तो बहुत बकझक करती है। दोनों एक से झक्की हैं। दोनों की जोड़ी ठीक है। इस छोटे अप्पाजी को कुछ तारतम्य ज्ञान नहीं। सबको छोड़कर उनके साथ शिवगंगा जाना ठीक है? क्या वे हमारी बराबरी के हैं? एक साधारण धर्मदर्शी किसी मन्दिर का, कहता है कि हेग्गड़े के घरवालों के साथ राजकुमार गाँव घूमता है। ये छोटा अप्पाजी अभी भी छोटा ही है। यहाँ आकर राजमहल में रहें तो उसे हम अपनी बराबरी का मानें भी। पर माँ ने जाने की उसे अनुमति क्यों दी? युवराज ने ही कैसे सम्मति दी? सब अजीब-सा लगता है। जैसा कि चामव्वा कहती, इसमें भी कोई रहस्य है। यों चली थी बल्लाल कुमार की विचारधारा। इसी विचार-धारा की पृष्ठभूमि में उसने समझा था कि छोटे अप्पाजी जो भी करता है, वह गलत और जो खुद करता है वह सही है। अपने इन विचारों को बताने के लिए जहाँ प्रोत्साहन मिल सकता था वहाँ कहने में यदि संकोच करें, यह हो कैसे सकता है? इस वजह से उसने चामव्वा के सामने सारी बातें उगल दीं वह दण्डनायक की पत्नी नहीं, वह तो उसकी भावी सास थी। पर उसे क्या मालूम था कि वह उसके भाई की भी सास बनने की आकांक्षा रखती है? यह सारा वृत्तान्त सुनने के बाद यह भावी सास कहे, "सब ठीक है," यह अपेक्षा थी बल्लाल की, तभी तो यह सारा वृत्तान्त कहते-कहते वह खुशी के मारे फूल उठा था।

सब सुनकर चामव्वे ने कहा, "आपको पसन्द आया, हमारे लिए इतना ही काफी है। कल सिंहासन पर बैठनेवाले तो आप ही हैं। आपकी ही बात का मूल्य अधिक है। अन्य लोगों के विचारों से हमें क्या मतलब? आपका भाई तो अभी अनजान बच्चा है। छोटे बच्चे ने कुछ कहा भी तो उसपर हमें असमंजस क्यों हो?"

बात यहीं रुक गयी। बातचीत के लिए कोई दूसरा विषय नहीं था। इसलिए

राजकुमार बल्लाल वहाँ से चल पड़ा। चामव्वा जानती थी कि वह कहाँ जायेगा। बल्लाल का मत था कि पद्मला बातचीत करने में बहुत होशियार है। उसके साथ बात करते रहे तो उसे समय का ख्याल ही नहीं होता था। उसके बैठने का ढंग, बात करते समय की नखरेबाजी, उन आँखों से दृष्टिपात करने की वह रीति, मन को आकर्षित करनेवाली उसकी चाल, आदि उसे उसकी बातों से भी अधिक आकर्षित करती थी। परन्तु उसे यह नहीं सूझता था कि वह उसका बन्दी बन गया है। बातचीत में चामला भी इनके साथ कभी-कभी शामिल होती थी। चामव्वा को इसपर कोई एतराज भी नहीं था। युवरानी एचलदेवी और बिट्टिदेव के दोरसमुद्र पहुँचने पर उसके प्रयत्न इतने ही के लिए हो रहे थे कि चामला और बिट्टिदेव में स्नेह बढ़े। उसके इन प्रयत्नों का कोई अभीष्ट फल अभी तक मिला न था। वर्तमान प्रसंग का उपयोग अब उसने इस कार्य की सिद्धि के लिए करने की सोची। चामव्वा ने इस विषय को दृष्टि में रखकर चामला को आवश्यक जानकारी दी। चामला सचमुच होशियार थी। वह कई बातों में पद्मला से ज्यादा होशियार भी थी। उसने माँ की सब बातें सुनी और उसके अनुसार करने की अपनी सम्मति भी दी। परन्तु उसे ऐसा क्यों करना चाहिए, और उससे क्या फल मिलेगा, सो वह समझ नहीं सकी थी। इसलिए करना चाहिए कि माँ कहती है, इतना ही उसका मन्तव्य था। इस सबके पीछे माँ का कुछ लक्ष्य है, यह सूझ-बूझ उसे नहीं थी। माँ चामव्वे ने भी उसे नहीं बताया था। उसके मत में यह न बताना ही ठीक था। उसका विचार था कि इन बच्चों में आपसी परिचय-स्नेह आदि बढ़े तो और सारी बातें सुगम हो जायेंगी।

माँ की आज्ञा के अनुसार चामला बिट्टिदेव से मिलने गयी। वह पिछले दिन रेविमय्या के साथ दूर तक सैर कर आया था, और उनसे विचार-विनिमय भी हो चुका था। फिर भी उसका दिल भारी ही रहा। चामला बिट्टिदेव से ऐसी स्थिति में मिली तो "राजकुमार किसी चिन्ता में मग्न मालूम पड़ते हैं। अच्छा, फिर कभी आऊँगी।" कहकर जाने को हुई।

बिट्टिदेव ने जाती हुई चामला को बुलाते हुए कहा, "कुछ नहीं, आओ चामला।"

वापस लौटती हुई चामला ने कहा, "मेरे आने से आपको कोई बाधा तो नहीं हुई?"

"कोई बाधा नहीं। आओ बैठो।" कहकर पलंग पर अपने पास ही बैठने को कहा। वह भी निस्संकोच भाव से पास आकर बैठ गयी। उसने इस बात की प्रतीक्षा की कि उसके आने का कारण वे स्वयं पूछें। वह थोड़ी देर हाथ मलती हुई सिर झुकाकर बैठी रही। बिट्टिदेव को लगा कि वह संकोचवश चुप बैठी है। उसके कन्धे पर हाथ रख बिट्टिदेव ने पूछा, "क्यों चामला, तुमने कहा कि मुझे देखने

आयी हो, अब पत्थर बनी बैठी हो।"

"देखना तो हो गया," कहती हुई मुँह उठाकर एक तरह का नटखटपन दिखाने लगी।

"मतलब यह कि जिस काम से आयी वह पूरा हो गया, यही न ?"

"मैंने तो ऐसा कहा नहीं।"

"तो किस मतलब से मुझे देखने आयी ? बता सकोगी ?"

"महाराज की वर्षगाँठ···"

"वह तो हो गयी।"

"मुझे भी मालूम है। उस दिन मैंने और मेरी दीदी ने नृत्य और गान प्रस्तुत किया था न।"

"मैंने भी देखा न।"

"वह मैं भी जानती हूँ न।"

"इसे बताने के लिए आने की आवश्यकता नहीं थी न ?"

"यह बात मैं नहीं जानती हूँ, ऐसा तो नहीं न ?"

"फिर तब ?"

"कह तो रही हूँ; बीच में ही बोल पड़े तो ?"

"जो कहना है उसे सीधी तरह कह दें तो···"

"ज़रा गम्भीर होकर बैठें तब न ?"

"क्या कहा ?" प्रश्न कुछ कठोर ध्वनि में था।

चामला ने तुरन्त होंठ काटे और सिर झुका लिया। बिट्टिदेव ने क्षणभर सोचा। फिर गम्भीर मुद्रा में बैठ गया ऐसे जैसे कि महाराज सिंहासन पर बैठते हैं वीरासन लगाकर, शरीर को सीधा तानकर। कहा, "हाँ, गम्भीर होकर बैठा हूँ। अब कहो।"

चामला ने धीरे से सिर उठाकर कनखियों से देखा। उसके बैठने के ढंग को देख इसे हँसी आ गयी। हँसी को रोकने की बहुत कोशिश की पर नहीं रोक सकी। जोर से हँस पड़ी, लाचार थी। बिट्टिदेव भी साथ हँसने लगा। दोनों ने मिलकर ठहाका मारकर हँसना शुरू किया तो सारा अन्तःपुर गूँज उठा। युवरानी एचलदेवी गुसलखाने की ओर जा रही थीं कि यह आवाज़ उनके कान में भी पड़ी। उन्होंने झाँककर देखा भी।

"ठीक, आप भी अच्छी नकल करते हैं।" चामला ने कहा।

"क्यों, मेरा बैठना गम्भीर नहीं था ?"

"उस हँसी से पूछिएगा।"

"अच्छा, जाने दो। महाराज की वर्षगाँठ के दिन तुम और तुम्हारी दीदी ने नाच-गान का प्रदर्शन किया। यह मुझे भी मालूम है। कहो।"

"मैं यही पूछने आयी कि वह कैसा था।"

चकित हो बिट्टिदेव ने उसकी ओर देखा। तुरन्त उसे भोजन के समय की वह घटना याद हो आयी। वह मौन हो रहा पर उसका चेहरा गम्भीर हो गया।

"क्यों, क्या हुआ ?"

"तुमको मालूम है न।"

"क्या ?" चामला ने उत्तर में प्रश्न ही किया।

"तुम्हें कुछ भी मालूम नहीं ?"

"न, न।"

"तुम बड़ी मासूम बनती हो। कहती हो 'मालूम नहीं'। अप्पाजी ने तुम्हारी दीदी से कहा है और तुमसे उसने कहा है। इसीलिए तुम आयी हो।"

"दीदी ने कुछ नहीं कहा।"

"सचमुच ?"

"मेरी माँ की कसम।"

"न न, ऐसी छोटी-छोटी बातों पर माँ की कसम नहीं खानी चाहिए। अगर दीदी ने कुछ नहीं कहा तो किसी और ने कहा ?"

"किस विषय में ?"

"यहाँ मेरे और अप्पाजी के बीच जो चर्चा हुई उसके बारे में।"

"ऐसा है क्या ? चर्चा हुई थी ? किस बारे में ? हमारे नाच-गान के बारे में ?"

बिट्टिदेव चुप रहा। "रहने दो, सबको छोड़ मुझसे पूछने क्यों आयी ? मैं कौन-सा बड़ा आदमी हूँ।"

"माँ ने पूछ आने को कहा, मैं आयी।" उसने सच-सच कह दिया।

बिट्टिदेव को कुछ बुरा लगा। हमारी आपसी बातचीत को दूसरे लोगों से क्यों कहना चाहिए था अप्पाजी को ? उसे कुछ भी अक्ल नहीं। चामव्वाजी ने और क्या-क्या कहला भेजा है, यह जान लेना चाहिए, यों सोचते हुए बिट्टिदेव ने पूछा, "ऐसी बात है, तुम्हारी माँ ने पूछने को भेजा है तुम्हें ?"

"हाँ।"

"क्या कह भेजा है ?"

"किस-किसने क्या-क्या कहा, यह जानने को मैं और दीदी ज्यादा उत्सुक थीं। डरते-डरते मंच पर आयी थीं। यह प्रदर्शन हमने लोगों के सामने प्रथम बार किया इसलिए मन में बड़ी उत्सुकता हुई।"

"यह तो सहज है।"

"परन्तु फिर भी सबने प्रशंसा ही की।"

"हमारे भाई ने क्या कहा ?"

"कहा, बहुत अच्छा था।"

"तुमसे कहा ?"

"नहीं, दीदी से कहा।"

"ठीक ही है।"

"ऐसा हुआ कि दीदी ने ही पूछा उनसे कि छोटे अप्पाजी का इस विषय में क्या मन्तव्य है। तब उन्होंने कहा कि उनके अभिप्राय के बारे में उन्हीं से पूछो। इस-लिए माँ ने मुझसे कहा कि 'चामु, छोटे अप्पाजी हेग्गड़ेजी की लड़की के गुरु के साथ दो-तीन पखवारे तक रहे। हेग्गड़ेजी की लड़की शान्तला बहुत ही अच्छा नृत्य करती है और गाना भी बहुत अच्छा गाती है। उसके गुरु के सिखाने-पढ़ाने के विधि-विधान को देख-सुनने के अलावा वे कुछ दिन साथ रहने के कारण कई बातें जानते हैं जिन्हें हम नहीं जानते। तुम लोगों को सिखानेवाले उत्कल के हैं। उस लड़की को पढ़ानेवाले यहीं के हैं। तुम्हारे और उनके गुरुओं के सिखाने की पद्धति में कुछ भेद होगा। इससे बेहतर सीखने के लिए क्या करना चाहिए, इस बारे में पूछो। वे छोटे होने पर भी बड़ों की तरह बहुत बुद्धिमान हैं। इसलिए उनके पास हो आओ। विद्या सीखनेवाले छात्रों को सहृदय विमर्शकों की राय सुननी चाहिए। सुनने पर वह राय तत्काल अच्छी न लगने पर भी पीछे चलकर उससे अच्छा ही होता है। माँ ने यह सब समझाकर कहा, हो आओ। इसलिए मैं आयी। मैंने सच्ची और सीधी बात कही है। अब बताइये हमारा नृत्य-गान कैसा रहा।"

"ठीक ही था।"

"मतलब ? कहने के ढंग से लगता है कि उतना अच्छा न लगा।"

"ऐसा नहीं। आपके अल्पकालीन शिक्षण को दृष्टि में रखकर तो यही कहना पड़ेगा कि अच्छा ही है। वास्तव में लगता यह है जैसे आप लोग हठ पकड़कर अभ्यास कर रही हैं।"

"हमारे गुरुजी भी यही कहते हैं कि अच्छे जानकार से भी अच्छा सीखने की होड़ लगाकर परिश्रम से अभ्यास करने पर शीघ्र सीख सकते हैं।"

"सबका मत एक-सा नहीं रहता। अलग-अलग लोगों का अलग-अलग मत होता है।"

"इसके माने ?"

"मेरे गुरु अलग ढंग से कहते हैं।"

"क्या आप नाट्य सीख रहे हैं।"

"मैंने विद्या के सम्बन्ध में एक सामान्य बात कही है, चाहे वह नृत्य, गायन या साहित्य, कुछ भी हो। हमारे गुरुजी का कहना है कि जिस विद्या को सीखना चाहे उसे सीखकर ही रहे। इस या उस विद्या में सम्पूर्ण पाण्डित्य अर्जन करूँगा,

इसके लिए सतत अभ्यास करूँगा, यह निश्चित लक्ष्य प्रत्येक विद्यार्थी का होना चाहिए। विद्या स्पर्धा नहीं। अगर तुम अपनी दीदी से अच्छा सीखने का हठ करके सीखने लगोगी तो उससे विद्या में पूर्णता आ सकेगी? नहीं, उससे इतना ही हो सकेगा कि पद्मला से चामला अच्छी निकल जायेगी। विद्या में पारंगत होना तभी साध्य है जब स्पर्धा न हो।"

चामला ध्यानपूर्वक सुनती रही। मेरे समान या मुझसे केवल दो अंगुल ऊँचे इस लड़के ने इतनी सब बातें कब और कैसे सीखीं? माँ का मुझे यहाँ भेजना अच्छा ही हुआ। राजकुमार का अभ्यासक्रम जानना मेरे लिए उपयोगी होगा।

"मुझे विद्या में निष्णात होना है।"

"ऐसा है, तो सीखते वक्त दीखनेवाली कमियों को तब का तभी सुधार लेना चाहिए नहीं तो वे ज्यों-की-त्यों रह जायेंगी।"

"सच है। हमारे नृत्य में ऐसी कमियों के बारे में किसी ने कुछ कहा नहीं।"

"प्रशंसा चाहिए थी, इसलिए कहा नहीं।"

"ऐसा तो हमने जाहिर नहीं किया था।"

"तुमको शायद इस विषय का ज्ञान नहीं है। माता-पिता के अत्यधिक प्रेम के कारण हम बच्चों को बलिपशु बनना पड़ता है। इसलिए प्रशंसा, बहुत आदर, बहुत लाड़-प्यार मुझे पसन्द नहीं।"

"आप ऐसे स्वभाव के हैं, यह मुझे मालूम ही नहीं था।"

"तो तुम्हारे विचार में मैं कैसा हूँ?"

"मैंने समझा था कि आप अपने भाई के जैसे ही होंगे।"

"तो क्या तुम अपनी दीदी जैसी ही हो?"

"सो कैसे होगा?"

"तो यह भी कैसे होगा?"

"सो तो ठीक है। अब मुझे क्या सलाह देते हैं?"

"किस सन्दर्भ में?"

"सुधार के बारे में।"

"नृत्य कला को जाननेवालों के सामने नृत्य करके उन्हीं से उसके बारे में समझना चाहिए। गायन कला के बारे में भी वही करना चाहिए।"

"तब तक?"

"ऐसे ही।"

"आपके कहने के योग्य कुछ नहीं?"

"मुझे कई-कई बातें सूझ सकती हैं, पर वे अगर गलत हों तो?"

"अगर सही हों तो?"

"यह निर्णय कौन देगा?"

"मैं। इसलिए आपको जो सूझा सो कहिए।"

"न न। मुझे क्यों? वाद को आप मुझे वातूनी का पद देंगी।"

"मुझसे, मेरे बारे में कहिए।" उसके कहने के ढंग में एक सौहार्द और आत्मीय भावना थी।

"यदि तुम दूसरों से कहोगी तो?"

"नहीं, माँ की कसम।"

"फिर यही। मैंने पहले ही मना कर दिया था। हमारे गुरुजी ने एक बार कहा था कि किसी की कसम नहीं खानी चाहिए। उसमें भी माँ की कसम कभी नहीं। माँ को भी बच्चों की कसम कभी नहीं खानी चाहिए।"

"क्यों?"

"हम जिस बात पर माँ की कसम खाते हैं, वह पूरी तरह निभ न सके तो वह कसम शाप बन जाती है और वह शाप माँ को लगता है। जिस माँ ने हमें जन्म दिया उसी की बुराई करें?"

"मुझे मालूम नहीं था। मेरी माँ कभी-कभी ऐसी ही कसम खाया करती है। वही अभ्यास मुझे और दीदी को हो गया है, मेरी छोटी बहन को भी।"

"छोड़ दो। आइंदा माँ की कसम कभी न खाना।"

"नहीं, अब कभी नहीं खाऊँगी।"

"हाँ, अब कहो, और किसी से नहीं कहोगी न?"

"नहीं। सचमुच किसी से नहीं कहूँगी।"

"नृत्य में भंगिमा, मुद्रा, गति, भाव, सबका एक स्पष्ट अर्थ है। इनमें किसी की भी कमी हो तो कमी-ही-कमी लगती है और सम्पूर्ण नृत्य का प्रभाव ही कम हो जाता है।"

"हमारे नृत्य में कौन अंग गलत हुआ था?"

"भाव की कमी थी। भावाभिव्यक्ति रस निष्पत्ति का प्रमुख साधन है। यदि इसकी कमी हो तो नृत्य यांत्रिक-सा बन जाता है। वह सजीव नहीं रहता। भाव से ही नृत्य सजीव बनता है।"

"समझ में नहीं आया। एक उदाहरण देकर समझाइये।"

"तुम दोनों ने कृष्ण-यशोदा का नृत्य किया न?"

"तुम कृष्ण बनी थी, तुम्हारी दीदी यशोदा बनी थी न?"

"हाँ।"

"गोपिकाओं ने माखन चोरी की शिकायत की थी; तुम्हें मालूम था। उस चोरी की परीक्षा करने तुम्हारी माँ आनेवाली थी, यह तुम जानती थी। लेकिन जब वह आयी तब तुम्हारा चेहरा तना-सा क्यों था? अपनी करतूत का आभास

पहुँचने की खबर सुनकर दोनों सन्तुष्ट हुए। अब एरेयंग इस उधेड़बुन से मुक्त हुआ कि चलिकेनायक पर अविश्वास न होने पर भी उनके साथ किसी और का न भेजा जाना शायद अनुचित था, रास्ते में हुई तकलीफ़ के वक़्त या छद्मवेष में होने पर भी किसी को पता चल जाने पर क्या होगा ?

हिरिय चलिकेनायक ने यात्रा का विवरण दिया। पहले एल्लम्म पहाड़ जानेवाले यात्रियों की टोली साथ में रही, वहाँ से बैलहोंगल बाजार जानेवाले व्योपारियों का दल मिला। वहाँ गोकर्ण बनवासी जानेवाले तीर्थयात्रियों का दल मिल गया। फिर आनवट्टी जानेवाले बारातियों का साथ हो गया। आनवट्टी से बलिपुर तक का रास्ता पैदल ही तय किया गया।

एरेयंग प्रभु ने पूछा, "तुम बलिपुर में कितने दिन रहे ?"

"सिर्फ़ तीन दिन।"

"बड़ी रानीजी को वहाँ ठीक लगा ?"

"मेरे वापस लौटने समय उन्होंने कहा तो यही था।"

"हेग्गड़े और हेग्गड़ती को सारी बातें समझायीं जो मैंने कही थीं ?"

"सब, अक्षरशः, यद्यपि प्रभु के पत्र ने सब पहले ही समझा दिया था।"

"हाँ, क्योंकि कोई अनिरीक्षित व्यक्ति आयें तो पूरी तहकीकात कर उन्हें अन्दर प्रवेश करने देना भी एक शिष्टाचार है। फिर उस पत्र में अपने [illegible] की पूरी जिम्मेदारी समझा देने के मतलब से सारा ब्यौरा भी दिया गया था।"

हम लोग वहाँ पहुँचे तब हेग्गड़तीजी अपनी बच्ची के साथ बसदि के लि[illegible] निकल रही थीं। परन्तु उनका उस समय का व्यवहार आश्चर्यजनक था। वे बहु[illegible] सूक्ष्मग्राही हैं। कोई दूसरा होता तो तुरन्त यह नहीं समझ पाती कि ये ही बड़ी रानी हैं, और समझ जाने पर तो सहज रीति से आदर-गौरव की भावना दिखाये बिना रह ही नहीं सकती थी।

"यदि वे उस समय हमारे स्वागत में अधिक समय लगातीं तो इर्द-गिर्द के लोगों का ध्यान उस ओर आकर्षित होता। नवागंतुकों के प्रति गौरव प्रदर्शित किया जाये तो दूसरों को कुतूहल होना स्वाभाविक है जो खतरे से खाली नहीं। उन्हें हेग्गड़ेजी ने इन सब विषयों में अच्छा शिक्षण दिया है।"

"हेग्गड़ेजी की बेटी कैसी है ?"

"ऐसे बच्चे बहुत कम होते हैं, प्रभुजी। वह अपने अध्ययन में सदा मग्न रहती है। अनावश्यक बात नहीं करती। आम तौर पर बच्चे आगंतुकों की ओर आशा-भरी दृष्टि से देखा करते हैं न; अतिथि लोग बच्चेवालों के घर साधारणतया खाली हाथ नहीं जाया करते न ? परन्तु उस बच्ची ने हमारी तरफ एक बार भी न कुतूहल-भरी दृष्टि से देखा न आशा की दृष्टि से। हेग्गड़तीजी ने जब हमें देखा और दो-चार क्षण खड़ी हो हमसे बातचीत की तब भी वह हमसे दूर, चार

कदम आगे खड़ी रही और माँ के साथ ही चली गयी।"

"तुम्हारी युवरानीजी को वह लड़की बहुत पसन्द है।"

"उस लड़की के गुण ही ऐसे हैं कि कोई भी उसे पसन्द करेगा।"

"तुम्हें भी उसने पागल बना दिया?"

"मतलब, उसने किसी और को भी पागल बना दिया है?"

"यह तो हम नहीं जानते। हमारा ग्राम नौकर रेविमय्या है न, हेग्गड़ती की लड़की का नाम उसके कान में पड़ जाये तो ऐसा उद्वेलित हो उठता है जैसा चन्द्रमा को देख समुद्र।"

"हर किसी को ऐसा ही लगेगा। उससे मिलने का मन हुआ यद्यपि छद्मवेष में व्यक्ति किसी के साथ उतनी आत्मीयता से व्यवहार नहीं कर पाता। मैं उससे इसलिए भी दूर ही रहा क्योंकि हेग्गड़तीजी बड़ी रानी के बारे में वास्तविक बात अपनी बेटी को भी बतायेंगी ही नहीं।"

"ठीक, बड़ी रानीजी ने और क्या कहा?"

"इतना ही कि सन्निधान और प्रभु से मिलने के बाद आगे के कार्यक्रम के बारे में, अगर सम्भव हो तो सूचित करने के लिए कह देना।"

"ठीक है। समय पर बतायेंगे।" एरेयंग प्रभु ने उठते हुए कहा, "हाँ, नायक, हम तुम्हारे आने की प्रतीक्षा में रहे। कल ही हमारी सेना धारानगर की तरफ़ रवाना होगी। सन्निधान की आज्ञा है कि सेना और हाकिमों के साथ युद्ध-शिविर के बाजार की कोई स्त्री नहीं जाये, सबको वापस भेज दिया जाये। सेना का विभाजन कैसा हो और कहाँ भेजा जाय इस पर कल विचार करने के लिए सभा बुलानी है। उसमें हमारे शिविर पर दण्डनायक, घुड़सवार सेनानायक, पटवारी और नायक बुलाये जाएँ। सबको खबर दे दें। अब सन्निधान की आज्ञा हो तो हम चलें।"

"अच्छा, एरेयंग प्रभुजी, ऐसी व्यवस्था हो कि हम भी आपके साथ रहें।"

"सन्निधान की सुरक्षा-व्यवस्था की जिम्मेदारी हम पर है।" कहते हुए प्रभु एरेयंग ने कदम बढ़ाये। हिरिय चलिकेनायक ने दौड़कर परदा हटाया और एरेयंग प्रभु के बाहर निकलने के बाद खुद बाहर आया।

चामला ने अपने और बिट्टिदेव के बीच जो बातचीत हुई थी, वह अपनी माँ को ज्यों-की-त्यों सुना दी। उसने सारी बातें बड़े ध्यान से सुनीं और बेटी चामला को

अपने वाहुओं में कस लिया।

"वेटी तुम बहुत होशियार हो, आखिर मेरी ही वेटी हो न?" वेटी की प्रशंसा के वहाने वह अपनी प्रशंसा आप करने लगी। खासकर इसलिए कि युवरानी ने अपने वेटे के साथ वेटी चामला को भी उपाहार पर बुलवाया। इसका मतलब यह हुआ दाँव ढंग से पड़ा है और आशा है, गोटी चलने लगेगी। अब इसे पूरी तरह सफल बनाना ही होगा। चाहे अब मुझे अपनी शक्ति का ही प्रयोग क्यों न करना पड़े। उसने बच्ची का मुँह दोनों हाथों से अपनी ओर करके पूछा, "तुम उनसे शादी करोगी वेटी?"

वेटी चामला ने दूर हटकर कहा, "जाओ माँ, तुम हर वक़्त मेरी शादी-शादी कहती रहती हो जबकि अभी दीदी की भी शादी होनी है।"

"तुमने क्या समझा, शादी की वात कहते ही तुरन्त शादी हो ही जायेगी? मैंने तो सिर्फ यह पूछा है कि तुम उसे चाहती हो या नहीं।"

चामला माँ की तरफ कनखियों से देखती हुई कुछ लजाकर रह गयी। वह वेटी को फिर आलिंगन में कस उसका चुम्बन लेने लगी कि पद्मला और वल्लाल के हँसते हुए उधर ही आने की आहट सुन पड़ी। इन लोगों को देख उनकी हँसी रुकी। वेटी को दूर हटाकर वह उठ खड़ी हुई और बोली, "आइए राजकुमार, वैठिए। चामू देकव्वा से कहो कि राजकुमार और पद्मला के लिए नाश्ता यहीं लाकर दे।"

कुमार वल्लाल ने कहा, "नहीं, मैं चलूँगा। माँ मेरी प्रतीक्षा कर रही होंगी। मत जाओ, चामला।"

"माँ ने जो कहा, सो ठीक है। युवरानीजी के साथ छोटे अप्पाजी और मैंने अभी-अभी नाश्ता किया है।" चामला ने कह दिया।

वल्लाल कुमार को विश्वास न हुआ, "झूठ वात नहीं कहनी चाहिए।"

"यदि सच हो तो?"

"झूठ?"

"सच हो तो शर्त क्या रही?"

"शर्त? तुम ही कहो क्या होगी?"

"दीदी के साथ अपने हिस्से का नाश्ता तो लेना ही होगा, मेरे हिस्से का भी लेना होगा क्योंकि वहाँ आपके हिस्से का मैंने खा लिया है।" उत्तर की प्रतीक्षा किये विना ही चामला चली गयी, चामव्वा भी।

"पद्मा, तुम्हारी वहन ने जो कहा क्या वह सच है?"

"ऐसी छोटी वात पर कौन झूठ वोलेगा?"

"तो क्या वड़ी पर झूठ वोला जा सकता है?"

"मेरी माँ कभी-कभी कहा करती है कि झूठ वोलने पर काम वनता हो तो झूठ

बोला भी जा सकता है।"

"मेरी और तुम्हारी माँ में बहुत अन्तर है।"

"आपकी दृष्टि में कौन सही है?"

"मेरी माँ की नीति आदर्श नीति है। तुम्हारी माँ की नीति समयानुकूल है। एक तरह से उसे भी सही कह सकते हैं।"

जब जिसकी माँ की नीति को युवरानीजी की नीति से भिन्न होने पर भी खुद राजकुमार सही मानते हों उस बेटी को खुशी ही होनी चाहिए, वह बल्लाल की तरफ़ देखने लगी। अचानक रुकी हँसी एकदम फिर फूट निकली। बल्लाल को सन्तुष्ट करने के लिए यह आवश्यक था। वह भी मुसकराया। उस मुसकराहट को दबाकर उसके मन में अचानक एक सन्देह उठ खड़ा हुआ, उसकी भौंहें चढ़ गयीं।

"क्यों? क्या हुआ?" पद्मला से पूछे बिना न रहा गया।

"पता नहीं क्यों मेरे मन को तुम्हारी बहन की बात पर विश्वास नहीं हो रहा है। उसने मजाक में कहा होगा, लगता है।"

"ऐसा लगने का कारण?"

"कुछ विषयों का कारण बताया नहीं जा सकता। मनोभावों में अन्तर रहता है। इस अन्तर के रोज के अनुभव से लगता है कि इस तरह होना सम्भव नहीं।"

"मनोभावों में अन्तर? किस तरह का?"

"स्वभाव और विचारों में अन्तर।"

"किस-किस में देखा यह अन्तर आपने?"

"किस-किसमें? मेरे और मेरे भाई में अन्तर है। इसीलिए माँ के साथ नाश्ता करते समय वह भी साथ रहा, इस बात पर मुझे यकीन नहीं होता।"

"क्यों?"

"जिसे वह चाहता नहीं, उसके साथ वह घुलता-मिलता ही नहीं।"

"तो क्या चामला को वह नहीं चाहता?"

"ऐसा तो मैं नहीं कह सकता क्योंकि अभी वह छोटा और नादान है, यद्यपि उसे उस हेग्गड़ती की बेटी को छोड़कर दुनिया में और कोई नहीं चाहिए।"

"इतना क्यों?"

"वह समझता है कि वह सरस्वती का ही अवतार है, बुद्धिमानों से भी अधिक बुद्धिमती है।"

"हाँ होगी, कौन मना करता है? लेकिन इससे चामला को पसन्द न करने का क्या सम्बन्ध है?"

"कहता है कि तुम लोग कुछ नहीं जानती हो।"

"ऐसा क्या?" पद्मला के मन में कुछ असन्तोष की भावना आयी।

"मेरे और उसके बीच इस पर बहुत चर्चा हुई है कि तुम लोगों के नृत्य में

भाव ही नहीं था।"

रसोइन देकव्वा के साथ उसी वक्त वहाँ पहुँची चामला ने बल्लाल की यह बात सुन ली। फिर भी नाश्ता करते समय इसकी चर्चा न करने के उद्देश्य से वह चुप रही। पद्मला और बल्लाल ने नाश्ता शुरू किया। बल्लाल का थाल खाली होते ही चामला ने दूसरा थाल उसके सामने पेश किया।

बल्लाल ने कहा, "मुझसे नहीं हो सकेगा।"

"आप ऐसे मना करेंगे तो मानेगा कौन ? अब चुपचाप इसे खा लीजिए, नहीं तो इस भूल के लिए दुगुना खाना पड़ेगा।"

"मैंने क्या भूल की ?"

"पहले इसे खा लीजिए, बाद में बताऊँगी। पहले बता देते तो और दो थाल लेती आती।"

"नहीं, अब इतना खा लूँ तो बस है।" बल्लाल ने किसी तरह खा लिया, बोला "हाँ, खा लिया, अब कहो।"

"आपके भाई ने जो बातें कहीं, उन्हें घुमा-फिराकर अपना ही अर्थ देकर, आप दीदी से कह रहे हैं।"

"घुमा-फिराकर क्यों कहेंगे ?" पद्मला ने कहा।

"अपने को सही बतलाने के लिए। अपने को अच्छा कहलाने के लिए!" चामला की बात ज़रा कठोर थी।

"वे तो अच्छे हैं ही इसमें दिखाने की ज़रूरत क्या है ?"

"क्या उनसे ज्यादा उनके भाई के बारे में मालूम है तुम्हें ?"

"हाँ।"

"कैसे ?"

"कैसे क्या ? उन्होंने दिल खोलकर बात की और जो भी कहा सो हमारी ही भलाई के लिए कहा।"

"वह बड़ा बृहस्पति है।" बल्लाल के आत्माभिमान को कुछ धक्का-सा लगा।

"आपने कहा, बहुत अच्छा था। क्यों ऐसा कहा ? आपको अच्छा क्यों लगा ? बताइये तो।"

"जब तुम दोनों राधा-कृष्ण बनकर आयीं तो लगा साक्षात् राधा और कृष्ण ही उतरे हैं।"

"अर्थात् सज-धज इतनी अच्छी थी। है न ?"

"हाँ।"

"आपने जो देखा वह वेषभूषा थी। नृत्य नहीं था।"

"उन्होंने वेषभूषा के साथ नृत्य भी देखा। उसमें कमियाँ भी देखी जो बिना ठीक किये रह जायें तो बाद में ठीक नहीं की जा सकतीं। और स्पष्टतया गलती

क्या और कहाँ थी, यह भी उन्होंने बताया। यदि हम उनकी सूचना के अनुसार अभ्यास करें तो हम उन विद्या को अच्छी तरह सीख सकती हैं।"

"अच्छी बात है, अनुसरण करो, कौन मना करता है।" पद्मला ने कहा।

"उन्होंने हम दोनों के हित के ही लिए तो कहा।"

"अच्छा, तुम वैसा ही करो। हमारे गुरुजी ने तो कुछ भी कमी नहीं बतायी, बल्कि कहा कि ऐसे शिष्य उत्कल देश में मिले होते तो क्या-क्या नहीं कर सकते थे। वहाँ तीन साल में जितना सिखाया जा सकता है उतना यहाँ छह महीनों में सिखा दिया है।" पद्मला ने गुरु की राय बतायी।

"इसीलिए जितना वास्तव में सिखाना चाहिए उतना वे सिखा नहीं रहे हैं, ऐसा लगता है।" चामला ने कहा।

"यही पर्याप्त है। हमें तो कहीं देवदासी बनकर हाव-भाव विलास के साथ रथ के आगे या मन्दिर की नाट्यशाला में नाचना तो है नहीं। जितना हमने सीखा है उतना ही हमें काफी है।"

"यह ठीक बात है।" बल्लाल ने हामी भरी।

"ठीक है, जाने दीजिए, अपनी नाक सीधी रखने के लिए बात करते जाने से कोई फायदा नहीं।" कहती हुई चामला चली गयी।

दूसरे दिन से उस उत्कल के नाट्याचार्य को केवल चामला को सिखाना पड़ा। पद्मला ने जो भाव प्रकट किये थे उनपर चामव्वा की पूर्ण सम्मति रही क्योंकि वह मानती थी कि एक-न-एक दिन महारानी बननेवाली उसकी बेटियों को लोगों के सामने नाचने की जरूरत नहीं। फिर भी यह चामला की बात से सहमत थी क्योंकि उसकी कल्पना थी कि चामला यदि बिट्टिदेव की सलाह के अनुसार बरतेगी तो उन दोनों में भाव-सामंजस्य होकर दोनों के मन जुड़ जायेंगे। अच्छी तरह से विद्या का अध्ययन करने का मतलब यह तो नहीं कि उसे सार्वजनिकों के सामने प्रदर्शन करना है। यह भी उसके लिए एक समाधान का विषय था।

इस प्रासंगिक घटना के कारण पद्मला और बल्लाल कुमार के बीच घनिष्ठता बढ़ी। साथ ही चामला और बिट्टिदेव के बीच में स्नेह भी विकसित हुआ। यह चामव्वा के लिए एक सन्तोषजनक बात थी जो मन-ही-मन लड्डू खा रही थी।

परन्तु युवरानी एचलदेवी के मन में कुछ असन्तोष होने लगा। बिट्टिदेव को अकेला पाकर उसने कहा, "देखो, दोरसमुद्र में आने के बाद तुमने अपने अभ्यास का समय कम कर दिया है।"

"नहीं तो, माँ।"

"मैं देखती हूँ कि किसी-न-किसी बहाने चामव्वा की दूसरी बेटी रोज़ आ जाती है।"

"बेचारी! वह मेरा समय बहुत नष्ट नहीं करती।"

"तुम्हें उसके साथ कदम मिलाकर नाचते और हाथ से मुद्रा दिखाते मैंने स्वयं देखा है। क्या वह तेरी गुरु भी बन गयी ?"

"नहीं माँ। जब मैं हेग्गड़ेजी के साथ थोड़े दिन रहा तब मैंने कुछ भावमुद्राएँ आदि सीखी थीं। वही मैंने चामला को दिखायीं क्योंकि उसने अपनी नृत्य-कला मुझे दिखायी। वह होशियार है, सिखाने पर विषय को तुरन्त ग्रहण कर लेती है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उस गुरु की जानकारी ही अपर्याप्त है। यदि यह लड़की, शान्तला के गुरु के हाथ में होती तो उसे वे उस विद्या में पारंगत बना देते।"

"तो तुम ही उसके गुरु हो। उसके माँ-बाप से कहकर उसे एक योग्य गुरु के पास शिक्षण के लिए भिजवाने की व्यवस्था भी करोगे न ?"

"विद्या सीखने की आकांक्षा जिसमें हो उसके लिए उचित व्यवस्था न करना सरस्वती के प्रति द्रोह है। गुरुवर्य ने यही कहा है। इसमें क्या गलती है, माँ ?"

"गुरु के कहने में कोई गलती नहीं। मगर तुम्हारी इस अत्यन्त आसक्ति का कारण क्या है ?"

"वह लड़की निश्छल मन से आती है, जानने की इच्छा से पूछती है, सीखने में उसकी निष्ठा है, विषय को शीघ्र ग्रहण करती है। इसलिए मेरी भावना है कि वह विद्यावती बने।"

"क्या उसे जन्म देनेवाले माता-पिता यह नहीं जानते ?"

"यह मैं कैसे कहूँ, माँ ? जो वस्तु अपने पास हो, उसके लिए किसी को 'नाहीं' कहना पोय्सलवंशियों के लिए अनुचित बात है। यही बात आप स्वयं कई बार कहती हैं, माँ।"

"तो यह उदारता रही, प्रेम का प्रभाव नहीं। है न ?"

"इसे उदारता कहना बेहतर है, प्रेम कहने में कुछ कमी हो सकती है। चामला आपकी कोख से जनमी होती और वह मेरे पास आकर इसी तरह प्रेम से अपनी अभिलाषा व्यक्त करती तो भी मैं उसे ऐसे ही प्रेम से समझाता, माँ !"

युवरानी एचलदेवी को इस उत्तर से सन्तोष हुआ। उनके मन का सन्देह पुत्र पर प्रकट न हो इस दृष्टि से बात को आगे बढ़ाती हुई उन्होंने उसकी विद्या-शिक्षण के बारे में कई सवाल किये। यह भी पूछा कि दण्डनायकजी जो सैनिक शिक्षा दे रहे थे उसकी प्रगति कैसी है किन्तु इस चर्चा में उन्हें मालूम हुआ कि उनका बड़ा बेटा सैनिक-शिक्षण में भी पिछड़ा ही रह गया है। उन्होंने पूछा, "वह ऐसा क्यों हो गया ?"

"भैया का शरीर सैनिक-शिक्षण के परिश्रम को सह नहीं सकता, माँ। इससे जो थकावट होती है उससे वह डर जाता है और दूर भागता है। वह दुर्बल है तो क्या करे ?"

"परन्तु भविष्य में वही तो पोय्सल राज्य का राजा होगा। ऐसे पिता का पुत्र होकर..."

"मैं हूँ न, माँ।"

"उनसे क्या?"

"भैया की शारीरिक दुर्बलता स्वभाव से ही है। जैसे महाराज के राजधानी में रहने पर भी सब राजकार्य अपनी बुद्धि, शक्ति और बाहुबल से युवराज चला रहे हैं वैसे ही भैया महाराज बनकर आराम से रहेंगे और मैं उसका दायाँ हाथ बनकर उसके सारे कार्य का निर्वहण करता रहूँगा।"

"दुर्बल राजा के कान भरनेवाले स्वार्थी अनेक रहते हैं, बेटा।"

"मेरे सहोदर भाई, मेरी परवाह किये बिना या मुझसे कहे बिना, दूसरों की बातों में नहीं आयेंगे, माँ। आप और युवराज जैसे मेरे लिए हैं वैसे भैया के लिए भी; आप ही का रक्त हम दोनों में है। इस राज्य की रक्षा के लिए मेरा समस्त जीवन समर्पित है, माँ।"

युवरानी एचलदेवी ने आनन्द से गद्गद हो बेटे को अपनी छाती से लगा लिया और उनके सिर पर हाथ फेरते हुए आशीष दिया, "बेटा, तुम चिरंजीवी होओ, तुम ही मेरे जीवन का सहारा हो, बेटा।"

माँ के इस आशीर्वाद ने बेटे को भाव-विह्वल कर दिया।

श्रीदेवी नामधारिणी बड़ी रानी चन्दलदेवी के पास स्वयं चालुक्य-चक्रवर्ती शक-पुरुष विक्रमादित्य का लिखा एक पत्र पहुँचाया गया। लिखा गया था कि सेना धारापुर की ओर रवाना हुई है और वे अपना परिचय किसी को न देकर गुप्त रूप से रहें। युद्ध की गतिविधि का समयानुसार समाचार भेजा जाता रहेगा, समाचार न भेज सकने की हालत में बिना घबड़ाये धीरज के साथ रहें। प्रभु एरेयंग ने भी हेग्गड़े को एक पत्र भेजा, "हिरिय चलिकेनायक द्वारा सब हाल मालूम हुआ, बड़ा सन्तोष हुआ, मन को शान्ति मिली। हेग्गड़े के साले हेग्गड़ सिंगिमय्या के इस युद्ध में प्रदर्शित शौर्य-साहस और युक्तियुक्त व्यवहार की सबने प्रशंसा की है। उनकी सलाह लिये बिना दण्डनायक एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाते हैं। सेना की व्यूह-रचना में तो यह सिंगिमय्या सिद्धहस्त है। उनके इस व्यूह-रचना क्रम ने शत्रुओं को बड़े संकट में डाल दिया और उनके लिए बड़ी पेचीदगी पैदा कर दी। अब आगे की सारी युद्ध-तैयारी, व्यूह-रचना, सैन्य-विभाजन आदि सब

कुछ उन्हीं पर छोड़ दिया गया है। इसमें उन्हें केवल हमारी स्वीकृति लेनी होती है।" हेगड़े सिंगिमय्या की सराहना के साथ ही उन्होंने हेगड़ती और शान्तला के बारे में भी बड़े आत्मीय भाव व्यक्त किये। अन्त में, उन्होंने शान्तला के अपनी अतिथि से स्नेह-सम्बन्ध के क्रमिक विकास के बारे में जानकारी भी चाही। हेगड़े मारसिंगय्या को यह सूचना दी थी कि महाराजा और युवरानीजी को बता दिया जाये कि सब कुशल हैं और सब कार्यक्रम बड़े ही सन्तोषजनक ढंग से चल रहे हैं।

एरेयग प्रभु के आदेशानुसार हेगड़े ने दो पत्र दोरसमुद्र भेजे। फिर वहाँ का समाचार उसी पत्रवाहक के हाथ भिजवा दिया।

तब वह बलिपुर में बड़ी रानी चन्दलदेवी हेग्गड़ती माचिकब्बे की ननद श्रीदेवी के नाम के रूप में परिचित हो चुकी थीं। उसके लिए इस तरह का जीवन नया था। वहाँ हर वक़्त नौकर-चाकर हाजिर रहते, यहाँ उसे कुछ-न-कुछ काम खुद करना पड़ता। बसदि के लिए माचिकब्बे के साथ थाल-फूल लेकर पैदल ही जाना होता था। सरल-जीवी माचिकब्बे से वह बहुत हिल-मिलकर रहने लगी। यहाँ उसे बहुत अच्छा लग रहा था। हेग्गड़ती के व्यवहार से बड़ी रानी को यह अच्छी तरह स्पष्ट हो चुका था कि उनके मायके और ससुराल के लोगों में पोय्सल-राज्य-निष्ठा बहुत गहरी है। इस सबसे अधिक, उस इकलौती बेटी को अत्यधिक प्यार से बिगाड़े बिना एक आदर्श-जीवी बनाने के लिए की गयी शिक्षण-व्यवस्था से उसे बहुत खुशी हुई। वह सोचा करती कि लोकोत्तर सुन्दरी के नाम से ख्यात अगर उसके माता-पिता इस तरह से शिक्षित करते तो यों वेष बदलकर दूसरों के घर रहने की स्थिति शायद नहीं आती।

आरम्भ में एक दिन शान्तला को घोड़े पर सवारी करने के लिए सन्नद्ध देख हेग्गड़ती से उसने नव-निश्चित सम्बोधन 'भाभी' के साथ पूछा, "भाभी, बेटी को नाचना-गाना सिखाना तो सही है, पर यह अश्वारोहण क्यों?"

"हाँ श्रीदेवी, मुझे भी ऐसा ही लगता है। उसे अश्वारोहण की क्या आवश्यकता शायद नहीं है। मगर उसके पिता उसकी किसी भी इच्छा को टालते नहीं हैं, कहते हैं, 'ईश्वर ने उसे प्रेरणा दी है; उस प्रेरणा से इनकार करनेवाले हम कौन होते हैं?' राजधानी में रहते वक़्त वह इस विषय में निष्णात घुड़सवारों से प्रशस्ति पा चुकी है। जब हम वहाँ रहे तब हमारे युवराज के द्वितीय पुत्र और इसमें प्रतिदिन स्पर्धा हुआ करती थी। जबसे इस युद्ध की बात चली तब से वह तलवार चलाने और धनुर्विद्या सीखने की बात कर रही है। किन्तु यहाँ यह विद्या सिखाने योग्य गुरु नहीं है, और, इस दृष्टि से वह अभी छोटी भी है, इसलिए उसके पिता ने उसे एक दीवार के पास खड़ी करके उससे एक बालिश्त ऊँची एक रेखा खींचकर आश्वस्त किया है कि जब वह उतनी ऊँची हो जायेगी तब उसे तीर-तलवार चलाना सिखाने की व्यवस्था होगी। अब वह रोज उस लकीर के पास

खड़ी होकर अपने को नापती है।"

हेग्गड़ती उम्र में चन्दलदेवी से कुछ बड़ी थी। महारानी को अब यहाँ एकवचन का ही प्रयोग होना था। अब वह शान्तला की फूफी थी। नृत्य-संगीत के पाठ में यह भी उनके साथ रहना चाहती थी, परन्तु स्थिति प्रतिकूल थी, इसलिए वह बाद में फूफी को सीखे हुए पाठ का प्रदर्शन करके दिखाती। एक दिन उसका नया गाना सुनकर चन्दलदेवी बहुत ही खुश हुई, अपने आनन्द के प्रतीक के रूप में हाथ से सोने का कंगन उतारकर उसे देने लगी।

शान्तला तुरन्त पीछे हटी, और चन्दलदेवी को एकटक देखने लगी, "क्यों अम्माजी, ऐसे क्यों देखती हो? आओ, लो न? खुश होकर जो दिया जाये उससे इनकार नहीं करना चाहिए।"

"क्या कहीं घर के ही लोग घर के लोगों को यों पुरस्कार देते हैं? खुश होकर ऐसा पुरस्कार तो राजघरानेवाले दिया करते हैं; आप राजघराने की नहीं है न?"

अचानक आयी हेग्गड़ती ने पूछा, "यह राजघराने की बात कैसे चली? अम्माजी ने ठीक ही कहा है, श्रीदेवी, घरवाले घरवालों को ही पुरस्कार नहीं देते। और फिर, युवरानी ने खुश होकर जो पुरस्कार दिया था, इसने वह भी नहीं लिया था।" उसने सोसेऊरु में हुई घटना विस्तार से समझायी।

वह कंगन चन्दलदेवी के हाथ में ही रह गया। उसके अन्तरंग में शान्तला की बात बार-बार आने लगी, 'खुश होकर ऐसा पुरस्कार तो राजघरानेवाले दिया करते हैं; आप राजघराने की नहीं है न?' उसने सोचा कि यह लड़की बहुत अच्छी तरह समझती है कि कहाँ किससे कैसा व्यवहार करना चाहिए। उसे यह समझते देर नहीं लगेगी कि वह श्रीदेवी नहीं है, बल्कि चालुक्यों की बड़ी रानी चन्दलदेवी है। इसलिए उसने सोचा कि इसके साथ बहुत होशियारी से बरतना होगा। अपनी भावनाओं को छिपाकर उसने हेग्गड़ती से कहा, "हाँ भाभी, तुम दोनों का कहना ठीक है। मैं तो घर की ही हूँ। पुरस्कार न सही, प्रेम से एक बार चूम लूँ, यह तो हो सकता है न?"

"वह सब तो छोटे बच्चों के लिए है।" शान्तला ने कहा।

"छोटे बच्चे, तुम बहुत बड़ी स्त्री हो?" कहती हुई चन्दलदेवी शान्तला को पकड़ने के लिए उठी तो वह वहाँ से भाग गयी।

"ऐसे तो वह मेरे ही हाथ नहीं लगती, तुम्हारे कैसे हाथ लगेगी, श्रीदेवी। तुम्हारी अभिलाषा ही है तो उसकी पूर्ति, जिन्होंने तुम्हारा पाणिग्रहण किया है वे जब युद्धक्षेत्र से जयभेरी के नाद के साथ लौटेंगे तब सुगन्धित चमेली के हार इसे भी पहनाकर कर लेना।" हेग्गड़ती ने कहा। चन्दलदेवी माचिकब्बे को एक खास अन्दाज से देखती रही। इतने में गालब्बे ने आकर खबर दी, "मालिक बुला रहे हैं।" और माचिकब्बे चली गयी।

चन्दलदेवी के मन में तरह-तरह की चिन्ताएँ और विविध विचारों की तरंगें उठ रही थीं, माचिकब्बे समझती होगी कि मेरा पाणिग्रहण करनेवाला कोई साधारण सिपाही या सरदार अथवा कोई सेनानायक होगा। जब उनकी कीर्ति मेरे कानों में गूँज रही थी, जब उनका रूप मेरी आँखों में समा चुका था, जब वे मेरे सर्वांग में व्याप चुके थे तभी मैं उनके गले में स्वयंवर माला डाल चुकी थी। परन्तु मेरे मन की अभिलाषा पूरी हुई उस स्वयंवर में जिसका फल है यह घोर युद्ध, यह हृदय-विदारक हत्याकाण्ड। मेरे सुन्दर रूप और राजवंश में जन्म के बावजूद मुझे वेष बदलकर दूसरों के घर रहना पड़ रहा है! परन्तु, हेग्गड़ती ने जो बात कही उसमें कितना बड़ा सत्य निहित है। स्त्री ही स्त्री का मन समझ सकती है। युद्ध के रक्त से ही अपनी प्यास बुझानेवाले इन पुरुषों में कोई मधुर भावना आये भी तो कैसे? विरह का दुःख उनके पास फटके भी तो कैसे? ये तो हम हैं कि जब जयभेरी-निनाद के साथ वे लौटते हैं तब उन्हें जयमाला पहनाते ही सबकुछ भूल जाते हैं। हेग्गड़ती ने सम्भवतः ठीक ही कहा कि विजयमाला पहनाने पर जो तृप्ति मिलेगी वह स्वयं-वर के समय वरमाला पहनाने पर हुए सन्तोष से भी अधिक आनन्ददायक हो सकती है। वह दिन शीघ्र आये, यही कामना है।

कुछ देर बाद शान्तला धीरे से चन्दलदेवी के कमरे में आयी और उसे कुछ परेशान पाकर वहाँ से चुपचाप भाग गयी। सोचने लगी, फूफी मानसिक अशान्ति मिटाने के लिए हमारे यहाँ आकर रह रही है जिसका अर्थ है कि उन्हें सहज ही जो वात्सल्य मिलना चाहिए वह नहीं मिल पाया है। उसे रेविमय्या इसलिए यहाँ भेज गया होगा। वह कितना अच्छा है। वह मुझे अपनी बेटी के ही समान मानता और प्रेम करता है। प्रेम एकमुख होकर बहनेवाला प्रवाह नहीं, बल्कि सदा ही पारस्परिक सम्बन्ध का सापेक्ष होता है, गुरुजी ने ऐसा ही कहा था। रेविमय्या मेरा सगा-सम्बन्धी नहीं, फिर भी उसकी प्रीति ऐसी थी कि उसके प्रति मैंने भी अपनी प्रीति दिखायी। इससे उसे जितना आनन्द हुआ उतना ही आनन्द मेरी इस फूफी को भी मिले। इसी भाव से विभोर होकर उसने उसको चूम लिया।

इससे चन्दलदेवी एक दूसरी ही दुनिया में जा पहुँची। शान्तला को अपनी गोद में खींचकर बैठा लिया और उसे चूम-चूमकर आशीष देती हुई बोली, "चिरंजीवी होओ, तुम्हारा भाग्य खूब-खूब चमके, बेटी।" उसकी आँखें अश्रुपूर्ण हो गयीं।

यह देखकर शान्तला बोली, "उसे भी ऐसा ही हुआ था।" आँखें पोंछती चन्दलदेवी ने पूछा, "किसे?"

"सोसेऊरु के रेविमय्या को।" शान्तला बोली।

"क्या हुआ था उसे?"

शान्तला ने रेविमय्या की रूप-रेखा का यथावत् वर्णन किया जो उसके दिल

में उस समय तक स्थायी रूप से अंकित हो चुकी थी। फिर कहा, "फूफीजी, आपने भी वही किया न अब ?"

"हाँ बेटी, निश्छल प्रेम के लिए स्थान-मान की कोई शर्त नहीं होती।"

"हमारे गुरुजी ने कहा था कि कोई राजा हो या रंक, वह सबसे पहले मानव है।"

"गुरु की यह बात पूर्णतः सत्य है, अम्मा। तुम्हारे गुरु इतने अच्छे हैं, इस बात का बोध मुझे आज हुआ। कोई राजा हो या रंक, वह सबसे पहले मानव है, कितनी कीमती बात है, कितना अच्छा निदर्शन।"

"निदर्शन क्या है, फूफी, इसमें ?"

चन्दलदेवी तुरन्त कुछ उत्तर न दे सकी। कुछ देर बाद बोली, "वह रेविमय्या एक साधारण नौकर है तो भी उसकी मानवीयता कितनी ऊँची है। मानवीयता का इससे बढ़कर निदर्शन क्या हो सकता है। यह तो इस निदर्शन का एक पहलू है, आपने किसी राजा-महाराजा का निदर्शन नहीं दिया।"

"उसके लिए निदर्शन की क्या जरूरत है, वह भी तो मानव ही है।" चन्दलदेवी होंठों पर जुबान फिराकर थूक सटकती हुई बोली।

"बात रेविमय्या और आपके बारे में हो रही थी, रेविमय्या नौकर है, लेकिन आप राजरानी नहीं, फिर यह तुलना कैसी, मैं यही सोच रही हूँ।"

अम्माजी, इस प्रश्न का उत्तर चाहे जो हो, उससे इसमें सन्देह नहीं कि तुम बड़ी सूक्ष्म-बुद्धिवाली हो। अच्छा, तुमने राजाओं की बात उठायी है तो तुम्हीं से एक बात पूछूँगी। तुम स्त्री हो, और तुम घुड़सवारी सीख रही हो, फिर तीर-तलवार चलाना भी सीखने की अभिलाषा रखती हो। क्या यह सब सीखने को तुम्हारे गुरुजी ने कहा है ?" चन्दलदेवी ने कहा।

"न, न, वे क्यों कहेंगे ?"

"फिर तुममें यह अभिलाषा कैसे पैदा हो गयी जबकि अभी तुम बच्ची ही हो ?"

"अभिलाषा बच्चों में भी हो सकती है। लव-कुश बच्चे ही थे जिन्हें मुनिवर वाल्मीकि ने सब विद्याएँ सिखायी थीं और जिन्होंने श्रीराम की सेना से युद्ध किया था।"

"यह कथा सुनकर तुम्हें प्रोत्साहन मिला हो सकता है। पर प्रश्न यह है कि वह सब सीखकर तुम क्या करोगी।"

"मैं युद्ध में जाऊँगी। मैं लोगों की जान की और गौरव की रक्षा में इस विद्या का उपयोग करूँगी।"

"स्त्रियों को युद्ध क्षेत्र में, युद्ध करने के लिए ले ही कौन जायेगा ?"

"स्त्रियाँ युद्ध करने की इच्छा प्रकट करें और उन्हें युद्ध का शिक्षण दिया

...ाय तो वे भी युद्ध में ले जायी जाने लगेंगी।"

"नहीं ले जायी जाने लगेंगी क्योंकि वे अबला हैं।"

"उनके अबला होने या न होने में क्या अन्तर पड़ता है ? क्या अकेली चामुंडा ने हजार-हजार राक्षस नहीं मारे, महिषासुर की हत्या नहीं की ? अधर्म-अन्याय को रोकने के लिए देवी कामाक्षी राक्षसी नहीं बनी ?"

"अब्बा ! तुम्हें तो राजवंश में जन्म लेना चाहिए था, अम्माजी। तुम हेग्गड़े के घर में क्यों पैदा हो गयी ?"

"वह मैं क्या जानूँ ?"

"मैं फिर कहूँगी, तुम-जैसी को तो राजवंश में पैदा होना चाहिए था।"

"क्यों ?"

"तुम्हारी जैसी यदि रानी बने तो लोकोपकार के बहुत से कार्य अपने आप होने लगें।"

"क्या रानी हुए बिना लोकोपकार सम्भव नहीं ?"

"है। परन्तु एक रानी के माध्यम से वह उपकार बृहत्तर होगा।"

"सो कैसे ?"

"देखो, रानी का बड़ा प्रभाव होता है। राजा के ऊपर भी वह अपना प्रभाव डाल सकती है, उसके नेक रास्ते पर चलने में सहायक हो सकती है।"

"फूफी, यह ज्ञान आपको प्राप्त कैसे हुआ ?"

उसके इस प्रश्न पर वह फिर असमंजस में पड़ गयी, परन्तु उससे उभरने का मार्ग इस बार उसने कुछ और चुना, "चालुक्यों के राजमहल में रहने से, उसकी बड़ी रानी चन्दलदेवी की निजी सेवा में रहने से मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है।"

"माँ ने या पिताजी ने तो कभी नहीं बताया कि हमारे अत्यन्त निकट बन्धु चालुक्य राजाओं के घर में भी हैं, जबकि हमारे सभी बन्धुगण पोय्सल राजाओं की ही सेवा में हैं।"

"बात यह है कि मेरे यहाँ आने के बाद ही भाई और भाभी को मेरा परिचय मिला। इससे पूर्व उन्हें इस बात का स्मरण ही नहीं रहा। तुम्हारे परदादा और मेरे दादा भाई-भाई थे। मेरे दादा कल्याण में जाकर बस गये। शायद इसलिए इधर से रिश्ते-नाते टूट गये होंगे।"

"तो आपकी महारानीजी अब कल्याण में है ?"

"न, न, वे रणक्षेत्र में गयी थीं, मैं तो थी ही। एक रात वे वहाँ से अचानक गायब हो गयीं। तब तुम्हारे युवराज ने मुझे यहाँ भेज दिया।"

"तो क्या बड़ी रानीजी वैरियों के हाथ पड़ गयीं ?"

"शायद नहीं।"

"तो वे गयी कहाँ, और गयी क्यों ?"

"वह तो एक अबूझ रहस्य है।"

"रानीजी युद्ध-विद्या में कुशल तो हैं न?"

"न, न, उनके माता-पिता ने तो उन्हें फूल की तरह पाला-पोसा था। वे झुककर अपनी अंगिया तक नहीं उठा सकतीं, फिर युद्ध-विद्या कैसे सीख सकती थीं?"

"तो वे युद्ध-शिविर में क्यों गयीं?"

"वह उनकी चपलता थी। मैं महारानी हूँ और चूँकि यह युद्ध मेरे कारण हो रहा है, इसलिए इसे मैं प्रत्यक्ष रहकर देखना चाहती हूँ, कहा और बैठ गयीं हठ पकड़कर। महाराज ने उन्हें बहुत समझाया, कहा उनके शिविर में होने से अनेक अड़चनें पैदा हो जायेंगी। जो अपनी रानी की ही रक्षा न कर सकेगा वह राज्य की रक्षा कैसे कर सकेंगे, उनके इस प्रश्न के उत्तर में महाराज को उन्हें युद्ध-क्षेत्र में ले ही जाना पड़ा। महारानी ने सोचा कुछ और हुआ कुछ और ही। इसीलिए तुम सबको कष्ट देने के लिए मुझे यहाँ आना पड़ा।"

"न, न, ऐसा न कहें। आप आयीं, इससे हम सभी को बहुत खुशी हुई है। माँ कह रही थी कि कोई खोयी वस्तु पुनः मिल गयी है, हमें इस बान्धव्य रूपी निधि की रक्षा करनी चाहिए और विशेषतः तुम्हारे किसी व्यवहार से फूफी को कोई कष्ट नहीं होना चाहिए।"

"भाभी इतनी अच्छी है, यह बात मुझे पहले मालूम न थी वरना मेरे यहाँ ही आने का मुख्य कारण यह था कि तुम्हारे मामा, जो अब भी उस युद्ध-शिविर में हैं, ने मुझे इस रिश्ते का ब्यौरा देकर यहीं आने को प्रेरित किया।"

"तो फूफीजी, मुझे कल्याण के राजा और रानी के बारे में कुछ और बताइये।"

"बताऊँगी, अम्माजी, जरूर बताऊँगी।"

"मेरी फूफी बहुत अच्छी है" कहती हुई शान्तला उसके गाल का एक चुम्बन लेकर ऐसी भागी कि दहलीज से टकराकर गिर ही गयी होती अगर भोजन के लिए बुलाने आयी गालब्बे ने उसे पकड़ न लिया होता। भोजन के लिए जाती हुई चन्दलदेवी निश्चिन्त थी इस बात से कि शान्तला उसके वास्तविक परिचय से अनभिज्ञ है।

धारानगरी पर धावा बोलते समय एरेयंग प्रभु के द्वारा रोके जाने पर भी विक्रमादित्य युद्धरंग में सबसे आगेवाली पंक्ति में जाकर खड़ा हो गया। वास्तव

में वह महावीर तो था ही, युद्ध-कला में निष्णात भी था। उसके शौर्य-साहस की कथाएँ पास-पड़ोस के राज्यों में भी प्रचलित हो गयी थीं। इसने भी अधिक, उसने चालुक्य विक्रम नामक संवत् का आरम्भ भी किया था। इसकी इस सर्वतोमुखी ख्याति, और साहस से आकर्षित होकर ही शिलाहार राजकुमारी चन्दलदेवी ने उसके गले में स्वयंवर-माला डाली थी। इसी से अन्य राजाओं के मन में ईर्ष्या के बीज अंकुरित हुए थे। इस युद्ध में प्रभु एरेयंग ने स्वयं सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ली थी क्योंकि उसका मत था कि विक्रमादित्य युद्धरंग से सम्बन्धित किसी काम में प्रत्यक्ष रूप से न लगे। लेकिन, युद्ध करने की चपलता भी मानव के अन्य चपल भावों-जैसी बुरी है, यह सिद्धान्त यहाँ सत्य सिद्ध हुआ।

उस दिन उसके अश्वराज पंचकल्याणी को पता नहीं क्या हो गया कि वह एक जगह अड़कर रह गया। विक्रमादित्य ने बहुत रगड़ लगायी पर वह टस-से-मस न हुआ। इस गड़बड़ी में शत्रु के दो तीर घोड़े की आँख में और पुट्ठे के पास लगे जिससे वह हिनहिनाकर गिर पड़ा, साथ ही विक्रमादित्य भी जिन्हें तत्काल शिविर में पहुँचा दिया गया। उसकी बायीं भुजा की हड्डी टूट गयी थी जिसकी शिविर के वैद्यों ने तुरन्त चिकित्सा की। उसे कम-से-कम दो माह के विश्राम की सलाह दी गयी।

उसी रात निर्णय किया गया कि महाराज को कल्याण भेजा जाये और उनकी रक्षा के लिए एक हजार सैनिकों की एक टुकड़ी भी। महारानी को बलि-पुर से कल्याण भेजने की विक्रमादित्य की सलाह पर एरेयंग प्रभु ने कहा, "यह काम अब करना होता तो उन्हें बलिपुर भेजने की बात ही नहीं उठती थी। दूसरे, शत्रुओं में यह बात फैली है कि जिनके कारण किया गया वे महारानी ही इस वक्त नहीं है। इसलिए शत्रु अब निराश हैं जिससे युद्ध में वह जोश नहीं रह गया है। ऐसी हालत में यदि शत्रु को यह मालूम हो जाये कि महारानीजी कल्याण में है तो युद्ध की योजना ही बदल जायेगी। इसलिए, अब कल्याण में रहनेवाले शत्रु-पक्ष के गुप्तचरों को जब तक निकाल न फेंका जाये तब तक महारानीजी का वहाँ जाना ठीक नहीं।"

निर्णयानुसार विक्रमादित्य कल्याण पहुँच गया।

यहाँ युद्ध चला और एरेयंग प्रभु विजयी हुए। उनकी सेना को धारानगर में अपनी इच्छानुसार कार्य करने की अनुमति भी दी गयी किन्तु एक कड़ी आज्ञा थी कि बच्चों पर किसी तरह का अत्याचार या बलात्कार न हो। परन्तु कहीं से भी रसद और धन-सम्पत्ति बटोर लाने की मनाही नहीं थी क्योंकि युद्ध की भरपाई और प्राणों पर खेलनेवाले योद्धाओं को तृप्त करने के लिए यह उनका कर्तव्य-जैसा था। सेना का काम-काज समाप्त होने पर वृद्धाओं, स्त्रियों, बच्चों तथा सभ्य नागरिकों को बाहर भेजकर उस नगरी में अग्निदेव की भूख मिटायी गयी।

परमार राजा, और काश्मीर के राजा हर्ष के सिवाय अन्य सभी प्रमुख शत्रु-योद्धा वन्दी हुए। निर्णय हुआ कि उन्हें कल्याण ले जाकर बड़ी रानीजी के सम्मुख प्रस्तुत किया जाये ताकि वे हीं इन्हें जो दण्ड देना चाहें, दें। धारानगर से अपने वन्दियों को लेकर रवाना होने के पहले प्रभु एरेयंग ने राजमहल की स्त्रियों और अन्य स्त्रियों को उनकी इच्छा के अनुसार सुरक्षित स्थान पर भेज देने की व्यवस्था कर दी।

चामव्वा की युक्ति से ही सही, एचलदेवी बेलुगोल गयी थीं जहाँ उसने पति की विजय, रानी के गौरव की रक्षा और अपनी सुरक्षा के लिए प्रार्थना की। उस पर बाहुबली स्वामी ने ही अनुग्रह किया होगा।

युवरानी एचलदेवी की यह भावना दृढ़ हो चली कि कुमार बल्लाल और पद्मला के बढ़ते हुए प्रेम को रोकना उनका अनिष्ट चाहनेवालों के लिए अब सम्भव नहीं। वे इस बात की जब तक परीक्षा लेती रहीं कि पोय्सल राज्य की भावी रानी, वह लड़की कैसी है। पूर्ण रूप से सन्तुष्ट न होने पर भी वह सन्तुष्ट रहने की चेष्टा करती रहीं। बिट्टि के पास आते-जाते रहने के कारण चामला के बारे में अधिक समझने-जानने के अनेक अवसर प्राप्त होते रहे। बिट्टिदेव भी उसके विद्या के प्रति उत्साह और श्रद्धा के विषय में जब-तब चर्चा करता था। एचलदेवी सोचा करती कि पद्मला के बदले चामला ही चामव्वा की पहली बेटी होती तो कितना अच्छा होता। किन्तु अब तो उसे इस स्थिति के साथ, लाचार होकर समझौता करना था।

चामव्वा का सन्तोष दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा था। पद्मला की बात मानो पक्की हो गयी थी और चामला की बात भी करीब-करीब पक्की थी। वह सोचती कि चामला की बुद्धिमत्ता के कारण बिट्टि की ननु-नच नहीं चलेगी। यद्यपि वह यह नहीं जानती थी कि बिट्टि चामला को किस भाव से देखता है। वह तो बस, खुश हो रही थी। अलबत्ता उसे एक बात खल रही थी, वह यह कि उसने बल्लाल की-सी स्वतन्त्रता और मिलनसारिता प्रदर्शित नहीं की। यह दूसरी बात है कि चामला ने जो मिलनसारिता बिट्टिदेव के प्रति दिखायी थी, उसकी व्याख्या वह अपने ही दृष्टिकोण से कर लेती और उसी से फूलकर कुप्पा हो रही थी।

चामला का मन बिट्टिदेव के प्रति इतना निर्विकार था कि वह उसे विवाह करने तक की दृष्टि से न देखती। वह उसके प्रति आसक्त तो थी और वह भी उससे प्रेम करता था, परन्तु उस आसक्ति और उस प्रेम का लक्ष्य क्या है, यह उसकी समझ में नहीं आया था और अब तो बिट्टिदेव चूँकि सैनिक शिक्षण पर विशेष ध्यान दे रहा था अतः चामला को वह समय भी बहुत कम दे पाता था।

बल्लाल भी सैनिक-शिक्षण के लिए जाता, मगर न जाने के आक्षेप से बचने-

भर के लिए। इसलिए मारियाने दण्डनायक का वात्सल्य बिट्टि पर और भी अधिक बढ़ने लगा। उसने महाराज और प्रधानजी के सामने बिट्टिदेव के बारे में कहा, "वह तो सिंह का बच्चा है, उसकी धमनियों में परिशुद्ध पोय्सलवंशीय रक्त ज्यों-का-त्यों वह रहा है।" जब बल्लाल की बात भी आयी तो कहा, "वह भी तेज-बुद्धिवाला है, परन्तु शारीरिक दृष्टि से जरा कमजोर है। वह भी क्या करे जब कमजोर है ही। युद्ध विद्या के लिए केवल श्रद्धा ही पर्याप्त नहीं, शारीरिक शक्ति भी आवश्यक है।" मरियाने उसे दामाद मान चुका था, इसलिए कुछ विशेष बखान उसके बारे में नहीं किया। और प्रधान ने उनकी बातों को उतना ही महत्त्व दिया जितना वास्तव में दिया जा सकता था।

यह सारा वृत्तान्त चामव्वा ने सुना तो उसने अपने पतिदेव के चातुर्य को सराहा। उसे वास्तव में होनेवाले अपने दामाद की वीरता, लोकप्रियता और बुद्धि-कुशलता आदि बातों से अधिक प्रामुख्य इस बात का रहा कि वह भावी महाराज है। फिर भी वह चाहती थी कि उसका दामाद बलवान् और शक्तिशाली बने। इसलिए पद्मला द्वारा उसे च्यवनप्राश आदि पौष्टिक दवाइयाँ खिलवाती जो सपना देख रही थी कि बल्लाल कुमार के साथ विवाह हो जाये तो आगे के कार्यों को आसानी के साथ लेने की योजना अपने आप पूरी हो जायेगी। इन सब विचारों के कारण बलिपुर की हेग्गड़ती और उसकी बेटी उसके मन से दूर हो गयी थी। युवरानी एचलदेवी यह सबकुछ जानती थी अतः वह हेग्गड़ती और शान्तला की बात स्वयं तो नहीं ही उठाती, रेविमय्या से कहलवाकर उन्होंने बिट्टिदेव को भी होशियार कर दिया था। वह भी उधर की बात नहीं उठाता था। इसलिए चामव्वा निश्चिन्त हो गयी थी। इसी वजह से उसका भय और उनके प्रति असूया के भाव लुप्त हो गये थे। अब उसने किसी बात के लिए कोई युक्ति करने की कोशिश भी नहीं की।

बलिपुर में शान्तला और श्रीदेवी के बीच आत्मीयता बढ़ती गयी। शान्तला के आग्रह पर श्रीदेवी ने उसे चालुक्यों का सारा वृत्तान्त बताया। उसे बादामि के मूल चालुक्यों के विषय में विशेष जानकारी न थी, परन्तु कल्याणी के चालुक्यों की बाद की पीढ़ी के बारे में उसे काफ़ी अच्छा ज्ञान था। खासकर धारानगरी के इस हमले के मूल कारण का जिक्र करते हुए उसने बताया कि परमारों के राजा मुंज के समय से अब तक चालुक्य चक्रवर्ती और परमार मुंज के बीच एक-दो नहीं, सोलह-अठारह बार युद्ध हुए और उनमें चालुक्यों की विजय हुई। अन्त में, पराजित परमार नरेश मुंज के सभी विरुद छीनकर चालुक्य नरेश ने स्वयं धारण कर लिये। मुंज कारावास में डाल दिया गया जहाँ उसे किसी से या किसी को उससे मिलने पर सख़्त पाबन्दी थी। परन्तु कारावास के भीतर उसे सब सहूलियतें दी गयी थीं।

"परन्तु यह भी सुनने में आया कि परमार मुंज ने भी एक बार चालुक्य चक्रवर्ती को हराकर पिंजड़े में बन्द करके अपने शहर के बीच रखवाया था और उसे देखकर लोगों ने उसके सामने ही कहा कि, "यह बड़ा अनागरिक राजा है, इसके राज्य में न साहित्य है न संगीत, न कला है न संस्कृति" शान्तला ने टोका।

"यह सब तुम्हें कैसे मालूम हुआ, अम्माजी ?" श्रीदेवी ने पूछा।

"हमारे गुरुजी ने बताया था।"

"तो फिर तुमने मुझसे ही क्यों पूछा, उनसे क्यों नहीं ?"

"वे विषय संग्रह करते हैं और बताते हैं, जबकि आप वहीं रहकर उन बातों को उनके मूल रूप में जानती हैं, इसलिए आपकी बातें स्वभावतः अधिक विश्वसनीय होती हैं।"

"जितना मैंने प्रत्यक्ष देखा उतना तो निर्विवाद रूप से सही माना जा सकता है लेकिन कुछ तो मैंने भी दूसरों से ही जाना है जो संगृहीत विषय ही कहा जायेगा।"

"क्या वहाँ राजमहल में इन सब बातों का संग्रह करके सुरक्षित नहीं रखा जाता है ?" शान्तला ने पूछा।

श्रीदेवी ने शान्तला को एकटक देखा, उसे कदाचित् ऐसे सवाल की उससे अपेक्षा नहीं थी, "पता नहीं, अम्माजी, यह बात मुझे विस्तार के साथ मालूम नहीं।"

"क्या, फूफीजी, आप बड़ी रानी चन्दलदेवीजी के साथ ही रहीं, फिर भी आपने पूछा नहीं।"

"यों राजघराने की बातों को सीधे उन्हीं से पूछकर जानने की कोशिश कोई कर सकता है, अम्माजी ? गुप्त बातों को पूछने लगें तो हमपर से उनका विश्वास ही उठ जायेगा, हम बाहर निकाल दिये जायेंगे इसलिए इन बातों का तो जब-तब मौका देखकर संग्रह ही किया जा सकता है।"

"ऐसा है तो एक सरल व्यक्ति का तो राजमहल में जीना ही मुश्किल है।'

"एक तरह से यह ठीक है।"

"फिर भी लोग राजघराने में नौकरी करना क्यों चाहते हैं ?"

"इसके दो कारण है, राजघराने की नौकरी से हैसियत बढ़ती है और जीविका की फिक्र नहीं रहती।"

"मतलब यह कि जीवन-भर निश्चिन्त रूप से खाने-पीने और धन-संग्रह के लिए लोग यह भी करते हैं, है न ?"

"हाँ, ऐसा न हो तो वहाँ कौन रहना चाहेगा अम्माजी, वहाँ रहना तलवार की धार पर चलना है। किसी से कुछ कहो तो मुश्किल, न कहो तो मुश्किल। राजमहल की नौकरी सहज काम नहीं।"

"यह सत्य है। लेकिन आपकी बात और है, और, वह रेविमय्या भी आप ही-के-जैसे है। युवरानीजी और युवराज को उसपर पूरा भरोसा है।"

"ऐसे लोग पोय्सल राज्य में बहुत हैं, ऐसा लगता है। मुझे यहाँ छोड़ जाने के लिए जो नायक आया था उसने मार्ग में मेरी इतनी अच्छी देखभाल की जितनी मेरे पिता भी नहीं कर सकते थे।"

"मैंने यह भी सुना है कि हमारे युवराज भी अपने नौकरों-चाकरों की अपनी ही सन्तान के समान देखभाल करते हैं।"

"यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ, अम्माजी ?"

"हम सब वहाँ गये थे और एक पखवारे से भी अधिक राजमहल में ही रहे थे। तब वहाँ बहुत कुछ देखा था। अच्छा, यह बात रहने दीजिए। आगे क्या हुआ सो बताइये।"

"तुमने सच कहा, धारानगरी में हमारे चक्रवर्ती का घोर अपमान किया गया, किन्तु बदले में हम 'अनागारिक' लोगों ने अपने बन्दीगृह में उसी राजा मुंज के लिए भव्य व्यवस्था की थी। हमारे महाराज ने सोचा कि वे भी मेरे-जैसे मूर्धाभिषिक्त राजा हैं, उनका अपमान राजपद का ही अपमान होगा। कर्नाटक संस्कृति के अनुरूप उन्हें, बन्धन के चौखट में भी राज-अतिथियों के-से गौरव के साथ महल में रखा गया। इतना ही नहीं, चक्रवर्ती ने अपनी ही बहन को उस राजबन्दी के आतिथ्य के लिए नियुक्त किया। कन्नड़ साहित्य के उत्तम काव्यों को उसके सामने पढ़वाकर उसे साहित्य से परिचित कराया गया। राजकवि रन्न से उसका परिचय कराया गया। उसे प्रत्यक्ष दिखाया गया कि हमारे कवि कलम ही नहीं, वक्त आने पर धीरता से तलवार भी पकड़ सकते हैं। चालुक्यों की शिल्प-कला का वैभव भी उसे दिखाया गया। इस तरह की व्यावहारिक नीति से ही कर्नाटकवासियों ने परमार नरेश मुंज को सिखाया कि एक राजा का दूसरे राजा के प्रति व्यवहार कैसा होना चाहिए और दूसरों को समझे बिना उनकी अवहेलना करके उच्च संस्कृति से भ्रष्ट नहीं होना चाहिए। परन्तु मुंज तो मुंज था। इतने बड़े सद्व्यवहार का भी उसने घोर दुरुपयोग किया। महाराज की बहन तो उसके आतिथ्य में अन्नपूर्णा की भाँति संलग्न थी और वह अधम उसे कामुक दृष्टि से देखने लगा। इस जघन्य अपराध के लिए उसे वह दण्ड दिया गया जिससे उसे वहीं कल्याण में ही, प्राण त्यागने पड़े। तब से परमार-चालुक्य वैर बढ़ता ही गया और आज की इस स्थिति तक पहुँच गया है।"

"सुना है, राजा मुंज को राजधानी के बीच हाथी से कुचलवाया गया था, क्या यह सत्य है ?"

"यह मुझे ठीक-ठीक मालूम नहीं।"

"हमारे गुरुजी ने बताया था कि उनकी तरफ़ के लोगों में भी कोई कहानी

प्रचलित हैं।"

"वह क्या है ?"

"शायद आपको भी मालूम होगी।"

"नहीं, तुम्हें मालूम हो तो कहो।"

"राजा मुंज की पुष्ट देह और सशक्त व्यक्तित्व पर मोहित होकर चालुक्य राजा की बहन ने ही स्वयं उसे अपने मोहजाल में फँसा लिया था। बात प्रकट हो गयी तो उसके गौरव की रक्षा के हेतु दोष बेचारे मुंज पर लादकर उसे हाथी के पैरों से रौंदवा दिया गया।"

"तुम्हारे गुरुजी तो समाचार संग्रह करने में बहुत ही चतुर है। हर विषय की छानबीन कर उसकी तह तक पहुँच जाते हैं।"

"फूफीजी, जब वे इतिहास पढ़ाते है तब ऐसे विषय अधिक बताया करते है, लेकिन तभी जोर देकर यह भी कहते हैं कि एक ही विषय के जो दो भिन्न-भिन्न रूप होते हैं उनमें कौन ठीक है और कौन गलत, इस बात का निर्णय स्वयं करना चाहिए।"

"तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो, अम्माजी। माँ अच्छी, बाप अच्छे और तुम्हें गुरु भी बहुत अच्छे मिले हैं।"

"अच्छी फूफी भी मिल गयी है।"

"वैसे ही, तुम पाणिग्रहण भी एक अच्छे राजा से करोगी।"

"फूफी, सब बड़ी स्त्रियाँ यही बात क्यों कहा करती हैं ? प्रसंग कोई भी हो, आखिर में अच्छा पति पाने का आशीष जरूर देंगी जैसे स्त्री का एक ही काम हो, पति पाना। मुझे तो शादी-शादी, पति-पति सुनते-सुनते जुगुप्सा होने लगी है।"

"इस उम्र में ये बातें भले ही अच्छी न लगें परन्तु हम बड़ों का अनुभव है कि स्त्री का जीवन सुखमय सहधर्मिणी होकर रहने से ही होता है। इसी वजह से हम कहती हैं कि अच्छा पति पाओ। जिसका मतलब यह नहीं कि तुम कल ही शादी कर लो।"

"पति के अच्छे या बुरे होने का निर्णय कौन करेगा ?"

"शादी करनेवाले।"

"माँ-बाप किसी अनचाहे के हाथ मांगल्य-सूत्र बँधवाने को कहें तो ?"

"वे सब सोच-समझकर ही तो निर्णय करते हैं।"

"तो क्या वे समझते हैं कि बेटी के मन में किसकी कामना है ?"

"विवाह ब्रह्मा का निर्णय है, पति हम ही चुन लें या माँ-बाप, निर्णय तो वही है। अच्छा, जब तुम्हारी शादी की बात उठेगी तब तुम अपनी इस फूफी की बात मान जाओगी न !"

"बाद में ?" एक दूसरा ही प्रश्न करके शान्तला ने उसके सीधे से प्रश्न का

उत्तर चतुराई से टाला।

"किसके बाद ?" श्रीदेवी ने पूछा।

"वही, आपने कहा था न कि परमारों और चालुक्यों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी वैर बढ़ता ही गया, उसके बाद ?"

"उसके बाद, अब धारानगर पर जो धावा किया गया, उसका मूल कारण यही है।"

"उसके पीछे कोई और कारण भी होगा ?"

"हाँ, थी, बड़ी रानी चन्दलदेवी का स्वयंवर। भोजराज ने सोचा कि इस लड़की ने किसी दूसरे को ओर ध्यान दिये बिना ही हमारे वंश के परम शत्रु चालुक्य विक्रमादित्य के गले में माला डाल दी। उस राजा और लड़की को खतम किये बिना उन्हें तृप्ति नहीं मिल सकती थी इसलिए इस घटना से निराश हुए कुछ लोगों को मिलाकर परमारों ने युद्ध की घोषणा कर दी। चाहे कुछ हो, मुझ-जैसी एक लड़की को युद्ध का कारण बनना पड़ा।"

"आप-जैसी लड़की के क्या माने, फूफी ?"

श्रीदेवी तुरन्त चेत गयी, "हमारी वह बड़ी रानी, परन्तु इस युद्ध का असल कारण वह कदापि नहीं रहीं।"

"आपकी बड़ी रानी कैसी है फूफी ?"

"ओफ़, बहुत गर्वीली हैं, हालांकि उनका मन साफ और कोमल है।"

"क्या वे आपसे भी अधिक सुन्दरी हैं, फूफी ?"

"अरे जाने दो। उनके सामने मेरा सौन्दर्य क्या है नहीं, तो क्या उनका चित्र देखकर ही इतने सारे राजा स्वयंवर के लिए आते ?"

"वे राजकुमारी थीं, इसलिए उनके सौन्दर्य को हद से ज्यादा महत्त्व दिया गया, वरना सुन्दरता में आप किससे कम हैं फूफी ? जब आप मन्दिर जाती हैं तो बलिपुर की सारी स्त्रियाँ आप ही को निहारा करती है। उस दिन माँ ही कह रही थी, हमारी श्रीदेवी साक्षात् लक्ष्मी है, उसके चेहरे पर साक्षात् महारानी-जैसी कान्ति झलकती है।"

"भाभी को क्या, उनका प्रेम उनसे ऐसा कहलवाता है।"

इसी समय हेग्गड़तीजी हाथ में नाश्ते का थाल लिये वहीं आयीं।

"यह क्या भाभी। आप ही सब ढोकर ले आयीं, हम खुद वहीं पहुँच जाती।"

"मैं बुलाने को आयी थी, लेकिन आप लोगों की राजा-रानी की कथा का मजा किरकिरा न करके मैं यहीं ले आयी। साथ ही बैठकर खायेंगे, ठीक है न ?"

"भाभी, यह कैसा सवाल कर रही हैं ?"

"मुझे राजमहल की बातें नहीं मालूम। मैं गँवार हूँ, एक फूहड़ हेग्गड़ती।

तुमने राजमहल में ही समय व्यतीत किया है इसलिए अपने को रानी ही मानकर हम-जैसी गँवारों के साथ नाश्ता करना अपने लिए अगौरव की बात मान लो तो ?"

"नहीं, मेरी प्यारी ननदरानी, तुम ऐसी नहीं हो। वैसे ही कुछ पुरानी याद आ गयी। एक कहावत है, नाक से नथ भारी। दोरसमुद्र में एक बार ऐसी ही घटना घटी थी। लीजिए, नाश्ता ठण्डा हो रहा है।"

"भाभी आपत्ति न हो तो दोरसमुद्र की उस घटना के बारे में कुछ कहिए।" चन्दलदेवी ने हेग्गड़ती को प्रसंग बदलने से रोकना चाहा।

"अरे छोड़ो, जो हुआ सो हो गया। पाप की बात कहकर मैं क्यों पाप का लक्ष्य बनूं।"

"मैंने सुना है कि हमारी युवरानीजी बहुत अच्छी और उदार हैं। ऐसी हालत में ऐसी घटना घटी ही क्यों जिसके कारण आपके मन में भी कड़ुआहट अब तक बनी है। इसलिए उसके बारे में जानने का कुतूहल है।"

"युवरानीजी तो खरा सोना हैं। उन्हें कोई बुरा कहे तो उसकी जीभ जल जाए। परन्तु उन्हीं से अमृत खाकर उन्हीं पर जहर उगलनेवाले लोग, दूध पीकर जहर के दाँत से डसनेवाले नागसर्प भी हैं न?"

"पोय्सल राज्य में ऐसे लोग भी हैं?"

"गाँव होगा तो वहाँ कीचड़ का गड्ढा भी होगा और उसके पास से गुजरें तो उसकी दुर्गन्ध भी सहनी होगी।"

"भाभी, आपकी बात बहुत दूर तक जाती है।"

"दूर तक जाती है के क्या माने ?"

"अम्माजी ने बताया था कि वहाँ आप राजमहल में ही टिकी थीं। तो क्या वहाँ भी दुर्गन्ध लगी? दुर्गन्ध छोड़नेवाले लोगों का नाम न बता सकने के कारण आप शायद अन्योक्ति में बात कर रही हैं।"

"जाने दो। कोई और अच्छा विषय लेकर बात करेंगे। अपनी बड़ी रानी के बारे में कुछ कहो, वे कैसी हैं, उनके इर्द-गिर्द के लोग कैसे हैं, हम-जैसे सामान्य लोगों के साथ वे किस तरह का व्यवहार करती हैं?"

"बड़ी रानी हैं तो बहुत अच्छी, परन्तु उनके पास साधारण लोग नहीं जा सकते क्योंकि कल्याण के राजमहल की व्यवस्था ही ऐसी है। इसलिए वे लोगों के साथ कैसे बरतती हैं, यह मुझे नहीं मालूम। सामान्य नागरिकों के साथ सम्पर्क होने पर शायद वे वैसा ही व्यवहार करेंगी जैसे मनुष्य मनुष्य के साथ किया करता है।"

"यह कहाँ सम्भव है? उनका सम्बन्ध-सम्पर्क आम लोगों के साथ हो ही नहीं सकता।"

"हो सकता है, जरूर हो सकता है, जरूर हो सकता है। युद्ध-काल में वह न हो सके, यह दूसरी बात है। सामान्य लोगों के सम्पर्क से दूर, चारों ओर किला बाँधे रहनेवाले के व्यक्तित्व का विकास कैसे हो सकता है?"

"तो क्या आपकी बड़ी रानी उस तरह के किले में रहनेवाली है?"

"अब वे उस किले में नहीं है।"

"यह कैसे कह सकती हैं?"

"वे तो युद्ध-शिविर से गायब हो गयी हैं। ऐसी हालत में उस किले में रह भी कैसे सकती हैं?"

"जिनके हाथ में नहीं पड़ना चाहिए, ऐसे ही लोगों के हाथ अगर पड़ गयी हो तो?"

"आपको मालूम नहीं, भाभी, हमारी बड़ी रानीजी अपने को ऐसे समय में बचा लेने की युक्ति अच्छी तरह जानती हैं।"

"तब तो यह समझ में आया कि तुम इस बात को जानती हो कि वे कहाँ हैं।"

इतना मालूम है कि वे सुरक्षित हैं। इससे अधिक मैं नहीं जानती।"

"उतना भी कैसे जानती हो?"

"जो नायक मुझे यहाँ छोड़ गया, उसी ने यह बात कही थी कि बड़ी रानीजी अब सुरक्षित स्थान में हैं, चिन्ता की कोई बात नहीं।"

"ऐसा है, तब तो ठीक है।"

उनकी थालियाँ खाली हो गयीं और दुबारा भी भरी गयीं परन्तु शान्तला की थाली भरी-की-भरी ही रही। गालब्बे ने कहा, "अम्माजी ने तो अभी तक खाया ही नहीं।"

ननद-भाभी ने कहा, "अम्माजी जब तक तुम खा न चुकोगी तब तक हम बात नहीं करेंगे।"

नाश्ता समाप्त होते ही श्रीदेवी ने फिर वही बात उठायी, "अब कहिये भाभी, दोरसमुद्र की बात।"

"हम सब युवरानीजी के साथ दोरसमुद्र गये। वहाँ का सारा कारोबार बड़े दण्डनायक मरियाने की छोटी पत्नी चामव्वे की देखरेख में चल रहा था।"

बीच ही में शान्तला बोली, "उन बातों को जाने दो माँ। उल्लू के बोलने से दिन रात नहीं हो जाता। वे मानते हैं कि वे बड़े हैं तो मान लें। उससे हमारा क्या बनता-बिगड़ता है।"

माचिकब्बे ने बात बन्द कर दी। उसके मन की गहराई में जो भावना थी उसे समझने में रुकावट आयी तो श्रीदेवी ने शान्तला की ओर बुजुर्गाना निगाहों से देखा, "बेटी, तुम तो छोटी बच्ची हो, तुम्हारे कोमल हृदय में भी ऐसा जहर

बैठ गया है तो, उस चामव्वा का व्यवहार कैसा होगा ? किसी के विषय में कभी कोई बुरी बात अब तक मैंने तुम्हारे मुँह से नहीं सुनी। आज ऐसी बात तुम्हारे मुँह से निकली है तो कुछ तीव्र वेदना ही हुई होगी। फिर भी, बेटी, उस जहर को उगलना उचित नहीं, जहर को निगलकर अमृत बाँटना चाहिए। वही तो है नीलकण्ठ महादेव की रीति। वही शिवभक्त हेग्गड़े लोगों के लिए अनुकरणीय है।"

"ओह। मैं भूल ही गयी थी। श्रीदेवी नाम विष्णु से सम्बन्धित है फिर भी वे नीलकण्ठ महादेव का उदाहरण रही हैं। मुँहबोली बहिन है हेग्गड़ेजी की, भाई के योग्य बहिन, है न ?" माचिकब्बे ने बात का रुख बदलकर इन कड़वी बातों का निवारण कर दिया।

"मतलब यह कि मेरे भाई की रीति आपको ठीक नहीं लगती, भाभी।"

"श्रीदेवीजी उनकी रीति उनके लिए और मेरी मेरे लिए। इस सम्बन्ध में एक-दूसरे पर टीका-टिप्पणी न करने का हमारा समझौता है। इसीलिए यह गृहस्थी सुखमय रूप से चल रही है।"

"अर्धनारीश्वर की कल्पना करनेवाला शिव-भक्त प्रकृति से सदा ही प्रेम करता है, भाभी। वही तो सामरस्य का रहस्य है।"

"हमारे गुरुजी ने भी यही बात कही थी।" शान्तला ने समर्थन दिया।

इसी समय गालब्बे ने सूचना दी कि गुरुजी आये हैं।

"देखा, तुम्हारे गुरुजी बड़े महिमाशाली हैं। अभी याद किया, अभी उपस्थित पढ़ लो, जाओ।" श्रीदेवी गद्गद होकर बोलीं।

माचिकब्बे भी वहाँ से शान्तला के साथ गयीं और "तुम बाहर की बारादरी में रहो, हेग्गड़ेजी के आने का समय है। उनके आते ही मुझे खबर देना।" गालब्बे को आदेश देकर वह फिर श्रीदेवी के ही कमरे में पहुँचीं।

थोड़ी देर दोनों मौन बैठी रहीं। बात का आरम्भ करें भी तो कौन-सी कड़ी लें। असल में बात माचिकब्बे को ही शुरू करनी थी। इसीलिए श्रीदेवी भी उसकी प्रतीक्षा में बैठी रहीं। माचिकब्बे बैठे-बैठे सरककर दरवाजे को बन्द करके श्रीदेवी के पास बैठ गयीं। उसके कान में फुसफुसाती हुई बोलीं, "श्रीदेवी, तुम्हारे भैया सोच रहे हैं कि तुम्हें ले जाकर कहीं और ठहरा दें।"

"यह क्या भाभी, यह क्या कह रही हैं, सुनकर छाती फट रही है। क्या मैंने कोई ऐसा-वैसा व्यवहार किया है ?" श्रीदेवी की आँखों में आँसू भर आये।

माचिकब्बे ने श्रीदेवी के हाथ अपने हाथों में लेकर कहा, "ऐसा कुछ नहीं है, हमें अच्छी तरह मालूम है कि तुमसे ऐसा कभी नहीं हुआ, न हो ही सकेगा। फिर भी, दुनिया बुरी है, वह सह नहीं सकती। दुनिया हमें अपने में सन्तुष्ट रहने नहीं देती। हमेशा बखेड़ा खड़ा करने को कमर कसे रहती है। यह बात मैं अम्माजी के सामने नहीं कह सकती थी। इसीलिए मुझे ठीक समय की प्रतीक्षा करनी

पड़ी।"

श्रीदेवी को इस बात का भरोसा हुआ कि उसने कोई ऐसा काम नहीं किया जिससे हेग्गड़ेजी को कष्ट हुआ हो। आसमान में स्वतन्त्र विचरण करनेवाले पंछी के पंखों की तरह उसकी पलकें फड़फड़ाने लगीं। आँखों की कोर में जमे अश्रुबिन्दु मोती की भाँति बिखरने लगे, माचिकब्बे ने कुछ परेशान होकर पूछा, "ये आँसू क्यों, श्रीदेवी ?"

"कुछ नहीं, भाभी। पहले यह अहसास जरूर हुआ था कि मुझसे शायद कोई अपराध हो गया है लेकिन अब वह साफ हो गया। अब, भाभी आपसे एक बात अलबत्ता कहना चाहती हूँ, इसी वक़्त, क्योंकि इससे अच्छा मौका फिर न मिल सकेगा। मैं अपने जन्मदाता माँ-बाप को भूल सकती हूँ परन्तु आपको और भैया को आजन्म नहीं भूल सकती। आप लोगों ने मुझ पर उपकार ही ऐसा किया है कि उसे जन्मभर नहीं भूल सकती। वास्तव में न मेरे भाई है न भाभी। आप ही मेरे भाभी-भैया हैं। यह बात मैं बहुत खुशी से और गर्व के साथ कहती हूँ। आप जैसे भाई-भाभी पाना परम सौभाग्य की बात है, यह मेरा पूर्वजन्म के सुकृत से प्राप्त सौभाग्य है। कारण चाहे कुछ भी हो, उचित समय के आने तक यहाँ से अन्यत्र कहीं न भेजें। जब आपके आश्रय में आयी तब मान को धक्का पहुँचने का डर होता तो हो सकता था, लेकिन वह मान बना ही रहा है।"

"श्रीदेवी, तुम्हारी सद्भावना के लिए हम ऋणी हैं। उनको और मुझे भाई-भाभी समझकर सद्भाव से तुम हमारे साथ रहीं यह हमारा सौभाग्य है, तुम्हारा पुण्य नहीं, हमारा पुण्य-फल है। वास्तव में इनकी कोई बहिन नहीं है। इन्होंने इसे कई बार मुझसे कहा है, ईश्वर किस-किस तरह से नाते-रिश्ते जोड़ता है यह एक समझ में न आनेवाला रहस्य है। मुझ-जैसे को ऐसी बहिन मिलना मेरे सुकृत का ही फल है। तुमने भी नागपंचमी और उनके जन्म-दिन के अवसर पर उनकी पीठ दूध से अभिषिक्त करके उनकी बहिन होने की घोषणा की। ऐसी स्थिति में उनके मन में कोई बुरा भाव या उद्देश्य नहीं हो सकता, श्रीदेवी। हाँ, इतना अवश्य है कि वे दूर की बात सोचते हैं। इसलिए उनके कहे अनुसार चलने में सबका हित है। उनके अनुसार अब वर्तमान स्थिति में तुम्हारा यहाँ रहना खतरनाक है।"

"अब हुआ क्या है सो न बताकर ऐसी पहेली न बुझायें, भाभी। भैया का कहना मानकर चलना हितकर कहती हैं, साथ ही यह भी कहती हैं कि मेरा यहाँ रहना खतरनाक है। आश्चर्य है। अब तक खतरा नहीं था, अब आ गया, अजीब खतरा है !"

"उसे कैसे समझाऊँ, श्रीदेवी। कहते हुए मन हिचकिचाता है। तुम्हारे भैया कभी चिन्तित होकर नहीं बैठते। कितनी ही कठिन समस्या हो, उसका वे धीरज के साथ सामना करते हैं। परन्तु इस प्रसंग में वे कुछ उद्विग्न हो गये हैं। वे जो

भी कहना चाहते हैं वह खुद आकर सीधे तुमसे ही कहा करते हैं, लेकिन इ
प्रसंग में सीधा कहने में वे सकोच का अनुभव कर रहे थे। उनके उस संकोच
भी कुछ माने हैं, श्रीदेवी। उन्होंने जो सोचा है उस सम्बन्ध में सोच-विचार कर
के बाद जब मुझे ठीक जँचा तब मैंने स्वयं तुमसे कहना स्वीकार किया। अब हाथ
जोड़कर कहती हूँ कि उनका कहना मानकर हमें इस वास्तविक सन्दिग्धावस्था से
पार करो।" यह सुनकर श्रीदेवी की समझ में नहीं आया कि ऐसी हालत में वह क्या
करे। हेग्गड़ेजी की बात से ऐसा लग रहा है कि उसकी परीक्षा हो रही है। थोड़ी
देर सोचकर श्रीदेवी ने पूछा, "भाभी, एक बात मैं स्पष्ट करना चाहती हूँ। मैं
स्त्री हूँ अवश्य। फिर भी मेरा हृदय अपने भैया की ही तरह धीर है। मैं किसी से
नहीं डरती, न किसी से हार मानकर झुकती हूँ। आपकी बातों से स्पष्ट मालूम
पड़ता है, मेरे यहाँ रहने से आप लोगों को किसी सन्दिग्धावस्था में पड़ना पड़ रहा
है। परन्तु यह सन्दिग्धता सचमुच मेरे मन को भी सच्ची जान पड़ी तो आप लोगों
के कहे अनुसार करूँगी। इसलिए बात कैसी भी हो, साफ-साफ मुझे भी कुछ
सोचने-विचारने को मौका जरूर, दीजिए। कुछ भी संकोच न कीजिए।"

माचिकब्बे ने एक लम्बी साँस ली। एक बार श्रीदेवी को देखा। कुछ कहना
चाहती थी। मगर कह न सकी। सिर झटककर रह गयी, आँसू भर आये। फिर
कहने की कोशिश करती हुई बोली, "स्त्री होकर ऐसी बात कहूँ किस मुख से
श्रीदेवी, मुझसे कहते नहीं बनता।" उसका दुख दूना हो गया।

"अच्छा भाभी, स्त्री होकर आप कह नहीं सकती तो छोड़ दीजिए। मैं भैया
से ही जान लूँगी।" कहती हुई उठ खड़ी हुई।

माचिकब्बे ने उसे हाथ पकड़कर बैठाया। दूसरे हाथ से अपने आँचल का
छोर लेकर आँसू पोंछती हुई बोली, "अभी तुम्हारे भैया घर पर नहीं हैं। आते ही
गालब्बे खबर देगी, बैठो।"

दोनों मौन ही बैठी रहीं। मन में चल रहे भारी संघर्ष ने माचिकब्बे को बोलने
पर विवश किया, "भगवान ने स्त्री को ऐसा सुन्दर रूप दिया ही क्यों, इतना
आकर्षक बनाकर क्यों रख दिया?"

श्रीदेवी ने हेग्गड़ती को परीक्षक की दृष्टि से देखा, "भाभी, अचानक ऐसा
प्रश्न क्यों आया? क्या यह प्रश्न मेरे रूप को देखकर उठा है?"

"यह नित्य सत्य है कि तुम बहुत सुन्दर हो।" माचिकब्बे ने कहा।

"इस रूप पर गर्व करने की जरूरत नहीं। एक जमाने में मैं भी शायद गर्व
कर रही थी, अब नहीं।" श्रीदेवी बोली।

"क्यों?"

"क्योंकि इस बात की जानकारी हुई कि रूप नहीं, गुण प्रधान है।"

"परन्तु रूप को ही देखनेवाली आँख गुण की परवाह नहीं करती, है न?"

"दुर्बल मनवाले पुरुष जब तक दुनिया में हैं तब तक आँखें गुण के बदले कुछ और ही खोजती रहेंगी।"

"रूप होने पर ही न उस पर पुरुष की आँख जायेगी?"

"ऐसे दुश्चरित्रों के होते हुए भी गुणग्राही पुरुषों की कमी नहीं।"

"मन दुर्बल हो और उसकी इच्छा पूरी न हो तो पुरुष अण्टसण्ट बातों को लेकर असह्य किस्से गढ़ता है और उन्हें फैलाता फिरता है।"

"तो क्या मेरे विषय में भी ऐसी कहानी फैल रही है, भाभी?" श्रीदेवी ने तुरन्त पूछा।

"नहीं कह नहीं सकती और हाँ कहने में हिचकिचाहट होती है।"

"भाभी, ऐसी बातों को लेकर कोई डरता है? ऐसी बातों से डरने लगें हम तो लोग हमें भूनकर खा जायेंगे। इससे आपको चिन्तित नहीं होना चाहिए। लोग कुछ भी कहें, मैं उससे न डरनेवाली हूँ न झुकनेवाली। यदि आपके मन में कोई सन्देह पैदा हो गया हो तो छिपाइए नहीं। साफ-साफ कह दीजिए।"

"कैसी बात बोलती हो, श्रीदेवी? हम तुम्हारे बारे में सन्देह करें, यह सम्भव नहीं। परन्तु तुम्हारे भैया कुछ सुनकर बहुत चिन्तित हैं।"

"तो असली बात मालूम हुई न। उस मनगढ़न्त बात को खोलने में संकोच क्यों भाभी?"

"क्योंकि कह नहीं पा रही हूँ, श्रीदेवी। हमारे लोग ऐसे हीन स्तर के होंगे, इसकी कल्पना भी मैं नहीं कर सकती थी।"

"भाभी, अब एक बात का मुझे स्मरण आ रहा है। आने के एक-दो माह बाद आपके साथ ओंकारेश्वर मन्दिर गयी थी। वहाँ, उस दिन भैया का जन्मदिन था। आप सब लोग अन्दर गर्भगृह के सामने मुखमण्डप में थे। मैं मन्दिर की शिल्प-कला, खासकर उस कला का बारीक शिल्प जो प्रस्तरोत्कीर्ण जाल की कारीगरी थी, देखने में मगन हो गयी थी। तब एक पुरुष की बिजली की कड़क-सी खाँसने की आवाज सुनायी पड़ी। उस प्रस्तर जाल के बाहर की तरफ हँसने की मुद्रा में मैंने अपनी ही ओर देखता हुआ एक पुरुष देखा। वह कुत्ते की तरह जीभ हिलाता हुआ मुझे इशारे से बुलाता-सा दिखायी पड़ा। मैं तेजी से अन्दर चली गयी। भैया और बगल में आप, आप दोनों के सामने अम्माजी खड़े थे। आपकी बगल में गालब्बे थी, उसकी बगल में रायण खड़ा था। मैं मुख-मण्डप से होकर भैया के पास घुसकर खड़ी हो गयी। तब भगवान् की आरती उतारी जा रही थी। वह आदमी भी बाद में अन्दर आया। पुजारीजी आरती देने लाये तो भैया ने पहले मुझे दिलायी। तब एक विचित्र लच्च-लच्च सुनायी पड़ी। आपने छिपकली की आवाज़ समझकर बग़लवाले खम्भे पर उँगली की मार से आवाज़ की जबकि वह आवाज़ उसी व्यक्ति के मुँह से निकली थी। अब जो अफवाह आप सुना रही है

उसका स्रोत वही व्यक्ति है, मुझे यही लग रहा है। मैंने चार-छह बार देखा भी है उस व्यक्ति को मुझे ललचायी आँखों से घूरते हुए। वह एक कीड़ा है। उससे क्यों डरें?"

"यह बात बहुत दूर तक गयी है, श्रीदेवी। इसीसे मालिक बहुत व्यथित हैं। अपना अपमान तो वे सह लेंगे। अपने पास धरोहर के रूप में रहनेवाली तुम्हारा अपमान उनके लिए सह्य नहीं। इसलिए उनकी इच्छा है, ऐसे नीच लोगों से तुम्हें दूर रखें।"

"ऐसे लोगों को पकड़कर दण्ड देना चाहिए। भैया जैसे शूर-वीर को डरना क्यों चाहिए।"

"आप दोनों के बीच का सम्बन्ध कितना पवित्र है, इसे हम सब जानते हैं। लेकिन, इस पवित्र सम्बन्ध पर कालिख पोतकर, एक कान से दूसरे तक पहुँचकर बात महाराज तक पहुँच जाय तो? तुमको दूर अन्यत्र रखा जाय तो यह अफवाह चलते-चलते ही मर जाएँगे, यही उनका अभिमत है। कीचड़ उछलवा, हास्यास्पद बनने से बचने के लिए उनका विचारित मार्ग ही सही है, ऐसा मुझे लगता है।"

"भाभी, आप निश्चिन्त रहें। मैं भैया से बात करूँगी, बाद में ही कोई निर्णय लेंगे।"

"मैंने तुम्हें कुछ और ही समझा था। अब मालूम हुआ कि तुम्हारा दिल मर्दाना है।"

"ऐसा न हो तो स्त्री के लिए उसका रूप ही शत्रु बन जाये, भाभी। रूप के साथ केवल कोमलता और मार्दव को ही विकसित करें तो वह काफी नहीं होता। वक्त आने पर कोमलता और मार्दव को फौलाद भी बनना पड़ता है। अभ्यास से उसे भी अर्जित करना जरूरी है।"

"तुममें ऐसी भावनाओं के आने का कारण क्या है, श्रीदेवी?"

"राजमहल का वास और अपनी जिम्मेदारी का भार।"

"तो क्या तुम बड़ी रानीजी की अंगरक्षिका बनकर रहीं?"

"आत्म-विश्वास भी अंगरक्षक जैसा ही है, प्रत्येक स्त्री को आत्म-विश्वास साधना द्वारा प्राप्त करना चाहिए।"

"ठीक है, अपनी जिम्मेदारी अपने ही ऊपर लेकर मुझे तुमने मानसिक शान्ति दी। अब तुम हो, तुम्हारे भाई हैं।" कहती हुई माचिकब्बे दरवाजा बन्द कर बाहर निकल आयी।

श्रीदेवी ने आसन बदला। उसने दीवार से सटे आदमकद आइने के सामने खड़ी होकर अपने आपको देखा। दांत कटकटाये। आँखें विस्फारित कीं। माथे पर सिकुड़न लायी। अकड़कर खड़ी हो गयी। हाथ उठाकर मुट्ठी कसकर बाँधे रक्तबीजासुर-संहारिणी शक्तिदेवी का अवतार-सी लगी। उस समय वह आदमी उसके

हाथ लगता तो उसे चीर-फाड़कर खत्म ही कर देती।

स्त्री सहज प्रसन्न, सौम्य भाव दिखाये तो लोग दुष्टभाव से देखते हैं। भाभी का कहना ठीक था कि ईश्वर ने स्त्री को सुन्दरता न दी होती तो अच्छा होता। मेरे इस सौन्दर्य ने ही तो आज अनेक राज्यों को इस युद्ध में ला खड़ा किया है। मेरे इस सौन्दर्य के कारण अनेक शुद्ध-हृदय जन मुझ-जैसी हजारों स्त्रियों को अनाथ बना रहे हैं। भातृ-प्रेम के अवतार, सौभाग्य से मिले मेरे भैया पवित्रात्मा हेग्गड़े के सदाचार पर कालिख लगने का कारण बना है मेरा सौन्दर्य, धिक्कार है इस सौन्दर्य को। उसे वैसे ही रहने देना उचित नहीं। क्या करूँ, क्या करूँ इस सौन्दर्य को नष्ट करने के लिए? समुद्र में उठनेवाली तरंगों के समान उसके मन में भावनाएँ उमड़ रही थीं। उसे इस बात का ज्ञान तक नहीं रहा कि उसी ने स्वयं अपने बाल खोलकर बिखेर दिये थे, जिनके कारण उसकी भीषण मुखमुद्रा और अधिक भीषण हो गयी थी।

पाठ की समाप्ति पर शान्तला फूफी के कमरे में आयी थी कि ड्योढ़ी से ही उसे फूफी का वह रूप आइने में दिखा। वह भौंचक्की रह गयी। आगे कदम न रख सकी। जानती है कि सारी तकलीफें खुद झेलकर भी उसके माता-पिता प्रसन्न-चित्त रहते हैं और प्रसन्नता से ही पेश आते हैं। और फूफी को भी उसने इस रूप में कभी नहीं देखा। ऐसी हालत में उसकी फूफी के इस भावोद्वेग की वजह? इसी धुन में वह खड़ी रह गयी।

"बहिन, श्रीदेवी, क्या कर रही हो?" हेग्गड़े मारसिंगय्या ने अन्दर की बारहदरी में प्रवेश किया, पिता की आवाज सुनकर शान्तला ने फिर उस आइने की ओर देखा। फूफी के चेहरे पर भयंकरता के स्थान पर भय छा गया था। वे बिखरे बालों को सँवार रही थीं। शान्तला वहाँ से हटी, "अप्पाजी कब आये?"

"अभी आया अम्माजी, तुम्हारा पाठ कब समाप्त हुआ?"

"अभी थोड़ी देर हुई।"

"तुम्हारी फूफी क्या कर रही है?"

"बाल सँवार रही है।"

"अच्छा, बाद में मिलेंगे। तुम्हारा नाश्ता हुआ, अम्माजी?"

"हाँ, हाँ, हम तीनों ने मिलकर किया था।"

"तुम्हारी माँ ने बताया ही नहीं।"

"आपने पूछा नहीं, उन्होंने बताया नहीं।"

"तो मेरे आने से पहले आप लोगों ने खतम कर दिया।" मारसिंगय्या हँसने लगे।

"और क्या करते, आपने ही तो प्रतीक्षा न करने का आदेश दे रखा है। पुरुष लोग जब बाहर काम पर जाते हैं तब उनके ठीक समय पर लौट आने का भरोसा

नहीं होता न।"

"हाँ, हाँ, तुम बेटी आखिर उसी माँ की हो। ख़ैर, हो चुका हो तो क्या, मेरे साथ एक बार और हो जाय, आओ।" कहते हुए मारसिंगय्या ने कदम आगे बढ़ाया।

"आइये, भैयाजी।" श्रीदेवी की आवाज़ मारसिंगय्या की रोज-जैसी सहज मुसकान वापस नहीं ला सकी।

"कुछ बात करनी थी।" मारसिंगय्या ने धीरे से कहा।

"अप्पाजी, आप फूफीजी से बात कर लीजिए। तब तक मैं आपके नाश्ते की तैयारी के लिए माँ से कहूँगी।" कहकर शान्तला वहाँ से चली गयी। मारसिंगय्या बात खुद शुरू नहीं कर सके तो श्रीदेवी ही बोली—

"भैयाजी, आपके मन का दुःख मैं समझ चुकी हूँ। डरकर पीछे हटेंगे तो ऐसे लफंगों को मौका मिल जायेगा। यह समाज के लिए हानिकर होगा। इसलिए उन, लफंगों को पकड़कर पंचों के सामने खड़ा करना और उन्हें दण्ड देना चाहिए।"

"श्रीदेवी तुम्हारा कहना ठीक है। मैं कभी पीछे हटनेवाला आदमी नहीं सत्य को कोई भी झूठ नहीं बना सकता। परन्तु कुछ ऐसे प्रसंगों में अपनी भलाई के लिए इन लुच्चे-लफंगों से डरनेवालों-की-तरह ही बरतना पड़ता है। स्वयं श्रीराम ने ऐसे लफंगों में डरने-की-तरह बातकर सीता माता को दूर भेजा था। बुरों की संगति से भलों के साथ झगड़ा भी अच्छा। इन लुच्चों-लफंगों के साथ झगड़ना, इस प्रसंग में मुझे हितकर नहीं मालूम होता। इसलिए..."

"श्रीराम और अब के बीच युग बीत चुके हैं। तब तो श्रीराम ने सीताजी की अग्नि-परीक्षा ले ली थी, अब क्या मुझे भी वह देनी होगी? सत्य को सत्य और असत्य को असत्य कहने का आत्मबल होना ही काफ़ी नहीं है क्या?"

"तुम जो कहती हो वह ठीक है। परन्तु हम जिस मुश्किल में फँस गये हैं उसमें आत्म-बल का प्रदर्शन अनुकूल नहीं। हम सब एक राजकीय रहस्य में फँसे हैं। यह बात पंचों के सामने जायेगी तो पहले तुम्हारा सच्चा परिचय देना पड़ेगा जो मुझे ज्ञात नहीं है और उसे जानने का प्रयत्न भी न करने की प्रभु की कड़ी आज्ञा है। उनकी ऐसी कड़ी आज्ञा का कारण भी बहुत ही प्रबल होना चाहिए। ऐसी स्थिति में, अपने आत्मबल के भरोसे अपना परिचय देने को तुम तैयार होओगी?"

मारसिंगय्या के इन प्रश्नों पर विचार के लिए वह विवश हो गयी। पंचों के सामने जाएँ तो अपराधी को दण्ड मिलेगा, अवश्य, परन्तु यह बात भी खुल जायेगी कि मैं चालुक्यों की बड़ी रानी हूँ। यही बात लेकर लुच्चे-लफंगे अपना उल्लू सीधा कर लेने की कोशिश करेंगे। ये पति-पत्नी अभी अपने प्रभु की आज्ञा का बड़ी

हाथ लगता तो उसे चीर-फाड़कर खत्म ही कर देती।

स्त्री सहज प्रसन्न, सौम्य भाव दिखाये तो लोग दुष्टभाव से देखते का कहना ठीक था कि ईश्वर ने स्त्री को सुन्दरता न दी होती तो अ मेरे इस सौन्दर्य ने ही तो आज अनेक राज्यों को इस युद्ध में ला पट मेरे इस सौन्दर्य के कारण अनेक शुद्ध-हृदय जन मुझ-जैसी हजारों स्त्रि बना रहे हैं। भातृ-प्रेम के अवतार, सौभाग्य से मिले मेरे भैया पवि सदाचार पर कालिख लगने का कारण बना है मेरा सौन्दर्य, धिक्का को। उसे वैसे ही रहने देना उचित नहीं। क्या करूँ, क्या करूँ इस करने के लिए? समुद्र में उठनेवाली तरंगों के समान उसके मन में रही थीं। उसे इस बात का ज्ञान तक नहीं रहा कि उसी ने स्वयं कर बिखेर दिये थे, जिनके कारण उसकी भीषण मुखमुद्रा और गयी थी।

पाठ की समाप्ति पर शान्तला फूफी के कमरे में आयी उसे फूफी का वह रूप आइने में दिखा। वह भौचक्की रह ग रख सकी। जानती है कि सारी तकलीफें खुद झेलकर भी प्रसन्न-चित्त रहते हैं और प्रसन्नता से ही पेश आते हैं। और इस रूप में कभी नहीं देखा। ऐसी हालत में उसकी फूफी वजह? इसी धुन में वह खड़ी रह गयी।

"बहिन, श्रीदेवी, क्या कर रही हो?" हेग्गड़े मार बारहदरी में प्रवेश किया, पिता की आवाज सुनकर शान्त की ओर देखा। फूफी के चेहरे पर भयंकरता के स्थान प बिखरे बालों को सँवार रही थी। शान्तला वहाँ से हटी,

"अभी आया अम्माजी, तुम्हारा पाठ कब समाप्त ह

"अभी थोड़ी देर हुई।"

"तुम्हारी फूफी क्या कर रही है?"

"बाल सँवार रही है।"

"अच्छा, बाद में मिलेंगे। तुम्हारा नाश्ता हुआ,

"हाँ, हाँ, हम तीनों ने मिलकर किया था।"

"तुम्हारी माँ ने बताया ही नहीं।"

"आपने पूछा नहीं, उन्होंने बताया नहीं।"

"तो मेरे आने से पहले आप लोगों ने खतम क लगे।

"और क्या करते, आपने ही तो प्रतीक्षा न क लोग जब बाहर काम पर जाते हैं तब उनके लौट

करने के पहले उसके मन को तैयार करूँगा, शायद इसके लिए उससे कुछ झूठ भी बोलना पड़ेगा। अच्छा बहिन ?" कहकर उठे और दो कदम जाकर मुड़े, "तुम्हें कुछ मानसिक कष्ट तो नहीं हुआ, परेशान तो नहीं हुई न ?"

"भैया, मैं वस्तुस्थिति से परिचित हो चुकी हूँ। आप भी परेशान न हों। हमारे प्रभु के आने पर यह बात उनके कानों तक पहुँच जाये कि यहाँ इस तरह की अफ़वाह उड़ी थी तो क्या होगा, इसके अलावा मुझे कुछ और चिन्ता नहीं।"

"अगर ऐसी स्थिति आयी तो सारी बातें उनसे मैं स्वयं कहूँगी। आप किसी बात के लिए परेशान न हों, भैया।"

"ठीक है, बहिन।" कहकर वे चले गये।

श्रीदेवी भी बारहदरी में जाकर शान्तला की प्रतीक्षा में खड़ी हुई ही थी कि उधर से गालब्बे गुजरी, "अम्माजी कहाँ हैं, गालब्बे ?"

"वहाँ पीछे की फुलवारी में है।" और श्रीदेवी शान्तला को खोजती हुई फुलवारी में जा पहुँची।

मारसिंगय्या और श्रीदेवी की बातचीत के तीन दिन बाद का दिन सोमवारी अमावस्या थी। हेग्गड़े मारसिंगय्या ने धर्मदर्शी और पुजारियों को पहले ही सन्देश भेज दिया था कि शाम को वे परिवार के साथ मन्दिर आएँगे। उन्होंने अपने परिवार के सभी लोगों को, नौकरानियों तक को, सब तरह की सज-धज और शृंगार करके तैयार होने का आदेश दिया। हेग्गड़े मारसिंगय्या कभी इस तरह का आदेश नहीं दिया करते थे। माचिकब्बे को शृंगार के मामले में उन्होंने ही सरलता का पाठ पढ़ाया था। माचिकब्बे ने इस आदेश का विरोध किया। "यह तो विरोधाभास है। सुन्दर स्त्री को, वह निराभरण हो तो भी मर्द उसे घूरते हैं, अगर वह सज-धज कर निकले तब तो वे उसे खा ही जाएँगे। और आज की हालत में तो अलंकृत होकर जाना, खासकर हम लोगों के लिए, बहुत ही खतरनाक है। श्रीदेवी के इधर से निकलने तक हम लोगों का बाहर न जाना ही अच्छा है।"

"जो कहूँ, सो मानो" बड़ी कठोर थी हेग्गड़े की आवाज। उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह वहाँ से चल दिया। माचिकब्बे ने कभी भी अपने पति के व्यवहार में ऐसी कठोरता नहीं देखी थी। आगे क्या करे, यह उसे सूझा नहीं। श्रीदेवी से विचार-विनिमय करने लगी।

निष्ठा से पालन कर रहे हैं। यदि उन्हें यह मालूम हो जाय कि मैं कौन हूँ तो वे परम्परागत श्रद्धा-भाव से व्यवहार करेंगे। इससे मेरा वास्तविक परिचय पाने का और लोगों को भी मौका मिलेगा जिससे राजनीतिक पेचीदगियाँ बढ़ेंगी। श्रीदेवी उसी निर्णय पर पहुँची जो स्वयं हेग्गड़े मारसिंगय्या का था, "भैयाजी, मैं इस बारे में अधिक न कहूँगी। आपकी दूरदर्शिता पर मुझे भरोसा है।"

"अब मेरे मन को शान्ति मिली। अब इस बात को फिलहाल यहीं रहने दो। जिसके बारे में तुमने भाभी से बताया था क्या तुम उस आदमी का पता लगा सकोगी?"

"हाँ, एक बार नहीं, मैंने उसे इतनी बार देखा है कि उसे भूल ही नहीं सकती। इतना ही नहीं, उसे यह भी मालूम है कि मैं और भाभी कब कौन-से दिन मन्दिर जाते हैं। उसी दिन वह दुष्ट लफंगा मन्दिर के सामनेवाले ध्वजस्तम्भ की जगत पर या वहाँ के अश्वत्थ वृक्षवाली जगत पर बैठा रहता है।"

"ये सब बातें मुझसे पहले क्यों नहीं कहीं, श्रीदेवी? पहले ही दिन जब तुम्हें शंका हुई तभी कह देतीं तो बात इस हद तक नहीं पहुँचती। उसे उसी वक्त वहीं मसल देता।"

"एक-दो बार भाभी से कहने की इच्छा तो हुई। पर मन ने साथ न दिया। जब रास्ते में चलते हैं तब लोग देखते ही हैं, उनसे कहे भी कैसे कि मत देखो। इस सबसे डरना नहीं चाहिए, ऐसा सोचकर भाभी से नहीं कहा।"

"अब जो होना था सो तो हो चुका। बीती बात पर चिन्ता नहीं करनी चाहिए। यहाँ से जाने के पहले उसे मुझे दिखा दें, इतना काफी है। बाद को मुझे जो करना होगा सो मैं देख लूँगा।"

"अच्छा, भैयाजी, यह किस्सा अब तो खतम हो गया न। अब आप जाकर निश्चिन्त भाव से नाश्ता कर लें।"

"अच्छी बात है, नाश्ता तो मैं किये लेता हूँ, लेकिन निश्चिन्तता का नाश्ता तभी कर सकूँगा जब तुम्हें उनके हाथों में सुरक्षित रूप से सौंप दूँगा जिन्होंने मुझे तुम्हें धरोहर के रूप में सौंपा है।"

"वह दिन भी आये बिना न रहेगा, भैयाजी। शीघ्र ही आनेवाला है।"

"श्रीदेवी, कहावत है कि पुस्तकें और वनिता पर-हस्त से कभी अगर लौटे तो भ्रष्ट या शिथिल होकर ही लौटेगी, इसलिए मुझे सदा ही भय लगा रहता है। जैसे परिशुद्ध और पवित्र रूप में तुम मेरे पास पहुँचायी गयी हो उसी रूप में तुम्हें उन तक पहुँचा देना मेरा उत्तरदायित्व है। मुझ जैसे साधारण व्यक्ति के लिए यह बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। श्रीदेवी, तुम्हारी सुरक्षा कहाँ रहने पर हो सकती है, इस पर मैं सोच-विचार कर निर्णय करूँगा। परन्तु तुम अभी यह बात कृपा करके अम्माजी से न कह बैठना। वह तुमको बहुत चाहती है। तुम्हारे यहाँ से प्रस्थान

करने के पहले उनके मन को तैयार करूँगा, शायद इसके लिए उनसे कुछ झूठ भी बोलना पड़ेगा। अच्छा बहिन ?" कहकर उठे और दो कदम जाकर मुड़े, "तुम्हें कुछ मानसिक कष्ट तो नहीं हुआ, परेशान तो नहीं हुई न ?"

"भैया, मैं वस्तुस्थिति से परिचित हो चुकी हूँ। आप भी परेशान न हों। हमारे प्रभु के आने पर यह बात उनके कानों तक पहुँच जाये कि यहाँ इस तरह की अफवाह उड़ी थी तो क्या होगा, इसके अलावा मुझे कुछ और चिन्ता नहीं।"

"अगर ऐसी स्थिति आयी तो सारी बातें उनसे मैं स्वयं कहूँगी। आप किसी बात के लिए परेशान न हों, भैया।"

"ठीक है, बहिन।" कहकर वे चले गये।

श्रीदेवी भी बारहदरी में जाकर शान्तला की प्रतीक्षा में खड़ी हुई ही थी कि उधर से गालब्बे गुजरी, "अम्माजी कहाँ है, गालब्बे ?"

"वहाँ पीछे की फुलवारी में है।" और श्रीदेवी शान्तला को खोजती हुई फुलवारी में जा पहुँची।

मारसिंगय्या और श्रीदेवी की बातचीत के तीन दिन बाद का दिन सोमवारी अमावस्या थी। हेग्गड़े मारसिंगय्या ने धर्मदर्शी और पुजारियों को पहले ही सन्देश भेज दिया था कि शाम को वे परिवार के साथ मन्दिर आएँगे। उन्होंने अपने परिवार के सभी लोगों को, नौकरानियों तक को, सब तरह की सज-धज और शृंगार करके तैयार होने का आदेश दिया। हेग्गड़े मारसिंगय्या कभी इस तरह का आदेश नहीं दिया करते थे। माचिकब्बे को शृंगार के मामले में उन्होंने ही सरलता का पाठ पढ़ाया था। माचिकब्बे ने इस आदेश का विरोध किया। "यह तो विरोधाभास है। सुन्दर स्त्री को, वह निराभरण हो तो भी मर्द उसे घूरते हैं, अगर वह सज-धज कर निकले तब तो वे उसे खा ही जाएँगे। और आज की हालत में तो अलंकृत होकर जाना, खासकर हम लोगों के लिए, बहुत ही खतरनाक है। श्रीदेवी के इधर से निकलने तक हम लोगों का बाहर न जाना ही अच्छा है।"

"जो कहूँ, सो मानो" बड़ी कठोर थी हेग्गड़े की आवाज। उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह वहाँ से चल दिया। माचिकब्बे ने कभी भी अपने पति के व्यवहार में ऐसी कठोरता नहीं देखी थी। आगे क्या करे, यह उसे सूझा नहीं। श्रीदेवी से विचार-विनिमय करने लगी।

"भाभी, भैया कुछ कहते हैं तो उसका कोई-न-कोई कारण होता है। हमें उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए।"

"तो भाई-बहिन ने मिलकर कोई षड्यन्त्र रचा है क्या ?"

"इसमें षड्यन्त्र की क्या बात है, भाभी ? भैया की बात का महत्व जैसा आपके लिए है वैसा ही मेरे लिए भी है।"

"उसे स्वीकार करती हो तो तुम अब तक अपने को सजाने के लिए कहने पर इन्कार क्यों करती थी ? उस दिन अम्माजी का जन्म-दिन था, कम-से-कम उसे खुश करने के लिए ही जेवर और रेशम की जरीदार साड़ी पहनने को कहा तो भी मानी नहीं। आज क्या ख़ास बात हुई ?"

"उस दिन भैया से बातचीत के बाद से मेरी नीति बदल गयी है, भाभी। उनका मन खुली किताब है। उनकी इच्छा के अनुसार चलना हमारा कर्तव्य है।"

मेरे पतिदेव के विषय में इस कुलीन स्त्री के भी इतने ऊँचे विचार हैं, ऐसे पति का पाणिग्रहण करनेवाली मैं धन्य हूँ ! मैं कितनी बड़ी भाग्यशालिनी हूँ ! मन-ही-मन गद्गद होकर माचिकब्बे ने कहा, "ठीक है, चलिए हम लोग तैयार हों। और हाँ, जैसा हमारा शृंगार होगा वैसा ही नौकरानी का होगा।" और वे प्रसाधन-कक्ष में जा पहुँचीं।

"अब बस भी करो, मुझे गुड़िया बनाकर ही रख दिया तुमने, भाभी। सुमंगला हूँ, थोड़े आभूषणों के बावजूद सुमंगला ही रहूँगी। इससे अधिक प्रसाधन अब मुझे नहीं चाहिए।" माचिकब्बे ने जिद की श्रीदेवी से जो उसे अपने ही हाथों से सजाये जा रही थी।

"सौमांगल्य मात्र के लिए ये सब चाहिए ही नहीं, मैं मानती हूँ। माथे पर रोरी, माँग में सिन्दूर, पवित्र दाम्पत्य का संकेत मंगलसूत्र, इतना ही काफी है। परन्तु जब सजावट ही करनी है तब ईश्वर से प्राप्त सौन्दर्य को ऐसा सजाएँगे कि ईश्वर भी इस कृत्रिम शृंगार को देखकर चकित हो जाये।" श्रीदेवी ने कहा।

"यह सब सजावट इतनी ! ऐसी ! न भाभी ! न ! मैं तो यह सब पहली बार देख रही हूँ।"

"मुझे सब कुछ मालूम है। चालुक्यों की बड़ी रानीजी को इस तरह की सजावट बहुत प्रिय है। केश शृंगार की विविधता देखनी हो तो वहीं देखनी चाहिए, भाभी। वहाँ अभ्यस्त हो गयी थी, अब सब भूल-सा गया है। फिर भी आज उसे प्रयोग में लाऊँगी।"

हेग्गड़ती के घर की नौकरानी गालब्बे का भी शृंगार किया खुद श्रीदेवी ने। बेचारी इस सजावट से सुन्दर तो बन गयी परन्तु इन सबसे अनभ्यस्त होने के कारण उसे कुछ असुविधा हो रही थी। शान्तला की सजावट भी खूब हुई।

श्रीदेवी ने भी खुद को सजा लिया। फिर बम्मलदेवी ने सबसे उस आदमकद आइने में अपने को देखा।

शान्तला को लगा कि वह आइने में खुद को नहीं किसी और को देख रही है।

माचिकब्बे ने मन-ही-मन कहा, अगर चामव्वे तुझे इस रूप में देखेगी तो ईर्ष्या से जलकर एकदम मर जायेगी।

शान्तला ने सोचा, मैं कितनी ऊँची हो गयी हूँ। पिताजी ने दीवार पर जो निशान बना दी थी उस तक पहुँच गयी हूँ। [illegible] बनाना सिखाने की मेरी अवस्था पक्की।

श्रीदेवी तो सहज सुन्दरी थी ही, ऊपर से इस सजावट ने उसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा दिये। उसके चेहरे पर एक अलौकिक तेज चमक रहा था। माचिकब्बे ने कहा, "श्रीदेवी, अब कोई तुम्हें देखे तो यही समझेगा कि तुम महारानी या राजकुमारी हो।"

"ऐसा हो तो भाभी, मुझे इस सजावट की जरूरत नहीं।" श्रीदेवी ने कहा।

"क्यों अपने भैया की आज्ञा का पालन नहीं करोगी?"

"भाभी, मैं नहीं चाहती कि अब कोई नया बखेड़ा उठ खड़ा हो।" कहती हुई वह आभूषण उतारने लगी।

"ऐसा करोगी तो मैं भी आभूषण उतार दूँगी। सोच लो, उन्हें जवाब देना होगा।"

श्रीदेवी ने आभूषण उतारना छोड़ शान्तला को देखा जो कुतूहल भरी दृष्टि से आइने में उसी के प्रतिबिम्ब को देख रही थी। "क्यों अम्माजी, ऐसे क्या देख रही हो?"

"फूफीजी, मैं देख रही थी कि आप कैसे कर लेती हैं यह सजावट, बालों को तरह-तरह से गूँथकर कैसे सजाया जा सकता है, किस आकार में उन्हें बाँधा जा सकता है, ये चित्र कैसे बनाये जाते हैं। अगर मैं जानती होती कि आपको यह सब इतना उचित आता है तो मैं अब तक सब सीखकर ही रहती।"

"अच्छा, अम्माजी, मैं सब सिखा दूँगी।" श्रीदेवी के ये व्यक्त शब्द थे, उनके अव्यक्त शब्द थे, "नहीं, अम्माजी नहीं, अब हालत ऐसी हो गयी है कि तुमसे मुझे अलग किया जा रहा है।"

"कल से? नहीं, नहीं, कल मंगलवार है, उस दिन अध्ययन का आरम्भ नहीं किया जाता है। परसों से आरम्भ कर दीजिए।" शान्तला ने आग्रह दुहराया।

"अच्छा, ऐसा ही सही।" श्रीदेवी ने उसे आश्वासन दिया, झूठा या सच्चा, यह दूसरी बात है।

चलन ने आकर कहा, "मालिक की आज्ञा हुई है, आप लोग अब वहाँ

पधारें।"

माचिकब्बे चली, बाकी सबने उसका अनुगमन किया। अलंकारों से सजी, घूंघट निकाले ये स्त्रियाँ सुसज्जित बैलगाड़ी में जा बैठीं। माचिकब्बे ने पूछा, "रायण। मालिक कहाँ है ?"

"वे पहले ही चले गये, मन्दिर में विशेष पूजा की तैयारियाँ ठीक से हुई हैं या नहीं, यह देखने। अब हम चलें।" रायण ने पूछा।

हेग्गड़ती ने आज्ञा दी। गाड़ी आगे बढ़ी जब विवाह के बाद पहली बार पति के घर आयी थी तब यह इसी तरह गाड़ी में सवार होकर मन्दिर गयी थी। इतने पास है कि फिर गाड़ी की जरूरत ही नहीं पड़ी। वह जानती थी कि भगवान के दर्शन को पैदल ही जाना उत्तम है।

गाड़ी को खींचनेवाले हृष्ट-पुष्ट सफेद बैल साफ-सुन्दर थे। उनके पैर घुंघरू से सजे और सीधे-तराशे सींग इन्द्रधनुष जैसे रँगे थे। गले में ऊनी पट्टी और उस रंग-बिरंगे डोरों से बने फुदने लगे और उसके दोनों ओर घोंघों की बनी माला केसरिया रंग की किनारीवाली पीले रेशम की झूल, कूबड़ पर सुनहरी कारीगरी-वाला टोप, माथे पर लटके मणिमय-पदक, गले से लटकती घण्टी। गाड़ी तरह-तरह के चित्रों से अलंकृत वस्त्र से आच्छादित की गयी थी। गाड़ी के अन्दर गद्दा-तकिया और जगह-जगह आइने भी लगे थे। जुआ और चाक बड़े आकर्षक रंगों से रँगे और चित्रित थे।

यह सारा शोरगुल और धूमधाम माचिकब्बे को अनावश्यक प्रतीत हो रहा था। अपने इस भाव को वह अपने ही अन्दर सीमित नहीं रख सकी। उसकी टिप्पणियों के उत्तर में श्रीदेवी ने कहा, "इससे हमें क्या मतलब ? भैया जैसा कहें वैसा करना हमारा काम है।"

"तुम तो छूट जाती हो। कल गाँव के लोग कहेंगे, इस हेग्गड़ती को क्या हो गया है, मन्दिर तक जाने के लिए इतनी धूम-धाम, तब मुझे ही उनके सामने सर झुकाना पड़ेगा।" वह गाड़ी की तरफ एकटक देखनेवाले लोगों को देखने लगी। उसके मन में एक अव्यक्त भय की भावना उत्पन्न हुई।

गाड़ी मन्दिर के द्वार पर रुकी ही थी कि शहनाई बज उठी। पुजारियों ने वेदमन्त्रों का घोष किया। श्वेत-छत्र के साथ पूर्णकुम्भ महाद्वार पर पहुँचा। महा-द्वार पर रेशम की धोती पहने रेशम का ही उत्तरीय ओढ़े शिवार्चन-रत पुजारी की तरह हेग्गड़े मारसिंगय्या खड़ा था। उसके साथ धर्मदर्शी पुजारी आदि थे। शहनाई-वाले महाद्वार के अन्दर खड़े थे। मन्दिर के सामने ध्वजस्तम्भ की जगत पर बैठे रहनेवालों में से एक युवक उसके सामने के अश्वत्थ वृक्ष की जगत के पास भेज दिया गया था।

गाड़ी से पहले शान्तला उतरी। बाद में माचिकब्बे हेग्गड़ती। उनके बाद

श्रीदेवी उतरी। श्रीदेवी का उतरना था कि मारसिंगय्या ने दोनों हाथ जोड़ झुककर प्रणाम किया। कहा, "पधारिये।" माचिकब्बे ने भी तुरन्त झुककर प्रणाम किया।

"यह क्या, भैया? यह कैसा नाटक रचा है, उस नाटक के अनुरूप वेष भी धारण किया है? भैया-भाभी मुझसे बड़े, बड़ों से प्रणाम स्वीकार करने जैसा क्या पाप किया है मैंने?" मारसिंगय्या ने कोई उत्तर न देकर रायण की ओर मुड़कर कहा, "रायण, यहाँ आओ। वहाँ देखो, उस अश्वत्थ वृक्ष की जगत पर धारीदार अँगरखा पहने, नारंगी रंगवाली जरी की पगड़ी बाँधे जो है उसे, हमारे मन्दिर के अन्दर जाने के बाद तुम उसे भी मन्दिर के अन्दर ले आना।" और श्रीदेवी की ओर मुड़कर पूछा, "ठीक है न?" श्रीदेवी ने इशारे से बताया, "ठीक है।"

सबने महाद्वार के अन्दर प्रवेश किया। मन्दिर के अन्दर किसी के भी प्रवेश की मनाही थी, हेग्गड़ेजी की कड़ी आज्ञा थी।

पहले ही से कवि बोकिमय्या, गंगाचारी आदि आप्तजन अन्दर के द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे थे।

प्राकार में श्वेत-छत्र युक्त कलश के साथ परिक्रमा करके सब लोग अन्दर के द्वार पर पहुँचे। बोकिमय्या, गंगाचारी आदि ने श्रीदेवी को झुककर प्रणाम किया। श्रीदेवी को ऐसा लगा कि यह सब पूर्व-नियोजित व्यवस्था है। यह सब क्यों किया गया सो उसे मालूम नहीं हुआ। सभी बातों के लिए उसी को आगे कर दिया जाता था, यह उसके मन को कुछ खटकता रहा। परन्तु वह लोगों के बीच, कुछ कह नहीं सकती थी। परिक्रमा समाप्त करके सब लोगों ने मन्दिर के नवरंग मण्डप में प्रवेश किया। उसी समय रायण पहुँचा।

"अकेले क्यों चले आये?" कुछ पीछे खड़े मारसिंगय्या ने रायण से पूछा।

रायण ने कहा, "उसने कहा कि मैं नहीं आऊँगा।"

"क्यों?"

"उसने यह नहीं बताया। मैंने बुलाया, उसने कहा, नहीं आऊँगा। वह बड़ा लफंगा मालूम पड़ता है।"

"तुम्हें मालूम है कि वह कौन है?"

"नहीं, पर उसके देखने के ढंग से लगता है कि वह बहुत बड़ा लफंगा है।"

"ऐसा है तो एक काम करो।" उसे थोड़ी दूर ले जाकर मारसिंगय्या ने उसके कान में फुसफुसाकर कुछ कहा। वह स्वीकृतिसूचक ढंग से सिर हिलाकर वहाँ से चलने को हुआ। "अभी नहीं, तुम यहाँ आओ। पूजा समाप्त कर बाहर जाने तक वह वहीं पड़ा रहेगा। पूजा समाप्त हो जाये तो तीर्थ-प्रसाद के बाद तुम कुछ पहले ही चले जाना।" कहकर मारसिंगय्या मन्दिर के अन्दर गया। रायण ने भी उसका

अनुसरण किया।

बड़े गम्भीर भाव से पूजा कार्य सम्पूर्ण हुआ। चरणोदक, प्रसाद की थाली लेकर पुजारी गर्भगृह से बाहर आया, श्रीदेवी के समक्ष पुजारी उसका रूप देखकर चकित हो गया और एक-दो क्षण खड़ा-का-खड़ा रह गया।

उस दिन का प्रसाद श्रीदेवी को सबसे पहले मिला, उसके बाद क्रमशः हेग्गड़े, हेग्गडती, उनकी बेटी, धर्मदर्शी आदि को। इसके पश्चात् धर्मदर्शी ने श्रीदेवी को झुककर प्रणाम किया और कहा, "वहाँ कल्याण मण्डप में गलीचा बिछा दिया है, देवीजी कुछ विश्राम करें।"

श्रीदेवी ने मारसिंगय्या की तरफ देखा तो उसने कहा, "बलिपुर में हेग्गड़े की बात का मान है, तो भी यहाँ मन्दिर में, धर्मदर्शी के कहे अनुसार ही हमें चलना होगा।"

धर्मदर्शी ने सबको पूर्व-नियोजित क्रम से बैठाया और उपाहार की बहुत अच्छी व्यवस्था की।

उसे जो गौरव दिया जा रहा था उसकी धुन में थोड़ी देर के लिए वह भूल गयी थी कि वह श्रीदेवी है, चन्दलदेवी नहीं।

बीच में धर्मदर्शी ने चन्दलदेवी को लक्ष्य करके कहा, "पता नहीं कैसा बना है, राजगृह में उपाहार का आस्वाद लेनेवाली जिह्वा के लिए यह उपाहार रुचता है या नहीं?" श्रीदेवी ने फिर मारसिंगय्या की ओर देखा।

"बहुत ही स्वादिष्ट है धर्मदर्शीजी, जिस घी का इसमें उपयोग किया गया है वह आपके घर की गाय का होगा, है न?" मारसिंगय्या ने पूछा। हाथ मलते और दाँत निपोरते हुए धर्मदर्शी ने स्वीकृतिसूचक ढंग से सर झुकाया।

उपाहार के बाद मारसिंगय्या ने गालब्बे को एकान्त में ले जाकर कुछ कहा जिससे भयभीत होकर वह बोली, "मालिक, मुझे यह सब करने का अभ्यास नहीं, जो करना है वह न होकर कुछ और ही हो गया तो! यही नहीं, मैंने अपने पति से भी नहीं पूछा, वह गुस्सा हो जाये तब?"

"मैंने पहले ही उसे यह सब समझा दिया है, उसने स्वीकार भी कर लिया है। तुम निडर होकर काम करो, सब ठीक हो जायेगा। समझ गयीं।"

"अच्छा मालिक।"

दोनों फिर कल्याण मण्डप में आये। प्रसाद बँट चुका था। सब बाहर निकलने को हुए तो आगे-आगे शहनाईवाले चले। सब महाद्वार की ओर चले। गालब्बे पीछे रह गयी, किसी का ध्यान उसकी ओर नहीं गया।

गाड़ी में चढ़ते वक्त माचिकब्बे ने पूछा, "गालब्बे कहाँ है?"

"अपना श्रृंगार पति को दिखाने गयी है, दिखा आयेगी। बेचारी, इस तरह कब सज-धज सकेगी?" हेग्गड़े मारसिंगय्या ने कहा।

"वह नौकरानी होने पर भी देखने में बड़ी सुन्दर है।" श्रीदेवी ने कहा।

गालब्बे ने सबको जाते देखा। डरती हुई-सी, घबराहट का अभिनय करती हुई-सी धीरे-से महाद्वार से बाहर निकली। कुछ इधर-उधर देखा और गाँव के बाहर की ओर कदम बढ़ाये। तब तक सूर्यास्त हो चुका था। अँधेरा छा गया था। गाँव के बाहर एक उजड़ा हुआ मण्डप है। वहाँ इमली के पेड़ के नीचे खड़ी हुई ही थी कि उसे किसी के खाँसने की आवाज सुनायी पड़ी। "मुझे कोई अपने घर तक पहुँचाने की कृपा करेगा?" उसकी आवाज़ पर ध्यान दिये बिना ही एक व्यक्ति वहाँ से निकला, रुका नहीं।

"आप कौन हैं, बोलते क्यों नहीं? एक स्त्री भटककर भयभीत हो सहायता की पुकार कर रही है और आप मर्द होकर दिलासा तक नहीं दे सकते, घर पहुँचाने की बात तो दूर रही।"

वह व्यक्ति पास आया, "तुम कौन हो?"

"आप कौन हैं इसी गाँव के हैं न?"

"मैं किसी जगह का क्यों न होऊँ उससे तुम्हें क्या मतलब? तुम्हारा काम बन जाय तो काफी है, है न?"

"इतना उपकार करके मुझपर दया कीजिए। अँधेरे में रास्ता भूल गयी हूँ। मन्दिर की सुन्दरता देखती रह गयी। साथवाले छूट गये। यह मुझे स्मरण है कि मन्दिर हेग्गड़े के घर के ही पास है। चलते-चलते लग रहा है कि गाँव से बाहर आ गयी हूँ। अगर आप हेग्गड़ेजी का घर जानते हों तो मुझे वहाँ तक पहुँचा दीजिए, बड़ी कृपा होगी।"

"तुम कौन हो और यहाँ कब आयीं?"

"कल ही आयी, मैं अपनी भाभी को ले जाने आयी थी।"

"ओह! तो वह तुम्हारी भाभी है!"

"तो मेरी भाभी को आप जानते हैं?"

"तुम्हारा भाई बड़ा भाग्यवान है, अच्छी सुन्दर स्त्री से उसने शादी की है।"

"ऐसा है क्या?"

"तुम्हारी शादी हुई है क्या?"

"हाँ।"

"तुम्हारा पति किस गाँव का है?"

"कोणदूर गाँव का।"

"तुम अपने पति के घर नहीं गयीं?"

"नहीं, उसके लिए हमारे यहाँ एक शास्त्र-विधि है, वह अभी नहीं हुई।"

"साथ कौन-कौन आये हैं?"

"मेरा छोटा भाई और हमारे दो सम्बन्धी। अब यह बताइए हमें किस

रास्ते से जाना होगा ?"

"ऐसे, इस तरफ दस पन्द्रह हाथ की दूरी पर जाने पर वहाँ एक पगडण्डी इससे आकर मिल जाती है। वह रास्ता सीधा हेग्गड़े के घर तक जाता है। चलो, चलें।" कहते हुए उसने कदम आगे बढ़ाया। गालब्बे भी साथ चली।

"ये फूल कौन-से हैं, तुम्हारे बालों में बड़ी सुगन्ध है !"

"ये सुगन्धराज के फूल हैं।"

"मुझे इस बात का आश्चर्य है कि वे तुम्हें अकेली छोड़कर कैसे चले गये। वे कैसे लोग है ?"

"मैं साहसी हूँ, घर तो पास ही है, पूछताछ कर आ ही जायेगी, यह समझकर चले गये।" कहती हुई गालब्बे वहीं रुक गयी। पूछा, "यह क्या है, इतनी दूर चलने पर भी आपकी बतायी वह राह मिली नही ?"

"मेरी राह यहीं नजदीक है।" कहते हुए उसने गालब्बे का हाथ पकड़ लिया और अपने पास खींच लिया।

"छिः छिः ! यह क्या दिल्लगी है, हाथ छोड़ो।"

"वहाँ गड्ढा है। कहीं उसमें पैर न पड़ जाये इसलिए हाथ पकड़ा है।" फिर उसका हाथ छोड़कर कहा, "डरो मत, आओ, जो जगह मैंने बतायी है वह यही पास में है।" और आगे बढ़ा। गालब्बे वहीं रुक गयी।

"क्यों, वहीं खड़ी हो गयीं ? यदि तुम्हें अपने रास्ते नहीं पहुँचना तो मैं अपना रास्ता लेता हूँ। बुलाया, इसलिए पास आया। नहीं चाहती तो लौट जाऊँगा। बाद में शाप न देना।" उसकी आवाज कड़ी थी और कहने का ढंग ऐसा था मानो आखिरी चेतावनी दे रहा हो। गालब्बे जवाब देना चाहती थी, पर घबड़ाहट में उसके मुँह से बोल ही न फूट सके। उस आदमी ने फिर से उसका हाथ पकड़ लिया। वह हाय-तौबा करने लगी।

"तुम कितनी ही जोर से चिल्लाओ, यहाँ सुननेवाला कोई नहीं। गाँव यहाँ से दूर है।" उस आदमी ने कहा।

"हाय, फिर मुझे यहाँ क्यों ले आये ?" घबड़ाकर गालब्बे ने पूछा।

"जैसा मैं कहूँ वैसा मान जाओ तो तुम्हें कोई तकलीफ न होगी। काम होते ही मैं तुम्हें उस जार लफंगे के घर पहुँचा दूँगा।" कहकर उसने उसका हाथ छोड़ दिया।

हाथ को मलती-फूंकती गालब्बे बोली, "आप भले आदमी है। पहले मुझे घर पहुँचा दीजिए। फिर अपना काम कर लीजिए।"

"तुम अपने गाँव कब जाओगी ?" उसकी आवाज कुछ कोमल हुई।

"परसों।" गालब्बे ने कहा।

"एक काम करोगी ? कल शाम को अँधेरा होने पर गुप्त रूप से तुम अपनी

"भाभी को यहाँ बुला लाओगी ?"

"क्यों ?"

"यह सब मत पूछो। वह मुझे चाहिए, बस।"

"उसकी शादी हो गयी है। उसके बारे में ऐसा कहना ठीक नहीं।"

"उसे इन सब बातों की परवाह नहीं।"

"क्यों उसके बारे में ऐसी बातें कह रहे हैं ?"

"मैं सच कह रहा हूँ। उसे तुम्हारे भाई की चाह नहीं है।"

"मतलब ?"

"तुम्हारे साथ चलने का-सा नाटक करेगी, पति को जहर देकर मार डालेगी, फिर यहीं आयेगी।"

"छिः छिः ! यह क्या बात कर रहे हैं ? अपनी कसम, मेरी भाभी ऐसी कभी नहीं।"

"बेचारी, अभी तुम क्या जानो, कच्ची हो। वह बदमाश है, उसने उसे अपनी रखैल बना रखा है।"

"वह बदमाश कौन है ?"

"वही हेग्गड़े, बड़ा शिवभक्त होने का नाटक रचा था आज भस्म धारण करके।"

"अजी, तुम्हारी सारी बातें झूठ हैं। हम सब परसों गाँव जानेवाले है आज सोमवती अमावस्या है। अच्छा पर्व है। इसलिए हमारी भाभी की भलाई के लिए हेग्गड़ेजी ने मन्दिर में विशेष पूजा की व्यवस्था की थी। वे तो उन्हें अपनी बेटी मानते हैं।"

वह ठहाका मारकर हँसने लगा। "तुम एक अनजान स्त्री हो। यह सब तुम्हारी समझ में नहीं आता। अपनी ही आँखों के सामने अपने पति की रखैल का आदर-सत्कार होता रहा, उसे देखती चुपचाप खड़ी रही वह हेग्गड़ती।"

"मुझे तो आपकी बातों पर विश्वास ही नहीं होता।"

"एक काम करो, तुम्हें विश्वास होगा। कल तुम उसे बुला ही लाओ। तुम्हारे सामने ही साबित कर दूँगा। उस औरत को दूर रखकर तुम अपने भाई की जान बचा सकोगी।"

"ऐसी बात है तो आपकी कसम, बुला लाऊँगी। मुझे घर पहुँचा दीजिए। आपका भला हो।"

"अपने अनुभव से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ। स्त्री मछली की तरह होती है, ढील देने पर फिसल जाती है। इसलिए मुझे तुम्हारा विश्वास ही नहीं हो रहा है।"

"मैं ऐसी नहीं, एक बार वचन दिया तो निबाहूँगी।"

"मैं विश्वास नहीं करता। तुम मेरी पकड़ में रहोगी तो वह काम करोगी। तुम्हें पहले अपनी पकड़ में रखकर फिर तुम्हें घर पहुँचाऊँगा। तभी कल तुम अपनी भाभी को लाओगी। ठीक, तो चलो अब।" कहते हुए उसने कदम बढ़ाया। हेग्गड़ेजी ने जिस मण्डप का जिक्र किया था वह अभी दिखा ही था कि कुछ आगे कुछ चलकर उसने उसे पुकारा, "अजी, सुनिए।"

"कहिए।"

"आपकी शादी हो गयी?" गालब्बे ने पूछा।

"लड़की देखने के लिए आया हूँ।" उसने उत्तर दिया। दोनों साथ-साथ आगे बढ़े।

"पक्की हो गयी?"

"कोई पसन्द ही नहीं आयी।"

"तो शादी लायक सभी लड़कियाँ देख लीं।"

"कल किसी ने बताया था, अभी एक लड़की और है और वह बहुत सुन्दर है।"

"तब तो उसे देख चुकने के बाद आप दूसरे गाँव जायेंगे।"

"क्यों?"

"ऐसे ही रोज एक लड़की को देखना और उनके यहाँ खाते-पीते···"

"ओह-हो, मैंने तुमको कुछ और समझा था। तुम तो मेरा रहस्य ही समझ गयीं।"

"आपका रहस्य क्या है, मैं नहीं समझी।"

"वही रोज एक लड़की···।" उसके कन्धे पर हाथ रखकर वह हँस पड़ा। हाय, कहकर वह दो कदम पीछे हट गयी।

"क्यों, क्या हुआ?"

"इस अँधेरे में पता नहीं पैर में क्या चुभ गया। तलुवे में बड़ा दर्द हो रहा है। कहाँ है वह रास्ता जिसे आपने बताया था? अभी तक नहीं मिला वह?"

"इस मण्डप में थोड़ी देर बैठेंगे, जब तुम्हारे पैर का दर्द कम हो जायेगा, तब चलेंगे।"

"ऐसा ही करें। मुझे सर्दी भी लग रही है।"

"हाँ, आओ।"

उसने अपनी पगड़ी उतारी और मण्डप की जमीन उसी से साफ करके वहीं बिछा दी।

"हाय हाय, ऐसी अच्छी जरी की पगड़ी ही आपने बिछा दी!"

"तुम्हारी साड़ी बहुत भारी और कीमती है। बैठो, बैठो।" कहते हुए उसका हाथ खींचा और खुद बैठ गया। वह भी धम्म से बैठ गयी। "जरा देखूँ, काँटा किस

पैर में चुभा है।" कहता हुआ वह उसके और पास सरक आया।

"अजी, जरा ठहरो भी। खुद निकाले लेती हूँ।" उसने लम्बी साँस ले हाथ इस तरह ऊपर किया कि उसकी कोहनी उस आदमी की नाक पर जोर से लगी।

"हाय" उस व्यक्ति की चीख निकल गयी।

"क्या हुआ जी, अँधेरा है साफ नहीं दिखता।"

"कुछ नहीं, तुम्हारी कोहनी नाक पर लगी, कुछ दर्द हुआ। काँटा निकल गया न ?"

"आखिर निकल ही गया।"

"कहाँ है ?"

"फेंक दिया।"

"अब भी दर्द हो रहा है।"

"अब उतना नहीं।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"यह सब क्यों जी, उठो, देरी हो रही है। कल अपनी भाभी को लेकर फिर भी आना है।"

"हाँ, ठीक है। जल्दी काम करें और चलें।"

"कर लिया है न काम ? काँटा निकल गया है, चलेंगे।"

"पर इतने से काम नहीं हुआ न ?"

"तुम क्या कहना चाहते हो ?"

"वही।" उसने गालब्बे की कमर में हाथ डाला।

"हाय, हाय, मुझे छोड़ दीजिए। आपकी हथेली लोहे-जैसी कड़ी है।"

"हथेली का ऐसा कड़ा होना आदमी के अधिक पौरुष का लक्षण है।"

"आप तो सामुद्रिक शास्त्र के ज्ञाता मालूम पड़ते हैं।" कहती हुई वह उसके हाथ को सूँघने का बहाना करके नाक तक लायी और उसके अँगूठे की जड़ में सारी शक्ति से दाँत गड़ा दिये।

इतने में मण्डप में दोनों ओर जलती हुई मशालें थामे आठ लोग आ पहुँचे।

गालब्बे ने उसका अँगूठा छोड़ा और मुँह में उसका जो खून था उसे उस पर थूककर दूर खड़ी हो गयी। उस आदमी ने भागने की कोशिश की, परन्तु इन लोगों ने पकड़कर उसके दोनों हाथ बाँध दिये और उसे साथ ले गये।

"इतनी देरी क्यों की, रायण ?" गालब्बे ने आँसू भरकर पीछे रह गये रायण से पूछा।

"कुछ गलतफ़हमी हो गयी। भूल से मैं पश्चिम की ओरवाले मण्डप की तरफ़ चला गया था। अचानक याद आयी। इधर से उधर, इस उत्तर दिशा की ओरवाले मण्डप की ओर भागा-भागा आया। कोई तकलीफ़ तो नहीं हुई न ?"

"मैं तो सोच चुकी थी कि आज मेरा काम ख़तम हो गया, रायण। दिल इतने जोर से धड़क रहा था, ऐसा लग रहा था दिल की धड़कन से ही मर जाऊँगी। मेरी सारी बुद्धि-शक्ति ख़तम हो गयी थी। चाहे, हाथ का ही हो, उस बदमाश का स्पर्श हुआ न? मुझे अपने से ही घृणा हो रही है।"

"उस गन्दगी को उसी पर थूक दिया न? जाने दो, यह बताओ कि क्या हुआ।"

"चलो, चलते-चलते सब बता दूँगी।" रास्ते में उसने सारा विवरण ज्यों-का-त्यों सुना दिया। फिर दोनों मौन, घर पहुँचे।

इधर गालब्बे के आने में देरी होने से हेग्गड़े मारसिंगय्या घबड़ा गये थे। वह क्षण-क्षण राह देखते बरामदे में चहलकदमी करने लगे। रायण को गालब्बे के साथ देखते ही बरामदे की जगत से एकदम कूदकर तेजी से उनके पास आये, "देर क्यों हो गयी। कुछ अनहोनी तो नहीं हुई?"

"घबड़ाने की कोई बात नहीं, मालिक। देर होने पर भी सब काम सफलता से हो गया।" गालब्बे ने कहा।

"अन्दर चलो, गालब्बे। तुम सुरक्षित लौटी, मैं बच गया, वरना तुम्हारी हेग्गड़ती को समझाना असम्भव हो जाता।" मारसिंगय्या ने कहा।

गालब्बे अन्दर जाने लगी तो उसने फिर पूछा, "जो बताया था वह याद है न?"

"हाँ, याद है।" इशारे से गालब्बे ने बताया और अन्दर गयी।

"रायण, क्या-क्या हुआ, बताओ।" कहते हुए रायण के साथ मारसिंगय्या बरामदे के कमरे में आये।

बुधवार, दूज को प्रस्थान शुभ मानकर श्रीदेवी की विदा की तैयारियाँ हो रही थीं। उन्हें मालूम हो चुका था कि जिसने उसे छेड़ा था उसे पकड़ लिया गया है। वास्तव में, वहाँ क्या और कैसे हुआ, आदि बातों का ब्यौरा केवल चार ही व्यक्ति जानते थे, गालब्बे, रायण, मारसिंगय्या और वह बदमाश। यह हेग्गड़े की कड़ी आज्ञा थी कि यहाँ तक कि श्रीदेवी और हेग्गड़ती को भी इससे अनभिज्ञ रखा जाये। हेग्गड़े का घर वन्दनवार और पताकाओं से सजाया गया था। घर के सामने का विशाल आँगन लीप-पोतकर स्वच्छ किया गया था। जगह-जगह रंग-बिरंगे चित्र और रंगोलियाँ बनायी गयी थीं। हेग्गड़े का घर उत्साह से भर गया

न्या।

यात्रा की तैयारियाँ बड़े पैमाने पर धूमधाम के साथ होने लगीं। एक प्रीति-भोज की व्यवस्था की गयी थी। बहुत मना करने पर भी श्रीदेवी के शास्त्रोक्त रीति से तैल-स्नान का आयोजन माचिकब्बे कर रही थी।

तैल-मार्जन के परम्परागत क्रम में उसने श्रीदेवी को मणिमय पीठ पर बैठाकर हल्दी-कुंकुम लगाया, तेल लगाते समय गाया जानेवाला एक परम्परागत लोक-गीत बन्तर्ज गाया गया। गाती हुई खुद माचिकब्बे ने चमेली के फूल से श्रीदेवी के तेल लगाया।

श्रीदेवी ने आश्चर्य से कहा, "भाभी, आपका कण्ठ कितना मधुर है।"

"मुझे मालूम ही नहीं था।" शान्तला की टिप्पणी थी।

"छोड़ो भी, मेरा गाना भी क्या? मेरी माँ गाया करती थी, वह तुम लोगों को सुनना चाहिए था। मेरे पिता बड़े क्रोधी स्वभाव के थे। यथा नाम तथा काम। मगर मेरी माताजी गाती तो पिताजी ऐसे सिर हिलाते हुए बैठ जाते जैसी पूंगी का नाद सुनकर नाग शान्त होकर फन हिलाता हुआ बैठ जाता है। उन्होंने मुझे भी सिखाया था, हालांकि मुझे सीखने की उतनी उत्सुकता नहीं थी। इतने में मुझे दसवाँ वर्ष लगा तो मेरा विवाह हो गया। इस वजह से मैं कुछ परम्परागत गीत ही सीख सकी जो विवाह के समय नव-दम्पती के आगे गाये जाते हैं। आज कुछ गाने का मन हुआ तो गा दिया। तुम्हें विदा करने में मेरा मन हिचकता है।" माचिकब्बे ने कहा।

"अच्छा, अब जाऊँगी तो क्या फिर कभी नहीं आऊँगी क्या?" श्रीदेवी ने कहा।

"अब तक तुम यहाँ रही, यही हमारा सौभाग्य था। बार-बार ऐसा सौभाग्य मिलता है क्या?" गालब्बे आरती का थाल ले आयी। दोनों ने मिलकर श्रीदेवी की आरती उतारी। माचिकब्बे ने फिर एक पारम्परिक गीत गाया। कुनकुने सुगन्धित जल से मंगल-स्नान कराया और यक्षेश्वर की रक्षा भी लगायी।

लोगों में यह सब चर्चा का विषय बन गया। सुनते हैं हेग्गड़े अपनी बहन को पति के घर भेज रहे हैं। ससुराल के लोग उन्हें लेने के लिए आये हैं। आज हेग्गड़ती मांगलिक ढंग से क्षेमतण्डुल देकर विदा करेगी। इष्टमित्र और आप्तजनों के लिए भोज देने की व्यवस्था भी है।

इन बातों के साथ कुछ लोग अण्टसण्ट बातें भी कर रहे थे। कोई कहता, यह हेग्गड़े कोई साधारण आदमी नहीं, रहस्य के खुलने पर भी उसी को गर्व की बात मानकर उस कुलटा को सजा-धजाकर मन्दिर ले गया और सबके सामने उसे प्रदर्शित किया और गाँव के लोगों के सामने उसे मन्दिर में हेग्गड़ती से नमस्कार भी करवा दिया। दूसरा बोला, हे भगवान! कैसा बुरा समय आ गया, यह सब

देखने के बाद कौन किसी पर विश्वास करेगा, कैसे करेगा ! गाँव का मालिक ही
जब इस तरह का व्यवहार करे तो दूसरों को पूछनेवाला ही कौन है, तीसरे ने
कहा । चुनाव करने में तो वह सिद्धहस्त है, ऐसी सुन्दर चीज कहाँ से उड़ा लाया
कुछ पता नहीं, एक और बोला । देखो कितने दिन वह उसे अपना बनाकर रखता
है, बीच में कोई बोल उठा ।

इस गोष्ठी में कुछ ऐसे लोग भी थे जिन्हें जानकार लोग कहा जा सकता
है ।

"यह रहस्य खोलनेवाले का पता ही नहीं । वह गया कहाँ । कल उसने सेंक
की साली को देखने का सब इन्तजाम किया था ।"

"शायद उसकी आँख और किसी गाँव की लड़की पर लगी होगी । लेकिन
कल वह आयेगा जरूर ।"

"सो तो ठीक है, असल में वह है कौन ?"

"कहा जाता है, वह कल्याण का हीरे-जवाहरात का व्यापारी है ।"

"वह यहाँ क्यों आया, दोरसमुद्र गया होता तो उसका सौदा वहाँ बहुत अच्छा
पटा होता ।"

"सुनते हैं वह इसी उद्देश्य से निकला था । वहाँ दिखाने लायक जेवर-
जवाहरात अभी उसके पास पहुँचे नहीं । उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहा है ।"

"वह कहाँ ठहरा है ?"

"उस आख़िरी घरवाले रंगगौडा के यहाँ ।"

"छोड़ो, अच्छा हुआ । उस पूरे घर में वह आधी अन्धी बुढ़िया अकेली रहती
। उसका बेटा युद्ध मे गया है । सुनते है, वह प्रसव के लिए मायके गयी है और
कह गयी है कि पति के लौटने के बाद आऊँगी । अगर वह यहाँ होती तो यह को
चमकदार पत्थर दिखाकर उसे अपने जाल में फँसा लेता ।"

"सच कहा जाये तो ऐसे व्यक्तियों को शादी करनी ही नहीं चाहिए ।"

"अगर कोई लड़की किसी दिन न मिली तो वह क्या करे इसलिए उसने
सोचा कि किसी लड़की से शादी कर ले तो वह घर में पड़ी रहेगी ।"

"लड़की खोजने के लिए क्या और कोई जगह उसे नहीं मिली ?"

"बड़ा गाँव है, शादी के योग्य अनेक लड़कियाँ होंगी, एक नहीं तो दूसरी
मिल ही जायेगी, यही सोचकर यहाँ रह रहा है ।"

मों बेकार लोगों में मनमाने ढंग की बातें चल ही रही थी कि झुण्ड-के-झुण्ड
घोड़े सरपट दौड़ते आ रहे दिखे जिससे गप्पियों की यह जमात घबड़ाकर धोती-
फेंटा ठीक करती हुई उस तरफ़ देखने लगी, उनमें से किसी ने कहा, "सेना आ रही
होगी ।"

सब लोग इर्द-गिर्द की छोटी गलियों से होकर जान बचाकर भागने लगे । कुछ

लोग राजपथ की ओर झाँक-झाँककर देखने लगे। कुछ अपने घर पहुँच गये। उसी समय एक वृद्ध पुरुष मन्दिर में आ रहा था, भागनेवालों को देखा तो पूछा, "अरे घबड़ाकर क्यों जा रहे हो?"

एक ने कहा, "सेना है।"

"सेना! ऐसा है तो भागकर हेग्गड़ेजी को खबर दो।" बूढ़े ने कहा।

"यह ठीक है" कहता हुआ एक आदमी उधर दौड़ गया।

बेचारा वृद्ध न आगे जा सका, न पीछे हट सका। वहीं एक पत्थर पर बैठ गया।

गाँव के राजपथ के छोर पर पहुँचते ही घोड़े रास्ते के दोनों ओर कतार बाँध-कर धीमी चाल से आगे बढ़े। बीच रास्ते में चल रहे सफ़ेद घोड़े पर सवार व्यक्ति का गम्भीर भाव दर्शनीय था। उन सवारों के आने के ढंग से लगता था कि डर की कोई बात नहीं, बल्कि वह दृश्य बड़ा ही मनोहर लग रहा था। वे उस रास्ते से इस तरह जा रहे थे मानो बलिपुर से खूब परिचित हों। वे सीधे हेग्गड़े के घर के प्राचीर के मुख्य द्वार के पास दोनों ओर कतार बाँधे खड़े हो गये। बीच के उस सवार ने दरवाज़े के पास घोड़ा रोका।

हेग्गड़े, रायण और दो-चार लोग हड़बड़ाकर बाहर भाग आये। सफ़ेद घोड़े के सवार पर दृष्टि पड़ते ही हेग्गड़े ने उसे प्रणाम किया। सवार ने होठों पर उँगली रखकर कुछ न बोलने का संकेत किया और घोड़े से उतरा। अपने आस-पास खड़े लोगों के कान में हेग्गड़े मारसिंगय्या कुछ फुसफुसाया। उनमें से कुछ लोग अहाते से बाहर निकले और दो व्यक्ति अन्दर की ओर बढ़े।

हेग्गड़े मारसिंगय्या फाटक पर आये। अतिथि-सत्कार की विधि के अनुसार फिर झुककर प्रणाम किया और दोनों हाथ अन्दर की ओर करके कहा, "पधारिए।"

इतने ही में लोग अपने-अपने घरों की जगत पर कुतूहल-भरी दृष्टि से उन नवागन्तुकों को देखने के लिए जमा हो गये।

कोई कहने लगा, बहन का पति होगा, पत्नी को ले जाने आया है। दूसरा बोला, अच्छा है, अच्छी जगह बहन का ब्याह किया है। और तीसरा कहने लगा, भारी भरकम आदमी है, पुरुष हो तो ऐसा। किसी ने चिन्ता व्यक्त की, इसकी उम्र कुछ ज्यादा हो गयी है। दूसरे ने अनुमान लगाया, शायद दूसरी शादी होगी। कोई दूर की कौड़ी लाया, हेग्गड़े की बहन की एक सौत भी है। कोई उससे दो-चार हुआ, सौत होने पर भी यह छिनाल इन्हें नचाती है, यह क्या कोई साधारण औरत है?

इतने में अन्दर से मंगवाद्य आया, मार्गदर्शक दीपधारी आये, चाँदी का कलश हाथ में लिये शान्तला आयी। गालब्बे चौकी ले आयी, मारसिंगय्या ने अतिथि से

उस पर खड़े होने का आग्रह किया। माचिकब्बे ने अतिथि के माथे पर रोरी का टीका लगाकर उन्हें फल-पान किया और गालब्बे को साथ लेकर उसकी आरती उतारी।

सब अतिथि अन्दर गये। घोड़े घुड़साल भेजे गये। सारा आँगन खाली हो गया। खाली आँगन देखने के लिए कौन खड़ा रहेगा? सब प्रेक्षक अपने-अपने घर गये, अपने घरों में जो बना था उसे खाया और आराम से सो गये। जूठे पत्तल चाटकर छाँह में कुत्ते जीभ फैलाकर, पाँव पसारे, कान उठाये, पूँछ दबाये आराम करने का ढोंग करते इधर-उधर नजर फेंकते पड़े रहे।

दूसरे दिन भयंकर गरमी की ख़ामोश दुपहरी में ढोल की आवाज दो-चार स्थानों से एक ही साथ सुनायी पड़ी। पान की पीक थूकने के लिए जो लोग बाहर आये थे, वहीं खड़े सुनने लगे। कुछ लोग आधी नींद में ही उठकर बाहर आ गये। बरतन-बासन धोती घर की स्त्रियाँ वैसे कालिख लगे हाथों, गिरी-टूटी दीवारों के सहारे खड़ी बाहर देखने लगीं। बच्चे कोई तमाशा समझकर ताली बजाते हुए दौड़ पड़े।

ढोल की आवाज बन्द हुई, घोषकों की आवाज शुरू हुई, "सुनो, बलिपुर के महाजनो, सुनो! आज शाम को चौथे पहर में बड़े हेग्गड़े मारसिंगय्याजी के आँगन में बलिपुर के पंचों की सभा होगी। दण्डनीय अपराध करनेवाले एक व्यक्ति के अपराधों पर खुलेआम विचार होगा। हर कोई आ सकता है। सुनो, सुनो, बलिपुरवालो।"

लोगों में फिर टिप्पणियों का दौर चला। क्या, कहाँ, वह व्यक्ति कौन है? उसने क्या किया। अचानक ही पंचों की सभा बैठेगी तो कोई खास बात है। सभा बैठेगी हेग्गड़े के अहाते में, वहाँ सभा क्यों हो? गाँव में इस तरह के कामों के लिए आखिर स्थान किसलिए है?

हेग्गड़े का विशाल अहाता लोगों से खचाखच भर गया। बरामदे को अपर्याप्त समझकर उसके दक्षिण की ओर बरामदे की ऊँचाई के बराबर ऊँचा एक मंच बनाया गया और ऊपर शामियाना तानकर लगवाया। मंच पर सुन्दर दरी बिछा दी गयी जिसपर प्रमुख लोगों के बैठने की व्यवस्था की गयी।

पंच उत्तर की ओर मुँह करके बैठे। उनमें बड़ा हरिहर नायक बीच में बैठा, वह भारी-भरकम आदमी था और उसका विशाल चेहरा सफ़ेद दाढ़ी-मूँछ से

सजकर बहुत गम्भीर लगता था। शेष लोग उससे उम्र में कुछ कम थे परन्तु उनमें कोई पचास से कम उम्र का न था। बरामदे में दो खास आसन रखे गये थे, उनपर कोई बैठा न था। हेग्गड़े मारसिंगय्या और उनके परिवार के लोग बरामदे में एक तरफ़ बैठे थे। मंच की बगल में हथियारों से लैस कुछ सिपाही खड़े थे, उनमें से एक को मारसिंगय्या ने बुलाकर उसके कान में कुछ कहा।

"नियत समय आ गया है, अब पंच अपना काम आरम्भ कर सकते हैं," सरपंच हरिहर नायक ने कहा, "हेग्गड़ेजी, आपसे प्राप्त लिखित शिकायत के आधार पर यह पंचायत बैठी है। आपकी शिकायत में लिखित सभी बातों को प्रमाणित करने के लिए आवश्यक सब गवाहों को इस पंचायत के सामने प्रस्तुत किया जाये।"

"चार-पाँच क्षण का अवकाश दें, मेरी विनती है, अभियुक्त और तीन मुख्य गवाहों का आना शेष है। उन्हें बुला लाने के लिए आदमी गये हैं।" मारसिंगय्या ने कहा।

अहाते के पास पहरे से घिरी एक गाड़ी आ पहुँची। हाथ बँधे हुए अभियुक्त को उतारकर उसके लिए निश्चित स्थान पर ले जाकर खड़ा किया गया। उसके पीछे दो हथियारबन्द सैनिक खड़े हो गये।

उपस्थित लोगों की भीड़ में से एक आवाज उठी, "अरे, यह तो कल्याण के हीरे-जवाहरात का व्यापारी है।"

पंचों में से एक ने ज़ोर से कहा, "खामोश।"

हेग्गड़ेजी के घर के अन्दर से सैनिक आने लगे। प्रत्येक सैनिक व्यवस्थित रीति से अपनी-अपनी जगह खड़ा हो गया। अन्त में हेग्गड़ेजी के वह श्रीमान् अतिथि आये, उनके पीछे शान्तला के साथ श्रीदेवी और उनके पीछे गालब्बे और दासब्बे आयीं। सबके पीछे लेंक आया। श्रीमान् अतिथि पंचों की वन्दना कर हेग्गड़े के दर्शाये आसन पर बैठे। पंचों ने कुछ सर झुकाकर मुसकराते हुए उनका अभिवादन किया। श्रीदेवी ने भी आते ही पंचों की वन्दना की और दिखाये गये आसन पर बैठी। शान्तला भी वन्दना करके अपनी माता के पास जा बैठी। गालब्बे, दासब्बे और लेंक सबने वन्दना की और हेग्गड़े के पास थोड़ी दूर पर बैठे।

तब हेग्गड़े ने पूछा, "रायण, सब आ गये न?"

"हाँ, मालिक, सब आ गये।"

"अब पंच अपना कार्य आरम्भ कर सकते हैं।" हेग्गड़े ने पंचों से विनती की।

पंचों ने आपस में कुछ बातचीत की। तब तक लोग बलिपुर के लिए अपरिचित इस श्रीमन्त अतिथि की ओर कुतूहल-भरी दृष्टि से देखते हुए आपस में ही

फुसफुसाने लगे। पंचों की बातचीत ख़तम होने पर भी यह फुसफुसाहट चलती रही तो पंचों ने गम्भीर घण्टानाद की तरह कहा, "ख़ामोश।"

सरपंच हरिहर नायक ने कहा, "इस मामले पर विचार-विनिमय कर एक निर्णय पर पहुँचे हैं। हेगड़े से प्राप्त शिकायत-पत्र को हमने पूरा पढ़कर उस अभियुक्त को सुनवाया है। इसलिए हमने पहले उसका बयान सुनने का निर्णय किया है। पहले उसे शपथ दिलायी जाये।"

अभियुक्त के पास आकर धर्मदर्शी ने कहा, "तुम अपने इष्टदेव के नाम पर शपथ लो कि मैं इस न्यायपीठ के सामने सत्य कहूँगा।"

"शपथ लेकर भी अगर कोई झूठ बोले तो उसका क्या दण्डविधान है?" अभियुक्त ने पूछा।

"वह न्यायपीठ से सम्बन्धित विषय है। न्यायपीठ के सामने सत्य ही की अपेक्षा की जाती है। शपथ लेने के बाद बयान देने पर, उसके सत्यासत्य के निर्णय का अधिकार भी इस न्यायपीठ का है।"

"ठीक है, न्यायपीठ की आज्ञा से मैं अपने इष्टदेव की शपथ लेकर सत्य ही कहूँगा।"

"हेगड़े ने जो शिकायत दी है सो तुम जानते हो। क्या तुम इसे स्वीकार करते हो?" हरिहर नायक ने पूछा।

"आपके हेगड़े सत्यवान् हैं, उन्होंने जो शिकायत दी है, वह सत्य है इसलिए मुझे स्वीकार करना चाहिए, आपका क्या यही आशय है?"

"इस तरह न्यायपीठ से सवाल करना अनुचित है। यह व्यवहार कन्नड़ संस्कृति के विरुद्ध है। तुम्हारे व्यवहार से लगता है कि तुम इस संस्कृति के नहीं हो।"

"मैं कर्नाटक का ही हूँ। यदि मेरा प्रश्न करना गलत हो तो मैं न्यायपीठ से क्षमा माँगता हूँ।"

"तो इन शिकायतों को मानते हो?"

"सारी शिकायतें झूठ हैं।"

"इसे झूठ साबित करने के लिए तुम्हारे पास कोई गवाह है?"

"मैं यहाँ अकेला आया हूँ। मेरी ओर से गवाही कौन देगा?"

"कोई हो तो कहो, उसे बुलवा हम लेंगे।"

"एक है, वह बलिपुर में ही पैदा होकर यहीं का पला हुआ है। वह कई बार मेरी मदद भी कर चुका है।"

"वह कौन है?"

"बूतुग उसका नाम है। वह चिनिवारपेट मुहल्ले में रहता है।"

"हेगड़ेजी, उसे बुलवाइये।" हरिहर नायक ने कहा और हेगड़े ने लेंक को

उसे बुलाने के लिए भेज दिया।

"अच्छा, अभियुक्त तुम खुद को निरपराधी साबित करने के लिए कोई बयान देना चाहते हो इस न्यायपीठ के सामने ?"

"अभी देना होगा या बाद में भी दिया जा सकेगा ?"

"अगर बयान सत्य पर आधारित हो तो सदा एक-सा ही होगा। बाद का बयान सुनकर तौलकर उचित बयान देना चाहोगे तो इसकी स्वतन्त्रता तुम्हें होगी।"

"देरी से कहूँ तब भी सत्य सत्य ही होगा न ?"

"ठीक, बाद में ही अपना बयान देना। हेग्गड़ेजी, अब आप अपनी शिकायतों को साबित करने के लिए अपने गवाह बुलाइए।"

हेग्गड़े मारसिंगय्या ने रायण को ग्वालियन मल्लि को बुला लाने का आदेश दिया, इतने में लेंक बूतुग को ले आया, सरपंच से हेग्गड़े मारसिंगय्या ने कहा, "यही बूतुग है।"

"अच्छा, ग्वालियन मल्लि के आने से पहले बूतुग की गवाही ली जायेगी, वह शपथ ले।" और उसके विधिवत् शपथ ले चुकने पर उन्होंने अभियुक्त की ओर संकेत करके पूछा, "तुम इसे जानते हो ?"

"हाँ, जानता हूँ।"

"तुम लोगों में परस्पर परिचय कैसे हुआ, क्यों हुआ, यह सारा वृत्तान्त बताओ।"

"ऐसे ही एक दिन गाँव के सदर दरवाज़े के सामने पीपल की जगत पर मैं गूलर खाता बैठा था, तब यह आदमी पहले-पहल गाँव में आ रहा था। यह मेरे पास आया और पूछा कि इस गाँव का क्या नाम है। मैंने कहा बलिपुर। आखिर जिस गाँव की खोज मैं कर रहा था वह मिल ही गया, कहता हुआ यह मेरी बगल में उसी जगत पर आ बैठा। गूलर खाते देखकर इसने मुझसे पूछा, क्या बलिपुर में यही अंजीर है ! मैंने कहा कि यह गरीबों का अंजीर है। इसने कहा मेरी मदद करो। मैं तुम्हारी गरीबी को मिटा दूँगा। तुमको उस जगह ले जाऊँगा जहाँ सच-मुच अंजीर मिलेगा। और इसने सोने का एक वराह-मुद्रांकित सिक्का मेरे हाथ में थमा दिया। उसे मैंने अण्टी में खोंस लिया। मुझे लगा कि यह कोई धर्मात्मा है। यह मुझे अच्छा लगा। मैंने पूछा, यहाँ क्यों और कहाँ से आये। इसने कहा कि मैं कल्याण से आया हूँ। वहाँ मेरा बड़ा कारोबार है। मैं जवाहरात का व्यापारी हूँ। चालुक्य चक्रवर्ती को और रानियों को मैं ही हीरे-जवाहरात के गहने बेचा करता हूँ। वैसे ही, अपने व्यापार को बढ़ाने के ख्याल से इस प्रसिद्ध पोय्सल राजधानी के राजमहल में जेवर बेचने के इरादे से आया हूँ। हालांकि, अभी करहाट से आ रहा हूँ। राजमहल में दिखाने लायक जेवर खतम हो जाने से लोगों को कल्याण भेजा

है। इसने यह भी कहा सुनते है कि यहाँ के हेग्गड़े और पोय्सल राजवंशियों में गहरा स्नेह है इसलिए इनको अपना बनाकर इनसे परिचय-पत्र प्राप्त कर वहाँ जाना चाहता हूँ। इसीलिए जो लोग और जेवर लेने कल्याण गये है उनके आने तक, यहाँ ठहरने के लिए जगह की जरूरत है। एक जगह मेरे लिए बना दो। मैंने स्वीकार किया। आखिरी घरवाला रंगगौड़ा युद्ध में गया है, उसकी पत्नी प्रसव के लिए मायके गयी है, इसलिए शायद वहाँ जगह मिल सकेगी, यह सोचकर इसको वहाँ ले गया। बुढ़िया मान गयी। इससे हम दोनों में "आप" का प्रयोग छूटा, तू, तुम का ही प्रयोग होने लगा, स्नेह के बढ़ते-बढ़ते। बेचारा अच्छा आदमी है, बहुत उदार भी। हमारे गाँव में ऐसा कोई आदमी नहीं। ऐसे ही दिन गुजरते गये, लेकिन आदमी कल्याण से नहीं आये। बेचारा घबड़ा गया। वहाँ जो युद्ध हो रहा है उसके कारण वे कहीं अटक गये होंगे। इसलिए मैंने उसे खुद ही एक बार कल्याण हो आने को कहा, उसने कहा अगर अचानक रास्ते में मुझे भी कुछ हो जाए तो क्या हो, और मैं इधर से जाऊँ और वे उधर से आ जाएँ तो भी मुश्किल। यहाँ एक अच्छा घर है, तुम-जैसे दोस्त भी है। लोगों के आने तक मैं यहीं रहूँगा। ऐसी हालत में मैंने सलाह दी कि तुम अकेले हो, घर भी है, कहते हो अभी शादी नहीं हुई है। हमारे गाँव की ही किसी लड़की से शादी कर लो। बेचारा अच्छा है। कहते ही मेरी सलाह मान ली।"

पंचों में से एक ने कहा, "शादी हो गयी?"

"ऐसे धनी पुरुष के लिए ठीक जोड़ी का मिलना यहाँ मुश्किल हुआ। इस बेचारे को जहाँ भी लड़की दिखाने ले गया वहीं गया लेकिन वहाँ खाना खाता, गाना सुनता और वहाँ से उठता हुआ कहता, बाद को बताऊँगा। वास्तव में आज इसी वक्त एक और लड़की देखने जाना था। उसका भी मैंने ही निश्चय किया था। पता नहीं क्या हो गया। कोई चाल चलकर इसे परसों पकड़ा है चाण्डालों ने। मुझे शंका है। मैंने, पता नहीं किससे, कहा था कि शायद वह पास के गाँव हरिगे या गिरिगे गया होगा। वह इसी तरह दो-तीन दिन में एक बार कहीं-न-कहीं जाया-आया करता है। ऐसे ही शायद गया होगा, समझकर चुप रह गया। अभी यों ही खा-पीकर बैठा था। किसी ने कहा कि मालिक के घर में बड़ी विचार सभा होगी। इसी ओर आ रहा था। इतने में लेंक आया और बोला मालिक बुला रहे हैं। मुझे लगा कि मैं बड़ा आदमी हो गया, चला आया।"

"इसके बारे में तुम्हें कोई और बात मालूम है?" सरपंच हरिहर नायक ने पूछा।

"सब कह दिया। अगर कोई और बात याद आयेगी तो फिर कहूँगा।" बूतुग बोला।

"उसे आज कौन-सी लड़की देखनी थी?"

"वही, जो मुझे बुलाने आया था न, वह लेंक। उसकी औरत की बहन को देखनेवाला था।"

"तुमने कहा, वह कभी-कभी बाहर जाता था। कहाँ और क्यों जाता था तुमको मालूम है ?"

"मैं उससे क्यों पूछता ? सच बात तो यह कि मैं उसके साथ रहता ही न था। वही मिलने को मेरे पास कभी आ जाता। हम तो खेतिहर हैं, सुबह से शाम तक मिट्टी में रहनेवाले। यह चमकदार पत्थरों के बीच रहनेवाला। कुछ पूर्वजन्म के ऋण-बन्ध से स्नेह हुआ है। इतना ही।"

"शिष्टाचार के नाते तुमने पूछा नहीं, यह भलमानसी का लक्षण है। पर उसने खुद तुमसे कुछ नहीं कहा ?"

"नहीं, वह क्या-क्या कहता था, मुझे याद नहीं पड़ता। याद रखने लायक कोई बात तो नहीं। हाँ, वह बड़ी मजेदार कहानियाँ सुनाता है। उसे राजा-रानियों की बहुत-सी कहानियाँ मालूम है। वह बड़ा होशियार है। राजा-रानियों के रहस्य की कहानियाँ जब बताता है तब ऐसा लगता है मानो खुद राजा है। मगर उनका नाम न बताता।"

"तुमने कहा वह बहुत-से किस्से सुनाया करता था। उसमें एक-दो किस्से याद हों तो सुनाओ।"

"यहाँ, सबके सामने, उसमें भी जब यहाँ इतनी स्त्रियाँ मौजूद हैं। न, वे सब एकान्त में कहने लायक किस्से हैं।"

"जाने दो, इतना तो सच है कि वह ऐसे रहस्यमय किस्से सुनाया करता जिन्हें दूसरों के सामने कहते हुए संकोच होता है। ठीक है न ?"

"हाँ, यह ठीक बात है।"

"तो तुम्हें और कुछ मालूम नहीं ?"

"नहीं।"

'यहाँ वह कभी बीमार तो नहीं पड़ा। हमारे गाँव के किसी वैद्य ने उसकी परीक्षा-चिकित्सा तो नहीं की ?"

"ऐसा कुछ नहीं। पाँच-छः महीने से है यहाँ। पत्थर-सा मजबूत है, हृष्ट-पुष्ट।"

"ठीक है, कहीं मत जाना। जरूरत होगी तो फिर बुलायेंगे।"

बूतुग लेंक के पास थोड़ी दूर पर बैठ गया।

हरिहर नायक ने अभियुक्त से पूछा, "तुम्हारे गवाह ने जो कुछ कहा वह सब तो सुना है न ? और भी कुछ शेष हो तो कहो। अगर कुछ बातें कहने की हों और छूट गयी हों या वह नहीं कह सका तो तुम उससे कहला सकते हो, चाहोगे तो उसे फिर से बुलायेंगे।"

"बूतुग ने उसे जो कुछ मालूम था सब कह दिया। उसके बयान से ही स्पष्ट है कि मैं कैसा आदमी हूँ। सचमुच इस गाँव में उससे अधिक मेरा कोई परिचित नहीं है।"

"ठीक, तुम्हारी तरफ़ से गवाही देनेवाला कोई और है?"

"और कोई नहीं। अन्त में मैं खुद अपना बयान दूँगा।"

"ठीक।" हरिहरनायक ने हेग्गड़े से कहा, "अब आपने जो शिकायतें दी हैं उन्हें साबित करने के लिए एक-एक करके अपने गवाहों को बुलाइए।"

मल्लि ग्वालिन बुलायी गयी। चढ़ती जवानी, सुन्दर-सलोना चेहरा, साधारण साड़ी-कुर्ती, बिखरे बाल, गुरबत की शिकार। मंच के पास आती हुई इर्द-गिर्द के लोगों को देख शर्मायी। शरम को ढँकने के लिए आँचल दाँतों से दबाये वह निर्दिष्ट जगह जाकर खड़ी हुई। पंचों को देख, जरा सर झुकाया। धर्मदर्शी ने आकर शपथ दिलायी।

हरिहरनायक ने कहा, "कुछ संकोच मत करो, जो कुछ तुम जानती हो, वह ज्यों-का-त्यों कहो। निडर होकर कहो, समझीं?"

"समझी, मालिक" मल्लि उँगली काटती हुई कुछ याद आने से मुस्कुरा गयी। मुस्कुराने से उसके गालों में गढ़े पड़ गये इससे उसकी सुन्दरता और बढ़ गयी।

बहुतों की आँखें उसकी गवाही को कम, उसे अधिक देख रही थीं।

हरिहरनायक ने पूछा, "मल्लि, तुम इसको जानती हो? यह दूसरी जगह का है और तुम बलिपुर की, है न?"

"हाँ, मालिक।"

"तो तुम्हें इसका परिचय कैसे हुआ?"

"मेरे पति और ये दोस्त हैं।"

"दोस्ती हुई कैसे?"

"यह मैं नहीं जानती, मालिक। मेरे पति ने मिलाया था। तीन-चार बार यह मेरे घर भी आया था। मैंने इसे गरम-गरम दूध भी पिलाया था।"

"यह तुम्हारे पति के साथ आया था या अकेला ही?"

"पहले दो बार पति के साथ आया था। बाद को एकाध बार अकेला भी आया था।"

"जब तुम्हारा पति घर नहीं था तो यह क्यों आया?"

"वह काम के लिए आया। मेरा पति कहीं गया था, गाँव से बाहर। यह दर्यापत करने कि वह आया या नहीं। इसने उनको अपने काम पर भेजा था।"

"इतना ही, उससे अधिक तुम्हें इसके बारे में जानकारी नहीं?"

"आपका मतलब मैं नहीं समझी, मालिक।"

"तुम्हारा पति इस व्यक्ति के किस काम के लिए गया था?"

"ये सब बातें उन्होंने नहीं बतायीं, मालिक।"

"तुमने कभी पूछा नहीं ?"

"एक दिन पूछा था। उन्होंने कहा इससे तुम्हारा क्या मतलब ? मुझे धमकी देते हुए कहा कि औरत को कहा मानकर चुपचाप घर में पड़ी रहना चाहिए।"

"इसने चुप रह गयी। कुछ पूछा नहीं ?"

"नहीं, मालिक। पर मुझे इसका यह व्यवहार ठीक नहीं लगा। ऐसे गैर आदमियों के साथ, जिनका ठौर-ठिकाना न हो, ऐसा कौन-सा व्यवहार होगा जो अपनी पत्नी तक से न कहा जाये ?"

"तुम अपनी निजी बातों को किसी और से कहा करती हो ?"

"शादी-शुदा होकर यहाँ आने के बाद मेरी एक सहेली बनी है। वह मेरी अपनी बहन से भी ज्यादा मुझसे लगाव रखती है। उससे मैंने कहा है।"

"क्या कहा है ?"

"यह व्यवहार मुझे पसन्द नहीं। इन लोगों के व्यवहार को समझें कैसे, यही सवाल है।"

"फिर क्या हुआ ?"

"उसने मेरी शंका ठीक बतायी, लेकिन इसका व्यवहार जानने का तरीका उस बेचारी को भी सूझा नहीं।"

"बता सकती हो, वह कौन है ?"

"उसमें क्या रखा है, इसमें छुपी-छिपी क्या है। यही दासब्बे जो हमारे सेंक की साली है।"

"क्या कहा ?" आश्चर्य से हरिहरनायक ने पूछा।

"दासब्बे है मालिक। वह यहाँ बैठी है।"

चूतुग को भी आश्चर्य हुआ। उसने मन-ही-मन कहा, बदमाश, इस मल्लि के साथ इसका सरोकार है यह बात हमें मालूम तक नहीं पड़ी।

"ठीक है। अच्छा, यह बताओ कि तुम अपने सारे सुख-दुख उससे कहा करती थी ?" हरिहरनायक ने पूछा।

"हाँ, मालिक। औरत को अपना दुखड़ा सुनाकर दिल का बोझ उतार लेने के लिए एक स्त्री की मित्रता बहुत आवश्यक है, नहीं तो अपने दुख का भार लिये-लिये वह कब तक जियेगी।"

"ऐसी कोई बात याद हो तो कहो, कह सकोगी ?"

"यहाँ ? यहाँ क्यों, मालिक ? हर एक के जीवन में कोई-न-कोई घटना होती ही है। उसे कोई सबके सामने क्यों बताये ?"

"सत्य को प्रकाश में लाना हो तो हमें अपने दुख-दर्द को, मानापमान को प्रधानता नहीं देनी चाहिए, वह सत्य की दृष्टि से गौण है, मल्लि।"

"फिर भी इस समय के विचारणीय विषय से जिसका सम्बन्ध नहीं, वह भी जानने का क्या प्रयोजन है, मालिक ?"

"इस विषय से सम्बन्ध है या नहीं, इस बात का निर्णय तुम्ही ने कर लिया मल्लि ?"

"इसके क्या माने? अगर है तो मुझे भी मालूम होना चाहिए कि क्या सम्बन्ध है।"

"अच्छा जाने दो, तुम्हारी इच्छा नहीं तो हम जबरदस्ती नहीं पूछते। अच्छा, यह बताओ कि इस गाँव में आये तुम्हें कितने दिन हुए ?"

"दो साल।"

"इन दो सालों में तुम्हारे जीवन में ऐसी कोई अनिरीक्षित घटना इस बलिपुर में घटी है कभी ?"

"घटी है, परन्तु···।"

"परन्तु क्या, जो हुआ, सो कहो।"

"ऐसा अच्छा नहीं। कैसे कहूँ, मालिक ?"

"उसके बारे में तुमने दासब्बे को बताया है ?"

"हाँ।"

"अगर वह कहे तो चलेगा ?"

"अगर वह कह सकती है तो मैं भी कह सकती हूँ।"

"तो तुम कहो न।"

"घृणा आती है। फिर भी···।"

"घृणा किस बात की ? झूठी आन में पड़कर कहने में हिचकिचाओ मत।"

"आन की कोई आँच नहीं लगती, मालिक। हम ग्वालिन हैं। गौमाता की सेवा करनेवाले। अच्छे लोगों के लिए हम गऊ जैसे सीधे-सादे हैं। कोई हमारे साथ मर्यादा की हद से बाहर व्यवहार करे तो हमारे भी सींग होते हैं। सींग थोंपकर ग्वालिन लड़कियाँ उसे अपने हाथ का मजा भी चखाती हैं।"

"तो यों कहो कि ऐसा भी कोई प्रसंग आया था।"

"इसीलिए तो कहा कि ग्वालिनों के हाथ का मजा कैसा होता है।"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"एक पखवारे पहले, नहीं-नहीं, उससे भी कुछ दिन ज्यादा गुजरे होंगे, मुझे गाँव से बाहर रहना पड़ा था, मालिक। हर महीने तीन दिन, मासिक धर्म के समय, हम गाँव से बाहर रहा करती हैं, हम ग्वालों में यही रिवाज है। इसे सब जानते हैं। उस समय मेरा पति भी गाँव में नहीं था। यह बेचारी दासब्बे ही मुझे भोजन लाकर दिया करती थी।"

पंचों का ध्यान दासब्बे की ओर गया किन्तु उसके कुछ पूछने से पूर्व वे मल्लि

की बात पूरी सुन लेना चाहते थे।

वह कहती गयी, "तीसरे दिन रात को मैं अकेली रह गयी। मेरे साथ दो और भी थीं। वे दोनों तालाब में नहा-धोकर चौथा दिन होने के कारण अपने मुहल्ले में चली गयीं। तालाब के बाँध पर मण्डप के पास टाट बिछाकर कम्बल ओढ़े सोयी थी। आधी रात का समय था। चाँदनी छिटकी हुई थी। अचानक जाग पड़ी। देखती हूँ कि एक व्यक्ति नकली चेहरा लगाये मेरे पास धीरे-धीरे आ रहा है। उसने काले कपड़े से अपने को ढँक रखा था। उसे देखकर पहले तो डर गयी। कोई भूत है। फिर भी रात-रात, तीन-तीन दिन गाँव से बाहर खुले में रहने-वाली ग्वालिनों को आम तौर पर इतना डर नहीं रहता। वैसे मैंने उसके पैर देखे। हम आदमियों की तरह पैर की अँगुलियाँ सामने की ओर थीं, पिण्डली पीछे की ओर। तब निश्चय हुआ कि यह भूत नहीं।"

पंच मल्लि का बयान तो सुन ही रहे थे वे यह भी देख रहे थे कि मल्लि आदमी और भूत में शारीरिक अन्तर किस प्रकार करती है।

उसने आगे कहा, "तब कुछ और ढंग से डर लगने लगा। सारा शरीर पसीना-पसीना हो गया। मैं, धीरज धरकर कृष्ण परमात्मा का ध्यान करती हुई हिले-डुले बिना पड़ी रही। वह व्यक्ति मेरे पास, बिलकुल पास आ गया। इधर-उधर देखा। पास बैठा, मेरे मुँह के पास अपना मुँह लाया। उसके मुँह से ऐसी दुर्गन्ध निकली कि बड़ी घृणा हुई, कै होने को हुई। नींद में करवट लेने का-सा बहाना करके पैर जोर से ऐसा झटकारा कि वह ठीक उसके पेट पर लगा। पेट पर पैर का आघात लगते ही वह व्यक्ति लुढ़क गया। मेरा पति मुझसे बहुत मुहब्बत रखता है इसलिए उसने वक़्त पर काम आये, इस ख़्याल से हमारे गाँव के लुहार से कहकर लोहे के नख बनवा दिये थे। गाँव से बाहर जब रात बितानी पड़ती है तब वही हमारे लिए भगवान् है। हमेशा वह पहनकर ही सोती थी। मुझे भी तब बहुत गुस्सा आया। जब बहुत डर हो और गुस्सा भी आया हो तब धैर्य के साथ शक्ति भी शायद आ जाती है। वह पीठ के बल पड़ा था तो लगा कि उसका पेट चीरकर अँतड़ियाँ निकाल दूँ। जोर से हाथ मारकर एक बार खींचा। वह व्यक्ति तोबा करता हुआ, मर गया, मर गया, चिल्लाने लगा।"

पंचों की नज़र उसके चेहरे पर बरबस टिक गयी, उसके वे बिखरे बाल, माथे पर लगी कुंकुम की बड़ी बिन्दी और वे खुली बड़ी-बड़ी आँखें, बड़ी भयंकर लग रही थीं। पंचों ने उसके बयान की धारा तोड़ी नहीं।

"मैं दो कदम पीछे हटी। वह व्यक्ति तुरन्त उठकर भागने लगा। मुड़कर देखा तक नहीं। मैंने सोचा था कि बलिपुरवाले सभी सज्जन हैं, इस घटना के बाद किसी पर विश्वास न करने का निश्चय मन में कर लिया। ऐसे लोग मनुष्य हैं या कुत्ते? क्या इनकी कोई माँ-बहन नहीं। ये लोग समाज में घड़े-भर दूध में बूँद-भर

घटाई-जैसे हैं। बड़े चाण्डाल हैं।" पंचों की अपेक्षा से भी अधिक लम्बा बयान देकर चुप हुई मल्लि।

"कुछ और कहना है, मल्लि, तो कहो।"

"कुछ और याद नहीं, मालिक।"

"तब बैठी रहो। जरूरत पड़ी तो फिर बुला लेंगे।"

मल्लि ओसारे में एक खम्भे के पास बैठ गयी। सब स्त्रियाँ उसकी ओर देखने लगीं। सब सुनकर अभियुक्त चुपचाप, निरासक्त भाव से ज्यों-का-त्यों पड़ा रहा।

इसके बाद दासव्वे की गवाही ली गयी। ग्वालिन मल्लि की बतलायी तालाब और मण्डपवाली घटना दासव्वे ने भी बतायी। दासव्वे के बयानों में कोई फर्क नहीं था। इन दोनों के बयान लेने के बाद हरिहरनायक ने कहा, "दासव्वे, आज तुम्हें देखने कोई आनेवाला था और उसका निश्चय तुम्हारे बहनोई ने किया था, है न?"

"हाँ, मालिक।"

"उस आनेवाले के बारे में तुम्हारी बहन या बहनोई ने तुमसे कुछ कहा था?"

"हाँ, कहा था कि वह कोई भारी धनी है और कल्याण शहर का एक बड़ा बड़ा हीरे-जवाहरात का सौदागर है। इस गाँव की कुछ ब्याहने लायक लड़कियों को देख भी चुका है। उसे कोई पसन्द नहीं आयी। मेरे बहनोई ने कहा कि अगर तुझे वह पसन्द करेगा तो तुम महारानी की तरह आराम से रह सकोगी। अपनी बहन से भी ज्यादा मान से रह सकोगी।"

"तो तुम शादी करने के लिए तैयार हो?"

"मैं कहूँ तो वे लोग छोड़ेंगे? वर मान लेगा तो मामला खतम। लड़की को इस बात में कौन-सी आजादी है। जब शादी करनेवाला हीरे-जवाहरात का व्यापारी हो तब पूछना ही क्या। सुनकर तो मेरे भी मुँह से लार टपकने लगी।"

"अपने घर पर देखने के बदले उसे यहीं देख रही हो, उसने भी तो तुमको देख लिया है। अगर वह मान लेगा तो तुम उससे शादी कर लोगी?"

"तब मुझसे कहा गया था कि आदमी बहुत अच्छा है। परन्तु अब···" दासव्वे ने बात बन्द कर दी।

"तो अब तुम्हारा ख्याल है कि वह आदमी अच्छा नहीं।"

"अच्छा होता तो सारा विचार करने का प्रसंग ही क्यों आता?"

"झूठ-मूठ शिकायतें आयी होंगी। वे शिकायतें जबतक सही साबित न होंगी तबतक तो वह निर्दोष है। हम तो ऐसा ही मानते हैं।"

"आग हो तभी न धुआँ निकलता है, मालिक?"

"तो तुम्हें मालूम है कि आग है?"

"मालिक, सुना तो यही है कि आग है।"

आप तुमने खुद तो नहीं देखी न ?"

"नहीं, मालिक।"

"जिसने कहा वही यहाँ कहे, फिर तुम भी कहो, तो उसका कुछ मूल्य है। परन्तु किसी की कही बात तुम भी कहो तो उससे क्या प्रयोजन होगा इसलिए यह बात छोड़ दो। अब यह बताओ कि तुम बहिन के घर क्यों रहती हो ?"

"मेरे माँ-बाप नहीं, इसलिए बहिन के पास आयी।"

"तो तुम इस बलिपुर की एक पुरानी निवासी हो, है न ?"

"हाँ, मालिक।"

"इस आदमी को आज से पहले भी, अचानक ही सही, कहीं देखा था ?"

"हाँ, मालिक।"

"तो तुम्हें यह मालूम था कि यही तुमको देखने आनेवाला है ?"

"नहीं, मालिक। मुझे इतना ही मालूम था कि मुझे देखने के लिए आनेवाला हीरे-जवाहरात का व्यापारी था। यह नहीं मालूम था कि यही आनेवाला है।"

"तुम तो कहती थी कि पहले ही देख चुकी हो।"

"देखा जरूर है। तब यह नहीं मालूम था कि यही वह व्यापारी है। इसके अलावा बूतुग के कहने पर ही मुझे पता लगा कि यही मुझे देखने के लिए आनेवाला है।"

"तुमने कहा कि पहले देखा था, कहाँ देखा था ? कितनी बार देखा था ?"

"एक ही बार। वहीं, गाँव के उत्तर की ओर जो मण्डप है, वहाँ।"

"वहाँ तुम क्यों गयी थीं ?"

"मैं वहाँ गयी नहीं थी। अपनी बहिन के खेत को जा रही थी उसी रास्ते। मण्डप के पीछे की ओर से। उस मण्डप के अन्दर से एक औरत और मर्द की जोर से हँसने की आवाज सुन पड़ी। डरते-डरते धीरे-से झाँका। यह आदमी उस धोबिन चेन्नी के बदन-से-बदन सटाकर बैठा था। मुझे घृणा आ गयी। वैसी ही खिसक-कर ऐसे रास्ते से निकल आयी जिससे कोई न देख सके और सीधी घर पहुँच गयी।"

"ठीक, यह बात तुमने और किसी से कही है ?"

"अपनी बहिन से कही।"

"तब तुम्हें मालूम था कि वह कौन है ?"

"वहीं पहले-पहल देखा मैंने इसे।"

"और भी कभी देखा था इसे ?"

"नहीं, मालिक।"

"अच्छा, तुम बैठो, यहीं रहो।" हरिहरनायक ने कहा। दासब्बे अपनी जगह

जा बैठी।

धोबिन चेन्नी के साथ सटकर बैठे रहने की बात सुनने के बाद, सो भी गाँव के बाहर एक उस मण्डप में, बूतुग अपने आप में कहने लगा—अरे बदमाश, ऐसी चाण्डाल औरत के साथ यह आदमी, खुजली-खाज लगा कुत्ता भी उसके पास जाने से हिचकता है। ऐसी औरत से यह सटकर बैठा था! कैसा धूर्त बदमाश है! हमारे गाँव की लड़कियों का सौभाग्य अच्छा था। भगवान ने ही बचा लिया।

उसके बाद लेंक की गवाही हुई, "बूतुग के प्रयत्न से अपनी साली को दिखाने पर राजी हुआ, एक सप्ताह पहले। परन्तु परसों रात को हेग्गड़ेजी के पास जो रहस्यमय समाचार आया तो उसे पकड़ने के लिए नियोजित जत्थे में मुझको भी शामिल होना पड़ा। परन्तु तब तक बूतुग के कहे अनुसार इसे अच्छा आदमी समझता रहा क्योंकि तब तक मुझे यह मालूम नहीं था वह व्यक्ति यही है। उस धोबिन चेन्नी से इसके बारे में और ज्यादा बातें मालूम पड़ीं। चाहें तो उसी से दर्याफ़्त कर सकते हैं, मुझसे बताने को कहें तो मैं भी तैयार हूँ।" लेंक ने कहा।

"नहीं, उसीसे सुनेंगे। हेग्गड़ेजी, उसे बुलाया है?" हरिहरनायक ने पूछा।

"वह गाँव में नहीं, सुना है कि ताडगुंद गयी है।" हेग्गड़े ने उत्तर दिया।

"रहने दें, हेग्गड़ेजी। लेंक, उसके कथन में मुख्य विषय क्या है?"

"इसकी लम्पटता। इसकी लम्पटता के लिए उसने जो साथ दिया और इस साथ देने के लिए उसे जो धन दिया गया और उसे जो लालच दिखाया गया।"

"ऐसी हालत में उसे बुलवाना ही पड़ेगा। उसीसे इस विषय को जानना चाहिए। हेग्गड़ेजी अभी किसी को भेज ताडगुंद से उसे बुलाइए। कम-से-कम कल वह यहाँ रहे।" हेग्गड़े ने रायण को उसे बुला लाने का आदेश दिया।

"ठीक है, लेंक, तुम्हें इस आदमी के बारे में और कोई बात मालूम है?"

"याद नहीं।"

"तुमने कहा न, उस धोबिन चेन्नी से कई बातें मालूम हुईं, लेंक, तुमको कैसे मालूम हुआ कि उससे पूछना चाहिए। क्या हेग्गड़ेजी ने पूछने को कहा था?"

"नहीं, मालिक, मेरी पत्नी ने कहा था।"

"गालब्बे से दासब्बे ने कहा था न?"

"हाँ, उसने मुझसे यही कहा था। परन्तु मेरी पत्नी ने जो किस्सा सुनाया था उसकी ओर मेरा ध्यान इसे पकड़ने के बाद गया। इसलिए कल मैं खुद गया और उस धोबिन चेन्नी से दर्याफ़्त कर आया। सब मालिक को कह सुनाया।"

"मालिक से मतलब हेग्गड़ेजी का ही है न?"

"जी, हाँ।"

"फिर?"

"मालिक ने सारा वृत्तान्त सावधानी से सुना। अन्त में कहा, ठीक है।"

"कुछ कहा नहीं?"

"जी नहीं।"

"तुम्हारे और उस धोबिन के बीच जो बातें हुईं थीं, उतनी ही न?"

"जी हाँ, उतनी ही।"

"ठीक, उसके आने तक उस विषय का ब्यौरा जाना नहीं जा सकेगा। अब तुम जाकर बैठो।"

सरपंच के कहे अनुसार लेंक जाकर अपनी जगह बैठा।

लेंक के बाद उसकी पत्नी गालब्बे बुलायी गयी। उसने परसों की घटना मोटे तौर पर इतनी ही बतायी, "परसों रात को मैं अकेली जा रही थी। इसने मेरा रास्ता रोका। उसने जो दो-चार बातें की उसीसे पता लग गया कि इसकी नीयत बुरी है। मुझे डर लगा। काँपने लगी। सोचा, हे भगवान्! क्या करूँ। हमारे मालिक अपने नौकर-चाकरों को काफी दिलासा और धीरज देते रहते हैं। मैंने धीरज से काम लिया। मेरी माँ कहा करती थी, जो पुरुष लम्पट होकर औरतों के पीछे फिरता है वह बड़ा डरपोक होता है। इससे मैं एकदम डरी नहीं। धीरे से खिसक जाने की सोचकर उसकी इच्छा के अनुसार चलनेवाली का-सा बहाना करके वह जैसा कहता वैसे उसीके पीछे चलने लगी। देरे होते-होते मैं अधीर होने लगी, कुछ डरी भी। भगवान् को शाप देने लगी। हे भगवान्! औरत बनाकर ऐसे लफंगे के हाथ पड़ने की दशा क्यों बनायी। कहीं कुछ आवाज सुन पड़ी कि वही, चूहा निकले तो बाघ निकला कहकर जैसे डराते हैं वैसे कुछ डराकर खिसक जाने के लिए समय की प्रतीक्षा करती रही। मुझ बद-किस्मत को ऐसा मौक़ा ही नहीं आया। यह मेरा शील-भंग करने आगे बढ़ा। पास आया। पता नहीं भगवान् ने मुझे कैसी प्रेरणा दी, मैंने अपने व्यवहार से उसके मन में शंका पैदा न करके उसके दाहिने हाथ के अँगूठे की जड़ में अपने दाँत जोर से गड़ा दिये। इसमें मैंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग किया। वह हाय-तोबा करता हुआ, मैं-मरा-मैं-मरा चिल्लाने लगा। यह शब्द सुनकर कहीं से सात-आठ लोग आये और इसे पकड़ा। वे लोग मशालें लिये थे। प्रकाश में तो स्पष्ट हो गया कि यही वह आदमी है। लोगों के आते ही यह डरता-काँपता खड़ा हो गया। सिर तक उठा नहीं सका। ऐसा एक कीड़ा गाँव में आ गया तो बस शीलवती स्त्रियाँ अकेली घूम-फिर भी न सकेंगी। भगवान् दयामय है, मेरा शील बच गया।"

"तो यह तुम्हारी सीधी शिकायत है?"

"हाँ, मालिक।"

अपराधी की ओर मुड़कर हरिहरनायक ने पूछा, "बोलो, अब क्या बोलते हो।"

"यह गढ़ी हुई कहानी है, मैंने इसका मुंह तक नहीं देखा है।"

"यह तुमपर द्वेष क्यों करेगी?"

"मुझे क्या मालूम। इन सबने षड्यन्त्र रचकर यह मनगढ़न्त कहानी कही होगी।"

"तो तुम्हें कहाँ, किसने और कब बाँधकर रखा?"

"पता नहीं कौन, कोई सात-आठ लोग मशाल लेकर आये, गाँव के उत्तर की ओर के मण्डप में बाँध दिया। क्यों, पता नहीं। अब इन्साफ के खिलाफ मुझे बन्दी बनाकर पंचायत बैठाने के लिए बनायी कहानी सुनाकर इस पापिन को यहाँ खड़ा कर दिया। इन लोगों ने ऐसी कहानी सुनाने का पाठ पढ़ाया होगा।"

"किसी को इस तरह पापिन नहीं कहना चाहिए।"

"अगर वह भलीमानस होती तो ऐसी कोई घटना घटी भी होती तो भी कभी नहीं कहती। चोर का गवाह चोर। उस समय जो आयी थी वह दूसरी ही थी। अब वह छिपकर रह गयी है। उसका नाम प्रकट हो जाये तो किसी बहुत बड़े आदमी को शरम से सर झुकाना पड़ेगा। इसलिए यह कहानी सच भी मान लें तो कहना पड़ेगा कि यह कोई भाड़े की औरत कहानी सुनाने के लिए पकड़ लायी गयी है। वह कहाँ, यह कहाँ? वह सर्वालंकार-भूषिता कुलीन और सम्भ्रान्त परिवार की स्त्री थी। यह तो हेग्गड़े के घर की नौकरानी है। यह कोई दूसरी है, इससे इसके बयान की धज्जी उड़ा सकता हूँ।"

"अब, गालब्बे ने जो कहा वह अगर साबित हो गया तो तुम्हारी क्या दशा होगी, जानते हो?"

"मुझे मालूम है कि वे लोग झूठ को सच साबित नहीं कर सकते।"

"बहुत अच्छा। गालब्बे, यह तुम्हारी शिकायत को इन्कार करता है। कहता है कि तुम तब वहाँ नहीं थी। बताता है, तुम्हारा सारा बयान एक गढ़ी हुई कहानी है। अब तुम क्या कहोगी?"

"जिन्होंने इसे बाँध रखा उन सबने वहाँ मुझको देखा है। उनसे पूछ सकते हैं।"

"ठीक, वह भी करेंगे। फिलहाल तुम बैठी रहो।"

गालब्बे जाकर बैठ गयी। बूतुग सोचने लगा, यह क्या हो गया, इसके बारे में कई रहस्य खुल रहे हैं। मैं इसके साथ बड़ी मिलनसारी से बरत रहा था। मुझे ऐसी सारी बातें, जो इसके बारे में एक-एक प्रकट हो रही हैं, मालूम ही नहीं हुई। जो भी हो, ये बातें हैं मजेदार। शायद और बातें भी इस सिलसिले में प्रकट हो जायें।

इसके बाद श्रीदेवी ने आकर गवाही दी प्रथम दिन मन्दिर की उस जाली के बाहर खड़े होकर बुरी दृष्टि से देखने की घटना से लेकर कितनी बार उसने कुदृष्टि से देखा। इस सबका ब्योरेवार बयान दिया, "भाई के घर सुरक्षा के लिए आयी बहिन हूँ। जिन्दगी भर मुझे ऐसी कुदृष्टि का सामना नहीं करना पड़ा था। फिर भी इन सब बातों को भाई से कहकर मैं उन्हें दुख नहीं देना चाहती थी। इसलिए चुप रही। स्त्री होकर जन्मने के बाद मर्द की आँखों से डरना नहीं चाहिए। पति भी मर्द है, बेटा भी मर्द है, पिता भी मर्द है, भाई भी मर्द है। देखने पर मनोविकार का शिकार मर्द ही बनते हैं, स्त्री नहीं। ऐसे पुरुषों की परवाह न कर उनके प्रति उदासीन रहना ही उनकी कुदृष्टि की दवा है। यही सोचकर मैं चुप रही। ऐसी बुरी खबर फैलाकर घृणाजनक बातें सुनाते फिरनेवाले इस आदमी की वृत्ति का समाचार भाई ने जब सुना तो वे अत्यन्त दुखी हुए। मैंने कभी सोचा न था कि मुझे इस तरह सार्वजनिकों के सामने खड़े होकर बयान भी देना पड़ेगा। फिर भी मैं स्त्री हूँ। इस आदमी से सीधा कोई कष्ट न होने पर इतना निश्चित है कि यह बड़ा अयोग्य दुःशील व्यक्ति है। इससे सीधे सम्बन्धित व्यक्तियों की स्वानुभूति की यथार्थ कहानियाँ पंचों के सामने सुनायी जा चुकी है। मेरा अनुभव है इन कहानियों और बयानों का पूरक हो सकता है। जो सही-सच्ची बात थी उसका खुले दिल से पंचों के सामने स्पष्ट निवेदन किया है। ऐसे अयोग्य और कुमार्गी पुरुषों को सम्भ्रान्त समाज के बीच रखना ही नहीं चाहिए। ये समाज-घातक हैं।"

हरिहरनायक ने अभियुक्त से इस बयान पर अपना अभिप्राय बताने को कहा।

उसने कहा "सब झूठ है, मैंने ऐसी बातें नहीं फैलायीं।"

"तुम्हारे अकेले का कहना सत्य है। और सारे बलिपुर के लोगों का कहना झूठ है, यही तुम्हारा मन्तव्य है?"

"हाँ।"

"वे ऐसा झूठ क्यों बोलेंगे?"

"मुझे क्या मालूम। कोई मर्द किसी औरत के साथ नाचता है तो वह उसका कर्म-फल है, उसमें मेरा क्या लाभ। उससे मुझे कुछ फायदा हो सकता हो तब मान भी सकते है कि मैंने ऐसा प्रचार किया।"

"तुमने कभी हमारे हेग्गड़ेजी की बहिन को देखा ही नहीं?"

"देखा है, मगर उस दृष्टि से नहीं, जैसा बयान किया गया।"

"तो फिर किस दृष्टि से देखा?"

"प्रथम दिन जब मैंने देखा तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरी आशा भड़की। मेरे आश्चर्य और आशा का निवारण हो, इस दृष्टि से देखा, सच है।"

"औरतों को देखने पर जैसी आशा-अभिलाषा जगती है उसी आशा की दृष्टि से देखा न ?"

"इन्हें इस आशा से नहीं देखा।"

"मतलब, दूसरी स्त्रियों को इस आशा से देखा है, है न ?"

"हो सकता है, देखा हो। मैं भी तो मनुष्य ही हूँ।"

"तो गालब्बे का कथन……"

"वह पहले ही कह चुका हूँ, झूठ है।"

"यह विषय रहने दो। इसका निर्णय करने के लिए उस ग्रोविन चेन्नी को उपस्थित होना चाहिए। अब यह बताओ कि हेग्गड़ेजी की बहिन को देखने में तुम्हारा क्या मन्तव्य था और उसमें कौन-सी विशिष्टता तुमने देखी ? तुम्हें आश्चर्य क्यों हुआ ? तुममें जो आशा उत्पन्न हुई उसका स्वरूप क्या है ?"

"पहले तो यह लगा कि मैंने उन्हें कभी देखा है। वही मेरे आश्चर्य का कारण है। कहाँ, कब देखा, इसकी याद नहीं आयी। उसे जानने की इच्छा नहीं हुई। उस इच्छा को पूर्ण करने की आकांक्षा से मैंने कुछ प्रयत्न किया।"

"वह क्या है, बता सकते हो ?"

"कहूँगा, परन्तु कोई विश्वास नहीं करेंगे। इसके लिए एक प्रबल साक्षी की जरूरत थी, मैं उसी की खोज में था।"

"गवाह मिल गया ?"

"अभी पूर्ण रूप से नहीं।"

"अब जो गवाही मिली है उससे क्या जानकारी मिली है ?"

"ये हेग्गड़े की बहिन नहीं हैं।"

सारी सभा में आश्चर्य और कुछ बातचीत शुरू हो गयी।

धर्मदर्शी ने डाँटा तो खामोशी हुई।

बूतुग झटपट उठकर पंचों के मंच के पास आया। हरिहरनायक ने पूछा, "बूतुग, ऐसे जल्दी-जल्दी क्यों आये ?"

"मालिक, एक बात याद आ गयी। वह कहने को आया हूँ।"

"कहो।"

"अभी कुछ दिन पहले मैं यह और कोई तीन-चार लोग मन्दिर के सामने वाले अश्वत्थ वृक्ष के नीचे जगत पर बैठे थे। उस दिन हमारी हेगड़तीजी और ये देवीजी मन्दिर आयीं। तब इस आदमी ने कहा, देखो कैसी है यह बैल की जोड़ी। मैंने कहा, अरे मूरख, औरत को बैल नहीं, गाय कहो। तब सब हँस पड़े। वह हँसी अनसुनी कर ये दोनों जल्दी-जल्दी मन्दिर के अन्दर चली गयीं।

फिर इनने कहा, अरे यह औरत हेग्गड़े की बहिन नहीं है। हमें तो आश्चर्य हुआ। बहिन न होती तो इनके घर में सात-आठ महीने से क्यों रह रही होती। तब इसने कहा दुनिया बड़ी अजीब है, उसमें औरत-मर्द का सम्बन्ध कैसा-कैसा होता है, यह कहना मुश्किल है। हम लोगों में एक भावना यह हुई थी कि इन देवीजी के साथ हेग्गड़ेजी का कोई ऐसा सम्बन्ध बना है जो पहेली-सा लगता है।"

"ठीक, और भी कुछ कहना है क्या ?"

"कुछ नहीं मालिक।"

"ठीक।"

बूतुग पीछे हटा और अपनी जगह आ बैठा। हरिहरनायक ने अभियुक्त की तरफ मुड़कर पूछा, "तो तुम्हारे कहने से यह मालूम पड़ता है कि श्रीदेवीजी हेग्गड़े की बहिन नहीं है ?"

"हाँ।"

"तो वे हेग्गड़े की क्या लगती है ?"

"क्या लगती हैं सो तो हेग्गड़ेजी को ही कहना है। यहाँ मेरी बात से भी अधिक विश्वसनीय बात उनकी है न, वे बड़े सत्यवान् है न ?" अभियुक्त ने कुछ गरम होकर कहा।

"तो इन दोनों के सम्बन्ध के बारे में तुम्हारा क्या मन्तव्य है ?"

"उसे भी वे जानते हैं। मैं कहूँ तो वह केवल ऊहा-मात्र हो सकता है। अगर वही कहें तो उसे सत्य का मान प्राप्त होता है। इसीलिए वे ही कहें, हालाँकि मेरी बात सत्य ही है। ये हेग्गड़े की बहिन नहीं है।" उसके धीरज को देखकर लोग चकित हुए। शान्तला ने कुतूहल-भरी दृष्टि से पिता को देखा। उसे आश्चर्य भी हुआ। उसे कभी विश्वास नहीं हुआ कि उसके पिता झूठ भी बोल सकते है। हरिहरनायक ने हेग्गड़े से पूछा, "क्यों हेग्गड़ेजी, अभियुक्त के इस बयान का आप क्या जवाब देंगे ?" हेग्गड़े मारसिंगय्या अपने स्थान से उठे और मंच की ओर कदम बढ़ाने लगे।

"वहीं से कहिए।" हरिहरनायक ने कहा।

"न्यायपीठ का अपमान किसी से भी नहीं होना चाहिए। इसलिए मंच पर से ही उत्तर दूँगा।" मारसिंगय्या ने कहा। हेग्गड़ेजी का वक्तव्य सुनने के लिए सब लोग आतुर हो रहे थे। अपराधी का भी उत्साह बढ़ गया। उसने कान खड़े किये सुनने के लिए। मारसिंगय्या मंच पर चढ़े और युक्त स्थान पर खड़े हो गये। धर्मदर्शी ने प्रमाण वचन कहलाया। हरिहरनायक ने पूछा, "हेग्गड़ेजी, आपकी कोई बहिन है ?"

"सहोदर बहिन नहीं है।" लोगों की दृष्टि श्रीदेवी की ओर लग गयी। अभि-

युवन क़हक़हे न रोक सका और उसे धर्मदर्शी की डाँट खानी पड़ी।

यूनुग ने सोचा इसने हमसे जो कहा था सच निकला। किस बाँबी में कैसा साँप होता है, कौन जाने। शोर कम होने में थोड़ा समय लगा, धर्मदर्शी को दो बार 'खामोश-खामोश' कहना पड़ा। शान्तला वहाँ से उठकर बरामदे के खम्भे के सहारे बैठी मंच की ओर अपलक निहार रही थी।

"हेग्गडेजी, क्या आप अभियुक्त का बयान स्वीकार करते हैं?"

"श्रीदेवी मेरी सहोदर बहिन नहीं। इतनी बात स्वीकार करता हूँ।"

"तो आपका श्रीदेवी से क्या सम्बन्ध है?"

"मैं इस प्रश्न का उत्तर और अपना वक्तव्य बाद में देना चाहूँगा। न्यायपीठ तब तक शेष गवाहियाँ ले ले तो मुझे भी सुविधा होगी।" उनके खड़े होने का ढंग, वह निर्भीक वचन, और सरलता से मन पर परिणाम पैदा कर सकने वाली उनकी वाणी, यह सब देखकर अभियुक्त के मन में खटका पैदा हो गया। उसने बीच में जो तीर छोड़ा उससे उसने समझा कि वह सुरक्षित है। यह उसकी भावना थी। इसलिए उसने क़हक़हा लगाया था। जैसा और हेग्गड़े लोगों को उसने देखा-समझा था वैसा ही इनको भी समझा। कई प्रतिष्ठित लोगों के विषय में तरह-तरह की अफ़वाहें फैलाने से वे अपनी गौरव-हानि के डर से अफ़वाह फैलानेवालों के कहे अनुसार चलने भी लगते हैं। इस बात से भी वह परिचित था। यहाँ भी वैसे ही काम बन जाने की आशा थी उसे। इसी धैर्य के बल पर उसने गालब्बे के वक्तव्य को स्वीकार करने से इंकार किया था, यद्यपि उसकी सचाई की प्रत्यक्ष गवाही उसका दायाँ हाथ दे रहा था।

"आपको जवाब उसे देना है जिसपर आपने आरोप लगाया है। इसलिए उसका अभिप्राय जान लें। अभियुक्त, बताओ पहले हेग्गड़ेजी का बयान लें या गवाहों का?" अभियुक्त का मन कुछ आतंकित था। वह वास्तव में हेग्गड़े का बयान तुरन्त सुनना चाहता था। परन्तु अपने अगले कदम पर विचार के लिए कुछ समय भी चाहता था। "हेग्गड़ेजी, अपने गवाहों को बुलाइए।"

सबने प्रमाण वचन स्वीकार करके अपना-अपना वक्तव्य दिया। ये सारे वक्तव्य, गालब्बे ने जो वक्तव्य दिया था उसके पूरक थे। इसके बाद हरिहरनायक ने कहा, "हेग्गड़ेजी, अभियुक्त पहली गवाही सुनने के बाद से ही कह रहा था कि ये सारी गवाहियाँ रटी-रटाई हैं और चूँकि सब गवाह प्रायः एक ही बात कह रहे हैं, इसलिए और अधिक विश्वसनीय तथा प्रामाणिक साक्ष्य की आवश्यकता होगी।"

"अभियुक्त के हाथ की परीक्षा की जा सकती है।" हेग्गड़े ने कहा।

अभियुक्त ने अपना हाथ ऐसे आगे बढ़ाया मानो कुछ हुआ ही नहीं हो। देखकर सभी पंचों ने बताया, "दाँत के चिह्न स्पष्ट हैं।"

"गालब्बे ने बताया ही था, उमने दाँत गड़ा दिये थे जिसके चिह्न भी मौजूद हैं। इससे भी प्रबल गवाही और क्या चाहिए।" हरिहरनायक ने कहा।

अभियुक्त हँस पड़ा, "यह भी कोई गवाही है। यह तो गालब्बे से सरासर झूठी कहानी कहलायी गयी है।"

"तो ये दाँत के चिह्न कब और कैसे बने?"

"चार-पाँच दिन पहले मैं हिरिये गाँव गया था। रास्ते में थकावट मिटाने को एक पेड़ के नीचे लेटा तो आँख लग गयी। तभी ऐसा लगा कि कुछ काट गया है। देखा, नाग-साँप जा रहा है। मैंने तुरन्त मुँह में उँगली डाली और दाँत गड़ाकर जहरीला खून चूसकर उगल दिया। मेरे ही दाँतों के चिह्न हैं ये।"

गालब्बे ने न आव देखा न ताव, जोर से बोल उठी, "झूठ।" अभियुक्त की इस कहानी को जो ध्यान से सुन रहे थे, वे सब एकदम चकित होकर गालब्बे की ओर देखने लगे।

हरिहरनायक ने कहा, "गालब्बे, तुम कैसे कहती हो कि उसका कहना झूठ है?" अभियुक्त ने छाती ऐसे आगे की मानो वह जीत गया हो। साथ ही क़हकहा मारता हुआ वह जोर से हँस पड़ा। गालब्बे ने कहा, "उसके दाँत तो देखो, कितने बड़े सूप-जैसे चौड़े हैं।" उसने मुँह बन्द कर लिया। उसकी तनी हुई छाती कुछ पीछे धसक गयी। हरिहरनायक ने कहा, "एक बार और हाथ आगे करो।"

उसने हाथ तुरन्त आगे नहीं बढ़ाया, लेकिन बढ़ाये बिना रह भी नहीं सकता था। हरिहरनायक ने फिर गौर से देखा और कहा, "दाँत के चिह्न छोटे और सम हैं, तथा रेखा कमान की तरह अर्धचन्द्राकृति है।" उन्होंने गालब्बे को पास बुलाया। वह एकदम निडर होकर पास गयी। लोग बड़े कुतूहल से देखने लगे। बूतुग ने बीच में ही कहा, "परसों सबेरे तक इसके हाथ में कुछ नहीं हुआ था। कितना बड़ा झूठ बोलता है, यह?"

"गालब्बे, तुम्हारा कहना सच है। ये चिह्न इसके दाँत के कतई नहीं। तुमने कैसे कहा कि ये चिह्न इसके दाँतों के नहीं?"

"वे मेरे ही दाँतों के हैं, इसलिए मैंने कहा, मालिक।"

तब भी अपराधी ने कहा, "झूठ।"

"अब क्या कहोगी, गालब्बे?"

"तेल-वेल डलवाकर इसका हाथ धुलवा दीजिए, मालिक। परसों रात को अपने शील-संरक्षण के लिए इस घातक चाण्डाल के हाथ पर मुँह लगाना पड़ा था। आज अपनी सचाई साबित करने के लिए फिर वही करूँगी।" गालब्बे ने कहा।

"गालब्बे, तुम एक बार और सोच लो, तब कुछ कहो।" हरिहरनायक ने

कहा।

"मेरे मालिक ने मुझे सिखाया है कि सत्य बोलने से डरूँ नहीं।"

अपराधी का हाथ धोया गया। गालब्बे ने अपना आँचल कसकर कमर के फेंट में खोंस लिया और हजारों आँखों के सामने उसका हाथ पकड़कर अपने खुले मुँह की ओर उठाया।

"तो उस रात को जो आयी थीं वह तुम ही हो ?" अभियुक्त ने पूछा।

"हाँ।"

"वह सारी सजावट ?"

"किसी को सजावट नहीं करनी चाहिए क्या ?"

"मैंने समझा कि वह कोई और थी।"

"तो मान लो।" दूसरा चारा नहीं था। उसने मान लिया। बूतुग ने मन-ही-मन कहा, यह कैसा अधर्मी चाण्डाल है। ग्वालिन मल्लि आगे बढ़ी, "मालिक उस दिन नकली चेहरा लगाकर आनेवाला धूर्त यही है।"

अभियुक्त को स्वीकार करना पड़ा।

लोगों ने थू-थू की। बूतुग जोर से चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा, चाण्डाल, महाचाण्डाल। उसका बच्चों का-सा नादान मन जल उठा। उसने इसे कितना अच्छा आदमी माना था, सब उलट गया।

"ठीक, वह धोबिन चेन्नी आकर गवाही देगी तो वह भी यही कहेगी, कहेगी न ?" अभियुक्त ने सिर हिलाकर सहमति प्रकट की।

"इससे, तुम्हारा चाल-चलन कैसा है, यह बात सारे बलिपुर के लोगों के सामने स्पष्ट हो गयी। अब यह बताओ कि तुमने शादी का नाटक क्यों रचा ?"

"हेग्गड़े ने जो शिकायत की है उससे इस प्रश्न का कोई सम्बन्ध नहीं।"

"अच्छा, हेग्गड़ेजी ने जो शिकायतें दी हैं उनमें कुछ तो सत्य सिद्ध हो ही चुकी है। और दूसरी शिकायतें भी सत्य है, ऐसा तो चुपचाप स्वीकार कर लो।"

"झूठ।" अभियुक्त ने जवाब दिया।

"तो क्या तू परमारों का गुप्तचर नहीं ?"

"मैं कन्नड़ हूँ, कर्नाटक का।"

"तुम कर्नाटक के हो, या कन्नड़ का अभ्यास करके कहीं बाहर से आये हो ?"

"बात जात को बता देती है, इसमें सन्देह क्यों किया जा रहा है ?"

"सवाल का जवाब सवाल नहीं।"

"मैं गुप्तचर हूँ, इसका क्या प्रमाण है ? यही न कि तुम लोगों ने मुझे गुप्तचर समझ लिया है ?"

"रायण, उस ग्वाले त्यारप्पा को बुला ला।" हेग्गड़े ने आदेश दिया। अभियुक्त ने घबड़ाकर इधर-उधर देखा। सिपाही उसके हाथों को पीठ-पीछे बाँध रहे।

थे। दो सिपाही ग्वाले त्यारप्पा को बाँध लाये। मल्लि ने अपने पति की यह हालत देखी तो घृणा से उसका सिर झुक गया। मन-ही-मन कहने लगी, इसने भी उसकी मदद की थी, शत्रु के गुप्तचर की मदद, मैंने कौन-सा पाप किया था कि ऐसे देशद्रोही की पत्नी बनना पड़ा। नियमानुसार त्यारप्पा से प्रमाणवचन लिया गया, तब पुलिस के एक सिपाही ने कागज निकालकर सरपंच के हाथ में दिया। हरिहर-नायक ने पढ़ा और दूसरे पंचों को पढ़ाया, फिर पूछा, "यह पत्र किसका है?"

"इसने दिया था मुझे।" अभियुक्त की ओर निर्देश करता हुआ त्यारप्पा बोला।

"किसलिए दिया था?"

"पुलिगेरे में मल्लिमय्या को देने के लिए। उसे देने को मैं गया था।"

"तुम्हें मालूम था कि इसमें क्या है?"

"बन्दी बनने के बाद यहाँ आने पर पता लगा कि इसमें क्या है।"

"इसे दे आने के लिए कहते समय तुमसे और कुछ भी कहा गया था क्या?"

"कल्याण से जेवर जो आने थे, वे अभी नहीं पहुँचे। दोरसमुद्र जाने का मौका चूक जायेगा। इतने दिन की प्रतीक्षा फिजूल हो जायेगी। कभी काम समाप्त किये बिना मैं जानेवाला नहीं हूँ। मेरा स्वभाव ही ऐसा जिद्दी है। इसलिए यह पत्र मल्लिमय्या को दे दें तो वे आगे की व्यवस्था करेंगे। मैं खुद ही जा सकता था। परन्तु कल्याण से कोई आ जायें तो उन्हें तकलीफ होगी। मैं स्नेहवश चला गया। पुलिगेरे में मल्लिमय्या से भेंट हुई, उसकी अपनी सोने-चाँदी की दुकान में ही। इसकी कही सब बातें कहीं। उसने कहा, 'यहाँ नहीं, गाँव के बाहर धात्री वन के मन्दिर में बात करेंगे। हीरे-जवाहरात की बात है। किसी को मालूम होने पर रास्ते में लूट-खसोट का डर रहता है।' हम दोनों धात्री वन गये। वहाँ का बहुत सुन्दर पोखर है। बिलबिलाती दोपहरी थी। वहाँ हाथ-मुँह धोकर सीढ़ी पर इमली की छाया में जा बैठे। मैंने पत्र उसके हाथ में दिया। उसने उसे पढ़ा, बहुत अच्छा, त्यारप्पाजी, आपसे बड़ा उपकार हुआ। और वह उठ खड़ा हुआ। उसे अचानक उठता देखकर मैं भी उठने को हुआ तो उसने पीछे से मुझे ढकेल दिया। मैं पोखरे में मुँह के बल जा गिरा। फिर कुछ स्मरण नहीं कि क्या हुआ। बेहोशी दूर हुई तो मैंने अपने को एक गाड़ी में पाया जिसके चारों ओर चार सिपाही पहरा दे रहे थे।"

यह सब सुनकर मल्लि के मुख-मण्डल पर जो भाव उमड़ रहे थे उनकी ओर किसी का भी ध्यान गये बिना न रह सका। वह कहता गया।

"मैं मरा नहीं क्योंकि मल्लि का सुहाग अमर था। मेरे साथ जो थे उनसे पूछा, 'हम जा कहाँ रहे हैं?' उन्होंने कहा, 'बोलो मत, चुप रहो।' उनकी तलवार-ढालें देखकर मैंने फिर कुछ नहीं पूछा। यहाँ आने पर मैंने उसे पढ़ लिया। तब मुझे सारी बात मालूम पड़ गयी। मुझे पहले ही यह बात मालूम हुई होती तो मैं यह

काम कभी स्वीकार नहीं करता। मुझसे देशद्रोह का काम कराने के अलावा मुझे
ही खतम करने की सोची थी इस द्रोही ने।" कहता हुआ वह क्रोध से दाँत पीसने
लगा।

"त्यारप्पा, इस पत्र में क्या लिखा है, पढ़ो।" हरिहरनायक ने आदेश दिया।
उसने पढ़ा, "मल्लिमय्या, जैसा मैंने तुमसे कहा था, इस पत्र के पहुँचते ही काम
कर चुकोगे। ताकि हमारे व्यवहार का कोई चिह्न बाकी न रहे। मैं अब सफलता
पाने की स्थिति तक पहुँच चुका हूँ। युद्ध के आरम्भ से हमारा यह व्यापार, अब
लग रहा है, सफल हो जायेगा। व्यापार की प्रारम्भिक दशा में ही ग्राहक को
सँभालकर रखने की व्यवस्था, एक गलती से, हाथ से फिसल गयी। परन्तु अबकी
बार ऐसे फिसल जाने का डर नहीं। इसके लिए आवश्यक कार्रवाई मैंने अच्छी
तरह से कर ली है। ग्राहक बड़ा भारी है इसलिए वह हाथ से फिसल न जाये, इसके
लिए कम-से-कम दो सौ तक की वस्तु हमारे हाथ में होनी चाहिए। उसकी व्यवस्था
के साथ, जितनी जल्दी हो सके, तुम आ जाओ। अन्यत्र से भी मँगवाने की व्यवस्था
की है मैंने। हमारे व्यवहार की सूचना और को मालूम हो इसके पहले ही अपने
ग्राहक को अपने वश में कर लेना चाहिए। अब समय बहुत ही अमूल्य है। वस्तु को
भेजते-भिजवाते समय बहुत होशियारी से बरतना पड़ेगा। सब एक साथ मत
आना। थोड़ा-थोड़ा कर एकत्रित कर लेना और बाद में सबका इकट्ठा होना बेहतर
है। प्रतीक्षा में, रत्नय्या।"

इसके तुरन्त बाद पुलिस के सिपाहियों ने मल्लिमय्या को वहाँ ला खड़ा किया
तब हेग्गड़े ने कहा, "यह मल्लिमय्या है, इसके पास से भी एक पत्र बरामद हुआ
जिस पर उसका हस्ताक्षर है।" मल्लिमय्या ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। उस
पत्र में भी उपर्युक्त विषय लिखा था। उसे पढ़वाकर सुनने के बाद, अन्त में हेग्गड़े
मारसिंगय्या ने मंच पर आकर पंचों से अनुरोध किया, "अब मुझे अवसर मिले, मैं
सब बातों को स्पष्ट करूँगा।" हरिहरनायक ने स्वीकृति दी।

हेग्गड़े ने कहना शुरू किया, "इस अभियुक्त का नाम रतन व्यास है। यह
परमारों का गुप्तचर है। शिलाहार राजकुमारी चन्दलदेवीजी ने चालुक्य चक्रवर्ती
विक्रमादित्यजी का स्वयंवरण किया। इसी असूया के कारण यह युद्ध आरम्भ हुआ।
बड़ी रानीजी को उड़ा ले जाने का मालव के राजा भोजराज ने षड्यन्त्र किया।
युद्ध क्षेत्र में उन्हें सुरक्षित रखे रहना असम्भव-सा हो गया। इससे उनको वहाँ से
अन्यत्र सुरक्षित रखने की व्यवस्था करनी पड़ी। उन्हें पकड़ने के लिए किये गये
प्रयत्नों का यह प्रतिफल है जो हम आज की इस विचारणा-सभा में देख रहे हैं।
अब इस समय मैं बलिपुर की सारी प्रजा को एक महान् सन्तोषजनक समाचार
सुनाना चाहता हूँ कि इस युद्ध में हमारी जीत हुई है। धारानगर जलकर भस्म हो
गया। परमार राजा भोजराज अपने को बचाने के लिए भाग गये हैं। उनकी

सहायता करनेवाला काश्मीर का राजा हर्ष भी भाग गया है। शायद दोनों काश्मीर गये होंगे। बहुत से प्रमुख शत्रु-योद्धा बन्दी किये जाकर कल्याण के रास्ते में है। इस युद्ध में विजय प्राप्त करनेवाले हमारे युवराज यहाँ हमारे सामने उपस्थित हैं।"

सब लोग एक साथ उठकर खड़े हो गये। सबकी आँखें युवराज को देखने के लिए आतुर हो रही थीं। पंचों ने झट से उठकर कहा, "अब दण्ड-निर्णय प्रभु को ही देना चाहिए। हम तो उन्हें श्रीदेवीजी के पति का भाई ही समझ रहे थे। इस अज्ञता के कारण जो अपचार हमने किया उसके लिए हम क्षमा चाहते हैं।"

एरेयंग प्रभु ने कहा, "आप अपने न्यायपीठ पर विराजिए। हम युवराज अवश्य हैं, किन्तु यहाँ इस प्रसंग में साक्षी की हैसियत से उपस्थित हैं। न्यायपीठ के समक्ष हम केवल साक्षी हैं, युवराज नहीं। आज साक्ष्य का प्रसंग नहीं आया। आया होता तो इस न्यायपीठ के सामने प्रमाण-वचन स्वीकार करते। धर्मपरि-पालन, शिष्टरक्षण और दुष्ट-निग्रह यही राजधर्म है। हमें न्यायपीठ के गौरव और प्रतिष्ठा की रक्षा करनी ही चाहिए। आप सब लोग बैठिए।" पंच बैठे, लोग भी बैठ गये। हेग्गड़ेजी ने अपना वक्तव्य आगे बढ़ाया, "आज से चार दिन पूर्व प्रभु से समाचार विदित हो चुका था इसलिए परसों मन्दिर में श्वेतछत्र-युक्त पूर्णकुम्भ के साथ चालुक्य बड़ी रानीजी को आदरपूर्वक देव-दर्शन कराया और प्रजाहित की दृष्टि से इष्टदेव की अर्चना करायी गयी।"

लोगों में फिर हलचल शुरू हो गयी। चालुक्य बड़ी रानी, साधारण वेश-भूषा में निराडम्बर बैठी श्रीदेवी! सबकी आँखें उन्हीं पर लग गयीं। गालब्बे ने दाँत से उँगली काटी। शान्तला ने प्रश्नार्थक दृष्टि से देखा। माचिकब्बे के चेहरे पर एक मुसकराहट दौड़ गयी। श्रीदेवी ने माचिकब्बे की ओर आश्चर्य से देखा।

हेग्गड़े मारसिंगय्या एक के बाद एक रहस्य का उद्घाटन करते गये, "चालुक्य चक्रवर्ती हमारे प्रभु युवराज को अपनी दायीं भुजा मानते हैं, और भाई के समान मानते हैं। भाई के समान क्यों, भाई ही मानते हैं। इसलिए हमारा यह कहना बिल्कुल ठीक है कि वे अपने भाई की धर्मपत्नी को ले जाने आये हैं। मैं प्रभु का दूतमात्र हूँ, फिर भी उन्होंने बड़ी रानीजी को मेरे पास धरोहर के रूप में भेजा। हेग्गड़तीजी से, मेरी बेटी शान्तला से, और यहाँ के नौकर-चाकरों से जितनी सेवा हो सकी, उतनी इनके गौरव के अनुरूप नहीं मानी जा सकती। सन्तोष है कि बलिपुर के लोगों ने उन्हें मायके में आयी बहिन माना। वे जन्म से ही बड़े वैभव में रही हैं फिर भी हमारे साथ अपने ही लोगों की तरह हिलमिलकर रहीं। यह हमारा भाग्य है। संयम के बिना इस तरह जीवन को परिवर्तित परिस्थितियों के साथ समन्वित कर लेना सम्भव नहीं। उन्हें बहिन की तरह प्राप्त करने में, प्रभु का मुझ पर जो विश्वास है वही कारण है। प्रभु के इस विश्वास के लिए मैं उनका सदा ऋणी हूँ। हमारी सेवा में निरत यह गालब्बे अगर इस धीरता

और स्थैर्य से काम न लेती तो इस रतन व्यास को पकड़ना सम्भव नहीं था। उसने अपने शील की बाजी लगाकर इस राज्य की रक्षा के लिए अपने को अर्पण कर महान् उपकार किया है। इसी तरह उसके पति लेंक ने भी, रायण ने भी, एक-दो नहीं, सभी ने इस पुण्य कार्य में सहायता दी है। बलिपुर की जनता के समक्ष मैं इस न्यायपीठ के सामने न्यासरूप बड़ी रानीजी को युवराज के हाथों में सौंपता हूँ। प्रभु इस न्यास को स्वीकार करें।" कहकर उन्होंने सिर झुकाकर प्रणाम किया।

प्रभु एरेयंग ने मुसकराते हुए स्वीकृति-सूचक अभय-हस्त उठाकर स्वीकृति दी।

हरिहरनायक ने अपने सहयोगियों से विचार-विनिमय करने के बाद अभियुक्तों की ओर देखकर पूछा, "रतन व्यास, मल्लिमय्या, तुम लोगों को कुछ कहना है?"

मल्लिमय्या ने कहा, "कुछ नहीं।"

रतन व्यास ने कहा, "मैं अपने प्रभु का दूत हूँ। मैं यहाँ अपने स्वार्थ से नहीं, अपने प्रभु की आज्ञा का पालन करने आया हूँ यद्यपि उसमें सफल होने के पूर्व ही सब उलट-पलट हो गया। मेरी आँखें गिद्ध की आँख-जैसी हैं। आपकी बड़ी रानी को मैंने एक बार देखा था सो यहाँ देखते ही पहचान लिया था। परन्तु गालब्बे को मैंने कभी देखा नहीं था, इसलिए धोखा खा गया। आपके युद्ध-शिविर में बड़ी रानी की सेवा में मेरी पत्नी भी रही, लेकिन आपकी यह गालब्बे उससे भी अधिक होशियार है और अधिक धीरज रखती है। उसी के कारण मैं आप लोगों के हाथ में पड़ गया। नहीं तो मैं आप लोगों की पकड़ में कभी न आता। इस गाँव के लोगों को एरेयंग प्रभु का परिचय न हो पर मैं उन्हें जानता हूँ। ग्वाले त्यारप्पा का बयान सत्य है, उसे मेरे रहस्य का पता नहीं था।"

हरिहरनायक ने फिर विचार-विनिमय करके कहा, "बड़ी रानीजी, प्रभुवर और बलिपुर के निवासियों, पंचों से विचार-विनिमय कर मैं एक-मत निर्णय देता हूँ कि यह रतन व्यास कुलीन महिलाओं का शील नष्ट करने में लगा रहा, इस कारण यह कठोर कारावास का पात्र है। इसका इससे भी गुरुतर अपराध है चालुक्य बड़ी रानी को उड़ा ले जाने की कोशिश जिसके लिए उसने त्यारप्पा की हत्या का भी आदेश दिया। इन अपराधों के कारण, इस न्यायपीठ की आज्ञा है कि इसे कल सूर्यास्त से पूर्व सूली पर मरने तक चढ़ा दिया जाय। मल्लिमय्या ने उसकी मदद करने के लिए त्यारप्पा को मार डालने का प्रयत्न किया, जिससे इसे चौदह वर्ष का कारावास का दण्ड दिया जाता है। आगे ऐसा न करने की चेतावनी देकर त्यारप्पा को छोड़ दिया जाता है।" निर्णय देकर पंचों ने न्यायपीठ छोड़ा और बड़ी रानीजी तथा युवराज एरेयंग को झुककर प्रणाम किया। अपराधियों को

सिपाही ले गये।

लोग संयम से कतार बाँधकर एक-एक कर आये, अपनी तृप्ति भर बड़ी रानी और प्रभु को देखकर आनन्दित हो अपने-अपने घर लौटे। बूतुग उस अहाते से बाहर जाता-जाता कहता गया, चोर, लफंगा, चांडाल।

पता नहीं कब बड़ी रानीजी ने शान्तला को अपने साथ ले अपने आसन की बगल में बैठा लिया था।

रेविमय्या अगर यह सब देखता तो कितना आनन्दित होता।

मल्लि ने निश्चय किया था कि वह अपने पति का मुँह कभी न देखेगी, परन्तु वस्तु-स्थिति की जानकारी हो जाने के बाद उसे मानसिक शान्ति मिली। फिर भी उसने उसे झिड़क ही दिया, "अकेली साधारण स्त्री, फिर भी मैंने बदमाशों को डराकर भगा दिया और तुम अक्लमन्द पुरुष होकर उसके जाल में फँस गये। कैसी अचरज की बात है। उसी दिन मैंने कहा था कि उसकी नजर बुरी है। मेरे ही ऊपर तुमने गुस्सा किया, कहा, तुम उसकी आँख देखने क्यों गयी। उसी दिन अगर मेरा कहा मान लिया होता तो आज ये दिन नहीं आये होते। हमारे हेगड़ेजी बड़े भलेमानस हैं, उन्होंने सबका पता लगाया, इससे मेरा सिन्दूर बच गया। हम रोज सुबह से शाम तक मेहनत कर साग-सत्तू खानेवाले ठहरे, एकदम इतना धन कहीं से कोई दे तो समझ जाना चाहिए कि इसमें जरूर कुछ धोखा है। इसलिए बड़े बुजुर्ग कहते हैं कि अक्ल को हमेशा ठिकाने पर रखना चाहिए।" इस प्रकार मल्लि ने अपने दिल का सारा गुबार उतार दिया।

"तुम्हारी कसम, अब आगे जो भी काम करूँगा तुमसे सलाह-मशविरा करके मालिक से कहकर ही करूँगा। ठीक है न" और त्यारप्पा मल्लि का कृष्ण और मल्लि त्यारप्पा की रुक्मिणी बनी, बलिपुर के ग्वालों का मुहल्ला उनके लिए वृन्दावन बना। दूसरे दिन सुबह उगते सूर्य का उन्हें दर्शन ही नहीं हुआ। जब बछड़े भूख के मारे अम्बा-अम्बा रँभाने लगे तब उनकी सुबह हुई।

बूतुग के मन पर उस घटना का बड़ा असर पड़ा। वह बार-बार चोर, लफंगा, चाण्डाल कहकर बड़बड़ाता रहा। वह अपनी करनी पर पछताने लगा। कहता, 'इस बदजात की बात सुनकर ईश्वर-समान मालिक के पवित्र नाम और ख्याति पर कालिख लगाने के लिए मैंने अपनी जीभ का उपयोग किया, आग लगे इस जीभ पर।' रात-भर बड़बड़ाता ही रहा इसी तरह। मुर्गे की बाँग सुनते ही वह हेगड़ेजी

के घर के बाहर जा बैठा।

दूसरी बार मुर्गे ने बाँग दी, रायण बाहर आया। बूतुग को देखा, तो उसे उसकी स्थिति समझने में देर नहीं लगी। उसने हेग्गड़ेजी को स्थिति की गम्भीरता से परिचित कराया। उनके आदेश से तुरन्त वैद्यजी को बुलाया गया। उन्होंने सब समझकर कहा, "हेग्गड़ेजी, उसकी अन्तरात्मा बहुत छटपटा रही है वह वास्तव में बालकवत् सहज और अनजान है। उसके साथ विश्वासघात हुआ है। उसके दु:ख का कारण यह है कि उससे बड़ी रानीजी के पवित्र पातिव्रत्य पर और आपके पवित्र शुद्ध चरित्र पर कालिख लगाने का दुष्कर्म हो गया। उससे ऐसा अपराध नहीं हुआ, ऐसी भावना के उत्पन्न हुए बिना यह ठीक न होगा। यह मानसिक आघात है। इससे वह पागल भी हो सकता है। और अत्यन्त क्रोधाविष्ट भी हो सकता है। उसकी इस मानसिक बीमारी की दवा एक ही है, वह यह कि आप और बड़ी रानीजी उसे धीरज देकर आश्वस्त करें।"

मारसिंगय्या ने कहा, "अच्छा पण्डितजी, वही करेंगे।"

उन्होंने चालुक्य बड़ी रानी और युवराज एरेयंग प्रभु को उसकी स्थिति से परिचित कराकर उसे उनके समक्ष प्रस्तुत किया। उनकी ओर ध्यान न देकर वह हेग्गड़े के पैरों में गिर पड़ा।

हेग्गड़े मारसिंगय्या ने उसे हाथ पकड़कर उठाया और कहा, "तुम्हें हुआ क्या है, ऐसे क्यों बड़बड़ा रहे हो। प्रभु ने और बड़ी रानी ने तुम्हारी बड़ी प्रशंसा की है। तुम्हारे कारण ही उस चोर-चाण्डाल को पकड़ना सम्भव हुआ। तुम्हें उसने जैसा नचाया वैसे नाचे इसी से देशद्रोह टल गया। इसलिए तुमको गौरव प्रदान करने के इरादे से जब उन्होंने तुमको बुलवाया है तब तुम्हारा ऐसे व्यवहार करना या यों बड़बड़ाना अच्छा लगता है ?"

बूतुग हेग्गड़ेजी के चेहरे को एकटक देखता रहा। उनकी मुसकराहट को देखकर उसके अन्दर की आग कुछ कम हुई। फिर वह कठपुतली की तरह बड़ी रानीजी की ओर मुड़ा। उसे लगा कि प्रसन्न लक्ष्मी स्वयं मूर्तरूप धारण कर मुसकराती हुई उसकी ओर करुणा की धारा बहा रही है। उसने वैसे ही प्रभु की ओर भी देखा।

"हेग्गड़ेजी, उसे इधर बुलाइये।" प्रभु ने कहा।

एरेयंग प्रभु ने हँसते हुए पूछा, "बूतुग, जब मैंने एक विश्वासपात्र नौकर की माँग की तो हमारे हेग्गड़ेजी ने तुम्हारा ही नाम लिया। चलोगे हमारे साथ ?"

बूतुग ने एकदम किंकर्तव्य-विमूढ होकर हेग्गड़े की ओर देखा।

"मान लो, बूतुग, तुम्हारी सत्यनिष्ठा उन्हें बहुत पसन्द आयी है।"

"हमारी रक्षा का कारण यह बूतुग ही है, यह बात प्रमाणित हो गयी, इसलिए यह हमारे साथ कल्याण चले।" बड़ी रानी चन्दलदेवी ने कहा।

बूतुग बड़ी रानी की ओर और एरेयंग प्रभु की ओर बारी-बारी से देखने

लगा। फिर बोला, "मालिक, यहीं आपकी चरण-सेवा करता रहूँगा, यही मेरे लिए काफ़ी है। मुझे यहीं रहने देने की कृपा करने के लिए प्रभु से कहिए, मालिक।"

"यहीं रहो, इसके लिए भी हमारी स्वीकृति है। हेग्गड़ेजी जो काम करते है वह भी तो हमारा ही काम है। इसलिए उनकी सेवा हमारी ही सेवा है।" एरेयंग प्रभु ने कहा।

"आज से तुम हेग्गड़े के घर के आदमी हो। जाओ, रायण के साथ काम में लगो।" मारसिंगय्या ने कहा।

बड़ी रानी ने पूछा, "अब कल्याण के लिए प्रस्थान कब होगा?"

एरेयंग प्रभु ने कहा, "यात्रा अब कल्याण के लिए नहीं, दोरसमुद्र के लिए होगी। वहीं इस धरोहर को महाराज के हाथों में सौंपेंगे।"

"परन्तु सन्निधान..."

"अब कुशल है, तन्दुरुस्त हैं। वे दोरसमुद्र आयेंगे। रास्ते में ही हमें समाचार मिल चुका है।" एरेयंग ने बताया।

प्रस्थान के लिए सोमवार ठीक था, फिर भी क्षेमतन्दुल चूँकि उस दिन नहीं दिया जाता अतः दशमी, बृहस्पतिवार का दिन निश्चित किया गया। एरेयंग प्रभु ने आदेश दिया कि हेग्गड़ेजी भी साथ चलें। बड़ी रानीजी चन्दलदेवी ने इच्छा प्रकट की कि हेग्गड़तीजी और शान्तला भी साथ चलें। हेग्गड़ती को दोरसमुद्र का नाम सुनते ही सारे अंगों में काँटे-से चुभ गये। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा, "वहाँ मेरा क्या काम है? हमको पत्तों के पीछे छिपे फल-जैसे रहना ही अच्छा है।"

हेग्गड़े ने कहा, "चन्दलदेवी की इच्छा और प्रभु का आदेश है, आपको चलना ही चाहिए।" तब हेग्गड़ती प्रतिवाद नहीं कर सकी।

गालब्बे और लेंक को अपने साथ कल्याण ले जाने के लिए उन्हें यहाँ से मुक्त कर वहाँ सेवा में नियुक्त करने की अपनी इच्छा चन्दलदेवी ने प्रकट की। चन्दलदेवी के लिए गालब्बे ने जो काम किया था उसे सुनकर बहुत प्रभावित हो गयी थीं। पहले से भी वे गालब्बे पर बहुत रीझ गयी थीं। उसकी निष्ठा ने उन्हें मोह लिया था। इस बारे में दोरसमुद्र में निश्चय करने का निर्णय किया गया।

हेग्गड़ेजी के घर की देखभाल की जिम्मेदारी रायण पर रखी गयी। लेंक और गालब्बे के जाने के कारण मल्लि और त्यारप्पा को हेग्गड़े के घर नौकर नियुक्त किया गया। बूतुग तो पहले ही नियुक्त हो चुका था। वह हेग्गड़े के परिवार का सदस्य ही बन गया।

प्रस्थान के दिन बलिपुर के सभी मन्दिरों में रथोत्सव का आयोजन किया गया। युवराज और बड़ी रानीजी को यथोचित गौरव समर्पित किया गया।

माचिकब्बे ने बड़ी रानी का धेमनन्दन ने आँगन भरा। युवराज एरेयंग प्रभु ने सबको साथ लेकर दोरसमुद्र की ओर प्रस्थान किया।

यह महान् सन्तोषजनक वार्ता केवल दोरसमुद्र में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण पोय्सल राज्य में फैल गयी कि परमार राजा भोज को हराने के बाद धारानगर का किला धराशायी करके शहर को आतिश की भेंट करके पोय्सल युवराज एरेयंग प्रभु दोरसमुद्र लौट रहे हैं। सारी प्रजा के लिए यह बहुत ही आनन्द एवं उत्साह का विषय था। बलिपुर से दोरसमुद्र तक मार्ग में पड़नेवाले प्रत्येक गाँव में लोगों ने प्रभु-परिवार का स्वागत-सत्कार किया और भेंटें समर्पित कीं। एरेयंग प्रभु ने भेंटें स्वीकार कर कहा, "इस धन का विनियोग इस विजय के लिए जिन सैनिकों ने प्राणपण से युद्ध किया उनके परिवार के हित में किया जायेगा।"

इधर दोरसमुद्र में एरेयंग प्रभु और चालुक्य बड़ी रानी चन्दलदेवी के स्वागत की भारी तैयारियाँ स्वयं प्रधान गंगराज और मरियाने दण्डनायक ने की थीं। सार्वजनिक व्यवस्था किस तरह से हो, स्वागत के अवसर पर कहाँ, कैसी व्यवस्था हो, राजधानी के महाद्वार पर कौन-कौन रहेगा, राजप्रासाद के द्वार पर उपस्थित रहकर स्वागत कौन-कौन करे, चालुक्य बड़ी रानी चन्दलदेवीजी के लिए कैसी व्यवस्था हो और इस व्यवस्था और निगरानी का कार्य किसे सौंपा जाये यह योजना पहले ही निश्चित कर ली गयी थी।

व्यवस्था का क्षण-क्षण का विवरण युवरानी एचलदेवी को प्राप्त हो रहा था। परन्तु उन्हें यह बात खटक रही थी कि इस व्यवस्था के विषय में कभी किसी ने कोई सलाह उनसे नहीं ली। फिर भी, अपने पतिदेव को विजयोल्लास से हँसमुख देखने के आनन्द के सामने यह बाह्याडम्बर कोई चीज नहीं, यही सोचकर वे सन्तुष्ट थीं। आगे की बात तो उन्हें मालूम थी। कम-से-कम चालुक्य बड़ी रानी की व्यवस्था में भी उनकी सलाह का न लिया जाना उन्हें बहुत अखरा, फिर भी वे शान्त रहीं क्योंकि राजमहल की रीति-नीति से वे परिचित हो चुकी थीं और उसके साथ हिलमिल गयी थीं।

चामव्वे ने अपना बड़प्पन दिखाने के लिए इस मौके का उपयोग किया। कार्यक्रम रूपित करने में उसने अपने भाई गंगराज प्रधान को और पति दण्डनायक को सलाह दी थी। व्यवस्था का क्रम उसने करीब-करीब ऐसा बनाया जिससे राजमहल के अहाते में प्रवेश करते ही बड़ी रानीजी उसी की देखरेख में रह सकें। उसे

यह दिखाना था कि वह पोय्सल राज्य की समधिन बनेगी। उसने समझा था कि उसका स्वप्न साकार होने के दिन निकट आ रहे हैं। युवराज के आते ही मुहूर्त ठीक करने का निश्चय कर चुकी थी। चालुक्य चक्रवर्ती और बड़ी रानी के सान्निध्य में महारानी का विवाह हो जाये और उसे चालुक्य महारानी का आशीर्वाद मिले, इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है। उसकी उत्साहजन्य विचारधारा बिना लगाम के घोड़े की तरह दौड़ रही थी। इसके फलस्वरूप कभी-कभी वह युवरानी को इस व्यवस्था का विवरण दिया करती, तो भी उसके ध्यान में यह बात नहीं आयी कि युवरानी से सलाह लिये बिना यह सब करना अच्छा नहीं।

एक दिन किसी समाचार पर युवरानीजी ने टिप्पणी की, "इस विषय में मुझसे एक बार पूछ लेतीं तो मैं भी कुछ सलाह दे सकती थी।"

यह बात सुनते ही चामव्वा को कुछ खटका। अपने दिल के उस खटके को छिपाते हुए उसने कहा, "हमारे होते हुए छोटी-मोटी बातों के लिए युवरानीजी को कष्ट क्यों हो। हमें आपका आशीर्वाद-मात्र पर्याप्त है।" यों कहकर चामव्वे ने आक्षेप से बचने की कोशिश की।

"आपकी भावना ठीक है। उससे हम निश्चिन्त भी होंगे। परन्तु एक बात में हमें अपनी सलाह बताना आवश्यक है। बड़ी रानीजी के ठहरने की व्यवस्था राजमहल के अन्तःपुर में हुई होती तो उनकी हस्ती-हैसियत की दृष्टि से उचित होता, इसमें गाम्भीर्य भी रहता। मैं जो कह रही हूँ वह इस राजघराने के गौरव की दृष्टि से है। अब भी, चालुक्य चक्रवर्ती के आने तक यह व्यवस्था सुधारी जा सकती है। ऐसा न किया गया तो प्रभु आने पर इस व्यवस्था से मुझ पर आक्षेप करेंगे।" युवरानी एचलदेवी ने कहा। चामव्वा मौन ही रही तो उन्होंने पूछ ही लिया, "क्यों, चामव्वाजी, मेरी सलाह आपको ठीक नहीं लगी?"

"न, न, ऐसा नहीं, युवरानीजी, दण्डनायक को या मेरे भाई प्रधान गंगराज को यह क्यों नहीं सूझा, यही सोच रही थी।"

"अन्तःपुर के व्यवहार के सम्बन्ध में अन्तःपुरवालों से ही सलाह लेना हमेशा उचित होता है। मेरा यह सुझाव उन्हें दे दीजिए। बाद में जो उचित होगा, वे स्वयं करेंगे।"

"वही करूँगी।" कहकर चामव्वे वहाँ से विदा हो गयी। वह मन में सोचने लगी कि व्यवस्था के बारे में कहकर मैंने गलती की। युवरानी का सुझाव न माना, और युवराज के आने पर कुछ-का-कुछ हो गया तो क्या होगा? इस ऊहापोह के साथ ही उसे कुछ समाधान भी हुआ। बड़ी रानी अगर अन्तःपुर में रहेंगी भी तो तभी तक जब तक चालुक्य चक्रवर्ती न आ जाएँ, वे ही पहले आ जाएँ यह भी सम्भव है। इसलिए जो व्यवस्था की गयी है उसे भी रहने दें और अन्तःपुर में भी

व्यवस्था कर रखें ताकि जैसा मौका हो वैसा ही किया जा सके। साथ ही उसने महावीर स्वामी से प्रार्थना की कि हे स्वामिन् ऐसा करो कि पहले चालुक्य चक्रवर्ती ही राजधानी पहुँचें।

हमारी प्रार्थना के अनुसार वांछित कार्य न हो तो हमारा विश्वास डावाँडोल हो जाता है, हम कभी इस बात का विचार ही नहीं करते कि हमारी प्रार्थना उचित है या अनुचित। प्रस्तुत परिस्थिति में चामब्बे की प्रार्थना भगवान् ने अन-सुनी कर दी थी। पहले दोरसमुद्र पहुँचनेवाले स्वयं युवराज तथा उनके आप्त परिवारी थे। परन्तु उस समय भी चामब्बे यही सोच रही थी कि अपने अस्तित्व एवं प्रतिष्ठा का प्रदर्शन कैसे किया जाए।

राजधानी का महाद्वार ध्वज-पताकाओं से सजाया गया। विजयी युवराज के स्वागत को प्रधान गंगराज, मरियाने दण्डनायक, चिण्णम दण्डनायक, राजकुमार बल्लाल, राजकुमार बिट्टिदेव आदि के साथ नव-परिचित राजकृपापात्र आस्थान-कवि नागचन्द्र भी तैयार खड़े थे जो वास्तव में मरियाने के विशेष स्नेह के कारण दरबार में अवसर पाकर अब राजकुमारों का गुरु भी बन गया था।

युवराज के परिवार समेत आने की सूचना देने के लिए सेना की छोटी टुकड़ी आयी। इसका नायक था हेग्गड़े सिंगिमय्या। उसने प्रधान गंगराज को प्रणाम कर कहा, "प्रभु परिवार समेत थोड़ी देर में पहुँच रहे हैं। सूचना देने के लिए उन्होंने मुझे इस सैन्य के साथ भेजा है।"

"तुम कौन हो?"

"मैं एक प्रभु सेवक हूँ।"

"सो तो मालूम है। मुझे स्मरण नहीं कि कभी मैंने तुमको देखा है। ऐसी खबर पहुँचानी हो तो विश्वासपात्र व्यक्तियों को ही भेजा जाता है। मैं महा दण्ड-नायक हूँ। मुझे तुम्हारा परिचय होना जरूरी है, इसलिए पूछा।"

"मेरा नाम हेग्गड़े सिंगिमय्या है। इस धारानगर के युद्ध के प्रसंग में मैं प्रभु-कृपा का पात्र बना। अतः मुझे गुल्म नायक के काम पर नियोजित किया है।"

"किस घराने के हो?"

"मैं नागवर्मा दण्डनायक के घराने का हूँ।"

"तुम्हारे पिता?"

"बलदेव दण्डनायक।"

"ओह, तब तो मालूम हो गया। वही, वह बलिपुर का हेग्गड़े तुम्हारा बहनोई है न?"

मरियाने के कहने का ढंग ही सिंगिमय्या को ठीक नहीं लगा, फिर भी उसने गम्भीरता से उत्तर दिया, "जी हाँ।"

कुछ समय तक मौन छाया रहा। मरियाने ने एक बार सिंगिमय्या को ऐसे

[illegible]

"जी हाँ, प्रधानजी, वे भी प्रभुजी के साथ हैं।" [illegible]

कहा।

बिट्टिदेव अब अपने उत्साह को रोक नहीं सका। उसने पूछ ही लिया, "और बड़ी रानीजी के साथ हेग्गड़ती भी आयी हैं क्या ?" राजकुमार बल्लाल ने उसके कौतूहल का छोर पकड़कर डोरे से खींचा, परन्तु सवाल बिट्टिदेव के मुँह से निकल चुका था।

"बड़ी रानीजी को इस यात्रा में योग्य साथ की आवश्यकता थी, इसलिए प्रभु ने जोर डाला तो हेग्गड़ती को भी आना पड़ा, अतः वे भी साथ हैं।"

इतने में घोड़ों की टापों की आवाज सुनायी पड़ी। पोय्सलों और चालुक्यों के व्याघ्र और वराह चिह्नों से अंकित ध्वज पकड़े दो सिपाही दीख पड़े। आगे सैन्य और पीछे प्रभु अपने सफेद घोड़े पर, उनके पार्श्व में शान्तला अपने टट्टू पर, उनकी बगल में थोड़ा पीछे घोड़े पर हेग्गड़े मारसिंगय्या, इनके पीछे घोड़े जुते रथ और रथों के पीछे सैनिक यूथ।

राजपथ पर बाँस-बाँस की दूरी पर लगे हरे-हरे पत्तों के तोरणों में ठहर-ठहर कर भक्त प्रजा के द्वारा पहनायी मालाओं को स्वीकार करते, राजोचित वैभव से युक्त और वीरोचित साज के साथ आगे बढ़ रहे थे। किसी को यह पता न चला कि कब बिट्टिदेव शान्तला की बगल में पहुँचकर चलने लगा था।

राजमहल के प्रांगण में फाटक पर सुमंगलियों ने आरती उतारी। राजमहल के मुख-मण्डप में युवरानी एचलदेवी और चामब्बे स्वर्ण-कलश और थाली हाथ में

लिये खड़ी थीं। युवराज के चरण खुद युवरानी ने धोये, बड़ी रानीजी के चरण चामब्बे ने धोये, परन्तु हेग्गड़ती और उसकी बेटी को देखते ही उसका सारा उत्साह धूल में मिल गया था। आरती उतारी गयी, तब सबके राजमहल में प्रवेश करते ही एरेयंग प्रभु ने प्रमुख लोगों के साथ महाराज के दर्शन के लिए प्रस्थान किया। बड़ी रानीजी ने महाराज विक्रमादित्य को प्रणाम किया तो वे बोले, "न, न, ऐसा न करें, आप चालुक्य चक्रवर्तीजी की बड़ी रानी हैं। आखिर हम केवल मण्डलेश्वर हैं। हम ही आपको प्रणाम करते हैं।"

"यह औपचारिकता चक्रवर्ती की सन्निधि में भले ही हो, अभी तो मैं आपकी पुत्री हूँ। मायके आयी हूँ।" बड़ी रानी चन्दलदेवी ने शिष्टाचार निभाया।

महाराज ने शान्तला को देखा तो उसे पास बुला लिया। वह भी साष्टांग प्रणाम कर पास खड़ी हो गयी। उसके सिर पर हाथ फेरकर उन्होंने आशीर्वाद देते हुए कहा, "अम्माजी, कभी इंगितज्ञता की बात उठती है तब हम तुम्हारी याद कर लेते हैं। बलिपुर में रहते समय हमारी बड़ी रानीजी को किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं दिया न?" उत्तर दिया महारानीजी ने, "निःसंकोच कहती हूँ कि बलिपुर में मैंने जो दिन बिताये उन्हें मैं कभी भी नहीं भूल सकती। वास्तव में राजमहल में जन्म लेकर चक्रवर्ती से विवाह करनेवाली मैं बलिपुर में इस सरल और मिलनसार परिवार में रहकर ही समझ सकी कि मानवता का मूल्य क्या है। दूसरों की भावनाओं को समझने की प्रवृत्ति से किस तरह लोगों को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है इसकी जानकारी मुझे वहाँ हुई। पद और प्रतिष्ठा के वश में न होकर निष्ठा एवं श्रद्धा को पुरस्कृत करनेवाले युवराज की नीति के फलस्वरूप पोय्सल राज्य किस ढंग से बलवान् बनकर रूपित हो रहा है, इसका सम्पूर्ण ज्ञान भी मुझे वहाँ हुआ। चालिकेनायक, सिंगिमय्या, बलिपुर के हेग्गड़े दम्पती, यह अम्माजी, ये ही क्यों बलिपुर में जिन साधारण-से-साधारण लोगों को मैंने देखा, उनमें यदि कुछ लोगों का नाम लूँ तो यह गालब्बे, लेंक, रायण, बूतुग, ग्वालिन मल्लि आदि ऐसे हैं जिन्हें भुलाया ही नहीं जा सकता। इनमें कोई अधिक नहीं, कोई कम नहीं। योग्यता में, निष्ठा में, श्रद्धा में सब एक से हैं, बराबर हैं। इन सबकी जड़ यहाँ है, महाराज के सान्निध्य में, इसका मुझे स्पष्ट प्रमाण मिल चुका है।"

"बड़ी रानीजी की बात सत्य है। किन्तु उनके इस राज्य को छोड़कर चली जाने के बाद से यहाँ यह मनोवृत्ति कम होती जा रही है। ऊपरवालों के मनोवैशाल्य की बदौलत जो ऊँचे ओहदे पर चढ़े, वे ही अपने अधीन रहनेवालों को गौण समझने लगे हैं। बड़ी रानीजी, निर्णायकों को इस तरह के भेदभाव से दूर रहना चाहिए।" महाराज विनयदित्य ने कुछ उद्वेग व्यक्त किया। मरियाने दण्डनायक ने प्रधानजी की ओर देखा। दोनों की दृष्टि में ही प्रश्नोत्तर निहित था। महाराज के उद्वेग की पुष्टि की, बड़ी रानी चन्दलदेवी ने, "महाराज का कथन सत्य है। हम

इस भेदभाव से मुक्त हुए बिना निर्माण कार्य कर ही नहीं सकते। कल्याण में रहते समय मैं जिस आशा से हाथ धो बैठी थी, वलिपुर में आने पर मैंने उसे फिर पाया। पोय्सलों का यह बल चालुक्यों को मिला तो कन्नड़ प्रजा का सुसंस्कृत राज्य आचन्द्रार्क सुख-शान्ति में विराजमान रह सकता है।"

"यह परस्पर सहयोग आपसी विश्वास की नींव पर विकसित होना चाहिए, बड़ी रानीजी। एक-दूसरे पर शंका से तो कोई फल नहीं मिलेगा। अच्छा, यात्रा की थकावट मिटाने को कुछ विश्राम कीजिए। प्रधानजी, बड़ी रानीजी की गरिमा के योग्य इन्तजाम किया है न? ऐसा उन्हें नहीं लगना चाहिए कि पोय्सल व्यवहार-कुशल नहीं हैं।"

"यथाबुद्धि व्यवस्था की गयी है।" प्रधान गंगराज ने विनती की।

"महाराज को मेरे विषय में अधिक चिन्ता की जरूरत नहीं है। स्त्रियों की व्यवस्था स्त्रियों पर ही छोड़ दीजिए। युवरानीजी और मैं आपस में हिलमिल-कर कर लेंगी।"

अब वहाँ से चले, मरियाने आगे, पीछे प्रधान, बाद में बड़ी रानीजी, शान्तला और युवराज एरेयंग प्रभु। युवरानी, चामव्वे और हेग्गड़ती पहले ही अन्तःपुर चली गयी थीं। कुमार बल्लाल वहीं गया जहाँ पद्मला थी।

कुमार बिट्टिदेव, कवि नागचन्द्र, हेग्गड़े मारसिंगय्या और चिण्णम दण्डनायक अन्तःपुर के बाहर प्रांगण में बैठे थे। अन्दर से युवराज आदि बाहर आये तो वे तुरन्त उठ खड़े हुए।

"छोटे अप्पाजी तुम अम्माजी और बड़ी रानीजी को अन्तःपुर में ले जाओ। अरे, यह रेविमय्या यहीं है। अच्छे हो रेविमय्या?" एरेयंग प्रभु ने पूछा। रेविमय्या ने झुककर प्रणाम किया। कुछ बोला नहीं। उसकी आँखें शान्तला की ओर थीं।

रेविमय्या का नाम सुनते ही बड़ी रानी की दृष्टि उसकी ओर गयी। शान्तला के दिल में बैठा हुआ रेविमय्या यही है न, युवराज और युवरानी का अत्यन्त विश्वासपात्र व्यक्ति यही है न, उस दिन जब शान्तला को मैंने मातृ-वात्सल्य से प्यार किया तो मेरी आँखों में आनन्द के आँसू देखकर शान्तला ने कहा था, रेविमय्या ने भी ऐसा ही किया था, उसका भी यही हाल था। बड़ी रानी की दृष्टि उस रेविमय्या पर लगी देखकर एरेयंग प्रभु ने कहा, "यह रेविमय्या अत्यन्त विश्वसनीय है।"

"मुझे सब मालूम है, चलो रेविमय्या।" चन्दलदेवी ने ऐसे कहा मानो वे चिर-परिचित हों। रेविमय्या ने झुककर प्रणाम किया और आगे बढ़ा, उसके पीछे बड़ी रानी चन्दलदेवी, शान्तला और बिट्टिदेव। "प्रधानजी और महादण्डनायकजी, अब आप लोग अपने काम पर ध्यान दे सकते हैं। चिण्णम दण्डनायक हमारे साथ

रहेंगे। ये कौन हैं, इनका हमसे यह नया परिचय है।" कहते हुए प्रभु ने कवि नागचन्द्र की ओर निर्देश दिया।

"ये कवि नागचन्द्र हैं, इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर मैंने महाराज से निवेदन किया था, अब ये आस्थान-कवि हैं और राजकुमारों के अध्यापक भी। प्रभु के दर्शन की प्रतीक्षा में हैं।"

कवि नागचन्द्र ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। प्रभु एरेयंग ने प्रति नमस्कार किया। और कहा, "बहुत खुशी की बात है। अभी कुछ दिन यहीं राजधानी में रहेंगे। फिर यथासमय मिलेंगे।"

"जो आज्ञा।" कहा कवि नागचन्द्र ने। एरेयंग प्रभु और चिण्णम दण्डनायक आगे बढ़े। हेग्गड़े मारसिंगय्या वहीं खड़े रहे।

मरियाने ने पूछा—हेग्गड़ेजी, आपका डेरा कहाँ है। यह सुनकर प्रभु एरेयंग ने मुड़कर कहा, "क्यों हेग्गड़ेजी, वहीं खड़े रह गये? आइए।" मारसिंगय्या दुविधा से मुक्त होकर युवराज के साथ चला। प्रधानजी, मरियाने और नागचन्द्र अपने-अपने घर चले गये।

चामव्वे की स्थिति ऐसी हुई थी जैसी परिपक्व गर्भ का पात होने पर किसी स्त्री की होती है। अपनी बदकिस्मती और निःसहायता को याद कर अपने ही ऊपर उसे गुस्सा आ रहा था। अपनी बुद्धिमत्ता और फुर्तीलेपन से चालुक्य बड़ी रानी को सन्तुष्ट कर मैं उनकी समधिन बन ही जाऊँगी, उसकी कल्पना का यह महल मोम की तरह गल गया।

इस सारी निराशा का कारण उसने हेग्गड़ती और उसकी बेटी को ठहराया और उनको जी भरकर शाप दिया। यह हेग्गड़ती दोरसमुद्र पर हमला करने चली है। बेचारे युवराज के औदार्य का फायदा उठा रही है। अपनी लड़की को आगे करके अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने की कोशिश कर रही है। देखने को बड़ी विनीत लगती है, पर है धूर्त। अबकी बार इसकी ठीक से दवा न करूँ तो मैं चामव्वा नहीं। चामव्वे ने यही पूर्वग्रह रात में दण्डनायक के दिमाग में भर दिया।

दण्डनायक का मन पहले ही दुखी था, क्योंकि आज महाराज ने ऊपरी स्तरवालों के मनोवैशाल्य के कारण जो ऊपर उठे थे वे अपने आधीन रहनेवालों को गौण मानते हैं, यह बात उसी को दृष्टि में रखकर कही थी। चामव्वा की बातों ने उन्हें और भी चिन्तित कर दिया। बोले, "हाँ, यह निश्चित बात है, उस हेग्गड़े

के परिवार ने युवराज के मन पर काफी प्रभाव डाला है। युवराज की सम्मति के बिना हमारा काम नहीं बनता। इसलिए हमें ऐसा कोई काम अब नहीं करना चाहिए जो युवरानी और युवराज को अप्रिय लगे। हमें उन्हें खुश रखकर ही अपना काम साधना चाहिए। पहले शादी हो जाय, बाद में हम अपने हाथ जमा सकेंगे। उस हेग्गड़े के परिवार को हमें आत्मीयों की तरह बरतना चाहिए। इतना ही नहीं, ऐसा लगता है कि चालुक्य बड़ी रानीजी का भी इस परिवार पर विशेष आदर है। इसलिए इस वक्त हमें मक्खन में से बाल निकालना है, समझी। इसके अलावा, मुझे मालूम हुआ है कि कोई हमारे बारे में चुगली कर रहा है महाराज से। आजकल महाराज पहले जैसे खुले दिल से बात नहीं करते, इन चुगलखोरों का पता लगाना चाहिए और ऐसे लोगों को पास नहीं फटकने देना चाहिए। चाहे हमारे मन में कितना ही दर्द रहे, उसे अपने ही मन में रखकर हमें सबके सामने हँसते नजर आना होगा, समझी।"

कल्याण से कोई खबर नहीं मिली, इससे बड़ी रानी कुछ चिन्तित हुईं। उन्होंने एरेयंग प्रभु से इस सम्बन्ध में पूछा तो वे बोले, "मुझे भी कुछ पता नहीं लग रहा है, बड़ी रानीजी। अब तक जो निश्चित रूप से खबर मिलनी चाहिए थी, मुझे इस बात की सूचना मिली थी कि वे जरूर जल्दी ही आएँगे इसीलिए आपको यहाँ ले आया। परन्तु साथ ले आने के लिए मैंने बलिकेनायक को भेज दिया है, इससे कुछ धीरज है।"

हिरियचलिकेनायक का नाम सुनकर बड़ी रानी को भी कुछ सान्त्वना मिली। फिर भी "बहुत समय तक प्रतीक्षा करते बैठे रहने से बेहतर यह होगा कि किसी और को भी कल्याण भेज दिया जाए।" चन्दलदेवी ने धीरे से सूचित किया।

"हमने भी यही सोचा है। हेग्गड़े मारसिंगय्याजी भी बलिपुर लौटने के लिए उतावले हो रहे हैं। चक्रवर्तीजी के आने तक ठहरने के लिए उन्हें रोक रखा है। आज गुरुवार है, आगामी गुरुवार तक उधर से कोई खबर न मिली तो हम कल्याण के लिए दूत भेजेंगे। ठीक है न?"

"वही कीजिए। हमेशा काम पर लगे रहने के कारण आपको मेरे मानसिक आतंक की जानकारी शायद न हो पाती, इसलिए यह कहना पड़ा। वैसे भी युद्ध-भूमि से निकलकर आये मुझे करीब-करीब एक साल हो गया है।"

"कोई भी बात मेरे मन से ओझल नहीं हुई है, बड़ी रानीजी। सन्निधान का सान्निध्य जितना हो सके उतना शीघ्र आपको मिलना चाहिए, यह स्वानुभव की सीख है। हमारी युवरानीजी भी इस बात से चिन्तित हैं। आपके मन में जो परेशानी सहज ही उत्पन्न हुई है वह और अधिक दिन न रहे, इसकी व्यवस्था पर ध्यान दे रहा हूँ।"

"मुझे किसी भी बात की परेशानी न हो, इसकी चिन्ता यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति करता है। फिर भी, मन में ऐसी परेशानी ने घर कर लिया है जो केवल वैयक्तिक है, उसमें बाहर का कोई कारण नहीं। आपने मुझे जो आश्वासन दिया उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ।"

"बहुत अच्छा।" कहकर एरेयंग प्रभु जाने को उद्यत हुए।

बड़ी रानीजी ने घण्टी बजायी। गालब्बे परदा हटाकर अन्दर आयी तो बोलीं, "युवराज जा रहे हैं।" गालब्बे ने परदा हटाकर रास्ता बनाया। एरेयंग प्रभु चले गये, फिर कहा, "शान्तला को बुला लाओ।"

"वे पाठशाला गयी हैं।"

"पाठशाला? यहाँ तो उनके गुरु आये नहीं।"

"राजकुमारों के गुरु जब उन्हें पढ़ाते हैं तब अम्माजी वहीं रहती हैं।"

"कुमार बिट्टिदेव ने कहा था कि उसके गुरुजी बहुत अच्छा पढ़ाते हैं। हम भी उनका पढ़ना-पढ़ाना देखें, तो कैसा रहेगा?"

"मुझे यहाँ की रीत नहीं मालूम।" गालब्बे ने उत्तर दिया।

"चलो, युवरानीजी से ही पूछ लें।"

अन्तःपुर में चामब्बे और हेग्गड़ती माचिकब्बे बड़ी रानी को आया देखकर युवरानी एचलदेवी उठ खड़ी हुई और बोलीं, "महारानी सूचना देतीं तो मैं खुद हाजिर होती।"

"मैं खुद आ गयी तो क्या मैं घिस जाऊँगी। गालब्बे ने बताया कि राजकुमारों की पढ़ाई चल रही है। मैं पाठशाला देखने जा सकती हूँ!"

"मैं स्वयं तो इस तरह कभी वहाँ नहीं गयी, मैं नहीं जानती कि इसे कविजी क्या समझेंगे।" एचलदेवी अपनी झिझक व्यक्त कर भी नहीं पायी थी कि चामब्बे हाकिमाना ढंग से बोल पड़ी, "जाने में क्या होगा, जा सकते हो। कविजी हमारे ही बल पर यहाँ आये हैं। इसमें समझने-जैसी क्या बात है?"

"एक काम कीजिए, चामव्वाजी, किसी नौकर के हाथ पत्र भेजिये कविजी के पास। हमारे वहाँ जाने से उनके काम में कोई बाधा न होने की सूचना मिलने पर ही हमारा वहाँ जाना उचित होगा।" चन्दलदेवी ने सलाह दी।

"तो उन्हें यहाँ बुलवा लें?" चामब्बे ने सलाह का उत्तर सलाह में दिया।

"न, वे अपना काम बीच में छोड़कर न आएँ। हम आज जाने की बात ही

छोड़ दे, कल पूछेंगे।" बात यहीं खतम कर दी महारानी चन्दलदेवी ने। चामव्वे
को बड़ी रानी के सामने अपने दर्प-पूर्ण अधिकार के प्रदर्शन का अवकाश जो मिला
था वह भी हाथ से छूट गया। इससे खिन्न होकर हाथ मलने लगी बेचारी
चामव्वे।

"अब अच्छा हुआ। मैं छोटे अप्पाजी के जरिये जान लूंगी। अगर कविजी
स्वीकार कर लें तो कल बड़ी रानीजी वहाँ पढ़ाते समय उपस्थित रह सकेंगी।"
युवरानी एचलदेवी ने कहा। दूसरे दिन की व्यवस्था में भी उसकी मदद अनपेक्षित
है, चामव्वे के उतावले मन पर इस परिस्थिति ने भी चोट की पर उसने कोई प्रति-
क्रिया व्यक्त नहीं की।

बड़ी रानी की सहज धारणा थी कि चामव्वा में स्वप्रतिष्ठा-प्रदर्शन की
आकांक्षा है, लेकिन दोरसमुद्र में आने के बाद उसकी धारणा यह बनी कि उसमें
स्वप्रतिष्ठा के प्रदर्शन की ही नहीं बल्कि एक स्वार्थ की भी भावना है, और उस
स्वार्थ को साधने के लिए वह चाहे जो करने को तैयार हो जाती है। इस वजह
से उन्होंने उससे न ज्यादा मेल-मिलाप रखा न व्यक्त रूप से दूर रखने की ही
कोशिश की। उनको यह अच्छी तरह मालूम था कि उसने कुमार बल्लाल को
ें जकड़ रखा है, परन्तु इस बात से उन्होंने दिलचस्पी नहीं ली। दूसरी ओर,
नकी प्रबल धारणा थी, वह सहज या असहज जो भी हो, कि शान्तला और
मार बिट्टिदेव की जोड़ी बहुत ही उत्तम रहेगी। कल्याण रवाना होने से पहले
इस सम्बन्ध में युवरानीजी से सीधे विचार-विनिमय करने का भी निश्चय कर
चुकी थीं। मगर इस वक्त जो खामोशी छायी थी उसे तोड़ना जरूरी था। चामव्वा
का उत्साह ठण्डा पड़ गया है, इसे भी वे समझ चुकी थीं।

इसलिए उन्होंने बात छेड़ी, "क्यों चामव्वाजी, हमारे कल्याण का प्रस्थान
करने से पहले किसी दिन आपकी बेटियों के गायन और नृत्य का कार्यक्रम हो
सकेगा कि नहीं, बड़े राजकुमार इनकी बड़ी प्रशंसा करते हैं?"

चामव्वे की बाँछें खिल उठीं। उसका आत्म-विश्वास पुनर्जीवित हुआ, उसका
भावी दामाद उसे निराश न करेगा। "बड़ी रानीजी, बड़े राजकुमार का मन खरा
सोना है। इसलिए उन्होंने इतनी प्रशंसा की है। वास्तव में हमारी बच्चियों की
जानकारी बहुत कम है। कल्याण के राजभवन में जो नृत्य-गान होता है उसके
आगे इनकी बिसात ही क्या है? फिर भी आप चाहें तो कल ही उसकी व्यवस्था
करूँगी।"

"कल ही हो, ऐसी कोई जल्दी नहीं। सबकी सहूलियत देखकर किसी दिन
व्यवस्था कीजियेगा।"

युवरानी एचलदेवी ने कहा, "प्रभुजी बड़ी रानीजी से मिलने आये होंगे?"

"हाँ, आये थे। इसके लिए मैं युवरानीजी की कृतज्ञ हूँ। आगामी बृहस्पति तक

कल्याण से कोई खबर न मिली तो युवराज यहाँ से दूत भेजने का विचार कर रहे हैं।"

"हाँ, प्रभु ने मुझसे भी यही कहा था। जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी बड़ी रानीजी सन्निधान से मिलें, यही उनकी इच्छा है। उनके भी दिन युग-जैसे बीत रहे हैं। बड़ी रानीजी के ही लिए प्रभु इतने दिन ठहरे हैं। नहीं तो अपनी मानसिक शान्ति के लिए अब तक सोसेऊरु चले गये होते।" युवरानी ने कहा।

"तो मेरे कारण···?"

"ऐसा नहीं। यह कर्तव्य है। धरोहर की जिम्मेदारी है। सबसे प्रथम कार्य यही है।" तभी अन्दर आकर गालब्बे ने बताया, "मुझको बाहर खड़ी देखकर आप अन्दर होंगी यह समझकर राजकुमार अन्दर आने के लिए आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़े हैं।"

"आने के लिए कहो।" चन्दलदेवी ने तुरन्त आज्ञा दी।

बिट्टिदेव शान्तला के साथ अन्दर आये तो युवरानी एचलदेवी ने पूछा, "पढ़ाई समाप्त हुई?"

"समाप्त हुई माँ, गुरुजी मिलना चाहते हैं।" बिट्टिदेव ने कहा।

"किससे, मुझसे?"

"हाँ, कब सहूलियत रहेगी?"

"बड़ी रानीजी भी उनसे मिलना चाहती थीं। उन्हें सुविधा हो तो अभी आ सकते हैं।"

"अच्छा, माँ।" कहकर बिट्टिदेव चला गया।

चन्दलदेवी ने पूछा, "मैंने कब कहा कि उनसे मिलना है।"

"उनका पढ़ाना सुनने की अभिलाषा व्यक्त की थी न आपने? कोई गलती तो नहीं हुई न?" बड़ी रानीजी कुछ बोलना ही चाहती थीं कि बिट्टिदेव के साथ आये कवि नागचन्द्र ने प्रणाम किया। प्रति नमस्कार करके एचलदेवी ने कहा, "आइए, कविजी, बैठिए। आपने मिलने की इच्छा प्रकट की है?"

"हाँ, परन्तु राजकुमार ने कहा कि बड़ी रानीजी ने मिलने की इच्छा प्रकट की है।" नागचन्द्र ने कहा।

"आपके पढ़ाते वक़्त यदि आपको कोई असुविधा न हो तो वहाँ उपस्थित रहना चाहती हैं बड़ी रानी। अतः आपका अभिमत···।"

"पूछने की क्या बात है? अवश्य उपस्थित रहें, यद्यपि मेरा ज्ञान बहुत सीमित है।"

"फिर भी अनुमति लेकर ही आना उचित है।"

"यह अमूल्य वचन है। जन्म-स्थान से बहुत दूर तो आना पड़ा, पर एक बहुत ही उत्तम स्थान पर रहने का सौभाग्य मिला। यहाँ की यह सुसंस्कृत रीति हम

सर्वत्र देखना चाहते हैं। बड़ी रानीजी का इस तरह आना तो सरस्वती का और ज्ञान का सम्मान करना है।"

"अच्छा, अब कहिये, आप मिलना क्यों चाह रहे थे?" एचलदेवी ने पूछा, किन्तु नागचन्द्र ने तुरन्त जवाब नहीं दिया तो वे फिर बोलीं, "बड़ी रानीजी और हेग्गड़ती के यहाँ होने से संकोच में न पड़िए, बोलिए।"

"यह ठीक है, फिर एक बार पुनः दर्शन करूँगा, तब अपनी बात कहूँगा।" कहते हुए वे बिट्टिदेव की ओर देखने लगे।

"क्यों गुरुजी, क्या चाहिए?" बिट्टिदेव ने पूछा।

कुछ नहीं कहकर भी कवि नागचन्द्र उठकर चलते-चलते बोले, "मेरे लिए कल कुछ समय दें तो उपकार होगा, अभी मैं चलता हूँ।"

"वैसा ही कीजिए।" एचलदेवी ने कहा।

नागचन्द्र प्रणाम करके चले गये। उनके पीछे बिट्टिदेव फाटक तक गया, शान्तला भी साथ गयी।

बात उन्हें ही शुरू करनी पड़ी, "कल के मेरे व्यवहार से पता नहीं, कौन-कौन बुरा मान गये युवरानीजी! बड़ी रानीजी और हेग्गड़तीजी यहाँ हैं, यह मुझे ज्ञात होता तो मैं कहलाकर ही नहीं भेजता।"

"उन लोगों के सामने संकोच की आवश्यकता नहीं थी। मैंने कहा भी था।"

"उसे मैं समझ चुका था, परन्तु जो बात मैं कहना चाहता था, वह बच्चों के सामने कहने की मेरी इच्छा नहीं थी। और उन लोगों के समक्ष बच्चों को बाहर भेजना उचित मालूम नहीं पड़ा। इसके अलावा कुछ संकोच भी हुआ क्योंकि बड़ी रानीजी और हेग्गड़तीजी मेरे लिए नयी परिचित हैं जिससे मैं उनके स्वभाव से अनभिज्ञ हूँ।"

"अच्छा, अब बताइये, क्या बात है?"

"मैं जो कहूँगा उससे आप, और सन्निधान भी, यह न समझें कि मैं राजकुमारों की आलोचना कर रहा हूँ, मैं तो उनके भले के लिए ही कुछ निवेदन कर रहा हूँ।"

"इतनी पूर्व-पीठिका की आवश्यकता नहीं, कविजी। मुझे विषय से अवगत करा दें, इतना पर्याप्त है।"

"फिर भी...।"

"मतलब पहले किसी और से विचार-विनिमय कर चुके हैं, आप क्या ?"

"न, न, ऐसा कुछ नहीं। अपनी ही संकोच-प्रवृत्ति के कारण यह पूर्व-पीठिका आवश्यक समझता हूँ। मुख्य विषय दो हैं। दोनों विषयों पर मैं दुविधा में पड़ गया हूँ। पहला बड़े राजकुमार से सम्बन्धित है। ये पढ़ाई की तरफ जितना ध्यान देना चाहिए उतना नहीं देते। उनकी आयु ही ऐसी है, जब मन चंचल होता है। वे अधिक समय दण्डनायकजी के यहाँ व्यतीत करते हैं। यह बात इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि राजकुमार अमुक स्थान में रह सकेंगे, अमुक स्थान में नहीं। वास्तव में मैं दण्डनायकजी का कृतज्ञ हूँ। उन्हीं के प्रयत्न से मुझे राजघराने के साथ सम्पर्क का सौभाग्य मिला। राजकुमार बल्लाल आवश्यक शक्तियों से सम्पन्न न होकर यदि सिंहासन पर बैठेंगे तो अनुचित होगा, इसलिए यह निवेदन कर रहा हूँ, वह भी एक गुरु की हैसियत से। वास्तव में बड़े राजकुमार बहुत उदार हैं। उनकी ग्रहण-शक्ति भी अच्छी है, परन्तु उनमें श्रद्धा की कमी है। मुझे लगता है, वे किसी अन्य आकर्षण से जकड़े हुए हैं जो अच्छी बात नहीं। शारीरिक शक्ति की दुर्बलता के कारण वे युद्ध-विद्या सीखने में दत्तचित्त नहीं हैं। परन्तु ज्ञानार्जन की ओर भी ध्यान न दें यह चिन्ता का विषय है।"

"आपने जो कुछ कहा वह मुझे पहले से ज्ञात है। अब प्रभुजी से भी इस विषय पर विचार-विनिमय करूँगी। राजकुमार वास्तव में भाग्यवान् हैं जिन्होंने आप जैसा गुरु पाया।"

"सन्निधान भी इस विषय से परिचित हैं, यह जानकर मेरे मन का भार कुछ कम हुआ। दण्डनायक ने भी जोर देकर कहा है कि मैं बड़े राजकुमार की ओर विशेष ध्यान दूँ और उन्हें योग्य और प्राज्ञ बनाऊँ। उन्हें इस बात की भी बड़ी चिन्ता है कि राजकुमार युद्ध-विद्या सीखने में शारीरिक दृष्टि से दुर्बल हैं क्योंकि इस विद्या के शिक्षण में वे स्वयं उनके गुरु बनकर प्रयत्न कर रहे हैं।"

"छोटे अप्पाजी कैसे हैं?"

"ये ही अगर पहले जन्मते तो पोय्सल राजघराने के लिए बहुत ही अच्छा होता। मुझे इस बात का पता है कि माँ बच्चों में कोई भेदभाव नहीं रखती। परन्तु एक अच्छे गुरु के नाते मैं जोर देकर कहूँगा कि ग्रहण-शक्ति और श्रद्धा की दृष्टि से छोटे राजकुमार छोटे होने पर भी बड़े से भी बड़े हैं।"

माता होकर जब मेरे अपने ही मन में ऐसी भावना उत्पन्न हो गयी है तो इन गुरुवर्य के मन में ऐसी भावना के उत्पन्न होने में आश्चर्य ही क्या है, यह सोचती हुई एचलदेवी ने पूछा, "अच्छा कविजी, और कुछ?"

"एक विषय और है और वह तात्कालिक है। इस बात की ओर सन्निधान का भी ध्यान आकर्षित करना मेरा कर्तव्य है। सन्निधान की आज्ञा से कुमारी शान्तला भी कक्षा में उपस्थित रहती है, लेकिन यह बात बड़े राजकुमार को जँची

नहीं लगती। इस पर मैं क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आ रहा है।"

"इस विषय में बड़े अप्पाजी ने सीधा कोई जिक्र किया आपसे?"

"सीधा जिक्र तो नहीं किया। दो-तीन दिन पहले किसी सन्दर्भ में जब वे अकेले थे तब मैंने कहा कि पढ़ाई पर विशेष श्रद्धा रखनी चाहिए तो उन्होंने कहा कि जिस-तिस के साथ बैठकर सीखने में क्या कष्ट होता है सो आपको मालूम नहीं। कल उस लड़की के आने पर थोड़ी ही देर बाद कोई बहाना करके चले गये।"

"यह अच्छा गुण नहीं, कविजी। मैं खुद उसके इस बरताव के बारे में उससे खुलकर बात करूँगी।" युवरानी ने कहा। उनके कहने की रीति निश्चित थी और उस कहने में वेदना के भाव भी थे।

"अभिमान या ईर्ष्या की दृष्टि से नहीं बल्कि इस दृष्टि से कि वह लड़की थोड़े ही दिन रहनेवाली है, इसलिए उसे या तो मना कर दिया जाए या उसके प्रति उपेक्षा कर दी जाए।"

"नहीं, ऐसा नहीं, कविजी। आपने कहा कि पढ़ाई पर अप्पाजी की श्रद्धा कम है, वह उसकी भाग्य-रेखा है, फिर भी आप उसके सुधार की सलाह दे सकते हैं। किन्तु, यदि आपके मन में ऐसी कोई भावना हो, तो स्पष्ट कह दीजिए कि वेतन राजमहल देता है तो मैं हेग्गड़े की लड़की को क्यों पढ़ाऊँ?"

"शान्तला के प्रति मेरी वैसी भावना नहीं, एक आदर्शवादी गुरु होने के नाते कदापि नहीं हो सकती जैसी आपने समझ ली। बल्कि मेरा अनुभव तो यह है कि वह एक ऐसी सूक्ष्मग्राही शिष्या है जिसे पाकर कोई भी अपना सौभाग्य समझेगा।"

"तो तात्पर्य यह है कि आप भी उसके प्रशंसक हैं?"

"उसके गुण, शील, स्वभाव, व्यवहार, ऐसे निखरे हैं कि वह किसी को भी प्रभावित कर लेगी।"

"अगर वह आपकी कक्षा में रहे तो आपको कोई परेशानी तो नहीं होगी?"

"अगर परेशानी हो तो वही उसे दूर भी कर सकती है।"

"ऐसी हालत में अप्पाजी के इस तरह के व्यवहार का कारण क्या है?"

"यह बताने में मैं असमर्थ हूँ।"

"अच्छा, मैं देख लूँगी।"

"फिर भी मेरी सलाह मान्य होगी...।"

"यह मुझपर छोड़ दीजिए।"

"ठीक।"

"आज बड़ी रानीजी पाठशाला में आ रही हैं, यह बात मालूम है न?"

"जी हाँ, मालूम है।" कहकर कवि नागचन्द्र चला गया और एचलदेवी सोचने लगी, अब तो यह स्पष्ट हो गया कि चामव्वा ने विद्वेष का बीज बोया है। उसे

जड़ से उखाड़ फेंकना ही चाहिए, मेरे बेटे के दिल में यह बीज अंकुरित हो पेड़ बन जाए, मैं ऐसा कभी न होने दूंगी।

कवि नागचन्द्र को लगा कि उसने दूसरे विषय का जिक्र नहीं किया होता तो अच्छा होता। युवरानीजी ने जो निश्चय प्रकट किया उससे वह दंग रह गया था। उसने युवरानीजी को कड़ा निर्णय करते हुए स्वयं देखा था। इस निर्णय का पर्यवसान क्या होगा, इसी ऊहापोह में उसने पाठशाला में प्रवेश किया। बल्लाल और बिट्टिदेव पहले ही उपस्थित हो गये थे। चालुक्य बड़ी रानी चन्दलदेवी और शान्तला अन्दर आयी तो सबने उठकर प्रणाम किया।

"बैठिये, बैठिये, हमारे आने से आपके काम में बाधा नहीं होनी चाहिए। हम केवल श्रोता हैं।" कहती हुई बड़ी रानीजी एक दूरस्थ आसन पर बैठ गयीं। शान्तला बिट्टिदेव से थोड़ी दूर पर बैठी। बल्लाल ने नाक-भौंह सिकोड़कर उसकी ओर एक टेढ़ी नजर से देखा। बड़ी रानीजी पीछे बैठी थीं, इसलिए वह उसका चेहरा नहीं देख सकीं। नागचन्द्र ने देखकर भी अनदेखा कर दिया, पढ़ाना शुरू किया, "कल हम किस प्रसंग तक पहुँचे थे?"

"आदि पुराण के अष्टम आश्वास में उस प्रसंग तक जहाँ यह चिन्ता की गयी है कि पुरुदेव अर्थात् प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ की दोनों पुत्रियाँ भरत की बहिन ब्राह्मी और बाहुबली की बहिन सौन्दरी विद्याभ्यास के योग्य आयु में प्रवेश कर चुकी हैं।" बिट्टिदेव ने उत्तर दिया।

"वहाँ तक कहाँ पहुँचे थे? यही तो था कि बाहुबली की माँ सुनन्दा ने सौन्दरी नामक पुत्री को जन्म दिया।" कुमार बल्लाल ने आक्षेप किया।

"तुम बीच में ही चले गये थे।" बिट्टिदेव ने उसका समाधान किया।

"तो मेरे जाने के बाद भी पढ़ाई हुई थी क्या?"

बिट्टिदेव ने कहा, "हाँ।" और नागचन्द्र ने स्पष्ट किया, "वहाँ से आगे का विषय केवल वर्णनात्मक है। उसका सारांश यह है कि पुरुदेव ने अपने सब बच्चों को उनके योग्य सुख-सुविधाओं में पाल-पोसकर इस योग्य बना दिया कि वे यथा-समय विद्याभ्यास के लिए भेजे जा सकें। चाहें तो उस अंश को मैं फिर से पढ़ा दूंगा।"

"इतना ही विषय हो तो आगे का पाठ शुरू कर दिया जाये।" बल्लाल ने कहा।

"बहुत ठीक।" कहकर कवि नागचन्द्र ने उस पुराण का कुछ अंश, "ब्राह्मियुं सौन्दरियुं मैथिविक दूरान्तरदोले पोडेवट्टु मधुर स्वर में पढ़कर उसका अर्थ समझाया, यशस्वती देवी की पुत्री ब्राह्मी और सुनन्दा की पुत्री सौन्दरी ने पिता पुरुदेव को प्रणाम किया। कवि ने उनके प्रणाम की विशेषता बताते हुए कहा है कि उसमें सन्तान की अपने पिता के प्रति वात्सल्य की अभिव्यक्ति तो स्वभावतः थी ही, एक गुरु के प्रति उसकी शिष्याओं के सम्मान की आदर्श भावना भी निहित थी, क्योंकि पुरुदेव पितृत्व के साथ गुरुत्व का दायित्व भी निभा रहे थे।

रानी चन्दलदेवी वहाँ एक श्रोता के रूप में बैठी थीं, किन्तु कन्याओं की शिक्षा के प्रसंग ने उनकी जिज्ञासा जगा दी और वे बीच में ही पूछ बैठीं, "तो क्या हम मान सकते हैं कि पुरुदेव के समय स्त्रियों में भी विद्याभ्यास का प्रचलन पर्याप्त था?"

"हाँ, महारानीजी, किन्तु स्त्रियों के लिए विद्याभ्यास की आवश्यकता पर इससे भी अधिक बल महाकवि ने अपने महाकाव्य पम्प-भारतम् में आज से एक सौ पचास वर्ष पूर्व (941 ईस्वी) दिया था, यद्यपि यह दुख का विषय है कि हमने उस महाकवि के हित-वचन पर जितना ध्यान देना चाहिए उतना नहीं दिया। पुरुष भी मानव है, स्त्री भी मानव है। ज्ञान प्राप्त कर मानव को देवता अर्थात् देव-मानव बनना चाहिए। पुरुष और स्त्री मानव के भिन्न-भिन्न रूप हैं तो भी उनका लक्ष्य देवमानवता है जो अभिन्न है।"

चन्दलदेवी ने प्रश्न किया, "बुजुर्गों को मैंने यह कहते सुना है कि स्त्री को विद्याभ्यास की शायद आवश्यकता नहीं। वह सदा अनुगामिनी, और रक्षणीय है। आप इस सम्बन्ध में क्या कहेंगे?"

"स्त्री पुरुष की अनुगामिनी है, तो पुरुष भी स्त्री का अनुगामी है। इसका अर्थ यह हुआ कि विद्या पुरुष का ही स्वत्व नहीं है। वह मानवमात्र का स्वत्व है। स्त्री भी मानव है। जब तक वह भी पुरुष के बराबर विद्यार्जन-ज्ञानार्जन नहीं करेगी तब तक मानवता अपरिपूर्ण ही रहेगी। वास्तव में हमारे आज के समाज के लिए हमारी उस अम्माजी-जैसी स्त्री की आवश्यकता है जो अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग की जीती-जागती मूर्ति है। यह मुख-स्तुति नहीं। कन्याओं को विद्याभ्यास कराने में सभी माता-पिता बलिपुर के हेग्गड़े दम्पती की तरह बनें तभी राष्ट्र का कल्याण होगा। पोय्सल साम्राज्य की प्रगति का रहस्य वहाँ की रानी की ज्ञान-सम्पन्नता और विवेचनशक्ति में निहित है। महाकवि पम्प ने यही कहा है कि पुरुदेव ने अपनी दोनों कन्याओं को स्वयं भाषा, गणित, साहित्य, छन्दशास्त्र, अलंकार आदि समस्त शास्त्रों एवं सारी कलाओं में पारंगत बनाया। वास्तव में मैं प्रभु से इस सम्बन्ध में निवेदन करना चाहता हूँ कि पोय्सल राज्य में विद्यादान की लिंगभेद रहित व्यवस्था की जाये। हमारे भावी प्रभु भी यहाँ उपस्थित हैं, उनसे भी मैं यह

निवेदन कर रहा हूँ कि पट्टाभिषिक्त होने के पश्चात् वे भी मेरी इस विनती को पूर्ण करके महाकवि पम्प के सदाशय को कार्यान्वित करें। मुझसे विद्यादान पानेवाले भावी महाराज के मन में यह सद्भाव यदि मैं उत्पन्न न करूँ तो मेरे गुरु बनने का क्या प्रयोजन ?" ज्ञानी में, विद्वान में किस तरह की भावना होनी चाहिए, धनवान् का कैसा स्वभाव होना चाहिए, ये बातें महाकवि रन्न ने बहुत ही सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त की हैं। जो श्रीयुत होता है, उसमें अनुदारता होती है। जो वाक्श्री-युत होता है, उसमे असूया रहती है। ये दोनों अच्छे नहीं। वाक्श्री-युत ज्ञानी को असूया-रहित होना चाहिए। श्री-युत जो होता है उसे उदार होना चाहिए जैसा कि उपनिषदों में कहा गया है, हमें हाथ भर देना चाहिए, खुशी से देना चाहिए, दयापूर्ण होकर देना चाहिए। यह मेरा पुराकृत पुण्य का फल है कि मुझे इन जैसे राजकुमारों का गुरु बनने का अवसर प्राप्त हुआ। यहाँ श्री और वाक्श्री दोनों की संगति है। उदारता और द्वेष-हीनता की साधना में ये राजकुमार सहायक बनेंगे। इसी विश्वास और आशा को लेकर मैं अध्यापन रहा हूँ। ये राजकुमार असूया की भावना से परे हैं। इसलिए उन्होंने सामान्य हेग्गड़े की पुत्री को भी सहाध्यायिनी के रूप में स्वीकार किया। उनकी यही निर्मत्सरता स्थायी होकर भविष्य में उनके सुखी जीवन का सम्बल बने, यह मेरी हार्दिक अभिलाषा है। इससे अधिक मैं क्या कह सकता हूँ। महाकवि पम्प एक सत्कवि हैं, इसलिए उन्होंने त्याग और ज्ञान के उत्तमोत्तम चित्र अपने काव्य के द्वारा प्रस्तुत किये हैं। उस महाकाव्य का सार ग्रहण करने वाले स्त्री-विद्याभ्यास के हिमायती होंगे। सन्निधान को भी चाहिए कि चालुक्य साम्राज्य में स्त्री-विद्याभ्यास की व्यवस्था की, चालुक्य चक्रवर्ती को उसकी आवश्यकता समझाकर इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए मार्ग प्रशस्त करें।"

कवि नागचन्द्र ने एक विचार से दूसरे विचार की कड़ी मिलाकर बेरोकटोक क्या-क्या कह दिया, बात कहाँ से आरम्भ हुई और कहाँ पहुँच गयी। महारानी जी अभी कुछ और भी सुनना चाहती थीं जो उन्होंने स्वयं एक प्रस्ताव के रूप में सुनाया, "जब चक्रवर्ती यहाँ आएँगे तब अपने इन विचारों को उनसे सीधा निवेदन करने का आपको अवसर जुटा दूँगी। यदि वे आपके विचारों को स्वीकार कर इस कार्य का उत्तरदायित्व लेने को आपसे कहें तो आप स्वीकार कर लेंगे न ?"

"महारानीजी, इससे मैं वचन-भ्रष्ट हो जाऊँगा।"

"आपने किसे क्या वचन दिया है ?"

"द्रोण ने भीष्म को जैसा वचन दिया था वैसा ही वचन मैंने महाराज को दिया है, जब तक इन राजकुमारों की शिक्षा पूर्ण न होगी तब तक मैं अन्यत्र नहीं जाऊँगा।"

"अपने वचन की पूर्ति करके शीघ्रातिशीघ्र मुक्त होना भी तो आप ही के हाथ

में है न?"

"सिखाना मेरे हाथ में है। सीखना शिष्यों के हाथ में है। वे अन्यत्र ध्यान न देकर ज्ञानार्जन की ओर ही ध्यान दें तो यह भी सम्भव है। मेरा मतलब यह है कि उम्र के अनुसार जो आकर्षण होते हैं उनके वशीभूत न होकर इन्हें ज्ञानार्जन की ओर मन लगाना चाहिए। तभी उनको प्रयत्नशीलता का पूर्ण परिचय मिलेगा।"

"तो क्या आप समझते हैं कि इनमें प्रयत्नशीलता अभी अपूर्ण है?"

"उन्हें अपने ही अन्तरंग से पूछना होगा कि उनकी प्रयत्नशीलता में श्रद्धा और तादात्म्य है या नहीं।"

"अन्तरंग क्या कहता है, इसे कैसे समझना चाहिए।" बल्लाल ने जिज्ञासा व्यक्त की।

अध्ययन में मन एकाग्र न हो और अन्य विचार मन में आये तो समझना चाहिए कि अन्तरंग में श्रद्धा कम है। समझ लीजिए, यहाँ अध्यापन चल रहा है लेकिन कहीं से आती मधुर संगीत की ध्वनि पर मन आकर्षित हो रहा है, तो अन्तरंग प्रयत्नशीलता की कमी मानी जायेगी।

"संगीत का आकर्षण अध्ययन से अधिक लगे तब क्या किया जाये?" शान्तला ने उस जिज्ञासा को आगे बढ़ाया।

"अम्माजी यह तुलना का विषय नहीं है। जिस समय जिस विषय का अध्ययन चल रहा हो उस समय उसी विषय में एकाग्रता और तादात्म्य हो तो दूसरी कोई अधिक प्रभावशाली शक्ति उसके सामने टिक नहीं सकती। परन्तु पहले से तुलना की भावना उत्पन्न हो गयी हो कि अध्ययन से संगीत ज्यादा रुचिकर है तब तुमने जो प्रश्न उठाया वह उठ खड़ा होता है।"

"मतलब यह है कि अपनी अन्य आशा-आकांक्षाओं को ताक पर रख देना चाहिए और केवल अध्ययन की ओर ध्यान देना चाहिए। यही न?" शान्तला गुरुदेव से कुछ और ही कहलाना चाह रही थी।

"हाँ, उस समय प्रेमियों को भी मन से दूर भगा रखना चाहिए।" शान्तला के सवाल का उत्तर देते समय कवि नागचन्द्र का लक्ष्य बल्लाल था।

"कोई मन में हो, तभी तो उसे दूर भगाया जायेगा।" शान्तला ने कहा।

"ऐसी बातें एक उम्र में मन में उठा करती हैं, अम्माजी। वह गलत नहीं। परन्तु ऐसी बातों की एक सीमा होनी चाहिए। हमें इस सीमा की जानकारी भी होनी चाहिए। वह ज्ञानार्जन में बाधक हो तो फिर मुश्किल है। मेरे एक सहपाठी का विवाह निश्चित हो गया, इसी कारण उसका अध्ययन वहीं समाप्त हो गया।" नागचन्द्र ने कहा।

"सभी आपके उस सहपाठी जैसे होंगे क्या?" बल्लाल ने शंका की।

"हाँ या न हों, पर ऐसा होना अच्छा नहीं, मैं यही कह रहा हूँ।" नागचन्द्र ने समाधान किया।

"कविजी, आपकी योजना के अनुसार पति और पत्नी एक साथ बैठकर अध्ययन जारी रख सकते हैं?" चन्दलदेवी ने कुछ आगे की बात सामने रखी।

"हाँ, ऐसा जरूर हो सकता है, इतना अवश्य है कि विद्याभ्यास करते समय पुरुष और स्त्री का वैयक्तिक प्रेम आड़े न आने पाये।"

"आपने जो कुछ कहा यह सब महाकवि पम्प ने कहा है क्या?"

"हाँ, बल्कि उन्होंने स्त्री के विद्याभ्यास पर खास जोर दिया है।"

"अच्छा, कविजी, बीच में बोलकर काव्य-पाठ में बाधक बनी, इसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।" चन्दलदेवी ने कहा।

"काव्य या उसकी कथावस्तु गौण है उसके अन्तर्गत तत्त्व की जिज्ञासा ही प्रधान वस्तु है। इसलिए आपने बीच में बोलकर जो विचार-मन्थन की प्रक्रिया चलायी यह अच्छा ही हुआ। अब फिर प्रस्तुत काव्य की ओर देखें," नागचन्द्र ने कहा, "अब तक यह कहा गया कि पुरुदेव ने ब्राह्मी और सौन्दरी को क्या-क्या और कैसे सिखाया, सो कवि पम्प के शब्दों में पढ़िए, स्वर-व्यंजन-भेद-भिन्न-शुद्धाक्षरंगलुम अयोगवाह चतुष्कमुमं, संयोगाक्षरंगलुमं, ब्राह्मिगें दक्षिण हस्तदोल् उपदेशं गदु, सौन्दरिगे गणितमं एडद कैयोल् स्थान क्रमादिद तोरिदनागल्। अर्थात् स्वर और व्यंजनों का भेद और भिन्न-शुद्धाक्षर तथा चारों अयोगवाह एवं संयुक्ताक्षर दायें हाथ से ब्राह्मी को और गणित का स्थान-भेद बायें हाथ से सौन्दरी को सिखाया।"

"वे दोनों हाथों से लिखते-लिखाते थे।" बिट्टिदेव ने आश्चर्य प्रकट किया।

"हाँ, दोनों हाथों से लिखने का सामर्थ्य और दोनों हाथों से समान भाव से बाँट देना, एक श्रेष्ठ गुण है। महाकवि पम्प भी दोनों हाथों से लिख सकते थे, दोनों हाथ में हथियार लेकर युद्ध करने का सामर्थ्य भी उनमें रहा होगा। बायाँ हाथ आमतौर पर गौण माना जाता है जैसे एक मानव की अपेक्षा दूसरा मानव। इसलिए बाएँ हाथ का उपयोग गणित-जैसा क्लिष्ट विषय सिखाने में दिखाकर उसका गौरव बढ़ाया होगा महाकवि पम्प ने। साम्राज्य की स्थापना के अभिलाषी राजवंशी यह गौण-मुख्य या ऊँच-नीच का भेद सबसे पहले त्यागते हैं, और इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं ये राजकुमार जो हेग्गड़ेजी की पुत्री के साथ बैठकर अध्ययन कर रहे हैं। बाल्यकाल से सामान्य जनता से मिलजुलकर रहने की आदत डाली जाये, उसके लिए मौका पैदा किया जाये तो मन में विशालता बढ़ती जाती है। पोय्सल वंशियों में यह कार्यरूप में परिणत हुई है यह शुभसूचक है।" नागचन्द्र ने कहा।

"कविजी का कथन अक्षरशः सत्य है। मैंने भी आम जनता से मिलने-जुलने से बहुत कुछ सीखा है, बलिपुर के अज्ञातवास की अवधि में।" चन्दलदेवी ने कहा।

"क्या बड़ी रानीजी को अज्ञातवास भी करना पड़ा है?" आश्चर्य से बिट्टिदेव ने पूछा।

"हाँ, छोटे अप्पाजी, किस समय किसे किस ढंग से कहाँ रहना पड़ जाये किसे मालूम? वृत्तान्त सुनना चाहो तो शान्तला से सुनो, वह विस्तार से बता सकेगी।"

"कविजी, आपकी बातों से लगता है, महाकवि पम्प के काव्य का प्रभाव आप के मन पर बहुत गहरा पड़ा है। शायद आप उन-जैसा बनना चाहते हैं।"

"इच्छा तो है परन्तु वैसा बनना इतना आसान नहीं।"

"आप काव्य-रचना करते हैं?"

"हाँ, महादेवीजी, किन्तु महाकवि पम्प, रण्ण आदि के स्तर तक पहुँचने में समय लगेगा। महाकवि पम्प ने यह कृतिरत्न पूर्ण किया तब उनको इतना लोकानुभव प्राप्त था कि वे जनता को अपनी जानकारी से उपदेश दे सकें और ज्ञानवान् बनने का मार्ग दरशा सकें, उनकी उम्र भी इस योग्य थी। मुझे भी तो ऐसा लोकानुभव प्राप्त करना होगा। इसके लिए अभी समय है। इस कार्य के लिए उपयुक्त चित्त-शुद्धि भी चाहिए।"

"फिर सुहृदयों का प्रोत्साहन चाहिए। यह सब प्राप्त हो तभी सरस्वती अपनी तृप्ति के योग्य काव्य मुझसे लिखवा सकेगी।"

"ऐसा वक़्त शीघ्र आये, यही हमारी इच्छा है। हाँ, फिर?" चन्दलदेवी की पुराण सुनने की इच्छा अभी पूरी नहीं हुई थी।

"आगे चलकर पुरुदेव अपने पुत्र भरत, बाहुबली, वृषभसेन आदि के भी विद्यागुरु बने। उन्हें नाट्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, गांधर्वशास्त्र, चित्रकला, वास्तु-विद्या, कामशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, आयुर्वेद, हस्तितन्त्र, अश्वतन्त्र, रत्न-परीक्षा आदि उन्होंने स्वयं पढ़ाये। महाकवि पम्प विस्तार से बताते हैं कि पिता पुरुदेव से इस स्तर की विद्या सीखने ही के कारण भरत और बाहुबली अतिमानव आदर्श-जीवी होकर सिद्धक्षेत्र में विराजमान हैं। महाभारत के युद्ध के पश्चात्, पम्प ने, अर्जुन को पट्टाभिषिक्त कराया है, धर्मराज को नहीं। यह बड़े-छोटे का प्रश्न नहीं। श्रेष्ठता और औदार्य का संगम है। कहीं कड़ुआपन नहीं, कोई परेशानी नहीं, किसी तरह के गर्व-अहंकार की भावना नहीं। इसका फल लोकोपकार है। इस कारण पम्प महाकवि के काव्यों का अध्ययन राजवंशियों को अवश्य करना चाहिए।" इसके बाद कवि नागचन्द्र बोले, "अब छन्दोम्बुधि के एक-दो सूत्रों का मनन करेंगे।"

चन्दलदेवी ने कहा, "अब आप जो विषय पढ़ायेंगे उससे मैं बहुत दूर हूँ। इसलिए अब मैं विदा लेती हूँ। बीच में ही उठकर जा रही हूँ, अन्यथा नहीं समझें।"

"महादेवीजी को जैसा ठीक लगे, करें। मुझे इतना और कहना है कि कन्नड़

के कवियों ने जो भी लिखा है वह इस ढंग से लिखा है कि वह स्त्रियों के लिए भी आवश्यक है। छन्दोम्बुधि का कर्ता नागवर्म कवि पम्प महाकवि के थोड़े समय बाद का है। यह शास्त्र कुछ क्लिष्ट है। यह उसने मनोरमा के लिए लिखा था और उसकी टीका भी मनोरमा को समझाते हुए ही लिखी लगती है। इसमें उसकी रसिकता स्पष्ट होती है। तो भी उसकी इच्छा है कि स्त्रियों को भी इस शास्त्र में पारंगत होना चाहिए।" नागचन्द्र ने महारानीजी को वैठा रखने का उपाय किया।

"इतनी सद्भावना कन्नड़ के कवियों में है और इस सद्भावना के होते हुए भी कोई नाम लेने लायक कवयित्री हुई है? मेरे सुनने में तो नाम आया नहीं।" चन्दलदेवी ने बताया।

पढ़ाई आगे जारी रही। शान्तला में एक नयी स्फूर्ति आ गयी थी। बिट्टिदेव में श्रद्धाभाव स्पष्ट रूप से चमक उठा था। बल्लाल भी ऐसा लग रहा था जैसे वह बदल गया है।

नागचन्द्र ने पूछा, "अम्माजी, बताओ तो, तुमने अपने गुरु से कभी छन्दोम्बुधि का नाम सुना है?"

शान्तला ने उत्तर दिया, "गुरुजी ने छन्दोम्बुधि के चार अधिकार पढ़ा दिये हैं, दो अधिकार शेष है।"

"ऐसा है? इस छोटी उम्र में इतना समझना आसान हुआ?"

"मेरे गुरुजी भी जब तक पूर्ण रूप से समझ न लूँ तब तक बड़ी सावधानी से समझाकर बार-बार व्याख्या करते हैं।"

"प्रासों के बारे में तुमने क्या समझा है?"

"हर एक चरण का दूसरा अक्षर एक ही होना चाहिए। प्रासों के छह प्रकार हैं। नागवर्म का सूत्र है, 'हरि-करि-वृषभ-तुरंग शरभं अजुगलु मेनिप्प पट्प्रासवक्कुं तरुणि। निजदोपं बिन्दुगष्ठिरदोत्तुं व्यंजनं विसर्गं बकुं।' अर्थात् छह प्रकार के प्रास है कन्नड़ में, सिंह प्रास, गज प्रास, वृषभ प्रास, अज प्रास, शरभ प्रास, हय प्रास। ये काव्य के लिए अलंकार-प्राय है। इस सूत्र के प्रथमार्ध में इन प्रासों के नाम और उत्तरार्द्ध में उनके लक्षण बताये गये हैं। हर चरण का दूसरा अक्षर एक होना चाहिए जो प्रासाक्षर कहलाता है। प्रासाक्षर के पीछे ह्रस्व स्वर हो तो वह सिंह प्रास है, दीर्घ स्वर हो तो गज प्रास, अनुस्वार हो तो वृषभ प्रास, विसर्ग हो तो अज प्रास, व्यंजन अर्थात् प्रासाक्षर अन्य अक्षर से संयुक्त हो तो शरभ प्रास और सजातीय अक्षर से संयुक्त हो तो हय प्रास। इन प्रासों के न होने से काव्य शोभायमान नहीं होता, यह भी कहा है।" शान्तला ने कहा।

"तो क्या अधिकारों को कण्ठस्थ कर लिया है तुमने," नागचन्द्र ने पूछा।

"नहीं, न। कुछ को तो कण्ठस्थ करना ही चाहिए।" गुरुजी ने कहा है।

"ठीक, अभी जो तुमने सुनाया उसी का भाव मेरे पास के भोजपत्र ग्रन्थ में इस प्रकार लिखा है, सुनो, पढ़ता हूँ, निर्जदि यदोडे सिंगं। गज दीर्घ बिंदु वृषभ-वेंजन शरभं। अजनु विमर्ग हयनं युजमुखि दड़दक्क रंगप्लिवु पट् प्रासं।"

"एक ही कवि द्वारा वही विषय दो भिन्न-भिन्न रीतियों से कैसे लिखा गया, यह कैसे सम्भव हुआ।" बल्लाल ने प्रश्न किया।

"इसमें कोई एक कवि का स्वयं का लिखा है और दूसरा किसी नकल करने-वाले ने उसी को बदलकर लिख दिया है।"

"ऐसा करना ग़लत है न?" शान्तला ने पूछा।

"हाँ, अम्माजी, ऐसा करना ग़लत है। परन्तु यह सब वैयक्तिक वक्रता है, क्षम्य है। इस वक्रता से अर्थ बदला नहीं है, न। परन्तु कुछ जगह कविता में इसकी वक्रता के कारण मूल के बदल जाने का प्रसंग भी आ जाता है, वह काव्यद्रोह है।"

"ऐसा भी हुआ है?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"ऐसा भी हुआ है, राजकुमार, रन्न कवि के साहस-भीम-विजय काव्य में एक पद्य है जिसमें युद्ध-भूमि में अपने माता-पिता से दुर्योधन कहता है, फल्गुन और पवनसुत को समाप्त कर कर्ण और दुःशासन की मृत्यु का प्रतिकार करके निर्दोषी धर्म के साथ मिलकर चाहे तो राज्य करूँगा। इस पद्य का अन्तिम चरण कवियों के हाथ में पड़कर, 'निर्दोषिगलिक्के यमजनोलपुदुवालें' हो गया जिससे उसका अर्थ ही बदल गया, यजम यानी धर्म-निर्दोषी होने पर भी उससे मिलकर राज्य नहीं करूँगा। वास्तव में यह पंक्ति रन्न ने मूल में यों लिखी होगी, 'निर्दोषि बलिक्के यमजनोल् पुदुवालवें।' इसका अर्थ है, फल्गुन और पवनसुत को समाप्त करने के बाद धर्म के साथ मिलकर राज्य करूँगा। यह रन्न कवि से दुर्योधन की रीति है। इसलिए अन्य कवियों के हाथ में पड़कर बदले हुए रूप का परिशोधन करके ही काव्य का मूल रूप ग्रहण करना चाहिए।"

"जब यह मालूम पड़े कि यह पाठान्तर है तभी परिशोधन साध्य है। नहीं तो कल्पना ग़लत होगी न?" बिट्टिदेव ने कहा।

"सच है; क्या करें? कवि के द्वारा समर्पित कृति की राजा के आस्थान में जो नकल की जाती है उस नकल को मूल से मिलाकर ही सार्वजनिकों के हाथ में पहुँचाने का नियम हो तो इस तरह के दोषों का निवारण किया जा सकेगा। ऐसी व्यवस्था के अभाव में ये ग़लतियाँ काव्य में बनी रह जाती हैं। अच्छा, इन प्रासों के उदाहरण दे सकते हो तुम लोग?" बल्लाल ने कहा।

"आज जो पद्य पढ़ाया, 'सौन्दरिगं गणितमुं', उसमें वृषभ प्रास है।" बल्लाल ने कहा।

"वैसे ही 'ईवयसमन्' में गज प्रास और 'मुत्तंतिलोकगुरु' में हय प्रास है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"तेगेदुलसंपदोल्' में सिंह प्रास है।" शान्तला ने कहा।

"तो मतलब यह कि तुम लोगों को प्रास के लक्षण और उदाहरणों की अच्छी जानकारी हो गयी है। शेष दो प्रासों के लिए उदाहरण पठित भाग से स्मरण कर बताओगे, क्यों बड़े राजकुमारजी ?" कवि नागचन्द्र ने बल्लाल से ही सवाल किया।

बल्लाल ने कुछ सोचने का-सा प्रयत्न करके कहा, "कोई स्मृति में नहीं आता।" बिट्टिदेव की ओर देखकर पूछा, "आपको ?"

"ग्रन्थारम्भ में एक पद्य है, 'वत्सकुल तिलक' आदि। इसमें शरभ प्रास लगता है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"लगता क्यों, निश्चित रूप से कहिए कि यह शरभ प्रास है। अब शेष रह गया 'अज प्रास'। उसका लक्षण मालूम है न ?"

"प्रासाक्षर के पीछे विसर्ग होना चाहिए।" बल्लाल ने कहा।

"उदाहरण बताइये।"

थोड़ी देर मौन रहा। किसी ने कुछ कहा नहीं।

"अम्माजी, तुम्हें कुछ याद है ?" नागचन्द्र ने पूछा।

"नहीं गुरुजी, जब मुझे पढ़ाया गया तब किसी पूर्व-रचित पद्य का उदाहरण न देकर मेरे गुरुजी ने स्वयं पद्य रचकर उसके स्वरूप का परिचय दिया था। परन्तु वह मुझे याद नहीं।" शान्तला ने कहा।

"सच है। अज प्रासवाले पद्य बहुत विरले ही मिलते हैं। मुझे भी तुरन्त स्मृति में नहीं आ रहा है। याद करके कल बताऊँगा। नहीं तो तुम्हारे गुरु की तरह मैं भी स्वयं एक पद्य की रचना करके सुनाऊँगा। परन्तु काव्य-रचना में इस प्रास का प्रयोग बहुत ही विरला होता है, नहीं के बराबर," नागचन्द्र ने कहा।

"ऐसा क्यों ?" बल्लाल ने पूछा।

"विसर्ग-युक्त शब्द व्यवहार में बहुत कम हैं, इसलिए ऐसा है। अच्छा, आज का पाठ पर्याप्त प्रमाण में हुआ। अनेक उदात्त विचारों पर चर्चा भी हुई। कल से तीन दिन अनध्ययन है, इसलिए मैं नहीं आऊँगा।"

"तो हमें भी अध्ययन से छुट्टी मिली।" बल्लाल ने कुछ उत्साह से कहा।

"वैसा नहीं। अनध्ययन का अर्थ है नये पाठ नहीं पढ़ाना, तब भी पठित पाठ का अध्ययन और मनन तो चलता ही रहना चाहिए। इसलिए अब तक पठित विषयों का श्रद्धा से अध्ययन करते रहें।"

शिष्यों ने साष्टांग प्रणाम किया। आज के प्रणाम की रीति वैसी थी जैसी ब्राह्मी और सौन्दरी को बतायी गयी थी।

नागचन्द्र चला गया। रेविमय्या आया, बोला, "अप्पाजी, युवरानीजी ने आप को अकेले आने को कहा है।"

"सो क्यों ?" बल्लाल ने पूछा।

"सो मुझे मालूम नहीं। आज्ञा हुई सो मैं आया।" रेविमय्या ने कहा।
बल्लाल माँ के दर्शन के लिए चला गया।
रेविमय्या, बिट्टिदेव और शान्तला की दुनिया अलग ही बन गयी।

बेटे के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई एचलदेवी सोच रही थी कि उससे बात शुरू कैसे करे। वास्तव में कवि नागचन्द्र ने जो बात कही थी उसे सुनकर वह बहुत दुःखी थी। उस लड़की की उपस्थिति से इसे परेशान होने का क्या कारण हो सकता है? बहुत गम्भीर स्वभाव की लड़की है वह; होशियार और इंगितज्ञ। मुझे वह और उसके माता-पिता आत्मीय और प्रिय हैं, यह बात जानते हुए भी इस अप्पाजी की बुद्धि ऐसी क्यों, क्यों, क्यों? यह दूसरों के द्वारा जबरदस्ती सिखायी गयी बुद्धि है। इसे अभी जड़ से उखाड़ फेंकना चाहिए। उसने निश्चय किया कि अब की बार से अपने सभी बच्चों को वह अपने ही साथ रखेगी। यह निर्णय वह अपने स्वामी को भी बता चुकी थी। इन नये गुरु को भी वहीं साथ ले जाने का निश्चय कर चुकी थी। यहाँ अब थोड़े दिन ही तो रहना है। इससे इस चामव्वे के उपदेशों से बच्चों को दूर रखने का काम भी सध जायेगा। इसलिए अब किसी के मन को आघात न लगे, ऐसा व्यवहार करना चाहिए। वह बात शुरू करने के ढंग पर सोच ही रही थी कि बल्लाल आ गया। बोला, "माँ, आपने मुझे बुलाया था?"

"हाँ, आओ, बैठो। पढ़ाई समाप्त हुई?"

"हाँ, समाप्त हुई।"

"मैंने तुम्हारे गुरु के बारे में कभी नहीं पूछा। वे कैसे हैं?"

"बहुत अच्छे हैं?"

"पढ़ाते कैसे हैं?"

"अच्छा पढ़ाते हैं।"

"मैं सुनती हूँ कि तुम कभी-कभी पढ़ाई के समाप्त होने तक नहीं रहते हो?"

"कौन, छोटे अप्पाजी ने शिकायत की?"

"वह तुम्हारे बारे में कभी कोई बात नहीं करता।"

"तो उस हेग्गड़ेजी की बेटी ने कहा होगा?"

"वह क्यों कहने लगी, क्या तुम दोनों में झगड़ा है?"

"नहीं, वास्तव में उसने मुझसे कभी बात की हो, इसका स्मरण नहीं।"

"ऐसी हालत में उस पर तुम्हें शंका क्यों पैदा हो गयी?"

"छोटे अप्पाजी ने उसके द्वारा कहलाया होगा ?"

"नहीं, वह ऐसी लड़की नहीं। यदि मैं कहूँ कि उसका स्वभाव ही इस तरह का नहीं, तुम विश्वास करोगे ?"

"क्यों माँ, ऐसे क्यों पूछती हैं ? क्या कभी मैंने आपकी बातों पर अविश्वास किया है ?"

"अविश्वास का समय न आ जाये इसका डर है, अप्पाजी। अब तुम्हारी जैसी उम्र है उसमें माँ-बाप को तुम्हारे साथ मित्र का-सा व्यवहार करना चाहिए, किन्तु तुम्हारी कुछ रीति-नीतियाँ हमारे मन में आतंक का कारण बनी हैं। अगर मैं यह कहूँ तो तुम विश्वास करोगे ?"

"मैंने कोई ऐसा काम नहीं किया, माँ।"

"तुम्हारा व्यवहार हमारे आतंक का कारण है, इस बात का प्रमाण दूँ ?"

"उसके निवारण के लिए पूर्ण मन से यत्न करूँगा। कहिए, माँ।"

"तुम कौन हो, यह तुम समझते हो, अप्पाजी ?"

"यह क्या, माँ, ऐसा सवाल करती है ? क्या मैं आपका बेटा नहीं हूँ।"

"केवल इतना ही नहीं, अप्पाजी, तुम इस साम्राज्य के भावी महाराज हो।"

"वह मुझे मालूम है, माँ।"

"तुम कहते हो, मालूम है परन्तु इस गुरुतर भार की जानकारी अभी तुम्हें नहीं है अप्पाजी। इसके लिए तुमको किस स्तर का ज्ञान प्राप्त करना होगा, कितनी श्रद्धा के साथ अध्ययन करना पड़ेगा, कभी सोचा भी है तुमने ? मैं माँ हूँ। माँ के दिल में बेटे के प्रति प्रेम और वात्सल्य के सिवाय और कुछ नहीं होता, अप्पाजी। फिर भी यदि तुम गलती करो तो उन्हें आँचल में बाँधकर मैं चुपचाप बैठी नहीं रह सकती। तुम्हारी भलाई और प्रगति के लिए यह बात कह रही हूँ। उद्वेग-पूर्ण हृदय से। जब बात करती हूँ तो कुछ बातें तुम्हारे दिल को चुभ सकती हैं। यदि वैसी बात कही हो तो मुझे तुम क्षमा करना।"

"माँ, माँ, यह आप क्या कह रही हैं ? आपकी गालियाँ तो मेरे लिए आशीर्वाद हैं। धरित्री-सम क्षमाशील आप अपने बेटे के सामने ऐसी बात न कहें। मेरे कारण आप कभी दुःखी न हों, माँ। मैं आपका पुत्र हूँ, यह बात जितनी सत्य है उतनी ही सत्य यह भी है कि मैं कभी आपके दुःख का कारण नहीं बनूँगा।"

"ऐसा हो तो मुझसे सवाल के प्रति सवाल न करके साफ-सीधा और सत्य कहोगे ?"

"कहूँगा, माँ।"

"जिस-तिस के साथ बैठकर पढ़ना नहीं हो सकता, यह बात तुमने कही, यह सत्य है ?"

"हाँ, सच है। किसने कहा ?"

"सवाल नहीं करना, पहले ही कहा है, न ? जब तुमने मान लिया तब दूसरों की बात क्यों ? तुमने ऐसा क्यों कहा ?"

"मुझे ऐसा लगा, इसलिए कहा।"

"ऐसा क्यों लगा ? किसके कारण ऐसा लगा ?"

"उस हेग्गड़े की लड़की के आकर बैठने के कारण ऐसा लगा।"

"ऐसा क्यों लगा ?"

"यह तो नहीं कह सकता। उसके बारे में मेरे विचार बहुत अच्छे नहीं।"

"यह कहने की जरूरत नहीं। जब तुमने यह शंका प्रकट की कि उसने चुगली खायी होगी तभी मैंने समझ लिया कि तुम्हारे दिल में उसके प्रति सद्भावना नहीं है। उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?"

"कुछ नहीं।"

"कुछ नहीं, तो ऐसी भावना आयी क्यों, तुम्हारे दिल में इस भावना के उत्पन्न होने का कारण होना ही चाहिए। है न ?"

"मुझे ऐसा कोई कारण नहीं सूझता।"

"तब तो उसके बारे में जिन लोगों में अच्छी भावना नहीं होगी, ऐसे लोगों की भावना से प्रभावित होकर यह भावना तुम्हारे दिल में अंकुरित हुई होगी।"

"यह भी हो सकता है।"

"हममें ऐसा व्यक्ति कौन है ?"

"चामव्वे के घर में हेग्गड़ती और उनकी लड़की के बारे में अच्छी भावना नहीं।"

"तो क्या उनका अभिमत ही तुम्हारा भी मत है ?"

"शायद हो।"

"तो क्या ऐसा मान लें कि उन लोगों ने तुम्हारे दिल में ऐसी भावना पैदा करने का प्रयत्न किया है ?"

"इस तरह मेरे मन को परिवर्तित करने का प्रयत्न उन लोगों ने किया है, ऐसा तो नहीं कह सकता माँ, उस लड़की को उस दिन आपने जो पुरस्कार दिया उसे उसने स्वीकार नहीं किया, उसी दिन मैंने समझ लिया कि यह गर्वीली है। एक साधारण हेग्गड़े घराने की लड़की को अपनी प्रतिष्ठा का इतना ख्याल है तो हमें कितना होना चाहिए ?"

"तो तुम अपनी प्रतिष्ठा और बड़प्पन दिखाने के लिए महाराज बनोगे ? या प्रजा का पालन करने के लिए ?"

"उनसे पूछकर तो मैं राजा नहीं बनूँगा, न।"

"अप्पाजी, तुम्हारा मन बहुत ही निम्न स्तर तक उतर गया है। उसे, सहानुभूति क्या चीज है सो मालूम नहीं है। उसे अनुकम्पा का भी पता नहीं। गुण-

ग्रहण करना उसे मालूम नहीं। औदार्य से वह परिचित नहीं। तुम्हारा मन इसी तरह अगर बढ़ेगा तो तुम वास्तव में सिंहासन पाने के योग्य नहीं हो सकोगे। उस सिंहासन पर बैठने का अधिकार पाने के लिए कम-से-कम अब तो प्रयत्न करना चाहिए। तुम्हारे मन को पूर्वाग्रह की बीमारी लगी है। उसे पहले दूर करो। पीलिया के रोगी को सारी दुनिया पीली-पीली ही लगती है। पहले इस बीमारी से मुक्त हो जाओ। मेरे मन को एक ओर इस बात का दुःख है कि तुम शारीरिक दुर्बलता के कारण राज्योचित युद्ध नहीं सीख पाते हो, ऐसी हालत में बौद्धिक शक्तियाँ भी मन्द पड़ जाएँ तो क्या होगा, अप्पाजी? तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हें एक अच्छे गुरु मिले। ऐसी स्थिति में अक्लमंदों का भी साथ मिले तो वह ज्ञानार्जन के मार्ग को प्रशस्त बनाएगा। अध्ययन से तुम्हारा मन विशाल होगा। जिसका मनोभाव विशाल नहीं वह उत्तम राजा नहीं बन सकता। क्षमा, सहनशीलता, प्रेम, उदारता आदि गुणों को अपने में आत्मसात् कर लेने की प्रवृत्ति अभी से तुममें होनी चाहिए। चूँकि तुम मेरे पहलौटी के पुत्र हो इसलिए कल तुम महाराज बनोगे। इसलिए मुझे तुम्हें इन सब बातों को समझाना पड़ा। यदि बिट्टिदेव या उदय ऐसा होता तो मैं इतनी चिन्ता नहीं करती। क्योंकि सिंहासन तुम्हें और तुम्हारे बच्चों को ही मिलेगा, इस कारण जितनी जिम्मेदारी तुम पर है उतनी दूसरों पर नहीं। इसलिए सोचकर देखो तुम योग्य महाराज बनोगे या केवल प्रतिष्ठित महाराज ही बनोगे।"

"माँ, मुझे इतना सब सोच-विचार करने का मौक़ा ही नहीं मिला था। आज सचमुच आपके इन हित-वचनों को सुनने के योग्य मनोभूमि हमारे गुरु ने तैयार की है। विद्या से क्या साध्य है, उसकी साधना किस तरह हो इन बातों पर विस्तार के साथ चर्चा का अवसर आज बड़ी रानी के कारण प्राप्त हुआ। गुरुवर्य ने श्रीयुत और वाक्-श्रीयुत शब्दों में फरक बताकर उन्हें उदार और असूया-रहित कैसे होना चाहिए, यह सोदाहरण समझाया। आपने जो बातें कहीं वे प्रकारान्तर से उन्होंने भी बतायी हैं। माँ, कल से आपका यह बेटा आपके आशा-भरोसे को कार्यान्वित करने की ओर अधिक श्रद्धा से सक्रिय होगा। इस कार्य में सफल बनूँ, यही आशीष दीजिए। मैं आपका पुत्र हूँ, मैं गलती करूँ तो उसे ठीक कर योग्य रीति से मुझे चलाने का आपको अधिकार है।" कहते हुए उसने माँ के चरणों में अपना सिर रखा।

बड़े आनन्द से माँ ने उसके नत सिर पर आनन्दाश्रु गिराये, पुत्र को बाँहों में भरकर आलिंगन किया।

वड़ी रानीजी को दिये गये आश्वासन के अनुसार एक सप्ताह तक प्रतीक्षा की गयी। इसके पश्चात् विश्वासपात्र रेविमय्या और गोंक को एरेयंग प्रभु ने कल्याण भेजा। वड़ी रानीजी को इसकी खबर देकर युवरानी को भी बताने के उद्देश्य से वह युवरानी के अन्तःपुर गये। उनके आगमन की सूचना देने के लिए घण्टी बजी। युवरानी एचलदेवी अपने स्वामी के स्वागत के लिए द्वार पर पहुँचीं। उन्हें साथ ले जाकर पलंग पर बैठाया, फिर बोलीं, "कल्याण से अभी तक समाचार न मिलने से आपने रेविमय्या और गोंक को वहाँ भेजा है।"

"यह समाचार यहाँ तक इतनी जल्दी पहुँच गया ?"

"मुझसे कहे बिना रेविमय्या वैसे ही जाएगा क्या ?"

"हाँ, हमारा ध्यान इस बात पर नहीं गया था, यों यह समाचार सुनाने को ही हम इधर आये।"

"उनको क्या आदेश देकर भेजा है ?"

"रेविमय्या यह बताने वाला व्यक्ति नहीं। अवश्य जाने का आग्रह दुहराया है। वड़ी रानीजी ने स्वयं एक पत्र लिख भेजा है, क्या लिखा है, पता नहीं।"

"जैसे कि स्वामी ने बताया था, चक्रवर्ती को अब तक आना चाहिए था। है न ?"

"शायद रास्ते में चक्रवर्ती की सवारी से रेविमय्या की भेंट हो सकती है।"

"कल रात मुझे एक बात सूझी। चक्रवर्तीजी यहाँ पधारने ही वाले हैं। उनके यहाँ रहते छोटे अप्पाजी का उपनयन संस्कार करने का इन्तजाम कर दें तो अच्छा होगा।"

"ठीक ही है। हाँ, एक और बात है। अप्पाजी अब विवाह योग्य भी हो गया है। यह सवाल भी उठा है कि विवाह कब होगा।"

"स्वामी ने क्या जवाब दिया ?"

"इस विषय में युवरानी की राय लिये बिना हम कोई बात नहीं करेंगे।"

"चुप रहेंगे तो प्रश्नकर्ता क्या समझेंगे ?"

"उन सबके लिए एक ही उत्तर है, विद्याभ्यास के समाप्त होने के बाद इस पर विचार करेंगे।"

"इसमें मुझसे क्या पूछना। आपका निर्णय बिल्कुल ठीक है।"

"मतलब यह कि अभी अप्पाजी की शादी के विषय में नहीं सोचना चाहिए; यही न ?"

"तो अब वह भी हो जाये, यही प्रभुजी का विचार है ?"

"हाँ। शादी अभी क्यों नहीं होनी चाहिए ?"

"क्यों नहीं होनी चाहिए, यह मैं बताऊँगी। सुनिए," कहके नागचन्द्र ने उससे जो कुछ कहा और उसने फिर बल्लाल को बुलाकर उससे जो बातें कीं, आदि सब

विस्तार के साथ कह सुनाया।

सुनकर एरेयंग प्रभु आश्चर्यचकित हुए। "यह सारा विचार-विमर्श आप स्त्रियों में हुआ है, यह मुझे सूझा ही नहीं। अच्छा हुआ।"

"प्रभु से मेरी एक विनती है।"

"विनती के अनुसार ही होगा।"

"विनती क्या है, यह जाने बिना ही वचन दे रहे हैं, बाद में महाराज दशरथ से जैसा वरदान कैकेयी ने माँग लिया था वैसा कुछ कर लूँ तो?"

"हमारी रानी कैकेयी नहीं है। उसकी विनती में स्वार्थ नहीं होता, यह हमारा अनुभव है।"

"जिन-नाथ वैसी ही कृपा हम पर रखें।"

"विनती क्या है यह भी तो बताएँ।"

"छोटे अप्पाजी के उपनयन के तुरन्त बाद हम तीनों बच्चे और गुरु कवि नागचन्द्रजी सोसेऊरु जाकर रहें। यहाँ रहने पर बल्लाल की शिक्षा-दीक्षा में वांछित प्रगति नहीं हो सकेगी।"

"वर्तमान राजकीय स्थिति में हमारा बेलापुर में रहना सोसेऊरु में रहने से बेहतर है, इसीलिए वेलापुर में रहने का हमने निर्णय भी कर लिया है। अब फिर इस निर्णय को बदलना···।"

"उसकी आवश्यकता भी नहीं। दोरसमुद्र को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी हो, ठीक है।" बीच ही में एचलदेवी ने कहा।

"यह क्या, दोरसमुद्र पर हमारी रानी का इतना अप्रेम?"

"आपकी रानी कहीं भी रहे, कोई अन्तर नहीं पड़ता। उसके लिए कोई अच्छी, कोई बुरी जगह नहीं हो सकती। बच्चों के लिए, उनकी प्रगति के लिए, उनका यहाँ रहना अच्छा नहीं क्योंकि यहाँ सूत्र पकड़कर उन्हें चाहे जैसे नचानेवाले हाथ मौजूद हैं।"

"ठीक, समझ में आ गया। परन्तु कुमार ठीक रहे तब न?"

"अब वह ठीक रास्ते पर है। मन का द्वार बन्द होने से उसमें अँधेरा भरा हुआ था। उस अँधेरे में किसी के दिखाये टिमटिमाते दीपक के प्रकाश में जितना दिखा उतने को ही दुनिया मानने लगा था वह। अब उसके मन का दरवाजा खुला है, प्रकाश फैला है। भाग्य से गुरु अच्छे मिले हैं उसे।"

"परन्तु, हमने सुना है कि वे गुरु वह सूत्र पकड़नेवाले हाथों की ही तरफ़ से आये हैं।"

"आये उधर से जरूर हैं, परन्तु निर्मल-चित्त हैं। उनमें कर्तव्य के प्रति अपार श्रद्धा है। वे न्याय-निष्ठुर भी हैं, उनमें इसके लिए आवश्यक आत्म-विश्वास और धीरज भी है।"

"तो ठीक है, वही करेंगे। परन्तु ये सब बातें गुप्त ही रखें। कहीं किसी तरह के ऊहापोह को मौक़ा न मिले। एकदम गुप्त रखें।"

"आपकी रानी जीत गयी। उपनयन के सन्दर्भ में एक बार महाराज से मिल लें और उनसे आशीर्वाद ले लें फिर जितनी जल्दी हो, मुहूर्त निश्चित करके निमन्त्रण भिजवाने की व्यवस्था करनी होगी।"

"हाँ, ऐसा ही होगा। बलिपुर के हेग्गड़े भी वापिस जाने की उतावली कर रहे हैं। सहूलियत होने पर जाने को कहा था। अब फिर से उन्हें रोक रखना पड़ेगा।"

"अच्छा गुरुबलयुक्त मुहूर्त शीघ्र मिल जाये तो ठीक है, यदि तीन-चार महीने तक मुहूर्त की प्रतीक्षा करनी पड़े तो वे अब चले जायें और उस समय फिर आ जायें।" युवरानी ने सलाह दी।

"तब तक हम यहीं रहें?"

"न, मुहूर्त निश्चित करके हम वेलापुर चलें और उपनयन संस्कार के लिए यहाँ आ जायें। यहाँ से नज़दीक ही, तीन कोस की दूरी ही तो है।"

कुमार बिट्टिदेव की जन्मपत्री से ग्रहगतियाँ समझकर ज्योतिषी ने कहा, "इस वर्ष ग्रहबल अनुकूल नहीं है, अतः उपनयन के योग्य मुहूर्त की प्रतीक्षा करनी होगी। मातृकारक चन्द्र, पितृकारक सूर्य और प्राण-समान गुरु ग्रहों की अनुकूल और बलवान् स्थिति अगले वर्ष में होगी। कालातीत होने पर भी यह कार्य उस समय करना उत्तम होगा, क्योंकि गुरु तब कर्कटक राशि में होगा जो राजकुमार की जन्मराशि और लग्न के लिए अनुकूल स्थान है।"

"मैं आपकी राय से सहमत हूँ। फिर भी, महाराज की और युवरानी की सलाह, शान्ति-कर्म करके भी अभी सम्पन्न करने की हुई तो आपको तदनुसार ही मुहूर्त निकालना होगा।" प्रभु एरेयंग ने कहा।

विचार-विनिमय के बाद उपनयन आगामी वर्ष के लिए स्थगित हुआ। तय हुआ कि हेग्गड़ेजी सपरिवार बलिपुर जाएँ युवराज बड़ी रानीजी, युवरानी और राजकुमारों के साथ वेलापुर जायें। दोनों के प्रस्थान का निश्चित समय एक ही था, तो भी युवराज के प्रस्थान की सूचना युवराज के अतिरिक्त किसी को नहीं थी।

बलिपुरवालों के प्रस्थान का समाचार सुनकर चामव्वा बहुत ही आनन्दित हुई। करीब पन्द्रह दिन से राजकुमार उसके यहाँ नहीं आ रहे थे, तो उसने समझा कि

अन्तःपुर में किसी षड्यन्त्र की योजना बन रही है। उसके सम्बन्ध में कुछ जानकारी पाने की उसने बहुत कोशिश भी की, मगर वह सफल नहीं हुई। उसकी यह भावना थी कि उसकी लड़कियाँ उस-जितनी बुद्धिमती नहीं। अगर कोई दूसरी लड़कियाँ होतीं तो किसी-न-किसी बहाने अन्दरूनी बातें समझ लेतीं।

पद्मला भी चिन्ताक्रान्त हुई। दिन में कम-से-कम एक बार दर्शन देने के लिए आनेवाले राजकुमार यों एकदम आना ही छोड़ दें। यह विरह उससे सहा नहीं गया। दो-तीन बार उनसे मिलने के ही उद्देश्य से किसी बहाने अन्तःपुर में गयी, फिर भी मौक़ा नहीं मिला। इससे वह मन छोटा करके लौटी थी। परन्तु चामला से उसे एक बात मालूम हुई थी कि बड़े राजकुमार आजकल अध्ययन पर विशेष ध्यान दे रहे हैं। थोड़ा-बहुत घोड़े की सवारी का भी अभ्यास चल रहा है। उसे यह समाचार उस मासूम लड़की शान्तला से मालूम था। शान्तला और चामला समान-वयस्का थीं और एक तरह से स्वभाव भी दोनों का एक-सा था, जिससे उनमें मैत्री अंकुरित हो गयी थी। माचिकब्बे ने शान्तला को कुछ सचेत कर दिया था नहीं तो यह मैत्री-भाव और अधिक गाढ़ा होता। बिट्टिदेव ने उसे बताया था कि चामला की विद्यार्जन में बहुत श्रद्धा है। इसी मैत्री के फलस्वरूप उसे बल्लाल के बारे में इतनी जानकारी हुई थी। कल महाराज बननेवाले को किस तरह विद्याओं में परिपूर्णता आनी चाहिए, सब कलाओं में निपुणता प्राप्त करना कितना ज़रूरी है, यह सब बताकर प्रसंगवशात् शान्तला ने चामला से बल्लाल की काफ़ी प्रशंसा की थी।

'यह बात चामला से पद्मला को और पद्मला से उसकी माँ चामव्वे को मालूम हुई। इससे चामव्वा के मन में कुतूहल के साथ यह शंका भी उत्पन्न हो गयी कि अन्दर-ही-अन्दर कुछ पक रहा है। तरह-तरह की बातें उसके मन में उठने लगीं, महाराज बननेवाले को क्या चाहिए और क्या नहीं, यह बतायेगी यह छोटे कुल की बच्ची? राजकुमार उसके कहे अनुसार चलनेवाला है? स्पष्ट है कि इसमें हेग्गड़ती का बहुत बड़ा हाथ है। परन्तु अब तो वे सब चले ही जाएँगे। मेरी बच्ची का यह भाग्य है। उन लोगों के फिर इधर आने से पहले अपनी लड़की के हाथ से राजकुमार के गले में वरमाला न पहनवा दूँ तो मैं चामव्वा नहीं।'

हेग्गड़ती के विषय में चामव्वे के विचार अच्छे नहीं थे, और इन विचारों को उसने छिपा भी नहीं रखा था। इस बात को हेग्गड़ती भी जानती थी। चामव्वा ने विचार किया कि अबकी बार उसके चले जाने से पहले ऐसा कुछ नाटक रचकर हेग्गड़ती के मन से इस भावना को जितना बन सके दूर करें।

चामव्वा के इन विचारों के फलस्वरूप उनके जाने के पहले दिन हेग्गड़े, हेग्गड़ती और उनकी लड़की के लिए एक भारी भोज देने का इन्तज़ाम किया। खुद दण्डनायक जाकर हेग्गड़े को निमन्त्रण दे आया। चामव्वे ने हेग्गड़ती को

निमन्त्रित करते समय एक बड़ा नाटक ही रच डाला।

हेग्गड़ती माचिकव्वे ने सहज भाव से कहा, "चामव्वाजी, इतना सब आदर-सत्कार हमारे लिए क्यों, हम तो पत्ते के पीछे छिपकर रहनेवाली कैरियाँ हैं ताकि हमें कोई देखे नहीं, और हम साधारण लोग ही बने रहें। आप-जैसों का प्रेम और उदारता हम पर बनी रहे, इतना ही पर्याप्त है। हमें आशीर्वाद दें कि हमारा भला हो, हमारे लिए यही बहुत है। कृपा करके यह आयोजन न करें।"

"आप अपने को सामान्य मान भी लें, किन्तु हम कैसे मानें? देखिए, बड़ी रानीजी और युवरानीजी आप लोगों पर कितना प्रेम और विश्वास रखती हैं।"

"वह उन लोगों की उदारता है. और हमारा भाग्य है।"

"इतना ही नहीं, आपकी योग्यता का भी महत्त्व है। जब आपको इतना ज्ञान है तब आप पत्ते के पीछे छिपी कैसे रह सकती हैं? मेरा निमन्त्रण नहीं मानेंगी तो मैं युवरानीजी से ही कहलाऊँगी।"

"ऐसी छोटी-छोटी बातों के लिए उन्हें कष्ट नहीं देना चाहिए। ठीक है, आएँगे। प्रेम से खिलाती हैं तो इनकार क्यों करें?"

"हमारे प्रेम के बदले हमें आपका प्रेम मिले तो हम कृतार्थ हैं।"

"प्रेम जितना भी बाँटो वह कम नहीं होता। तब पीछे कौन हटे? वास्तव में आप-जैसे उच्च स्तर के लोगों की प्रीति हम जैसों के लिए रक्षा-कवच है।" माचिकव्वे ने कहा।

"एक और विनती है। दण्डनायकजी आपकी पुत्री का गाना सुनना और नाच देखना चाहते हैं। कृपा हो सकेगी?"

"उसके पास उसके लिए आवश्यक कोई साज नहीं है। इसके अलावा उसके गुरु भी साथ नहीं। इसलिए शायद यह नहीं हो सकेगा। इसके लिए क्षमा करनी पड़ेगी। खुद युवरानीजी ने भी चाहा तो उसने केवल तम्बूरे की श्रुति पर गाया था। नृत्य नहीं हो सका।"

"तो यहाँ भी उतना ही हो। मेरे बच्चों के गुरुजी हैं। चाहें तो नृत्य का निर्देशन वे कर देंगे।"

"शायद गाना हो सकता है, नृत्य तो हो ही नहीं सकेगा। फिर भी उससे पूछे बिना मैं स्वीकार नहीं कर सकूँगी। अम्माजी कह रही थी कि आपकी भी बच्चियों ने बहुत अच्छा सीखा है। हममें इतनी हैसियत नहीं कि उनसे गायन और नृत्य दिखाने की प्रार्थना करें। बड़ी रानीजी जब यहाँ पधारी थीं तब उन्होंने भी आपकी बच्चियों का नृत्य देखना और गाना सुनना चाहा था। उन्हें यह अवसर मिलता तो हम भी देख लेते।"

"बड़ी रानीजी का जन्मदिन अब एक पखवारे में आनेवाला है। उस समय उसकी व्यवस्था करने का निश्चय किया है। तब तक आप लोग भी रह जातीं

तो अच्छा होता।"

"हम स्त्रियों के लिए क्या है, रह सकती थीं। परन्तु हमारे स्वामी को अनेक कार्य हैं। हम केवल उनके अनुयायी ही तो हैं।"

"सो तो ठीक है। वास्तव में हम आपके कृतज्ञ हैं। यदि आप लोग राजकुमार के उपनयन के सन्दर्भ में नहीं आये होते तो मेरी बच्चियाँ मेरी तरह खा-पीकर मोटी-झोटी बनकर बैठी रहती। आपकी बेटी की होशियारी, बुद्धिमत्ता, शिक्षा-दीक्षा आदि देखकर वे भी ऐसी ही शिक्षा पाने और बुद्धिमती बनने की इच्छा करने लगी। उनके शिक्षण की व्यवस्था हुई। हमारी चामला को तो आपकी बेटी से बहुत लगाव हो गया है। दिन में एक-दो बार उसके बारे में बात करती ही रहती है।"

"शान्तला भी आपकी दूसरी बेटी की याद करती रहती है। उसको तो वह अपनी दीदी ही समझती है। आपकी बड़ी बेटी इतनी मिलनसार नहीं दीखती।"

"क्या करें, उसका स्वभाव ही ऐसा है। वह ज्यादा मिलनसार नहीं है।"

"हमारी लड़की भी कुछ-कुछ ऐसी ही है।"

"फिर भी वह होशियार है। वह परिस्थिति को अच्छी तरह समझ लेती है।"

"ये सब प्रशंसा की बातें हैं। उसकी उम्र ही क्या है?"

"हमारी पद्मला ही की तरह हृष्ट-पुष्ट है, वह भी।"

"शरीर के बढ़ने मात्र से मन का विकास थोड़े ही होता है, वास्तव में हमारी शान्तला आपकी दूसरी बेटी से एक साल छोटी है।"

"आप भी खूब हैं, हमारी बच्चियों की उम्र का भी आपने पता लगा लिया। ठीक ही तो है, कन्या के माता-पिता की पड़ोसी की बच्चियों पर भी आँख लगी रहती है।"

"पिछली बार जब मैं यहाँ आयी थी तब आप ही ने तो बताया था। इसलिए मुझे मालूम हुआ। नहीं तो दूसरों की बातों में हम दखल क्यों दें?"

"ठीक है। मुझे स्मरण नहीं रहा। लड़की बड़ी होती जा रही है। कहीं इसके लिए योग्य वर की खोज भी कर रही है कि नहीं?"

"फिलहाल हमने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं सोचा।" चामव्वाजी।

"फिलहाल शादी न भी करें, फिर भी किसी योग्य वर की ताक में तो होंगी ही। वर खोज किये बिना बैठे रहना कैसे सम्भव है? इकलौती बेटी है, अच्छी तरह पाल-पोसकर बड़ा किया है। साधारण लोगों के लिए जो जरूरी नहीं उन सब विद्याओं का भी शिक्षण दे रही हैं उसे आप। यह सब देखने से ऐसा लगता है कि कहीं कोई भारी सम्बन्ध आपकी दृष्टि में है।"

"जो वास्तविक बात है उसका मैंने निवेदन किया है। आप पता नहीं क्या क्या सोचकर कहती हैं, मैं इस सबका उत्तर दे नहीं सकती, चामव्वाजी।"

"भारी सम्बन्ध की खोज करने में ग़लती क्या है ? माता-पिता की यह इच्छा स्वाभाविक ही है कि उनकी बेटी अच्छी जगह सुखी होकर रहे।"

"फिर भी सबकी एक सीमा होती है, चामव्वाजी।"

"हाँ, वह तो है ही। अच्छा, मैं चलूँ। सब तैयार हो जाने पर मैं नौकर के द्वारा खबर भेज दूँगी।"

युवरानी और बड़ी रानी को इस न्यौते का समाचार मालूम हुआ। इसमें उन्हें कुछ आश्चर्य भी हुआ। फिर भी सद्भावना का स्वागत करना उनका स्वभाव था। इसलिए उन्हें एक तरह से असमंजस ही लगा। परन्तु युवरानी की समझ में यह नहीं आया कि दण्डनायक उसकी पत्नी ने राजकुमारों से न्यौता कैसे और क्यों स्वीकार करा लिया। युवरानी एचलदेवी ने सोचा, जो भी हो, अब तो इस राजधानी से ही छुटकारा मिल जायेगा।

चामव्वा ने बहुत अच्छा भोज दिया। चामव्वे ने हेग्गड़ती माचिकव्वे से पूछा, "स्त्रियों के लिए और पुरुषों के लिए व्यवस्था अलग-अलग रहे या एक साथ?"

माचिकव्वे ने कहा, "दण्डनायकजी मान लें तो व्यवस्था अलग करने की शायद आवश्यकता नहीं। यह आप पर है, चामव्वाजी।"

चामव्वे भी यही चाहती थी। पाँच-पाँच की दो कतारें बनी थीं, एक स्त्रियों की, दूसरी पुरुषों की, आमने-सामने। छोटे राजकुमार उदयादित्य ने शान्तला के पास बैठने की ज़िद की। आख़िरी वक़्त पर, इसलिए चामला को बिट्टिदेव के पास बैठना पड़ा।

रंगोली के रंग-बिरंगे चित्रों के बीच केले के पत्तों पर परोसा गया भोजन सबने मौनपूर्वक किया। बल्लाल कुछ परेशान दिख रहा था। सचमुच वह पद्मला की दृष्टि का सामना नहीं कर पा रहा था। उससे मिले एक पखवारा हो चुका था। वास्तव में बात यह थी कि उसने उसके बारे में सोचा तक नहीं था। परन्तु अब वह अपने को अपराधी मान रहा था। उसके मन में कुछ कशमकश हो रही थी कि आज कुछ अनिरीक्षित घटना घटेगी। उसे यह बात मालूम थी कि पद्मला स्वभाव से कुछ हठीली है। उसका वह स्वभाव ठीक है या नहीं, इस पर विमर्श करने की ओर उसने ध्यान नहीं दिया था। ज़िद्दी होने पर भी वह उसे चाहता था, मन से दूर नहीं रख सकता था। उसके दिल पर पद्मला का इतना गहरा प्रभाव पड़ा था। पद्मला ने भी भोज करते समय बल्लाल को अपनी तरफ़ आकर्षित करने

का प्रयत्न किया था। परन्तु उस समय उसने अपनी दृष्टि को पत्तल पर से इधर-उधर नहीं हटाया।

दण्डनायक और चामव्वा ने बहुत आजिजी के साथ मेजबानी की। हेग्गड़े दम्पति इस तरह के सत्कार-भरे शब्दों के आदी नहीं थे। उनके इस सत्कार से इनका संकोच बढ़ गया था। सत्कार के इस आधिक्य के कारण भोजन भी गले से नहीं उतर रहा था।

हेग्गड़ेजी ने सोचा था कि मरियाने दण्डनायक की पहली पत्नी के पुत्र माचण दण्डनाथ और डाकरस दण्डनाथ भी यहाँ इस अवसर पर उपस्थित होंगे। इनमें डाकरस दण्डनाथ से हेग्गड़े मारसिंगय्या का कुछ विशेष लगाव था। इसका कारण यह था कि उसके साले सिंगिमय्या और डाकरस दण्डनाथ के विचारों में साम्य था और दृष्टिकोण में अन्तर नहीं था। माचण दण्डनाथ कुछ अहंकारी था, उसने इसे पिता के गुणों का ही प्रभाव समझा था। यहाँ आने के बाद एक तरह से मारसिंगय्या ने गुप्तचर का काम किया था, यह कहें तो ग़लत नहीं होगा। उनकी गुप्तचरी का लक्ष्य केवल इतना पता लगाना था कि राजघराने से सम्बद्ध रहनेवाले और राजभवन के अधिकारी वर्ग में रहनेवाले लोगों में कौन कितनी निष्ठा के साथ काम करता है और उनकी निष्ठा कितनी गहरी है। युवरानी एचलदेवी के साथ जो विचार-विनिमय हुआ था उसके परिणामस्वरूप यह गुप्त आदेश मारसिंगय्या को प्रभु ने दिया था। प्रभु के इसी आदेश से चिण्णम दण्डनायक ने भी पता लगाने की कोशिश की थी, परन्तु वह सफल नहीं हुआ था। इस अवसर पर उपस्थित न पाकर मारसिंगय्या ने पूछा, "छोटे दण्डनायक कहाँ हैं, दिखते नहीं ?"

"वे अलग रहते हैं। हमारी घरवाली का अभिमत है कि परिवार में सुखी रहना हो तो उन्हें स्वतन्त्र रखना चाहिए। इसलिए वे दोनों अपने-अपने परिवार सहित अलग-अलग रह रहे हैं। आज बुलाने का मेरा विचार था। परन्तु आज डाकरस के घर में उनके सास-ससुर की विदाई है। माचण और उसकी पत्नी वहाँ गये हैं। यह पूर्व-निश्चित कार्यक्रम था। यों तो हम सबको वहाँ उपस्थित रहना चाहिए था।"

"ठीक ही तो है, वे तो समधी-समधिन हैं। ऐसी हालत में यहाँ यह सब करने की तकलीफ़ क्यों उठायी ?"

"समधी लोग आते-जाते ही रहते हैं। साल में, दो साल में यह होता ही रहता है। परन्तु आप लोगों का बार-बार आना-जाना नहीं हो सकता। हमारे युवराज और बड़ी रानीजी दोनों को आपके विषय में विशेष आदर और प्रेम है। आप लोगों के आगमन से हमारा घर भी पवित्र हो जाए, इसीलिए यह इन्तज़ाम किया है। मेरे दिमाग़ में इस आयोजन की बात नहीं आयी थी, आख़िर हम योद्धा ही ठहरे।

यह सलाह और यह आयोजन हमारी घरवाली का है। वे ही इस सबकी सूत्र-धारिणी हैं।"

"योद्धाओं के दिल में भी प्रीति रहती है। आप ही कहिये, हेग्गड़ेजी।" चामव्वे ने कहा।

"मारो-काटो, ये सब बाहर की बातें हैं, घर के अन्दर की बातें कुछ और ही होती हैं।

"हाँ, हाँ, ऐसी बातें कर रहे हैं मानो बहुत भुगत चुके हैं।" चामव्वा ने व्यंग्य किया।

"हाँ, सत्य कहूँ तो स्त्रियों के लिए यह आश्चर्य ही लगता है।" ये बातें अनिरीक्षित ही चल निकली जिससे एक आत्मीयता का वातावरण पैदा हो गया था। वहाँ के इस वाग्युद्ध को छोटे सब कुतूहल से सुन रहे थे।

हेग्गड़े मारसिंगय्या ने हेग्गड़ती की ओर कनखियों से देखा। वह मुसकरायी। बात चल ही रही थी।

"हाँ, यह दण्डनायक का वंश हरिश्चन्द्र की सन्तति है न?" चामव्वे बोली।

"यह मेरी-तेरी बात है, वंश की बात क्यों?"

"मेरी-आपकी बात होती तो आप सारी स्त्रियों पर आक्षेप क्यों करते कि सत्य कहने पर स्त्रियों को आश्चर्य होता है। आप ही कहिए, हेग्गड़तीजी।"

"ऐसी सब बातें आपसी विश्वास पर अवलम्बित हैं। एक तरफ़ अविश्वास उत्पन्न हो जाए तो सत्य भी आश्चर्यजनक हो सकता है।"

"तो आपकी राय किस तरफ़ है?" फिर प्रश्न किया चामव्वा ने।

"मैं किसी की तरफ़दारी नहीं कर रही हूँ। मैंने तो तत्त्व की बात कही है। यदि मैं अपनी बात कहूँ तो मेरे स्वामी मुझसे कभी झूठ नहीं बोलते, यह मेरा विश्वास है। इसलिए आश्चर्य का प्रश्न ही नहीं उठता।"

"सुना, हेग्गड़तीजी भी तो स्त्री ही हैं न। सत्य कहने पर उन्हें आश्चर्य नहीं होता। वे ख़ुद कह रही हैं। इसलिए सब स्त्रियों को एक साथ मिलाकर मत बोलिए।"

"हाँ, वही हो। चामव्वा को हेग्गड़तीजी की टोली में शामिल नहीं करेंगे। ठीक है न?" दण्डनायक ने कहा।

"वह सिरजनहार ब्रह्मा ख़ुद एक न बना सका तो यह दण्डनायकजी से कैसे सम्भव होगा।"

"अच्छा कहा, मानो उस ब्रह्मा को ख़ुद देख आयी हो, बात करने में क्या रखा है।" मरियाने दण्डनायक ने व्यंग्य किया।

"मैंने यह तो नहीं कहा कि मैंने ब्रह्मा को देखा है।" चामव्वे ने कहा।

"बात कुछ बिगड़ती देखकर हेग्गड़ेजी ने बात का रुख़ बदलते हुए कहा,

"दण्डनायिकाजी, आपने ये जो मण्डक बनवाये हैं वे इतने बड़े हैं जितना बड़ा आपका मन है। उसे देखते ही मुँह से लार टपकने लगती है। आपकी रुचि तो कल्पना से ही बाहर है। उसे इस ढंग से तैयार करना हो तो उसकी पूर्व-तैयारी कितनी होनी चाहिए! गूँधना, उसकी लोई बनाना, आग सिलगाना, कड़ाई चढ़ाना, लोई को पाटी पर बेलना, उसे कड़ाई में फेराकर देकर पकाना। इतने परिश्रम और साधना से जैसे मण्डक का स्वाद ले सकते हैं वैसे ही तप से तपकर साधना द्वारा मन को तैयार करें तो ब्रह्मा का दर्शन भी हो सकता है। इसे असाध्य क्यों समझती हैं? साधना करके दिखा दीजिए। तब देखें, दण्डनायकजी क्या कहते हैं।" मारसिंगय्या ने कहा।

"हाँ, हाँ, इन अकेले का मन तृप्त करने के लिए इतना सारा परिश्रम क्यों, ब्रह्मा से माँगने-जैसा वर ही क्या है। ब्रह्मा ने जब यहाँ भेज दिया तभी माथे पर लिख भेजा है। उसे साध्य बनाने के लिए जरूरी मन भी उसने ही दिया है। बस इतनी तृप्ति रहे तो काफ़ी है। देकव्वे, हेग्गड़ेजी को एक मण्डक और परोस।"

"मैंने मण्डक माँगा नहीं, उसका उदाहरण दिया है।" पेट पर हाथ फेरते हुए हेग्गड़े ने कहा।

इतने में मण्डक की परात और दूध का लोटा लिये देकव्वा आयी। मारसिंगय्या ने पत्तल पर झुककर कहा, "मैं खा ही नहीं सकता।"

दण्डनायक ने कहा, "देकव्वे एक काम करो। स्त्री-पुरुष के भेद बिना सब बड़ों को आधा-आधा और छोटों को उस आधे में आधा-आधा मण्डक परोस दो। कोई इनकार न करे। यह हमारी अतिथियों के प्रति श्रेयःकामना का प्रतीक होगा।"

"अतिथियों के श्रेय के साथ अतिथियों का भी श्रेय सम्मिलित है, इसलिए यह भारी होने पर भी खा लेंगे।" मारसिंगय्या ने कहा।

भोजन के पश्चात् सबने थोड़ा विश्राम किया। यह तय था कि विश्राम के पश्चात् सब फिर मिलेंगे। हेग्गड़े दम्पत्ति के लिए एक कमरा सजाकर रखा गया था। बिट्टिदेव, चामला, शान्तला और उदयादित्य बाहर के प्रांगण में ही रहे।

हाथ धोकर बल्लाल सीधा अपनी आदत के मुताबिक उस कमरे की ओर गया जहाँ वह बैठा करता था। यह कहने की जरूरत नहीं कि पद्मला वहाँ पहले ही पहुँच चुकी थी।

बल्लाल ने जिस परिस्थिति की प्रतीक्षा की थी वह अब उपस्थित हो गयी। वह चाहता तो उसका निवारण कर सकता था। परन्तु उसका मन निवारण करने से पीछे हटता रहा। इसलिए वह सामना करने के लिए तैयार हो रहा था। वह इस प्रतीक्षा में चुप रहा कि पहले वही बोले।

वह अन्दर ख़ुद आयी थी। बल्लाल ने उसे बुलाया नहीं था। बैठने को भी

नहीं कहा। उसे यह भी नहीं सूझा था कि क्या करना चाहिए। वह मौन रही, पत्थर की मूर्ति की तरह।

बल्लाल को आशंका थी कि वह गुस्सा करेगी। उससे यह मौन सहा न गया। उसकी ओर देखा, वह ज्यों-की-त्यों अटल खड़ी रही। उसके मुँह से बात निकली, "वहीं क्यों खड़ी हो?" परन्तु इस प्रश्न की क्या भावना थी, उसे मालूम नहीं पड़ा।

पद्मला ने उत्तर तो दिया, "क्या करें?" परन्तु अन्दर का दुःख बढ़ने लगा था, हिचकियाँ बँध गयीं, आँसू बहने लगे।

बल्लाल उठा, उसके पास गया। पूछा, "क्या हुआ?" उसकी आवाज़ में कुछ घबड़ाहट थी।

आँचल से आँसू पोंछकर बोली, "क्या हुआ, सो मुझे क्या मालूम? अपने न आने का कारण आप ही जानें। अगर मुझसे कोई ग़लती हुई थी तो बताने पर अपने को सुधार लेती। परन्तु बहुत समय तक इस तरह न आये तो…" उसका दुःख दुगना हो गया। बात रुक गयी।

"आओ, बैठो।"

"आपको मुझ पर जब गुस्सा हो…"

"क्या मैंने गुस्से में बात की है?"

"तो फिर आये क्यों नहीं?"

"फ़ुरसत नहीं मिली, बहुत अधिक अध्ययन करना था।"

"वह सब बहाना है, मुझे मालूम है। आपका अन्यत्र आकर्षण है। उस हेग्गड़ती की लड़की का गाना, नाचना और पाठ, साथ-साथ। उसका संग चाहिए…।"

"पद्मला, बेवकूफ़ों की तरह बातें मत करो। अण्ट-सण्ट बातें करोगी तो मुझे गुस्सा आयेगा। अभी खाते वक़्त जो बात सुनी वह क्या इतनी जल्दी भूल गयीं। विश्वास होना चाहिए परस्पर, दोनों में। किसी एक में अविश्वास हो जाए तो फल-प्राप्ति नहीं होगी। हेग्गड़ती ने बहुत अनुभव की बात कही। मैं सत्य कहूँ तो भी तुम न मानो तो मैं तुम्हें समाधान नहीं दे सकता। लो मैं अब चला।" बल्लाल ने कहा।

"जिन पर विश्वास करते हैं उनसे खुले दिल से बातें नहीं करें इस प्रश्न का उत्तर हेग्गड़तीजी क्या देंगी, यह उनसे पूछ आयेंगे?"

"मेरे जवाब देने से पहले तुम्हें यह बात नहीं कहनी चाहिए थी, पद्मला। तुम सबको उस हेग्गड़े के घरवालों से कुछ दुराव है, न जाने क्यों, यह बात जब कह रहा हूँ तो खुले दिल से ही कह रहा हूँ। उनसे तुम लोगों को क्या कष्ट हुआ है?"

"मुझे तो कुछ नहीं हुआ।"

"तो और किस-किस को तकलीफ़ हुई है?"

"मैं नहीं जानती।"

"फिर उनके बारे में ही ऐसी बातें क्यों?"

"मेरी माँ कहती थी कि वे हम-जैसी हैसियतवालों के साथ रहने लायक नहीं।"

"इसी से तुमने ऐसा विचार किया?"

"हाँ, मुझे क्या मालूम। सर्वप्रथम जब उनको देखा मेरी माँ ने, तब से वे मुझसे यही कहती आयी हैं। इसलिए मुझमें भी यही भावना है।"

"अगर यही बात हो तो आज का यह सारा न्यौता-न्यौता क्यों किया?"

"मुझे क्या मालूम बड़े लोग क्या काम क्यों और कब करते हैं यह सब मुझे मालूम नहीं होता।"

"हेग्गड़े की लड़की तुम्हारी बग़ल में खाने बैठी इसलिए तुम्हारे गले से खाना नहीं उतरा, है न?"

"खाना गले से नहीं उतरा, यह सत्य है, परन्तु बग़ल में हेग्गड़े की लड़की बैठी थी, इसलिए नहीं उतरा, यह ग़लत है। न उतरने का कारण यह था कि सामने बैठे होकर भी मेरी ओर एक बार भी आपने नहीं देखा।"

"मेरे न देखने का सम्बन्ध तुम्हारे गले से खाना न उतरने से कैसे हो सकता है?"

"आप मेरी तरह लड़की होते और किसी लड़के से प्रेम करते और वह इसी तरह कतराकर आपके सामने होने पर भी देखी-अनदेखी कर देता तो समझते ऐसा क्यों होता है।"

"तुम्हारी ओर न देख पाना मुझे भी खटक रहा था, इसलिए ऐसा हुआ। अब तो सब ठीक हो गया न?"

"क्या ठीक हो गया, आप आइन्दा दिन में कम-से-कम एक बार दर्शन देंगे, तभी यह ठीक हो सकता है।"

"तो मतलब यह कि रोज मिलते रहें, तभी प्रेम बना रह सकता है। नहीं तो नहीं। यही न?"

"कैसे कहें, आप कल महाराज बननेवाले हैं। महारानी बनने की इच्छुक अनेकों में से किसी अन्य ने आपको अपनी तरफ़ आकर्षित करके फँसा लिया हो, तो हमें क्या पता लगे?"

"तो तात्पर्य यह कि जो भी मुझसे प्रेम करती है वह केवल इसलिए कि मैं महाराज बननेवाला हूँ। यही न?"

"इसमें गलती क्या है?"

"इससे यह स्पष्ट है कि प्रेम से भी ज्यादा बलवान् महारानी बनने का स्वार्थ है। ऐसी लड़की पर विश्वास ही कैसे करें।"

"आप महाराज बनेंगे, यह सत्य है। सचमुच आपसे प्रेम करें तब भी पदवी से प्रेम हो जायेगा। स्त्री के मन को समझे बिना उसकी निन्दा करें तो कोई प्रयोजन सिद्ध होगा?"

"तो मैं एक बात स्पष्ट पूछ लूँ, पद्मला। अगर मैं महाराज नहीं बनूँ तब भी तुम मुझसे ऐसे ही प्रेम करोगी?"

"यह निश्चित है कि आप महाराज बनेंगे, आपका यह प्रश्न ही अर्थहीन है।"

"तुम्हारी भावना ऐसी हो सकती है, परन्तु परिस्थिति अगर बदल जाये और किसी और को सिंहासन पर बैठाने का प्रसंग उत्पन्न हो जाये, ऐसी स्थिति..."

"तब भी मैं आपकी ही बनी रहूँगी।"

"यह तुम्हारे अन्तःकरण की वाणी है?"

"हाँ।"

"कल तुम्हारे माँ-बाप अगर उल्टा-सीधा कुछ कह दें, तब भी..."

"वे कुछ भी कहें, मैं आपकी ही रहूँगी।"

"यदि तुम्हारा यही निश्चय हो तो मैं भी आश्वासन दूँगा। कोई कुछ भी कहे, मैं महाराज बनूँ या न बनूँ, विवाह तुमसे ही करूँगा।"

"आपके मुँह से यह बात सुनकर मैं जी गयी।"

"अब तुम्हें एक वचन देना होगा, पद्मा।"

"कहिए, महाराज।"

"जैसा तुमने कहा, मैं महाराज बनूँगा और तुम महारानी। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। परन्तु हम दोनों को उस स्थान पर बैठना हो तो उसके लिए आवश्यक योग्यता पानी होगी। मेरे लिए योग्य गुरु मिले हैं। अपने लिए एक अच्छे गुरु नियुक्त करने के लिए तुम्हें दण्डनायक से कहना होगा। मेरी महारानी केवल सुन्दरी कहलाए, यही पर्याप्त नहीं, पद्मा। वह होशियार, उदार, सन्मार्गावलम्बी, महिला-शिरोमणि गुणैक-पक्षपातिनी है, ऐसा लोगों को कहना चाहिए, समझना चाहिए। ऐसा बनने की हमें प्रतिज्ञा लेनी होगी। जिसकी पूर्ति में व्यस्त रहने से हम एक-दूसरे से न मिले तो हममें से किसी को अन्यथा नहीं समझना चाहिए। दोनों के एक होने का समय आने तक सहनशील होकर हमें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, अपनी सारी शक्तियों को केन्द्रित कर एकाग्र भाव से ज्ञानार्जन की ओर प्रवृत्त होना होगा। ठीक है न?"

"जो आज्ञा।"

"अब तुमने जो आश्वासन दिया उस पर मुसकुराहट की मुहर भी तो लगनी चाहिए।" पद्मला की आँखें चमक उठीं। एक आत्म-तृप्ति की भावना जागी। चेहरा

मुसकान से खिल उठा।

"आओ, बैठो।" बल्लाल ने कहा।

"बैठूं तो काम कैसे चलेगा। अभी काम है। माँ ने कुछ कार्यक्रम भी बना रखा है। आप ही ने दीक्षा दी है, मैं प्रतिज्ञाबद्ध हूँ, अभी से, इसी क्षण से।" कहती हुई वहाँ से भाग चली। उसके पाजेब की आवाज़ बल्लाल के कानों में गूँजती रही। उसका हृदयान्तराल स्पन्दित हुआ।

इधर चामव्वा ने भोजन के समय बिट्टिदेव की बगल में बैठी चामला को देखा तो वह यह सोच रही थी कि चामला-बिट्टिदेव की जोड़ी कितनी सुन्दर है। इसी धुन में वह पैर पसारकर लेटी तो आँख लग गयी। उसकी आशा स्वप्न के रूप में उसी नींद में परिणत हुई थी। उसने ख़ुर्राटे लेकर निद्रामग्न दण्डनायक को पीठ पर थपथपाकर जगाया और कहा, "दिन के स्वप्न सत्य होते हैं, मैंने अभी-अभी स्वप्न में चामला और बिट्टिदेव का विवाह होते देखा है।"

"विवाह, कौन-सा विवाह? मैं तो स्वप्न में युद्ध देख रहा था।" दण्डनायक ने कहा।

"अच्छा जाने दीजिए। आपको तो युद्ध के सिवा दूसरी कोई चिन्ता ही नहीं। मुझे स्वप्न दिखायी दिया। दिन के स्वप्न सच निकलते हैं। स्वप्न में चामला-बिट्टिदेव का विवाह हुआ।" उसने फिर कहा। अब की बार स्वप्न की बात पर अधिक बल दिया, चामव्वा ने।

"ठीक, छोड़ो, अब इसके सिवाय तुम्हारे मन में दूसरी कोई चिन्ता नहीं। चाहे जो हो, हम दोनों भाग्यवान् हैं। जो हम चाहते हैं वही हमारे स्वप्न भी होते हैं। चलो, चलो। जब अतिथि घर बैठे हैं तब अपने आप में मगन रहें, यह ठीक नहीं।" कहता हुए दण्डनायक हड़बड़ाकर मुँह धोने चला गया।

पूर्व निश्चय के अनुसार फिर सब लोग उनके घर के विशाल प्रांगण में इकट्ठे हुए।

पद्मला और चामला का गायन और नर्तन हुआ। उनके गुरु, उत्कल के नाट्याचार्य महापात्र ने उपस्थित रहकर मदद की। अपने गुरु की अनुपस्थिति में नर्तन नहीं करूँगी, यह बात शान्तला ने पहले ही कह दी थी, इसलिए उसका केवल गायन हुआ।

नाट्याचार्य महापात्र ने शान्तला का गायन सुना। उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा, "अम्माजी, तुम्हारी वाणी देवियों की-सी है। हमारी चामला कभी-कभी यही बात कहा करती थी, मैंने विश्वास नहीं किया था। ऐसी-इतनी उम्र में इतनी विद्वत्ता पाना साधारण काम नहीं। इसके लिए महान् साधना चाहिए। तुमने साधना द्वारा सिद्धि प्राप्त की है। इतना निखरा हुआ स्वर-विन्यास, राग-विस्तार, भाव-प्रचोदन, यह सब एक सम्पूर्ण जीवन्त साधना है, देवांश-सम्भूत ही

के लिए यह साध्य है। हेग्गड़ेजी, आप बड़े भाग्यवान् हैं। ऐसे कन्या-रत्न की भेंट आपने संसार को दी है। कर्णाटक के कला-जगत् के लिए आपकी यह पुत्री एक श्रेष्ठ भेंट है। ऐसी शिष्या पानेवाले गुरु भी भाग्यवान् हैं।"

शान्तला ने उन्हें दीर्घदण्ड-प्रणाम किया।

"बच्ची को आशीर्वाद दीजिए, गुरुजी।" माचिकब्बे ने कहा।

नाट्याचार्य ने अपने दोनों हाथ उसके सिर पर रखकर कहा, "बेटी, तुम्हारी कीर्ति आचन्द्रार्क स्थायी हो।"

शान्तला उठी। नाट्याचार्य ने कहा, "अम्माजी, मेरी एक विनती है। इस समय तुम्हारे गुरु यहाँ नहीं हैं, गति-निर्देश के बिना तुम नृत्य नहीं करोगी, ठीक है। परन्तु मुझे तुम्हारा नृत्य देखने की इच्छा है। तुम मान लो तो मैं गाऊँगा और तुम नृत्य करोगी। मैं बहुत आभारी हूँगा।"

"रीति भेद है न, गुरुजी, मेल कैसे बैठेगा?"

"मैं ही मृदंग बजाऊँगा अम्माजी, मेरी विनती मानो।"

"गति-निर्देश सम्पर्क नहीं होगा तो गति का अनुसरण करना कठिन होगा। ऐसे गति-रहित नृत्य करने से तो चुप रहना ही अच्छा है। कला के प्रति उपचार कभी नहीं होना चाहिए, यह मेरे गुरुवर्य का आदेश है। इसलिए मैं आपसे क्षमा-याचना करती हूँ।"

"अच्छा जाने दो, एक गाना और सुना दो। तुम-जैसे स्वर विन्यास करनेवालों के गायन के लिए मृदंग बजानेवाले को अपनी प्रतिभा दिखाने का एक बहुत ही अच्छा अवसर है।" नाट्याचार्य ने कहा।

"शान्तला ने विस्तार के साथ स्वर-विन्यास कर एक और गाना गाया। नाट्याचार्य के हाथ मृदंग पर चलते, मधुर नाद उत्पन्न करते। मृदंग-नाद की वैखरी और लालित्य को शान्तला ने पहचान लिया तो उसमें एक सी स्फूर्ति आ गयी। एक-दूसरे का पूरक बनकर स्पर्धा चली। इस स्पर्धा ने वातावरण में एक नयी लहर पैदा कर दी। सब मन्त्रमुग्ध बैठे रहे।

शान्तला ने फिर प्रणाम किया और कहा, "गुरुजी, आपकी उँगलियों के स्पर्श में एक विशेषता है। यह केवल गति-निर्देशन मात्र नहीं, भाव-प्रचोदन भी करता है। यह मेरा सौभाग्य है कि ऐसे मृदंग-वादन के साथ गाने का एक योग मिला। आप फुरसत से एक बार हमारे यहाँ आइए। हमारे गुरुजी को आप जैसे विद्वान् का संग बहुत ही अच्छा लगता है।" शान्तला की विनती थी।

"तुम न भी बुलाओ, मैं एक बार आऊँगा ही। तुम्हारा नृत्य एक बार देखकर ही रहूँगा, अम्माजी।" महापात्र ने कहा।

"आप बड़े उदार हैं, गुरुजी। सूर्यदेव के मन्दिर को बालू पर समुद्र के सामने खड़ा करनेवाले शिल्पियों के देश से आये हैं न आप? उस प्रस्तर-शिल्प की भव्यता

को देखनेवालों ने बताया है कि यह उत्कल की उदारता का प्रतीक है।" शान्तला ने कहा।

"तो तुम्हें कोणार्क का इतिहास भी मालूम है, अम्माजी?"

"हमारे गुरुजी जो जानते हैं वह सब मुझे भी विस्तार से समझा देते हैं।"

"अम्माजी, तुम बड़ी भाग्यशालिनी हो। तुम्हारे दर्शन से मैं भी भाग्यवान् हो गया।" महापात्र ने कहा। उपाहार-पनीय आ गये, नहीं तो उनकी बातचीत और चलती।

हेग्गड़ेजी के लिए रेशम का एक उपरना, हेग्गड़ती और उनकी लड़की के लिए रेशमी साड़ियाँ और चोली के लिए कपड़े विदाई में दिये गये। वास्तव में हेग्गड़ती माचिकब्बे को अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। दण्डनायक की पत्नी इतनी उदार भी हो सकती है, इसकी कल्पना ही वह नहीं कर सकी थी। उन्होंने कहा, "दण्डनायिकाजी, यह सब क्यों? अभी आपके यहाँ बहुत मांगलिक कार्य सम्पन्न होने हैं, यह सब देना तभी अच्छा होगा। इसे अभी लेते हुए संकोच होता है।" माचिकब्बे ने अपनी झिझक व्यक्त की।

"मंगल द्रव्य के साथ जो दिया जाता है उससे किसी सुमंगली को इन्कार नहीं करना चाहिए, हेग्गड़तीजी। मैंने कुछ पहले से सोचा न था। आखिरी वक्त जो लगा सो दे रही हूँ। यह दण्डनायक और हेग्गड़े के घरानों के स्नेह के प्रतीक के रूप में स्वीकार करें।" चामब्बे ने कहा। कोई दूसरा चारा नहीं था, हेग्गड़ती ने इस भावना से स्वीकार किया कि यह एक अच्छी भावना के अंकुरित होने का प्रथम प्रतीक बने। माँ ने जब लिया तो बेटी क्या करती, उसने भी लिया।

हेग्गड़े-दम्पती ने दण्डनायक को सपरिवार एक बार अपने यहाँ आने का निमन्त्रण दिया। "इन नाट्याचार्य को भी साथ लाइये। यदि कोई आक्षेप न हो तो वहाँ के मन्दिर में आपकी बच्चियों के गायन और नर्तन की व्यवस्था करूँगा। बहुत अच्छा गाती है और नृत्य भी करती है। वास्तव में पिछली बार जब हम आये थे तो सुना था कि उनका शिक्षण चल रहा था। इतने थोड़े समय में इतनी अच्छी तरह सीख गयी है।" हेग्गड़े मारसिंगय्या ने कहा।

हँसी-खुशी से सबने विदा ली। चामला रास्ते तक आयी। पद्मला ने प्रधान द्वार तक आकर शान्तला का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "भूलना नहीं।"

"हम छोटे गाँव में रहनेवाले हैं। हम आपको भूलेंगे ही नहीं। आप भी हमें न भूलें।" शान्तला ने कहा।

"भूलेंगी कैसे, रोज चामला आप लोगों के बारे में बात करती रहती है।" पद्मला बोली।

"आप तो उसकी दीदी ही हैं न, मैं भी कैसे भूलूँगी?"

इस छोटे से सम्भाषण से उनमें मैत्री का द्वार तो खुल गया, अब यह देखना

है कि उसके अन्दर से कितनी रोशनी बिखरती है।

ये सब बातें सुनकर एचलदेवी भी आश्चर्यचकित हुईं।

प्रस्थान के पहले राजमहल में भी उनका योग्य सत्कार किया गया। मारसिंगय्या अपने गुप्तचर कार्य का सारा वृत्तान्त युवराज एरेयंग प्रभु को सुना चुका था।

बड़ी रानी चन्दलदेवी का तो भाभी और अम्माजी को विदा देते हुए गला भर आया, आँखें भर आयीं। वह गद्गद हो गयी, मुँह से बात तक न निकल सकी। चलते समय शान्तला ने महाराज युवराज और युवरानी को प्रणाम किया। कवि नागचन्द्र को साष्टांग प्रणाम किया। कवि नागचन्द्र की आँखें भर आयीं।

हेग्गड़े परिवार की यात्रा सिंगिमय्या के नेतृत्व में आगे बढ़ी। बाद में हेग्गड़ेजी को मालूम हुआ कि सिंगिमय्या डाकरस दण्डनायक के घर भी आतिथ्य लेने गया था। वास्तव में वह अन्यत्र एक वसति-गृह में रह रहा था, इसलिए सम्पर्क का अवसर बहुत कम मिल पाया।

मारसिंगय्या और सिंगिमय्या दोनों की एक राय थी कि डाकरस होशियार, निष्ठावान् और उदार है, उसका बड़ा भाई माचण अपने पद पर इतरानेवाला अहंभावी है। असल में दण्डनायक ने अपने घर में उसके बहिन-बहनोई और भानजी को जो सत्कार दिया था उसपर सिंगिमय्या को आश्चर्य भी हो रहा था, क्योंकि दोरसमुद्र आने पर चामव्वे के प्रभाव के बारे में काफी सुन चुका था।

इधर युवराज-युवरानी, बड़ी रानी और राजकुमारों के अचानक प्रस्थान का समाचार दोरसमुद्र के निवासियों के लिए एक आश्चर्यजनक बात बन गयी थी। उसमें भी खासकर दण्डनायक परिवार के लिए यह वज्रपात-सा था। बिना अंतपते के एकदम बड़ी रानी और कुमारों के साथ युवराज और युवरानीजी का प्रस्थान! यह कैसे हो सकता है? यह सब पूर्व-निश्चित है। हमें मालूम न होने देने का अन्दर-ही-अन्दर कुछ षड्यन्त्र रचा गया है। यह कवि भी ऐसा निकला कि उसने जिस पत्तल में खाया उसी में छेद किया। जानती हुई भी एक बात भी कहे बिना, खाकर जानेवाली हेग्गड़ती ने भी कुछ नहीं बताया, वह बड़ी धोखेबाज है। चामव्वा का मन उद्विग्न था, क्रोध से वह आग-बबूला हो बड़बड़ाने लगी, 'युवरानी को तो उस हेग्गड़ती की लड़की को ही महारानी बनाने की इच्छा है। मुझे सब मालूम है।'

बेचारी पद्मला यह सब सुनकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी।

चिण्णम दण्डनायक और कुन्दमराय पूर्व-निर्दिष्ट रीति से वेलापुर में युवराज और उनके परिवार के रहने की व्यवस्था कर चुके थे। वह पोय्सल राजधानी से केवल तीन कोस की दूरी पर था इसीलिए आवश्यक प्रतीत होने पर राजधानी आने-जाने की सहूलियत एरेयंग प्रभु को थी।

कवि नागचन्द्र को वेलापुर दोरसमुद्र से अच्छा लगा। नदी-तीर पर बसी यह जगह वेलापुरी पोय्सल राज्य-सीमा के वक्षस्थल-सी और यगची नदी उस सीमा के कटिबन्ध-सी लग रही थी। नागचन्द्र तो थे कवि ही, उनकी कल्पना चक्षु में पोय्सल राज्य-पुरुष का यह रूप बस गया था।

वेलापुरी पोय्सल राज्य के प्रधान नगरों में केन्द्र-स्थान था। पूर्व की ओर दोरसमुद्र, पश्चिमोत्तर में सोसेऊरु, दक्षिण में यादव पुरी, इन तीनों का केन्द्र वही माना जाता था। वह राज्य-विस्तरण का समय था। राज्य-सीमा का जैसे-जैसे विस्तार हुआ, राज्य में विलीन नये-नये प्रदेशों की प्रजा में निष्ठा और दक्षता रूपित करने के लिए नये-नये मुख्य नगरों को चुनकर पोय्सल राजा उनमें रहा करते। इसी क्रम में उन्होंने सोसेऊरु के बाद वेलापुरी को चुना था। इसी तरह, दक्षिण के चोल राजाओं के सीमा-विस्तार को रोकने और अपने सुखी राज्य को विस्तृत करने के उद्देश्य से यादवपुरी को भी उन्होंने प्रधान नगर बनाया था। प्रत्येक प्रधान नगर में एक दण्डनायक और उनके मातहत काफी सशक्त सेना रहा करती थी। वेलापुर की प्रधानता के कारण अमात्य कुन्दमराय का निवास वहीं था। सोसेऊरु का नेतृत्व चिण्णम दण्डनायक कर रहे थे।

फिलहाल राज्य की जिम्मेदारी अपने ऊपर अधिक पड़ने के कारण प्रभु ने राजधानी की देखरेख का उत्तरदायित्व प्रधान गंगराज और महादण्डनायक मरियाने पर छोड़ रखा था। महाराज की और राजधानी की व्यवस्था भी उन्हीं पर छोड़ रखी थी। मरियाने के लड़कों को दण्डनायक के पद पर नियुक्त कर उनकी हैसियत बढ़ायी गयी थी। उन्हें आवश्यक शिक्षण देने की जरूरत थी, इसलिए उन्हें तब तक दोरसमुद्र में ही रखा गया जब तक उनका शिक्षण पूरा न हो।

अब की बार एरेयंग प्रभु ने दोरसमुद्र से प्रस्थान करते समय माचण दण्डनायक को यादवपुरी की निगरानी करने को रखा: डाकरस दण्डनायक को वेलापुरी में नियुक्त कर वहाँ जाने का आदेश दिया।

मरियाने को यह परिवर्तन जँचा नहीं, फिर भी वह कुछ कर नहीं सकता था। इस पर उसने महाराज को भी अपनी राय बता दी थी। परन्तु महाराज ने एक ही बात कही, "युवराज ने मेरी सम्मति लेकर ही यह परिवर्तन किया है।"

अपनी इस यात्रा की खबर तक न देकर युवराज के एकदम चल देने से दण्डनायक के घर में काफी तहलका मच गया था। अब इस परिवर्तन ने सुलगती आग पर हवा का काम किया।

महादण्डनायक का मन रात-दिन इसी चिन्ता में घुलने लगा कि मेरे बेटों को मुझसे दूर रखने का यह काम मेरी शक्ति को कम करने के लिए किया गया है, युवराज ने इसीलिए यह काम किया है, मैंने कौन-सा अपराध किया था? मैं खा-पीकर बड़ा हुआ इसी राजघराने के आश्रय में, मेरी धमनियों में जो रक्त बह रहा है वह पोय्सल रक्त है। मुझसे अधिक निष्ठावान् इस राष्ट्र में कोई दूसरा नहीं। ऐसी हालत में युवराज के मन में मेरे बारे में ये कैसे विचार हैं?

चामव्वा ने जवाब दिया, "यह सब उस हेग्गड़े का जाल है। इन भस्मधारियों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए।"

"तो यह सब उसी का प्रभाव हो सकता है। इसीलिए उल्लू बनाना मुहावरा चल पड़ा होगा। अब तो स्थिति हाथ से निकलती लगती है।"

"मैंने पहले ही कहा था कि उस हेग्गडे का काम छुड़ा दो, नहीं तो उसका किसी खटपटवाली जगह तबादला कर दो। आपने माना नहीं। अब देखिए, वही हमारे लिए शूल बना है।"

"यह काम इतना आसान नहीं। उसके सम्बन्ध में कुछ करने पर उसकी प्रति-क्रिया हम ही पर होगी। इस सबका कारण तुम ही हो। तुमने अपनी हस्ती-हैसियत दिखाने के तैश में आकर उस हेग्गड़ती को पहले से जो अपमानित किया उसी का यह परिणाम है। हमसे ऊपर जो रहते हैं उनसे लगे रहनेवालों और उनके विश्वास-पात्र जो बनें उनसे कभी हमें द्वेष नहीं करना चाहिए। इस बात को कई बार समझाने पर भी तुम मानी नहीं। तुमको यह अहंकार है कि तुम्हारा भाई प्रधान है, तुम्हारा पति दण्डनायक है। तुम अपनी हैसियत पर घमण्ड करती हो। तुम्हारी इस भावना ने तुमको ही क्यों, बच्चों समेत हम सबको इस हालत में ला रखा है।"

'हाँ, सारी गलती मेरी ही है। आपने कुछ भी नहीं किया।"

"मैंने भी किया है, तुम्हारी बात सुनकर मुझे जो नहीं करना चाहिए था वह किया। उस दिन युवराज से महाराज बनने के लिए ज़ोर देकर कहना चाहिए था। मुझसे गलती हुई। तुम्हारा कहना ठीक समझकर वैसा कहा, तभी से युवराज मुझे सन्देह की दृष्टि से देखने लगे हैं। अब स्थिति ऐसी है कि महाराज भी मेरी सलाह आमतौर पर स्वीकार नहीं करते।"

"मेरे भाई ने भी सम्मति दी तब, आपने ऐसा किया। अब मेरे ऊपर दोष लगाएँ तो मैं क्या करूँ? मैंने जब यह सलाह दी थी तभी वह नहीं मानते और आपको जो सही लगता वही करते। मैं मना थोड़े करती। मुझे जो सूझा, सो कहा। क्या मैं आप लोगों की तरह पढ़ी-लिखी हूँ? अनुभव से जो सूझा सो कहा था। आप उन लोगों में से हैं जो स्त्री-शिक्षा के विरोध में विचार रखते हैं। आपको अपनी बुद्धि अपने ही वश में रखनी चाहिए थी।" यों उसने एक बवण्डर ही खड़ा

कर दिया।

"देखो, अब उन सब बातों का कोई प्रयोजन नहीं। हम पर युवराज शंका करें तो भी कोई चिन्ता नहीं। हमें बुरा माने तब भी कोई चिन्ता नहीं। हमें तो उनके प्रति निष्ठा से ही रहना होगा। हमने जो भी किया, उसका लक्ष्य कभी बुराई करने का न था। इतना अवश्य है कि अपनी लड़कियों को हम उनके कुमारों के हाथों सौंप देना चाहते हैं।"

"अब वे यदि न माने, उनके मन में इस तरह की शंका उत्पन्न हो गयी है तो हमारी कैसी हालत होगी, यह कहना मुश्किल है। है न?"

"लड़का क्या कहता है, पद्मला ने कुछ बताया क्या?"

"उसे क्या समझ है, लड़के ने कहा मालूम पड़ता है कि वह उसीसे विवाह करेगा। वह ख़ुशी से खिली बैठी थी, अब आँसू बहा रही है।"

"युवराज की यात्रा की बात मालूम नहीं होने पर जो तुम आग-बबूला होकर गरजने लगी उससे वह धीरज खो बैठी।"

"आप तो उसे धीरज बँधाइये।

"क्या कहकर धीरज बँधाऊँ? मैं एक बार वेलापुरी हो आने की सोच रहा हूँ। यों तो हमारे कवि भी वहाँ हैं।"

"ठीक। जो मन में आया उसे लिख कवि कहलानेवाले का क्या ठिकाना और क्या नीति? ऐसे लोग गिरगिट की तरह रंग बदलनेवाले और जिस पत्तल में खाया उसी में छेद करनेवाले होते हैं। जहाँ मानदेय मिलें वहीं उनकी नजर लगी रहती है। क्या उसने युवराज के इस तरह जाने की बात पहले कही थी?"

"उससे बात नहीं हो सकती थी। बेचारा, उसकी कैसी स्थिति रही होगी, कौन जाने? इसलिए जब तक वेलापुरी हो न आऊँ तब तक मन को शान्ति नहीं मिलेगी।"

"किसी बात का निर्णय भाई से विचार-विनिमय करके ही करें।"

"सलाह दी, भाग्य की बात है। वही करूँगा।"

"पद्मला की बात उठी तो एक बात और इसके बारे में कहनी है।"

"क्या?"

"हमें उसे महारानी बनने के योग्य शिक्षित करना चाहिए, यह आपके होने-वाले दामाद की इच्छा है। इसलिए किसी को..."

"पहले सगाई तो हो, फिर देखेंगे।"

"आप ही ने कहा था कि यदि मैं शिक्षित होती तो अच्छी सलाह मिल सकती थी। जो शिक्षण मुझे नहीं मिल सका वह कम-से-कम आपकी बच्चियों को मिल जाये। इतनी व्यवस्था तो हो! पता नहीं उनकी शादी किससे हो, वह तो जिननाथ के हाथ में है। एक बात की दूसरी के साथ गाँठ न बाँधें।"

"इस बारे में भी तुम्हारे भाई से सलाह लूँगा। ठीक है न?"

पति-पत्नी में जो चर्चा हुई उसके अनुसार प्रधान गंगराज से विचार-विनिमय हुआ। बच्चों के शिक्षण की उन्होंने भी स्वीकृति दी। उनकी स्वीकृति से यह आभास भी नहीं मिला कि वे राजकुमार की बात को कितना मूल्य दे सके है। अभी से इस सम्बन्ध में वे कुछ कहना नहीं चाहते थे, अभी हालात कुछ गँदले हैं, कुछ छन जाएँ। अभी कुछ कहें तो उसका अर्थ बुरा भी हो सकता है। इसलिए वेलापुरी जाना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। समय की प्रतीक्षा कर योग्य अवसर मिलने पर इस विवाह के सम्बन्ध में ठीक-ठीक स्थिति जानने का काम करेंगे। बच्चों के स्थानान्तर से इसका कोई सम्बन्ध नहीं, किस-किसको कहाँ-कहाँ रखना अच्छा होगा, इस दृष्टि से ही इन बातों पर विचार करना होगा, यह मैंने स्वयं युवराज को बताया था। परन्तु मैंने यह नहीं सोचा था कि वे इस पर अभी अमल कर डालेंगे। माचण के स्थानान्तर की जल्दी नहीं थी। परन्तु डाकरस को अपने पास बुला लेने का उद्देश्य राजकुमारों के शिक्षण की व्यवस्था और देख-रेख है, इसलिए उसके स्थान-परिवर्तन की जल्दी भी थी। अपने बच्चों के शिक्षण का भार विश्वास के साथ आपके बेटे पर छोड़ रखा है, तो आपको युवराज के किसी काम पर सन्देह करने की जरूरत भी नहीं। आपको इस उम्र में, बुढ़ापे के कारण बहुत जल्दी प्रतिक्रिया का भाव उठता है। जल्दबाजी के कारण जो कोई प्रतिक्रिया हो जाती है उसके माने कुछ-के-कुछ हो जाते हैं। इसलिए ये सब विचार छोड़कर चुप रहने की सलाह प्रधान गंगराज ने महादण्डनायक को दी। इस विचार-विनिमय के फलस्वरूप दण्डनायक की बच्चियों को शिक्षण का लाभ हुआ।

राजकुमारों का अध्ययन जोर-शोर से चल पड़ा। बल्लाल में अध्ययन के प्रति जो आसक्ति पैदा हो गयी थी उसे देखकर कवि नागचन्द्र बहुत चकित हुए, उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ था। इस सम्बन्ध में एक दिन उन्होंने युवरानी से कहा था, "बल्लाल कुमार की इस श्रद्धा का कारण सन्निधान हैं।"

"आप यदि खुले दिल से मुझसे बात न करते तो यह काम नहीं हो सकता था। इसका एक कारण यह भी है कि उस दिन अभ्यास के समय ही वह अधिक प्रभावित हुआ होगा। उसके दिल में आपकी उपदेश-वाणी झंकृत हो रही थी कि तभी मैंने भी खुलकर उससे बातें कीं। बल्कि कहूँ, इस भावना से आप बातें न करते तो पता नहीं राजकुमार के भविष्य का क्या हुआ होता।"

"जब कभी अच्छा होना होता है तो बुद्धि भी ऐसी हो जाती हैं। यहाँ बे प्रशान्त वातावरण में शिक्षण कार्य निर्बाध गति से चल रहा है।"

"आप तृप्त हो जायें तो पर्याप्त है।"

"मुझे तो तृप्ति है। छोटे राजकुमार की जितनी सूक्ष्म ग्रहण-शक्ति न होने पर भी बड़े राजकुमार की ग्रहण-शक्ति उच्चस्तरीय है। अब तो अध्ययन में उनकी एकाग्रता भी स्पष्ट दीखती है, कई बार वे छोटे राजकुमार से भी जल्दी पाठ कण्ठस्थ कर लेते हैं।"

"पोय्सल राज-सिंहासन पर बैठने योग्य उसीको बनाइये, माँ होकर मैं यही माँगती हूँ। उसे प्रजा का प्रेमपात्र बनना चाहिए और प्रजा का विश्वासपात्र बनना चाहिए। इतनी योग्यता उसमें आनी ही चाहिए।"

"इस विषय में आपको अविश्वास करने का कोई कारण नहीं। मैं इसी ध्येय को लक्ष्य में रखकर उन्हें शिक्षण दे रहा हूँ।"

"अच्छा कविजी, यहाँ आपको सब सुविधाएँ प्राप्त है न? अगर कोई दिक्कत हो तो बताइये। प्रभुजी से कहकर ठीक करा दूँगी।"

"चिण्णम दण्डनायकजी ने स्वयं इस ओर ध्यान देकर सारी व्यवस्था कर सब बातों की सुविधाएँ जुटा दी है।"

"बहुत अच्छा।"

इतना कहकर चुप हो जाने पर कवि ने समझ लिया कि अब जाना है। वह भी उठ खड़ा हुआ परन्तु गया नहीं।

"और कुछ कहना है कविजी?" युवरानी एचलदेवी ने पूछा।

"हाँ, एक निजी बात है।"

"कहिए।"

"एक पखवारे से सोच रहा था कि कहूँ या नहीं। आज इस निर्णय पर पहुँचा कि कह दूँ। मेरे निवेदन में कोई गलती हो तो क्षमा करें।"

"इतनी पूर्व-पीठिका है तो बात कुछ गम्भीर ही होगी।" एचलदेवी ने कहा।

वह फिर बैठा। बोला, "डाकरस दण्डनायकजी ने यहाँ आने के बाद एक बार मुझे बुला भेजा था। जाकर दर्शन कर आया। उस समय उन्होंने जो बात कही उसे सुनकर मेरा दिल बहुत दुख रहा है। जो बात मुझे सही नहीं लगती उसे बिना छिपाये स्पष्ट कह देना मेरा स्वभाव है, उससे चाहे जो हो जाये। जिस पत्तल में खाये उसी में छेद करना मेरा स्वभाव नहीं। यह बात दण्डनायकजी के यहाँ से उठी है। यह मैंने बात करने के ढंग से समझ लिया, यद्यपि उन्होंने बात इस ढंग से की कि उससे मेरा दिल न दुखे। उनके कहने के ढंग से लगा कि मुझे प्रभु का आश्रय और उनका प्रेम मिला, इसलिए मैं उनकी परवाह नहीं करता, यह भावना उनके मन में उत्पन्न हो गयी है। यह सुनने के बाद मैं इस बात की जड़ की खोज में लगा

हूँ । वेलापुरी की यात्रा का समाचार पहले से जानते हुए भी वहाँ से निकलते समय उनसे कहकर नहीं आया, मैं सोचता हूँ यही कारण रहा होगा । सन्निधान जानती हैं राज-परिवार के यहाँ पधारते समय पिछले दिन अचानक रात को ही चिण्णम दण्डनायक के साथ यहाँ सकुटुम्ब आना पड़ा । फिर भी चिण्णम दण्डनायकजी से इस बारे में मैंने निवेदन किया था । उन्होंने कहा, यह स्वामीजी की आज्ञा है, तुरन्त तैयार हो जाओ प्रस्थान के लिए । जिन-जिनको बताना होगा उन सबको राजमहल से खबर भेज दी जायेगी । इसके लिए आपको चिन्तित होने की जरूरत नहीं । मैं इधर चला आया । मेरे मन पर जो भार लद गया था, उसे मैंने सन्निधान से निवेदन किया है । आज्ञा हो तो एक बार दोरसमुद्र जाकर दण्डनायकजी से सीधा मिलकर क्षमा-याचना कर आऊँगा ।" कवि नागचन्द्र ने कहा । उनका मन वास्तव में उद्वेग से भरा था ।

"इस समाचार पर रंग सम्भवतः स्त्रियों की ओर से चढ़ा है । आपको आतंकित होने की जरूरत नहीं । सिर्फ इसीलिए आपको वहाँ तक जाने की जरूरत नहीं । मैं स्वामी से बात करूँगी । आप निश्चिन्त रहें ।"

"स्त्रियाँ कहें या पुरुष, ऐसी बात से तो मन दुखेगा ही ।"

"आप काव्य-रचना करने बैठें और किसी नायिका के दुःख का चित्रण करना पड़े तो आप खुद रोने बैठेंगे ? ऐसे बैठने से काव्य-रचना हो सकेगी ? यहाँ भी वही बात है । किसी के बारे में कोई बात आपसे सम्बद्ध कोई कहता है तो उसपर आपको चिन्ता क्यों हो ? आपके मन में ऐसी भावना क्यों हो ? आपके मन में बुराई न हो तभी निर्लिप्त रहना साध्य होता ।"

"मुझमें कोई ऐसी बात ही नहीं है । परन्तु उनसे बिदा लेकर आना कर्त्तव्य था, उसका पालन न हो सका, यही चिन्ता मन को सालती रही ।"

"किन्तु जिस परिस्थिति में आपको आना पड़ा, उससे आप परिचित हैं, तो इसके लिए चिन्तित नहीं होना चाहिए । महादण्डनायक यहाँ आनेवाले ही हैं, तब हे आप सीधी बात कर लें । जब तक वे स्वय यह बात नही उठायें तब तक आप खुद यह बात न उठायें, यह सही ही नहीं है, यह मेरी सलाह भी है ।"

"ठीक है । अब तत्काल मन का भार कम हुआ, बोझ उतरा । उनके आने पर क्या होगा, यह अभी से क्यों सोचूँ ? आज्ञा हो तो चलूँगा । मैंने आपके साथ बात करने की जो स्वतन्त्रता ली उसके लिए क्षमा माँगता हूँ ।"

"नहीं, ऐसा कुछ नहीं । आप सब राज-परिवार के हैं । आप लोगों को अपनी इच्छा खुले दिल से स्पष्ट कहना चाहिए, यही अच्छा है ।"

कवि नागचन्द्र नमस्कार करके चला गया ।

युवरानी एचलदेवी अपने पलंग की तरफ़ चलीं । और पैर पसारकर लेट गयीं ।

चामव्वा की इस दुर्बुद्धि पर युवरानी एचलदेवी के मन में घृणा की भावना उत्पन्न हो गयी। मरियाने दण्डनायक के आने का समाचार तो मालूम था परन्तु उसका कारण वह नहीं जानती थी। चामव्वा ने कौन-सा पासा खेलने के लिए उनके हाथ में देकर भेजा है, यह विदित नहीं। प्रतीक्षा करके देखना होगा।

हाँ, हाँ, प्रतीक्षा करके देखने का विचार किया, यह तो ठीक ही है। इस विचार के पीछे एक-एक करके सभी बातें याद आयीं। इस सबका मूल कारण राज-परिवार की समधिन बनने की उसकी महत्त्वाकांक्षा है। हेग्गड़ती और उसकी लड़की ये शनि के चले जाने की खबर सुनते ही उसकी ख़ुशी का ठिकाना न रहा। यही उसके आनन्द का कारण था! कैसी नीचता! न्यौते का नाटक रचा, कुछ वस्त्र आदि देकर खूब खेल दिखाया। फिर विदाई का नाटकीय आयोजन किया। शायद इनके प्रस्थान के तुरन्त बाद वह विवाह की बात उठाना चाह रही थी। उसे पता दिये बिना, हम लोगों का प्रस्थान होने से वह मौक़ा चूक गया। इसपर उसे गुस्सा भी आया होगा। और यह गुस्सा किसी-न-किसी पर उतारना चाहती है। ऐसी हालत में, दण्डनायक शायद इसी सम्बन्ध में बात करने आ रहे होंगे। इस-लिए पहले ही से अपने प्रभु से विचार-विनिमय कर लेना अच्छा है।

ठीक उसी वक़्त बड़ी रानी चन्दलदेवीजी के आने से यह विचार-शृंखला टूटी। वह तुरन्त उठ खड़ी हुई।

"बुला भेजती तो मैं स्वयं सेवा में पहुँच जाती।" युवरानी ने विनीत होकर कहा। बैठने के लिए आसन दिया।

बड़ी रानी बैठती हुई बोलीं, "आप बहुत विचार-मग्न लग रही हैं, मेरे आने से बाधा तो नहीं हुई?"

"विचार और चिन्ता ने किसे मुक्त किया है बड़ी रानीजी? एक छोटी चींटी से लेकर चक्रवर्ती तक को एक-न-एक विचार करते ही रहना पड़ता है। अब, क्या आपको चिन्ता नहीं? आपका चेहरा ही बताता है। क्या करें, बड़ी रानी, रेविमय्या के आने तक आपको इसी तरह चिन्तित रहना पड़ेगा।"

"मुझे कोई परेशानी नहीं। मेरे कारण आपकी जिम्मेदारी बढ़ गयी है यदि बलिपुर से सीधा चली जाती..."

"वहीं से चली जाती तो हमें आपकी आत्मीयता कहाँ मिलती? प्रत्येक क्रिया के पीछे ईश्वर का कोई-न-कोई निर्देश रहता ही है।"

इतने में घण्टी बज उठी। युवरानी और एचलदेवी की बात अभी ख़तम नहीं हुई कि इतने में एरेयंग प्रभु की आवाज़ सुन पड़ी, "बड़ी रानीजी भी हैं। अच्छा हुआ। गालब्बे अन्दर जाकर सूचना दे आओ।"

एचलदेवी स्वागत करने के लिए उठकर दरवाज़े तक आयीं।

एरेयंग प्रभु अन्दर आये, "बड़ी रानीजी, चलिकेनायक अभी कल्याण से लौटा

है। सन्निधान ने पत्र भेजा है कि स्वास्थ्य ठीक न होने से वे स्वयं आ नहीं सकते। इसका अर्थ यह हुआ कि बड़ी रानी को विदा करने का समय आ गया। हँसी-खुशी से विदा करने के बदले एक आतंक की भावना में जल्दी विदा करने का प्रसंग आया है। जिस वक़्त आप चाहें, योग्य संरक्षक दल के साथ भिजवा देंगे। खुद साथ चलने की आज्ञा दें तो भी तैयार हूँ। कल हमारे महादण्डनायक अचानक ही यहाँ आनेवाले हैं। वे यदि मान लेंगे तो उन्हीं को साथ भेज दूँगा।" बिना रुके एक ही साँस में यह सब कहकर उन्होंने अपने ऊपर का बोझ तो उतार दिया, परन्तु यह समाचार सुनने को बड़ी रानीजी और एचलदेवी दोनों तैयार नहीं थीं।

बड़ी रानीजी तो किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर ही बैठ गयीं। एकदम ऐसी खबर सुनने पर एचलदेवी कुछ परेशान भी हुईं। परन्तु यह सोचकर कि उसके मन पर दूसरी तरह का कोई आघात लगा होगा और इसी वजह बिना दम लिये एक ही साँस में कह गये हों, यह समझकर, खुद परेशान होने पर भी वह बड़े संयम से बोलीं, "चिन्ता न करें, बड़ी रानीजी, जितनी जल्दी हो सकेगा, आपको कल्याण पहुँचाने की व्यवस्था करेंगे। अस्वस्थता की खबर आपके पास पहुँचने तक ईश्वर की कृपा से चक्रवर्ती का स्वास्थ्य सुधर चुका होगा, ऐसा विश्वास करें। हमें बिना कारण घबड़ाने की ज़रूरत नहीं। मैं खुद आपके साथ चलकर आपको चक्रवर्ती के हाथ सौंपकर आऊँगी, आप चिन्ता न करें।" युवरानी एचलदेवी ने कहा।

"नायक कहाँ है?" चन्दलदेवी ने पूछा।

"मिलना चाहें तो बुलाऊँगा।" प्रभु एरेयंग ने कहा।

"यदि वहाँ से रवाना होने से पहले वे सन्निधान से प्रत्यक्ष मिले हों तो बुलाइये।"

"गालब्बे, बाहर लेंक खड़ा है। किसी को भेजकर चलिकेनायक को बुला लाने को कहो।" एरेयंग प्रभु ने कहा।

चन्दलदेवी ने पूछा, "जब नायक ने खबर सुनाई तब वह कुछ घबड़ाहट महसूस करने लगा क्या?"

"हमने इतने विस्तार से नहीं देखा-पूछा। इसलिए इतना ही कहकर कि 'ठीक है' हम उस पत्र को लेकर इधर चले आये। अभी पत्र पढ़ा नहीं है। बड़ी रानीजी के समक्ष ही पढ़ना उचित समझकर हमने अविलम्ब नहीं पढ़ा।" कहकर फरमान की मुहर खोली। बड़ी रानी और एचलदेवी देखने के लिए ज़रा आगे झुकीं। एरेयंग प्रभु ने स्वस्तिश्री आदि लम्बी विरुदावली पर नजर दौड़ायी और फरमान पढ़ना शुरू किया—

"धारानगरी पर विजय प्राप्त कर बड़ी रानी को सुरक्षित रखकर आपने जो कार्य दक्षता से किया है, इससे बहुत सन्तोष हुआ। इस खुशी के समय अपनी इच्छा से, आगे से, पोय्सल-वंश-त्रिभुवन-मल्ल यह चालुक्य-विरुद भी आपकी विरुदावली

के साथ सुशोभित हो, यह हम इसी फरमान के द्वारा सूचित करना चाहते हैं। यहाँ का राजनीतिक वातावरण भाई जयसिंह के कारण कलुषित हो गया है। इसे प्रकट करना ठीक नहीं, फिर भी आप पर हमारा पूर्ण विश्वास है अतः आपको बताया है। इस वजह से फिलहाल हम दोरसमुद्र की ओर आने की स्थिति में नहीं हैं। नुकसान तो हमारा ही होगा। बड़ी रानीजी को जितनी जल्दी हो सके कल्याण भिजवाने की व्यवस्था करें। यहाँ की राजनीतिक हलचल को वहाँ के आम लोगों के लिए साधारण बातचीत का विषय नहीं बनना चाहिए। इसलिए नायक को बताया है, स्वास्थ्य अच्छा नहीं।"

बड़ी रानी का हाथ अनायास ही गले पर के मांगल्य-सूत्र की ओर गया। एक दीर्घ श्वास लेकर कह उठीं, "एक ही क्षण मन में क्या सब हो गया!" चन्दलदेवी का मन स्वस्थ हो गया था।

"अब बड़ी रानी के मन में इस एक ही क्षण में जो सब हो गया वही इस देश के दाम्पत्य जीवन का संकेत है।" युवरानी एचलदेवी ने कहा।

"बिना कारण बेचारे नायक के विश्राम में बाधा डाली।" बड़ी रानी ने कहा।

"वह भी बड़ी रानीजी से मिलने के लिए उतावला था। उन्होंने जो खबर सुनायी थी उनके सन्दर्भ में इस वक्त उससे मिलना ठीक न समझकर मैंने ही मना किया था। सचमुच हमें भी इससे कुछ चिन्ता हो गयी थी।"

"किसी सम्भावित भारी दुःख का निवारण हो गया।" कहती हुई एचलदेवी उठ खड़ी हुईं।

"क्यों?" चन्दलदेवी ने पूछा।

"एक दिया घी का जला भगवान् को प्रणाम करके आऊँगी।" कहकर एचलदेवी निकली।

चन्दलदेवी ने "मैं भी चलती हूँ।" कहकर उसका अनुगमन किया।

इधर क्षण में ही चलिकेनायक आ गया। इस बुलावे के कारण वह घबड़ा गया और पसीना-पसीना हो गया। यात्रा की थकावट, असन्तोषजनक वार्ता, तुरन्त आने का यह बुलावा, इन सब बातों ने मिलकर उसमें कम्पन पैदा कर दिया था।

नायक ने युवराज को प्रणाम किया।

"बैठो नायक।"

"रहने दीजिए," कहकर पूछा, "इतनी जल्दी में बुलाया?"

"हाँ, तब जल्दी थी, अब नहीं। इसीलिए बैठने को कहा है।"

नायक की समझ में नहीं आया कि वह क्या करे। वह टकटकी लगाकर देखता रह गया। परन्तु बैठा नहीं।

"क्यों नायक, बहरे हो गये हो क्या?"

"नहीं, ठीक हूँ, प्रभु।"

"तो बैठे क्यों नहीं, बैठो।"

वह सिमटकर एक आसन पर बैठ गया।

प्रभु एरेयंग कुछ बोले नहीं, नायक प्रतीक्षा करता बैठा रहा। जिसपर बैठा था वह आसन कांटों का-सा लग रहा था। कब तक यों बैठा रहेगा? "हुकुम हुआ, आया, क्या विषय है" उसने पूछना चाहा, बात रुकी।

"जिन्होंने बुलाया है उन्हें आने दो। तब तक ठहरो, जल्दी क्यों?" उसे कुछ बोलने का अवसर ही नहीं रहा। मौन छाया रहा। कुछ ही क्षण बाद बड़ी रानी और युवरानी घी का दिया जलाकर प्रणाम करके लौटीं। नायक ने उठकर उन्हें प्रणाम किया।

"क्यों, नायक, अच्छे हो?" चन्दलदेवी ने पूछा।

बड़ी रानी चन्दलदेवी को देखने से उसे लगा कि उन्हें अभी चक्रवर्ती की अस्वस्थता की खबर नहीं मिली होगी। उसने सोचा, यह अप्रिय समाचार सुनाने की जिम्मेदारी मुझी पर डालने के इरादे से इस तरह बुलाया है, इससे वह और भी अधिक चिन्ता-भार से दब गया, बोला, "हाँ, अच्छा हूँ।"

बड़ी रानी बैठीं। नायक से भी बैठने को कहा। युवरानी भी बैठ चुकी थीं, पर नायक खड़ा ही रहा।

"इसे दो-दो बार कहना पड़ता है, पहले भी इसने यही किया।" प्रभु एरेयंग ने किया।

नायक कुछ कहे बिना बैठ गया। जो पत्र वह स्वयं लाया था उसे दिखाते हुए प्रभु एरेयंग ने पूछा, "यही है न वह पत्र जो तुम लाये हो?"

"हाँ।"

"बड़ी रानीजी की इच्छा है, इस पत्र को तुम ही पढ़कर सुना दो, इसीलिए तुमको बुलाया है।" कहते हुए प्रभु एरेयंग ने पत्र उसकी ओर बढ़ाया। चलिके-नायक ने आकर पत्र हाथ में लेकर बड़ी रानी की ओर देखा।

"क्यों नायक, पढ़ोगे नहीं?" एरेयंग ने पूछा।

"यह तो प्रभु के लिए प्रेषित पत्र है। मेरा पढ़ना···?" इससे उसका मतलब था कि अप्रिय वार्ता उसके अपने मुँह से न निकले।

"हम ही कह रहे हैं न, पढ़ने के लिए, पढ़ो।" प्रभु ने कहा।

पत्र खोलकर आरम्भिक औपचारिक सम्बोधन के भाग पर नजर दौड़ायी। इसके बाद उसकी नजर पत्र की अन्तिम पंक्ति पर लगी। पत्र छोटा था। उसकी सारी चिन्ता क्षण-भर में गायब हो गयी।

"मुझे भी फिर से पढ़ना होगा?" नायक ने पूछा।

"तुमको समाचार मालूम हो गया न, बस। इधर लाओ।" प्रभु ने हाथ

बढ़ाया। नायक ने पत्र लौटा दिया।

"यह पत्र तुमने पढ़ा नहीं, नायक। अब मालूम हुआ?"

"मालूम हो गया, मालिक।"

"तुमको फिर बड़ी रानीजी का रक्षक बनकर जाना होगा।"

"जो आज्ञा।"

"नायक। लौटते समय तुमने सन्निधान का दर्शन किया था या नहीं?" चन्दलदेवी ने पूछा।

"पहली बार जब दर्शन किया तो कहा कि चलेंगे पर कुछ देरी होगी। तब तक रहो। फिर दो दिन बाद मिलने गया तब भी सन्निधान ने यही कहा। परन्तु रेविमय्या के आकर पूछने पर "अब दर्शन नहीं हो सकता, स्वास्थ्य अच्छा नहीं।' कह दिया, और बताया कि आज्ञा हुई है कि 'अब दर्शन नहीं दे सकते, यह एक पत्र तैयार रखा है, इसे ले जाकर अपने युवराज को दे देना।' अमात्य रादिनभट्ट दण्डनायकजी ने बताया कि बड़ी रानीजी को शीघ्र इधर ले आने की व्यवस्था कराएँ। हम इधर चले आये।"

"तो रेविमय्या कहाँ है, वह तो दिखा नहीं?" प्रभु एरेयंग ने पूछा।

"रास्ते में बलिपुर में रुक गया है, कल आयेगा।"

"हेग्गड़ेजी बलिपुर में थे?"

"नहीं।"

"होते तो अच्छा होता।"

"रेविमय्या आयेगा तो मालूम हो जायेगा। मैं कह आया हूँ। लौटते समय बड़ी रानीजी को वहाँ एक रात ठहरना पड़ेगा। हेग्गड़ेजी आ जायें तो यह सूचित करें कि वे अन्यत्र न जायें, बलिपुर में ही रहें।"

"ऐसा किया, अच्छा हुआ। परन्तु चक्रवर्ती के अस्वस्थ रहने की बात सुनकर हेग्गड़ेजी बहुत चिन्तित होंगे। आप लोगों के वहाँ पहुँचने तक उनकी चिन्ता दूर नहीं हो सकती। क्या करें, दूसरा चारा नहीं। ठीक है, नायक, अब तुम जा सकते हो। तुम्हें वस्तुस्थिति मालूम हो गयी है न? कहाँ कब क्या कहना, क्या नहीं कहना, यह याद रखना।" प्रभु एरेयंग ने कहा।

"जो आज्ञा।" कहकर प्रणाम कर चलिकेनायक चला गया। अब का नायक और था, पहले का और था। सुख-दुःख मानव के स्वरूप को ही बदल देता है, एरेयंग ने यह बात नायक के चेहरे पर स्पष्ट देखी।

"अब तक बड़ी रानीजी की उपस्थिति के कारण अन्तःपुर भरा हुआ लग रहा था। अब उनके जाने के बाद मुझे तो सूना ही लगेगा।" युवरानी एचलदेवी बोलीं।

"सूना क्यों लगना चाहिए? घर भर लीजिये। आपके बड़े राजकुमार विवाह-

योग्य तो हो ही चुके हैं।" चन्दलदेवी ने कहा।

"वह तो किसी दिन होगा ही, होना ही चाहिए। परन्तु कैसी लड़की आयेगी यह नहीं मालूम मुझे।" युवरानी एचलदेवी ने कहा।

"यह बात मैं नहीं मानती। बड़े दण्डनायकजी की बड़ी लड़की ने, सुना है, बड़े राजकुमार का मन हर लिया है।"

"वह जोड़ी ठीक बन सकेगी, बड़ी रानीजी?" युवरानी एचलदेवी बोलीं। उनकी ध्वनि में कुछ आतंक की भावना थी।

"आपके पास आने पर सब ठीक हो जायेगा। आप शत्रु को भी जीत सकती हैं।" चन्दलदेवी बोली।

"मुझे बल्लाल के ही बारे में अधिक चिन्ता है। हमारा सौभाग्य है कि अब वह ठीक बनता जा रहा है।"

"तो क्या बाकी बच्चों के बारे में चिन्ता नहीं है?"

"बिट्टि के बारे में मुझे चिन्ता नहीं। उदय अभी छोटा है, उसके बारे में चिन्तित होने का अभी समय नहीं आया है।"

"तो क्या आप किसी निर्णय पर पहुँच गयी हैं?"

"मुझे मालूम है कि कुछ बातें मैं न रोक सकती हूँ न टाल ही सकती हूँ। इसीलिए उनसे समझौता ही कर लेना चाहिए।"

"तात्पर्य यह कि अनहित से भी हित की साधना करना आपका लक्ष्य है।"

"हमसे किसी का अनहित नहीं होना चाहिए। इतना ही अभीष्ट है।"

"हमसे यह साधना नहीं हो सकती।"

"ऐसा क्यों कहती हैं? अच्छाई का काम कोई भी कर सकता है।"

"सच है। लेकिन जिसे देखकर दूसरे लोग आपस में झगड़ा करें ऐसे मेरे सौन्दर्य ने कौन-सा हित साधा।"

"इसका उत्तरदायित्व आप पर नहीं है, वह तो मनुष्य की एक नीचता है, सबकुछ अपना ही समझने का स्वार्थ। परन्तु इसी झगड़े ने हम लोगों में आत्मीयता पैदा कर दी है। आपका रूप-सौन्दर्य ही इस आत्मीयता का कारण है।"

"यही मैं भी कह रही हूँ, यही है अनहित में भी हित देखना।"

अब तक युवराज एरेयंग प्रभु चुपचाप बैठे सुन रहे थे, अब बोले, "ऐसे ही छोड़ दें तो आप लोगों की बातें कभी समाप्त नहीं होंगी। बड़ी रानीजी की यात्रा को अब और अधिक दिन तक स्थगित नहीं किया जा सकता। हम उसके लिए उपयुक्त समय निश्चित करेंगे, कल रेविमय्या और दण्डनायक के आने पर। आप अब विदाई की रस्म की तैयारी करें।"

"मरियाने दण्डनायकजी विवाह सम्बन्धी बात करने आनेवाले हैं?" चन्दलदेवी ने सीधा सवाल किया।

"न न, वह बात अब अभी सोचने की नहीं है। उसकी अभी क्या जल्दी है?" कहकर ज्यादा बात करने का मौका न देकर प्रभु एरेयंग चले गये।

"तो यह सम्बन्ध युवराज को पसन्द नहीं है?" चन्दलदेवी ने एचलदेवी से पूछा।

"बातों से तो ऐसा ही लग रहा है। इससे मुझे दोनों तरफ की चिन्ता करनी पड़ रही है। उधर अप्पाजी के विचार भिन्न है, प्रभुजी के विचार बिल्कुल अलग, यह सब स्पष्ट हो गया है। समय ही इस स्थिति को बदल सकता है। इन दोनों में से किसी एक के मन को तो बदलना ही होगा।"

"जब मैंने यह बात छेड़ी तब युवराज कुछ नहीं बोले। इससे मैं समझ बैठी थी कि इस सम्बन्ध में उनके विचार अनुकूल है। यह जानती होती कि उनके विचार प्रतिकूल है तो मैं यह सवाल नहीं उठाती, शायद न उठाना ही अच्छा होता।" चन्दलदेवी ने परेशान होकर कहा।

"पूछ लिया तो क्या हो गया? यह मामला ही कुछ पेचीदा है। यह उलझन सुलझाने का भार भी मुझी को ढोना होगा। यह सर्वथा निश्चित है। आपको परेशान होने की जरूरत नहीं। अन्दर का विरोध एक बार फूटकर बाहर व्यक्त हो जाये तो मन पर उसका दबाव कुछ कम हो जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि मेरा काम कुछ हद तक आसान हो गया है। अरे, मैं तो बातों में भूल ही गयी थी, आज सोमवार है। शाम हो रही है, जल्दी तैयार हो जायें तो मन्दिर हो आयेंगे। वाहन तैयार रखने को कहला भेजती हूँ।" युवरानी ने कहा।

चन्दलदेवी उठकर अपने निवास चन्द्रशाला गयीं।

मरियाने दण्डनायक आया। मन्त्रणागृह में युवराज से गुप्त मन्त्रणा हुई। उस समय उसने दो मुख्य बातों का जिक्र किया। पहली बात यह थी कि महाराज इस बात पर अधिक जोर दे रहे है कि युवराज सिंहासनारोहण के लिए स्वीकृति दें। अबकी बार यह बात दण्डनायक के हृदयान्तराल से निकली थी, फिर भी युवराज ने अपना पूर्व-सूचित निर्णय न बदला, उसी पर डटे रहे और कहा, "अब क्या कष्ट हो रहा है, दण्डनायकजी, कामकाज तो चल ही रहे है। पिताजी हमारे सभी कार्यों को स्वीकार कर आशीर्वाद दे रहे हैं, हम छोटों के लिए इससे बढ़कर सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है। वे जोर दे रहे हैं, इससे हमें झुकना नहीं चाहिए। कल दुनिया कह सकती है कि पिता बूढ़े हो गये, इससे उन्हें हटाकर खुद सिंहासन पर

बैठ गये। अन्दरूनी बातों को दुनियावाले कैसे जानेंगे। मेरी यह इच्छा है कि हमारे इस राज्य की प्रजा सुखी और सम्पन्न होकर शान्तिमय जीवन व्यतीत करे। यह मेरे सिंहासनारूढ़ होने से भी अधिक मुख्य विषय है। इसीलिए दुबारा कभी ऐसी सलाह देने का कष्ट न करें। यह हमारा अन्तिम निर्णय है।'' प्रभु एरेयंग ने इस निर्णय से दण्डनायक की बात पर पूर्णविराम लगा दिया।

अब अपना बान्धव्य जोड़ने का विषय मरियाने दण्डनायक ने बहुत ही नरमी के साथ धीरे से उठाया। कहा, "हमारा पूर्व-पुण्य था कि महामातृश्री केलेयब्बरसीजी ने मुझपर सहोदर-वात्सल्य रखकर किसी कोने में पड़े रहनेवाले मुझको ऊपर उठाया और एक गण्य-मान्य व्यक्ति बनाया। एक पद देकर प्रतिष्ठित किया। इस ऋण से मैं जन्म-जन्मान्तर में भी मुक्त नहीं हो सकता। सम्पूर्ण जीवन पोय्सल साम्राज्य की उन्नति के ही लिए समर्पित है, मेरा सारा घराना इसके लिए सर्वस्व का भी त्याग करने को तैयार है। राजकुमारों की सैनिक शिक्षा का भार मेरे पुत्र पर छोड़कर आपने जो अनुग्रह किया है इससे यह स्पष्ट है कि राज-परिवार का हमारे परिवार पर अत्यधिक विश्वास है। यह विश्वास हमारे लिए एक वरदान की तरह है। इस विश्वास की रक्षा का उत्तरदायित्व हमारे घराने का आद्य-कर्तव्य है। यह सम्बन्ध और निकट हो जाये, कन्या का पिता होने के कारण, एक भविष्य की आशा लिये बैठा हूँ। कई बार इस विषय का निवेदन करने की बात सोची, समय की प्रतीक्षा करता रहा। यदि सन्निधान अन्यथा न समझें तो एक निवेदन करना चाहता हूँ। अपनी बड़ी लड़की का बड़े राजकुमार बल्लालदेव के साथ विवाह कर देने की अभिलाषा करता हूँ। सन्निधान मेरी इस प्रार्थना को उदारता से स्वीकार कर अनुग्रह करें।"

"दण्डनायकजी, यह अच्छा हुआ कि आपने अपनी इच्छा बता दी। साथ ही समय-असमय की भी बात कही। वह भी ठीक है। इस विषय पर विचार का समय अभी नहीं आया। यह हमारी राय है। राजकुमार के लिए अब विवाह से अधिक आवश्यक बात यह है कि वे भावी जिम्मेदारी को सँभालने लायक योग्यता प्राप्त करें। आप ही ने कई बार कहा भी था कि उनका स्वास्थ्य सन्तोषजनक नहीं है। इधर कुछ दिन से स्वास्थ्य सुधर रहा है, पण्डित चारुकीर्तिजी की चिकित्सा के कारण। वास्तव में हमें आपसे कुछ छिपाने की जरूरत नहीं है। हमें कुछ समय पूर्व इस बात की चिन्ता हो गयी थी कि कम-से-कम बौद्धिक दृष्टि से तो सिंहासन पर बैठने योग्य भी कुमार बनेंगे या नहीं। इस बात का दुःख रहा हमें। अब आपके द्वारा प्रेषित कवि के समर्थ दिशादर्शन और शिक्षण के कारण उनमें उत्साह और आसक्ति के भाव जगे हैं। इससे हमारे मन में यह भावना आयी है और हम आशा करते हैं कि वे सिंहासन पर बैठने योग्य बनेंगे। इससे हमारा मन कुछ निश्चिन्त हुआ है। ऐसे समय विवाह की बात उठाकर उनके मन को आलोड़ित करना अच्छा

नहीं है। कम-से-कम और तीन साल तक शिक्षण की ओर ध्यान देना उनके लिए हम आवश्यक मानते हैं। आप महादण्डनायक की हैसियत से हमसे सहमत होंगे, यह हमारा विश्वास है। अभी इस प्रसंग में बात नहीं उठाना ही उचित है। बाद में यह बात सोचेंगे।"

"सन्निधान की आज्ञा है तो तब तक प्रतीक्षा करूँगा।"

"इस सम्बन्ध में हम कुछ नहीं कह सकेंगे। निर्णय आपका। विवाह कभी-कभी हमारी इच्छा के अनुसार नहीं होते। इसीलिए योग्य वर मिले, उचित अवसर भी आ जाये तभी विवाह करना उचित है। किसी भी बात पर अधिक विचार न करके हमारी बेटी केलेयल देवी का हेम्माड़ी अरस के साथ एक विशेष मुहूर्त में विवाह कर दिया गया था, विवाह के अब आठ वर्ष बीत गये। आपको मालूम है न?"

मरियाने को आगे बात करने के लिए कोई मौका ही नहीं रह गया। एक तरह से वह निराश हुआ। परन्तु उसने प्रकट नहीं होने दिया, ठीक है कहकर चुप हो गया।

इसके बाद प्रभु एरेयंग ने कहा, "दण्डनायकजी। बड़ी रानीजी को कल्याण भेजना है। चालुक्य चक्रवर्तीजी अस्वस्थता के कारण आ नहीं सकते। यों तो मेरा आना ही उचित है और संगत भी। परन्तु, इधर उत्तर की ओर रहने के कारण दो वर्ष में यहाँ की स्थिति बदल गयी है। यहीं रहकर परिस्थिति पर निगरानी रखकर कुछ देखभाल करना आवश्यक हो गया है। इसलिए आप जा सकेंगे?" प्रभु ने पूछा।

"आज्ञा हो तो हो आऊँगा।" दण्डनायक ने कहा।

"आज्ञा ही देनी होती तो आपसे ऐसा पूछने की जरूरत ही क्या थी? जब हमें जाने के लिए परिस्थिति प्रतिकूल हो तब आप जैसे ही उत्तरदायित्व रखनेवालों को भेजना उचित मानकर हमने आपसे पूछा। यदि आपको कोई महत्तर कार्य हो तो हम सोचेंगे, किसे भेज सकते हैं।" प्रभु एरेयंग ने कहा।

"प्रभुजी का ऐसा विचार करना बहुत ही ठीक है। हमारा अहोभाग्य है कि हमपर इस स्तर का विश्वास आप रखते हैं। फिर भी श्रीमान् महाराज से एक बार पूछ लेना अच्छा होगा। मैं अपनी तरफ से तैयार हूँ।" मरियाने ने कहा।

"हाँ, दण्डनायकजी, आपका कहना भी एक दृष्टि से ठीक है। मेरा ध्यान उस तरफ नहीं गया। सचमुच अब आप महाराज के रक्षक बनकर रह रहे हैं। ऐसी हालत में उनकी अनुमति के बिना आपका स्वीकार करना उचित नहीं होगा। यह आपकी दृष्टि से सही है। हम इसके लिए दूसरी ही व्यवस्था करेंगे। इस सम्बन्ध में आपको तकलीफ उठाने की जरूरत नहीं।"

"जैसी आज्ञा।"

"एक बात और। आपके पुत्र डाकरसजी ने हमें एक सलाह दी है। राज-

परिवार के दामाद हेम्माड़ी अरसजी ने बहुत खुश होकर उत्तम धनुर्धारी होने के कारण बैजरस को बुलाकर उसे 'दृष्टिभेदी धनुर्धारी' की उपाधि से भूषित किया और राजकुमारों को धनुर्विद्या सिखाने का आग्रह किया है। क्या करें?"

"इसमें मुझसे क्या पूछना। डाकरस की सलाह अत्यन्त योग्य और श्लाघनीय है। खुद ही हेम्माड़ी अरसजी ने बैजरस के हस्त-कौशल की चर्चा उदाहरण के साथ बहुत मनोरंजक ढंग से की थी जितनी जल्दी हो, उन्हें बुलाना चाहिए।" मरियाने ने कहा।

"अच्छा, अब एक-दो वैयक्तिक विषय हैं जिन्हें कहना-न-कहना हमारी इच्छा पर है और जो केवल हमारे और आपके बीच के हैं, केवल अभिप्राय से सम्बन्धित। किसी भी तरह से मन में गलत धारणा बैठ गयी हो तो उसका निवारण मात्र इसका उद्देश्य है। आपके बेटों को स्थानान्तरित करने में केवल राज्य के हित की दृष्टि है। हमने इस सम्बन्ध में प्रधान गंगराजजी से एक बार विचार-विनिमय किया था। उन्होंने भी सलाह दी थी। इस सिलसिले में एक बात सुनने में आयी कि महादण्डनायक के बल को कम करने के लिए यह काम किया गया है। यह प्रतिक्रिया राजधानी में हुई। इस तरह की भावना कहाँ से उठी यह मुख्य विषय नहीं है। ऐसी गलत धारणा क्यों आयी, यह विचारणीय है। कोई राजघराने का विरोधी है, इस बात के प्रमाण मिलने तक उसकी शक्ति कम करने का कोई मन्तव्य नहीं। हमारी धारणा है कि राज-परिवार जिन-जिन पर विश्वास करता है, उन सभी को बलवान् होना चाहिए, जिससे राज्य का हित बराबर सध सके। वे जितने ही बलवान् होंगे उतना ही अधिक वह हित सधेगा। आपके मन में यदि ऐसी कोई शंका आयी हो तो आपके दोनों पुत्र दोरसमुद्र वापस भेज दिये जायेंगे।" प्रभु एरेयंग ने कहा।

"सन्निधान के पास यह खबर आयी है कि मैंने ऐसा कहा है?"

"किसी के नाम का जिक्र हमारे सुनने में नहीं आया। खबर मात्र हमारे सुनने में आयी है। आप महादण्डनायक हैं। ऐसी बातों का इस तरह निकलना अच्छा नहीं, यह आप जानते ही हैं। आइन्दा इस बात का ध्यान रखें कि ऐसी बातें यहीं से न निकलें। इस ओर ध्यान देने से आप सजग रह सकें, इस दृष्टि से मैं कह रहा हूँ।"

सार्वजनिक वेदी या राजपथ की बातें नहीं। राजा और महादण्डनायक की गति-विधियों का पता, यह आप जानते ही है कि सीमित होना चाहिए। आपने यहाँ आने की खबर भंडारी को दी थी?"

"नहीं, उन्हें क्यों मालूम कराता।"

"इसी तरह, जाने-आने की गतिविधियों का पता जिन्हें लगना चाहिए उन्हें समय आने पर ही मालूम कराया जाये। अन्य लोगों को कभी इसकी खबर नहीं देना चाहिए। ठीक है न?"

"ठीक है, प्रभुजी।"

"एक बात और रह गयी। वह कवि नागचन्द्रजी से सम्बद्ध विषय है। अगर उन्हें पहले सूचित करते तो उसकी जानकारी दूसरों को भी हो जाती, इसलिए हमने उन्हें किसी पूर्व-सूचना के बिना अचानक ही पहले यहाँ भेज दिया। वे आपके बहुत कृतज्ञ है, इसीलिए उन्होंने, मालूम पड़ा, आपसे कहकर विदा लेने की बात कही थी। इसके लिए उन्हें समय ही नहीं मिला, उन्हें तुरन्त चलने की तैयारी करनी पड़ी। यही नहीं, वे हमारी आज्ञा पर यहाँ आये, उनके वहाँ से चले जाने के बाद ही राजमहल के आवश्यक लोगों को इसकी सूचना दी गयी थी। फिर भी महादण्डनायकजी के घर में उनपर दोष लगाया गया, यह खबर हमें मिली है। उन्हें जानते हुए भी खबर न देने का दोष दिया गया यह सुनकर बेचारे बहुत चिन्तित और दुःखी हो गये हैं। राजकुमारों के शिक्षण के लिए ही वे नियुक्त हुए थे, अतः हमारा यह विचार रहा कि उन्हें अपने साथ रखने के लिए आपकी अनुमति की आवश्यकता नहीं। यद्यपि वे राजकुमारों के अध्यापन के लिए नियुक्त हैं तो भी उन्हें बुला लानेवाले आप हैं इस कारण आपने उन पर कोई ऐसी शर्त लगायी हो कि आपके आदेशानुसार ही उन्हें चलना चाहिए तो हम आप और उनके बीच में पड़ना नहीं चाहते। उन्हें आप ले जा सकते है। परन्तु वे किसी भी बात के लिए दोषी नहीं। उन्होंने उसी पत्तल में छेद करने का-सा कोई काम नहीं किया जिसमें उन्होंने खाया है। यह बात समझाने की जिम्मेदारी हमने अपने ऊपर लेकर उन्हें दिलासा दी है। वे भी सीधे आपसे आकर मिलें शायद। उन्हे हमारी आपकी बातों के शिकंजे में फँसाना ही नहीं चाहिए। है न?"

मरियाने चुपचाप बैठा सुनता रहा। युवराज की प्रत्येक बात उसी को लक्ष्य में रखकर कही गयी है, वह स्पष्ट समझ गया। पत्नी की लम्बी जबान का प्रभाव इतनी दूर तक पहुँच गया है, इस बात की कल्पना भी वह नहीं कर सका था। परन्तु गलती कहाँ है, इस बात से वह परिचित ही था। इसीलिए उसके समर्थन के कोई माने नहीं, यह भी वह जानता था। इसलिए उसने कहा, "प्रभुजी जो कह रहे हैं वह सब ठीक है। देखनेवाली आँख और सुननेवाले कानों ने गलत राह पकड़ी है, इसीलिए प्रभुजी की बातों को स्मरण रखेंगे और बड़ी

सावधानी से वरतेंगे। प्रभु की एक-एक बात विपाददायक होने के साथ उदारता से युक्त भी है, यह स्पष्ट समझ में आ गया। यदि हमने जाने-अनजाने कोई गलती की तो उसे सुधारकर हमें सही रास्ते पर चलायें, पोय्सल राजवंश पर जो निष्ठा हममें है वह वरावर अक्षुण्ण रहे, इसके लिए समय-समय पर मार्गदर्शन कराते रहें, यही मेरी विनीत प्रार्थना है। यही मेरा कर्त्तव्य है। ज्यादा बातें करना अप्रकृत है। कवि नागचन्द्र को बुलाया ही केवल राजकुमारों के शिक्षण के लिए था। उनपर हमारा अधिकार कुछ नहीं। दण्डनायिका ने गुस्से में आकर बातें की है। मैंने उससे कहा भी था कि कवि नागचन्द्र के बारे में हमें कुछ नहीं कहना चाहिए, परिस्थिति के कारण उनको कुछ जल्दी में जाना पड़ा होगा। मैं उसे और भी समझा दूंगा। अब आज्ञा हो तो…"

"क्या दोरसमुद्र की यात्रा…?"

"जी हाँ।"

"यह कैसे सम्भव है! कल हमारे छोटे अप्पाजी का जन्म-दिन है। साथ ही बड़ी रानीजी की विदाई भी होगी। इसके लिए भोज का प्रबन्ध है। आप परसों जायेंगे बड़ी रानीजी के साथ। वे वहाँ महाराज से मिलेंगी और फिर आगे की यात्रा करेंगी। आप वहीं ठहर सकते हैं।"

"जो आज्ञा।"

"आज एक बार अपने अवकाश के समय हमारे बच्चों की सैनिक शिक्षा की व्यवस्था देखें और कैसी व्यवस्था की गयी है, सो भी पूछताछ कर लें। कुछ सलाह देनी हो वह भी दें, तो अच्छा होगा।"

"जब प्रभु स्वयं यहाँ उपस्थित हैं तब…"

"हम भी तो आप ही से शिक्षित हैं, हैं न? इतना सब करने का हमें अवकाश ही कहाँ।"

"जी, वही करूँगा।"

"अच्छा।"

मरियाने चला गया।

युवरानी एचलदेवी को इस सारी वातचीत का सारांश जल्दी ही मालूम हो गया। नागचन्द्रजी को पहले ही सूचित किया जा चुका था कि मरियाने से बात करते वक़्त उस बात का वे ख़ुद अपनी तरफ़ से जिक्र न करें।

कुमार बिट्टिदेव अब पन्द्रह की आयु पूर्ण कर सोलहवीं की ड्योढ़ी पर हैं। जन्म-दिन का उत्सव मंगल-वाद्य के साथ बड़े सम्भ्रम के साथ पारम्परिक ढंग से आरम्भ हुआ। यह उत्सव शाम के दीपोत्सव के साथ हँसी-खुशी में समाप्त हुआ। जन्म-दिन के इस उत्सव को एक नया प्रकाश भी मिल गया था। इसका कारण था कि बड़ी रानीजी की विदाई का प्रतिभोज भी उसी दिन था।

बलिपुर में जैसी विदाई हुई थी उसमें और यहाँ की विदाई के इस समारोह में अधिक फरक न दिखने पर भी बड़ी रानीजी को इस बात का पता नहीं लग सका कि आत्मीयता में कौन बड़ा, कौन कम है। परन्तु अज्ञातवास की अवधि में हेग्गड़े परिवार ने जो व्यवहार किया था, वही इस क्षणिक भावावेश का कारण था। वे उस रात बहुत ही आत्मीय भावना से युवरानी एचलदेवी को छाती से लगाकर कहने लगी, "दीदी···दीदी···दीदी···आज मुझे कितना सन्तोष हो रहा है, कहने को मेरे पास शब्द नहीं। आनन्द से मेरा गला इतना भर आया है कि बात निकल ही नहीं पा रही है। आपको छोड़कर जाने का भारी दुःख है हृदय में। आनन्द और दुःख के इस मिलन में मैं अपना स्थान-मान भूल गयी हूँ। मेरे हृदय में एकमात्र मानवीयता का भाव रह गया है, इसीलिए मेरे मन से अनजाने ही सम्बोधन निकल गया, दीदी। यहाँ आये कई महीने हुए, कभी ऐसा सम्बोधन नहीं निकला। मेरे मन में हेग्गड़ती और तुम्हारे द्वारा प्रदर्शित आत्मीयताओं की तुलना की प्रक्रिया घुमड़ रही है। यह मानसिक प्रक्रिया, ठीक है या नहीं, ऐसी प्रक्रिया ही क्यों मन में हुई, इन प्रश्नों का उत्तर मैं नहीं दे सकती। यह प्रक्रिया मेरे मन में चली है, यह कहने में मुझे कुछ भी संकोच नहीं। हस्ती-हैसियत को भूलकर आपको और भाभी माचिकब्बे को जब देखती हूँ तो मुझे सचमुच यह मालूम ही नहीं पड़ता है कि कौन ज्यादा है और कौन कम है। आप दोनों में जो मानवीयता के भाव हैं उनसे मैं अत्यधिक प्रभावित हुई हूँ। इस दृष्टि से मेरा मन रत्ती-भर ज्यादा भाभी की ओर हो जाये, तो आश्चर्य की बात नहीं। उन्हें भाभी कहते हुए संकोच होता है। आपको दीदी कहते हुए मुझे संकोच नहीं होता। सामाजिक दृष्टि से आप दोनों में बहुत अन्तर है। मैं भी ऐसे ही स्थान पर बैठी हूँ। फिर भी आप दोनों की देख-रेख में रहकर आप लोगों की गोद की बच्ची-सी बन गयी हूँ।"

भावना के इस प्रवाह में महारानीजी की एक चिर-संचित अभिलाषा की धारा भी जुड़ने को मचल उठी, "मेरी प्रत्येक इच्छा मेरे पाणिग्रहण करनेवाले चक्रवर्ती पूर्ण करेंगे। किन्तु उनसे भी पूर्ण न हो सकनेवाली एक इच्छा मेरे मन में है, उसे मैं आपसे निवेदन कर रही हूँ। लौकिक व्यवहार की दृष्टि से इस निवेदन का मुझे कोई अधिकार नहीं, लेकिन प्रसंगवशात् जो नया दृष्टिकोण मेरे मन में उत्पन्न हुआ है, आप चाहेंगी तो यह निवेदन मैं युवराज से भी कर दूंगी और महाराज से भी। बात यह है कि आप शान्तला को अपनी दूसरी बहू बना लें।"

"मेरे ही अन्तरंग की भावना आपने भी व्यक्त की है। परन्तु इसका निर्णय मुझ अकेली के हाथ में नहीं है। प्रभुजी अब विवाह की बात उठाते ही नहीं। महा-दण्डनायक से भी स्पष्ट कह दिया है।"

"क्या यह कहा कि यह नहीं होगा?"

"वैसा तो नहीं, पर यह कहा है कि अप्पाजी के विवाह की बात पर तीन वर्ष तक विचार ही नहीं करेंगे। ऐसी हालत में छोटे अप्पाजी के विवाह की बात वे सुनेंगे ही नहीं।"

"ऐसा हो तो दण्डनायक की पत्नी की आशा पर तो पानी फिर गया।"

"वह उन्हें चुप नहीं रहने देगी।"

"इस सम्बन्ध में आपके अपने विचार क्या है?"

"अपना ही निर्णय करना हो तो मुझे यह स्वीकार्य नहीं।"

"क्यों?"

"वह लड़की जिस रीति से बड़ी है उससे वह महारानी बनने लायक नहीं हो जाती। मगर अप्पाजी का झुकाव उधर हो गया हो तो मेरी स्वतन्त्रता बेमानी है।"

"प्रभुजी की क्या राय है?"

"उनका मत मेरे पक्ष से भी ज्यादा कड़ुआ है।"

"तो मतलब यह है कि आप लोगों का यह मत पीछे चलकर अप्पाजी के लिए मनोवेदना का कारण बनेगा।"

"हमने निश्चय कर लिया है कि हम ऐसा मौका नहीं आने देंगे। मनोवेदना के बिना ही यदि यह सम्बन्ध छूट जाये तो हमें ख़ुशी होगी क्योंकि अपने भविष्य पर विवेचनापूर्ण ढंग से शिक्षण के फलस्वरूप भविष्य का निर्णय स्वयं कर लेने के स्वातन्त्र्य से वंचित रखना उचित नहीं।"

"ये तीन वर्ष के बाद की बातें ज़रूर हैं परन्तु छोटे अप्पाजी के सम्बन्ध में मेरी यह राय आपके अन्तरंग के विचार की विरोधी नहीं लगती।"

"राज-परिवार पर निष्ठा रखनेवाले प्रमुख व्यक्ति कल रोक रखने का प्रयत्न भी कर सकते हैं, या ऐसी प्रेरणा देने का प्रयत्न तो कर ही सकते हैं। इसलिए अभी मैं कुछ नहीं कह सकूँगी। अर्हन्तदेव से प्रार्थना है कि मेरी यह मनोभावना सफल हो।"

"दीदी, आपकी आशा अवश्य सफल होगी क्योंकि मेरा मन कहता है यह सम्बन्ध पोय्सल वंश की वृद्धि और कीर्ति के लिए एक विशेष संयोग होकर रहेगा। छोटे अप्पाजी ने इस सम्बन्ध में कुछ कहा है?"

"इस दृष्टि से मैंने उससे बात ही नहीं की। अभी से बात करना ठीक नहीं, यह मेरा मन्तव्य है।"

कुमार बिट्टिदेव अब पन्द्रह की आयु पूर्ण कर सोलहवीं की डयोढ़ी पर हैं। जन्म-दिन का उत्सव मंगल-वाद्य के साथ बड़े सम्भ्रम के साथ पारम्परिक ढंग से आरम्भ हुआ। यह उत्सव शाम के दीपोत्सव के साथ हँसी-खुशी में समाप्त हुआ। जन्म-दिन के इस उत्सव को एक नया प्रकाश भी मिल गया था। इसका कारण था कि बड़ी रानीजी की विदाई का प्रतिभोज भी उसी दिन था।

बलिपुर में जैसी विदाई हुई थी उसमें और यहाँ की विदाई के इस समारोह में अधिक फरक न दिखने पर भी बड़ी रानीजी को इस बात का पता नहीं लग सका कि आत्मीयता में कौन बड़ा, कौन कम है। परन्तु अज्ञातवास की अवधि में हेग्गड़े परिवार ने जो व्यवहार किया था, वही इस क्षणिक भावावेश का कारण था। वे उस रात बहुत ही आत्मीय भावना से युवरानी एचलदेवी को छाती से लगाकर कहने लगीं, "दीदी···दीदी···दीदी···आज मुझे कितना सन्तोष हो रहा है, कहने को मेरे पास शब्द नहीं। आनन्द से मेरा गला इतना भर आया है कि बात निकल ही नहीं पा रही है। आपको छोड़कर जाने का भारी दुःख है हृदय में। आनन्द और दुःख के इस मिलन में मैं अपना स्थान-मान भूल गयी हूँ। मेरे हृदय में एकमात्र मानवीयता का भाव रह गया है, इसीलिए मेरे मन से अनजाने ही सम्बोधन निकल गया, दीदी। यहाँ आये कई महीने हुए, कभी ऐसा सम्बोधन नहीं निकला। मेरे मन में हेग्गड़ती और तुम्हारे द्वारा प्रदर्शित आत्मीयताओं की तुलना की प्रक्रिया घुमड़ रही है। यह मानसिक प्रक्रिया, ठीक है या नहीं, ऐसी प्रक्रिया ही क्यों मन में हुई, इन प्रश्नों का उत्तर मैं नहीं दे सकती। यह प्रक्रिया मेरे मन में चली है, यह कहने में मुझे कुछ भी संकोच नहीं। हस्ती-हैसियत को भूलकर आपको और भाभी माचिकब्बे को जब देखती हूँ तो मुझे सचमुच यह मालूम ही नहीं पड़ता है कि कौन ज्यादा है और कौन कम है। आप दोनों में जो मानवीयता के भाव हैं उनसे मैं अत्यधिक प्रभावित हुई हूँ। इस दृष्टि से मेरा मन रत्ती-भर ज्यादा भाभी की ओर हो जाये, तो आश्चर्य की बात नहीं। उन्हें भाभी कहते हुए संकोच होता है। आपको दीदी कहते हुए मुझे संकोच नहीं होता। सामाजिक दृष्टि से आप दोनों में बहुत अन्तर है। मैं भी ऐसे ही स्थान पर बैठी हूँ। फिर भी आप दोनों की देख-रेख में रहकर आप लोगों की गोद की बच्ची-सी बन गयी हूँ।"

भावना के इस प्रवाह में महारानीजी की एक चिर-संचित अभिलाषा की धारा भी जुड़ने को मचल उठी, "मेरी प्रत्येक इच्छा मेरे पाणिग्रहण करनेवाले चक्रवर्ती पूर्ण करेंगे। किन्तु उनसे भी पूर्ण न हो सकनेवाली एक इच्छा मेरे मन में है, उसे मैं आपसे निवेदन कर रही हूँ। लौकिक व्यवहार की दृष्टि से इस निवेदन का मुझे कोई अधिकार नहीं, लेकिन प्रसंगवशात् जो नया दृष्टिकोण मेरे मन में उत्पन्न हुआ है, आप चाहेंगी तो यह निवेदन मैं युवराज से भी कर दूँगी और महाराज से भी। बात यह है कि आप शान्तला को अपनी दूसरी बहू बना लें।"

"मेरे ही अन्तरंग की भावना आपने भी व्यक्त की है। परन्तु इसका निर्णय मुझ अकेली के हाथ में नहीं है। प्रभुजी अब विवाह की बात उठाते ही नहीं। महा-दण्डनायक से भी स्पष्ट कह दिया है।"

"क्या यह कहा कि यह नहीं होगा?"

"वैसा तो नहीं, पर यह कहा है कि अप्पाजी के विवाह की बात पर तीन वर्ष तक विचार ही नहीं करेंगे। ऐसी हालत में छोटे अप्पाजी के विवाह की बात वे सुनेंगे ही नहीं।"

"ऐसा हो तो दण्डनायक की पत्नी की आशा पर तो पानी फिर गया।"

"वह उन्हें चुप नहीं रहने देगी।"

"इस सम्बन्ध में आपके अपने विचार क्या हैं?"

"अपना ही निर्णय करना हो तो मुझे यह स्वीकार्य नहीं।"

"क्यों?"

"वह लड़की जिस रीति से बढ़ी है उससे वह महारानी बनने लायक नहीं हो जाती। मगर अप्पाजी का झुकाव उधर हो गया हो तो मेरी स्वतन्त्रता बेमानी है।"

"प्रभुजी की क्या राय है?"

"उनका मत मेरे पक्ष से भी ज्यादा कड़ुआ है।"

"तो मतलब यह है कि आप लोगों का यह मत पीछे चलकर अप्पाजी के लिए मनोवेदना का कारण बनेगा।"

"हमने निश्चय कर लिया है कि हम ऐसा मौका नहीं आने देंगे। मनोवेदना के बिना ही यदि यह सम्बन्ध छूट जाये तो हमें ख़ुशी होगी क्योंकि अपने भविष्य पर विवेचनापूर्ण ढंग से शिक्षण के फलस्वरूप भविष्य का निर्णय स्वयं कर लेने के स्वातन्त्र्य से वंचित रखना उचित नहीं।"

"ये तीन वर्ष के बाद की बातें ज़रूर हैं परन्तु छोटे अप्पाजी के सम्बन्ध में मेरी यह राय आपके अन्तरंग के विचार की विरोधी नहीं लगती।"

"राज-परिवार पर निष्ठा रखनेवाले प्रमुख व्यक्ति कल रोक रखने का प्रयत्न भी कर सकते हैं, या ऐसी प्रेरणा देने का प्रयत्न तो कर ही सकते है। इसलिए अभी मैं कुछ नहीं कह सकूँगी। अर्हन्तदेव से प्रार्थना है कि मेरी यह मनोभावना सफल हो।"

"दीदी, आपकी आशा अवश्य सफल होगी क्योंकि मेरा मन कहता है यह सम्बन्ध पोय्सल वंश की वृद्धि और कीर्ति के लिए एक विशेष संयोग होकर रहेगा। छोटे अप्पाजी ने इस सम्बन्ध में कुछ कहा है?"

"इस दृष्टि से मैंने उससे बात ही नहीं की। अभी से बात करना ठीक नहीं, यह मेरा मन्तव्य है।"

"चाहे जो भी हो, यह तो ऐसा ही होना चाहिए। यह मेरी हार्दिक आशा है।"

"इसे सम्पन्न होने में कोई अड़चन पैदा न हो, यही मैं भी चाहती हूँ।"

"तो इस बात का निवेदन युवराज और महाराज से करने के बारे में···।"

"अभी नहीं।" युवरानी एचलदेवी ने बीच में ही कहा। फिर कुछ सोचकर बोली, "रेविमय्या ने बलिपुर से लौटने के बाद कुछ कहा होगा ?" इस प्रश्न ने इस विचार का रूप बदल दिया। "कुछ नयी बात तो नहीं कही न ? बिट्टिदेव के समस्त जीवन में शान्तला व्याप्त हो गयी है। उसे कोई भी बहाना, कैसा भी सही, मिले, वह उसके बारे में कोई अच्छी बात कहे बिना न रहेगा। परन्तु अब मैंने ध्यानपूर्वक देखा है, उसने जैसे यह निश्चय कर लिया है कि कहीं भी शान्तला के बारे में एक शब्द भी नहीं कहेगा। मेरा यह प्रस्ताव कार्यरूप में परिणत होगा तब इस संसार में उससे अधिक सन्तोष किसी को नहीं होगा। मेरी निश्चित धारणा है कि इस पोय्सल वंश ने अपूर्व मानवों का संग्रह कर रखा है। चालुक्यों के यहाँ भी ऐसे ही लोगों का संग्रह होना चाहिए। इसके लिए हम चुननेवालों में खुले दिल से सबसे मिल सकने की क्षमता होनी चाहिए। अब हमारे साथ आनेवाली इस गालब्बे और लेंक की मदद इस दिशा में मिलेगी, यह आशा है। दीदी, मैं अब नयी मानवी बनकर यहाँ से लौट रही हूँ। हमेशा आपका यह प्रेम बना रहे, मुझे आशीर्वाद दें।" कहती हुई महारानी चन्दलदेवी ने युवरानी एचलदेवी के हाथ अपने हाथों में ले लिये।

"आप हमेशा सुखी ही रहें, यही हमारी आशा-अभिलाषा है। यहाँ प्राप्त यह नया अनुभव चालुक्य प्रजा-जन को मानवीय आदर्शों पर चलने में पथ-प्रदर्शन करे। हम फिर मिल सकें या न मिल सकें परन्तु हममें प्रस्फुटित यह आत्मीयता सदा ऐसी ही बनी रहे। भेदभाव और स्थान-मान की भावना इसे छुए तक नहीं।" कह-कर उन्हें बाहुपाश में लेकर एचलदेवी सिर सूँघकर उस पर हाथ फेरती रहीं।

कन्नड़ राज-भगिनियों के इस संगम का दृश्य कर्नाटक की भावी भव्यता का प्रतीक बनकर शोभा दे रहा था।

मरियाने दण्डनायक ने कवि नागचन्द्र को बुलाकर उनसे बड़ी आत्मीयता के साथ बात की। इस अवसर पर डाकरस दण्डनायक भी साथ रहे, यह अच्छा हुआ, क्योंकि कवि नागचन्द्र ने युवरानीजी से जो बातें कही थीं उनका मूल आधार डाकरस ही थे। दण्डनायक अपने को बचाने के लिए इन बातों से इनकार कर देते

तो नागचन्द्र की स्थिति वड़ी विचित्र बन जाती। कविजी की स्थिति सन्दिग्धावस्था में पड़ी थी। डाकरस भी अपनी सौतेली माँ की बातों के कारण दुःखी था। इस-लिए उसने कहा, "राजघराने के अपार विश्वास के पात्र हम उस विश्वास की रक्षा करने में यदि अब भी तत्पर हो जायें तो हम कृतार्थ होंगे, इसके विपरीत व्यवहार-ज्ञान से शून्य और अपना बड़प्पन दिखानेवाली औरतों की बातों पर नाचने लगे तो हम जिसका नमक खा रहे हैं उसी को धोखा देंगे।" निडर होकर बिना किसी संकोच के अपने पिता के समक्ष खरी-खोटी सुनाकर डाकरस ने यह भी कह दिया कि उनके व्यवहार को देखने पर उनकी दूसरी पत्नी प्रधान गंगराज की बहन है, यह विश्वास ही नहीं होता।

प्रधानजी के मना करने पर भी पत्नी की बात मानकर विवाह-सम्बन्ध विचार के लिए वह आया था। यहाँ की हालत का अनुभव होने के बाद दण्डनायक ने तात्कालिक रूप से यह निर्णय भी कर लिया था कि आइन्दा इस तरह पत्नी की बातों में आकर कोई कार्य नहीं करेगा। उसके पुत्र डाकरस पर युवराज का विश्वास है, इतना सन्तोष उसे अवश्य था। कुल मिलाकर यही कहना पड़ेगा कि अबकी बार दण्डनायक मरियाने का इस यात्रा पर निकलने का मुहूर्त अच्छा नहीं था।

शिक्षण की सारी व्यवस्था देखकर दण्डनायक ने व्यूह-रचना के सम्बन्ध में आवश्यक सलाह दी, "योद्धा तो मृत्यु का सामना करते ही हैं लेकिन युद्ध-कला से अपरिचित नागरिकों को शत्रुओं के अचानक हमले से सुरक्षित रखने के लिए हर गाँव और कसबे में आरक्षण व्यवस्था के लिए मजबूत घेरा और जगह-जगह बुर्ज बनाना आवश्यक है। घेरे के चारों ओर पेड़-पौधे लगाना आवश्यक है ताकि शत्रुओं को इस बात का पता भी न लगे कि इसके अन्दर भी लोग आरक्षित हैं।" ऐसी ही एक-दो नहीं अनेक बातें समझायीं और अनेक उपयुक्त सलाहें दीं उन्होंने।

दोनों राजकुमारों की प्रगति देखकर वास्तव में उन्हें आश्चर्य हुआ। खासकर बल्लाल की प्रगति तो कल्पनातीत थी। ऐसी बुद्धिमत्ता और पौरुष उसमें हो सकता है, यह उनकी समझ में ही आया था। दण्डनायक को गर्व का अनुभव भी हुआ, आखिर कभी तो वे उसके दामाद होंगे। यह हो ही नहीं सकता, ऐसा तो युव-राज ने नहीं कहा था। प्रतीक्षा उसके उत्तरदायित्व पर छोड़ रखी है और उसने भी प्रतीक्षा करने का निर्णय कर लिया है। इसलिए बड़ी रानी के साथ प्रस्थान करने के पहले उसने डाकरस से इस विवाह के बारे में राजकुमार का अभिमत जानकर सूचित करने को भी कहा जिसने कुछ न कहकर सिर्फ़ सिर हिला दिया।

कार्य समाप्त करके मरियाने बड़ी रानी के साथ दोरसमुद्र पहुँच गया। ख़ुद चिण्णम दण्डनायक की देख-रेख में चालुक्य बड़ी रानी अब अपने निज रूप में थी। साथ में हिरियचलिके नायक, गालब्बे और लेंक भी थे।

वास्तव में वे रेविमय्या को अपने साथ ले जाना चाहती थीं, लेकिन बिट्टिदेव के भविष्य का रक्षक और एक तरह से अंगरक्षक होने से वह न जा सका। युवराज, युवरानी और राजकुमारों से विदा लेते समय उन्हें मानसिक वेदना हुई थी लेकिन उससे तीव्र वेदना रेविमय्या से विदा लेते वक्त हुई थी। ऐसा क्यों हुआ, यह उनकी समझ में नहीं आया। उनके सारे काम वास्तव में गालब्बे और लेंक ने ही किये परन्तु रेविमय्या के प्रति बड़ी रानी के दिल में उनसे भी बढ़कर एक विशिष्ट तरह का अपनापन उत्पन्न हो गया था। उस दिन बलिपुर में शान्तला ने 'फूफी वह भी ऐसा ही है जैसी आप हैं।' कहते हुए रेविमय्या के बारे में जो बातें बतायी थीं, उनसे उसके प्रति उनके दिल में एक तरह की व्यक्तिगत सद्भावना अव्यक्त रूप से पनपने लगी थी। यहाँ आने पर युवरानी और युवराज के उससे व्यवहार की रीति तथा अपनी विनयशीलता आदि के कारण भी वह बड़ी रानीजी का प्रीतिभाजन बना। इसके साथ एक और बात थी कि जो कुछ शान्तला के लिए प्रीतिभाजन था वह उन्हें अपना भी प्रीतिभाजन लगा था। उनके मन में यह विचार आया कि शान्तला की, एक छोटी अप्रबुद्ध कन्या की, इच्छा-अनिच्छाओं का इतना गहरा प्रभाव मुझपर, एक प्रबुद्ध प्रौढ़ा पर पड़ा है, जिससे प्रतीत होता है कि मानव की बुद्धि के लिए अगोचर प्रेम की कोई शृंखला अवश्य है जो मुझे अपनी ओर खींच-कर झकझोर रही है।

बलिपुर का दो दिन का मुकाम उन्हें दो क्षण का-सा लगा। बूतुग चकित होकर दूर खड़ा रहा। बड़ी रानी ने चिर-परिचित-सी उससे कहा, "अरे, इधर आ, क्यों डरा-डरा इतनी दूर खड़ा है? क्या तुझे मालूम नहीं कि मैं कौन हूँ?"

"ऐसा भी हो सकता है, माँ? आपको देखते ही मेरी जीभ जकड़ गयी। इस नालायक जीभ का दुरुपयोग कर मैंने महापाप किया। मुझे यह कीड़ा-भरी जीभ भूलने देगी।"

उसकी बगल में रायण खड़ा था। उसने धीरे से फुसफुसाकर कहा " रे बूतुग, ये कौन हैं, जानते हो? ये चालुक्य महारानी हैं, सन्निधान कहो, माँ-वाँ नहीं।"

"ऐ, छोड़ो भी, हमें यह सब मालूम नहीं। प्रेम से माँ कहने से जो सन्तोष और सुख मिलता है वह कष्ट उठाकर सन्निधान कहने पर नहीं मिल सकेगा। चाहे ये कुछ भी समझ लें, हम तो माँ ही कहेंगे। अगर गलत हो तो क्षमा करनी होगी माँ।"

"तुम्हें जैसा आसान लगे वैसा ही पुकारो, बूतुग। परन्तु एक बात सुनो, वह पुरानी घटना भूल जाओ। वह अब मन में नहीं रहना चाहिए। आगे से अपनी जीभ को कीड़ा मत बोला करो, समझे?"

"हाँ, समझा, माँ।"

"तुमने शादी कर ली?"

"मुझे यह बन्धन ठीक नहीं लगता। ऐसे ही किसी जकड़-बन्द के बिना रहकर मालिक की सेवा करता हुआ जीवन ख़तम कर दूँगा।"

"गालब्बे और लेंक यह सोच रहे हैं कि दासब्बे के साथ तुम्हारी शादी कर दें।"

"हाँ, हाँ, यह बूतुग के लिए एक दिल्लगी की चीज बन गया है। बेवकूफ़ समझकर सब हँसी उड़ाते हैं। बबूल के पेड़ जैसा मेरा रंग, अड़हुल के फूल जैसी पीली वह दासब्बे, ऐसी कोमल और सुन्दर। उसे मुझ-जैसे के साथ शादी करने देगा कोई?"

"तुम हाँ कहो तो तुम्हारी शादी कराकर ही मैं कल्याण जाऊँगी।"

बूतुग सिर झुकाये खड़ा रहा। दिल्लगी की बात सचमुच मंगलवाद्य-घोष के साथ सम्पन्न हो गयी। उस नयी जोड़ी को आशीष देकर, बलिपुर छोड़ने की अनिच्छा होते हुए भी, अपने अज्ञातवास के समय किसी-न-किसी कारण से जिन-जिनसे सम्पर्क हुआ था उन सबका वस्त्र आदि से सत्कार कर विदा हुईं। "महा-रानी माँ कर्ण जैसी सन्तति की माँ बनकर चालुक्य वंश को शोभित करें" बलिपुर के सभी लोगों ने ऐसी प्रार्थना की। बलिपुर की बाहरी सीमा तक जाकर हेगड़े-हेगड़ती, शान्तला, रायण, ग्वालिन ल्यारप्पा, बूतुग, दासब्बे आदि ने मंगलवाद्य-घोष के साथ विदाई दी। बड़ी रानीजी की विदाई में सारे-का-सारा बलिपुर शामिल हो गया था। अश्व-चालित रथ थोड़ी ही देर में आँखों से ओझल हो गया।

बूतुग और दासब्बे ने अपने हाथ में बँधा कंकण देखा और देखी वह लाल-लाल धूल जो धुनर्धारी सेना के चलने से उठ रही थी। हम कहाँ, चालुक्य साम्राज्ञी कहाँ? कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली? इस विवाह की प्रेरक-शक्ति वे कैसे बन गयी? पहले यदि किसी ने यह सोचा होता तो वह हास्यास्पद बनता।

पोय्सल राजकुमारों के साथ उदयादित्य भी अब शिक्षण पाने लगा था। कवि नागचन्द्र से ज्ञानार्जन, डाकरस दण्डनायक से सैनिक-शिक्षण, हेम्माड़ी अरस की सिफारिश पर दृष्टिभेदी धनुर्धारी की उपाधि से भूषित बैजरस से धनुर्विद्या का शिक्षण बेलापुर के शान्त वातावरण में चल रहा था।

बल्लाल कुमार को अपने शिक्षण के कार्यक्रमों में मग्न रहने के कारण पद्मला का स्मरण तक नहीं आया। कल पोय्सल सिंहासन पर बैठनेवाले राजा को उस सिंहासन पर बैठने योग्य शिक्षण भी पाना ही चाहिए। उसे यह पछतावा था कि

अब एक साल से जिस श्रद्धा और निष्ठा से ज्ञानार्जन किया वही श्रद्धा और निष्ठा उन गुजरे सालों में भी हुई होती तो कितना अच्छा होता। कितना समय फिजूल गया। एक समय था कि उसके माता-पिता एवं गुरु भी इसके विषय में बहुत चिन्ताग्रस्त हो गये थे। परन्तु अब वे बहुत खुश थे। इस वजह से वेलापुर के राज-महल में एक नवीन उत्साह झलक रहा था।

यहाँ दोरसमुद्र में महादण्डनायक के घर में निरुत्साह और मनहूसी छा गयी थी। बड़ी रानीजी का कार्यक्रम दोरसमुद्र में महाराज से मिलकर आशीर्वाद लेने तक ही सीमित था। इसके बाद उनकी कल्याण की तरफ़ यात्रा थी। तब से जो मनोवेदना शुरू हुई वह क्रमशः बढ़ती गयी। वेलापुरी में जो बातचीत हुई थी उसका विस्तार के साथ बयान करने के साथ-साथ दण्डनायक ने अपनी प्यारी पत्नी को खूब झिड़का। पति असमर्थ होता है तो पत्नी पर गुस्सा उतारता है परन्तु भाई अपनी बहिन पर ऐसा नहीं कर सकता, यह सोचकर चामव्वा ने भाई प्रधान गंगराज को अपनी रामकहानी कह सुनायी। उसे मालूम नहीं था कि उसके पतिदेव ने पहले ही सब बातें उनसे कह दी हैं। जो भी हो, भाई से झिड़कियाँ तो नहीं पर उपदेश अवश्य मिला, "अपनी लड़की को महारानी बनाने के लिए तुम्हें तीन-चार वर्ष तपस्या करनी होगी। तब तक तुम्हें मुँह पर ताला लगाकर गम्भीर होकर प्रतीक्षा करनी होगी। तुम औरतों को अपनी होशियारी का प्रदर्शन और प्रयोग का बहिष्कार करना पड़ेगा पूरी तौर से। यदि मेरे कहे अनुसार रहोगी तो तुम्हारी आशा को सफल बनाने में मेरी मदद रहेगी। एक बात और याद रखो। प्रेम से लोगों को जीतना, अधिकार दिखाकर जीतने से आसान है।"

"आपकी बात मेरे लिए लक्ष्मण रेखा बनकर रहेगी।" भाई को वचन देकर वह घर लौट आयी।

शिक्षण में जितना उत्साह चामला का था उतना पद्मला का नहीं। इसका कारण न हो, ऐसी बात नहीं थी। पिता जब से वेलापुर गये उसका यह निश्चित विचार था कि दण्डनायक मुहूर्त निश्चित करके ही लौटेंगे, परन्तु उनके लौटने पर यह बात ही नहीं उठी। स्वयं जानना चाहे तो पूछे भी कैसे। शर्म भी है, जानने की इच्छा भी। बहिन चामला को फुसलाकर जानने की कोशिश भी की, परन्तु सफल नहीं हुई।

माँ से कुछ भी जानकारी न मिलने पर पद्मला ने ढीठ होकर पिताजी से ही पूछ लिया। उन्होंने कहा, "समय आने पर सब होगा। हम जल्दबाजी करेंगे तो बनेगा नहीं। इतना ही नहीं, शादियाँ हमारी इच्छा के अनुसार तो नहीं होतीं। भगवान् ने किस लड़के के साथ किस लड़की की जोड़ी बना रखी है, कौन जाने। तुम लोग अपने अध्ययन की ओर ध्यान दो। एक बार एक महात्मा ने कहा था, हम यदि खोजने निकलें तो वह दूर भागता है, हम विमुख हो जायें तो वही हमें

खोजता आयेगा।" चामला का कोई स्वार्थ नहीं था अतः उसे निराशा नहीं हुई। वास्तव में बिट्टिदेव के कारण उसकी लगन अध्ययन और ज्ञानार्जन की ओर बढ़ गयी थी। वोप्पि अभी-अभी पढ़ाई में लगी थी।

उधर बलिपुर में शान्तला प्रगति के पथ पर थी। अभी-अभी उसने शिल्प-शास्त्र सीखना शुरू किया था। इसके लिए वह सप्ताह में एक बार बलिपुर के महाशिल्पी दासोज के घर जाया करती। बोकमय्या, शिल्पी गंगाचारी और दासोज की ज्ञानत्रिवेणी में शान्तला नित्यप्रति निखर रही थी।

बड़ी रानी चन्दलदेवी के साथ रहकर भी शान्तला ने अनेक बातें सीखी थीं। इधर कुछ महीनों में वह कुछ बड़ी लग रही थी। पिता हेग्गड़े मारसिंगय्या ने जो लकीर बनायी थी उस तक वह करीब-करीब पहुँच गयी थी। निर्णीत समय से कुछ पहले ही शस्त्र-विद्या का शिक्षण शुरू हो गया। खुद सिंगिमय्या को हेग्गड़े मार-सिंगिमय्या ने यह काम सौंपा था।

परन्तु बलिपुर के जीवन में थोड़ा-सा परिवर्तन दिख रहा था। अब हेग्गड़े दम्पती और उनकी पुत्री पर विशेष गौरव के भाव व्याप्त थे। वह गौरव भावना पहले भी रही, परन्तु अब उन्हें राज-गौरव प्राप्त होता था। चालुक्य साम्राज्ञी उनके यहाँ कई महीने अतिथि बनकर रहीं। स्वयं पोय्सल युवराज यहाँ मुकाम कर चुके थे। लोगों को यह सारा विषय मालूम था और वे इस पर गर्व भी करते थे।

बूतुग को अब गाँव के बाहर के पीपल की जगत पर बैठकर गूलर के फल अंजीर समझकर खाने की फुरसत नहीं मिल रही थी। अनेक बार हेग्गड़ेजी अपने प्रवास में उसे साथ ले जाया करते। बूतुग की मान्यता थी कि दासब्बे उसके लिए एक अलभ्य लाभ है। दासब्बे के प्रति उसके प्रेम का फल मिलने के आसार दिखने लगे थे।

दासब्बे को देखकर ग्वालिन मल्लि को ईर्ष्या न हो, पर यह चिन्ता ज़रूर हो रही कि भगवान् ने मुझपर कृपा क्यों नहीं की। इस विषय पर पति-पत्नी में जब बातें होती तो रायप्पा पत्नी से कहता, "कितनी ही स्त्रियाँ शादी के पन्द्रह वर्ष बाद भी गर्भवती होती हैं, ऐसा क्यों नहीं सोचती।" मल्लि कहती, "किये गये पाप कर्मों का फल भोगना है न? उस पुनीता माता को खतम करने के लिए हाथ आगे बढ़ाया था न? इस पाप को भोगोगे नहीं तो क्या करोगे। वह डंक तो मारती, फिर भी आपस में कटुता को मौका नहीं देनी थी।"

इधर साम्राज्ञी चन्दलदेवीजी को कल्याण सुरक्षित पहुँचाकर चिण्णम दण्ड-नायक और चलिकेनायक तो लौट आये, परन्तु गालब्बे और लेंक वहीं रह गये। उन्हें प्रतिदिन बलिपुर की याद हो आती, प्रार्थना करते, हे ईश्वर कृपा करो कि शान्तला-बिट्टिदेव का विवाह हो।

युव संवत्सर बीता, धातृ संवत्सर का आरम्भ हुआ। युवराज एरेयंग प्रभु के

द्वितीय पुत्र का उपनयन निश्चित हुआ। सब जगह आमन्त्रण पत्र भेजे गये। उप-नयन का समारम्भ दोरसमुद्र में ही होनेवाला था, इसलिए इन्तज़ाम की सारी जिम्मेदारी मरियाने दण्डनायक पर ही थी। किस-किसको आमन्त्रण भेजना है इसकी सूची तैयार की जा चुकी थी। यह सूची उसने अपनी पत्नी को दिखायी, यद्यपि इधर कुछ समय से वह राजमहल की बातों का जिक्र उससे करता न था।

उसने सारी सूची देखी और पढ़ी तो वह गरजने लगी, "बलिपुर के हेग्गड़े, हेग्गड़ती और वह सरस्वती का अवतार उसकी लड़की नहीं आयेंगे तो छोटे राज-कुमार का उपनयन होगा? उन्हें नहीं बुलायेंगे तो प्रभु और युवरानीजी आपको खा नहीं जायेंगे? ऐसा क्यों किया?"

"हाय, हाय, कहीं छूट गया होगा। अच्छा हुआ, सूची तुम्हें दिखा ली। उनका नाम जोड़कर दूसरी सूची तैयार करूँगा।"

"आँखों को चुभे नहीं, ऐसा जोड़िए, पहले नाम न लिखें। सूची के बीच में कहीं जोड़ दें।"

"अच्छी सलाह है।"

युवराज ने सूची देखी। "ठीक है दण्डनायकजी, अनिवार्य रूप से जिन-जिन को आना चाहिए उन सभी की सूची ध्यान से तैयार की गयी है। इन सबके पास सभी को मेरे हस्त-मुद्रांकित आमन्त्रण-पत्र पहले भेजे जायें।"

"जो आज्ञा।"

प्रभु द्वारा हस्तमुद्रांकित आमन्त्रण पत्रों का दुबारा मिलान मरियाने ने पत्नी के साथ किया। उन्हें मन्त्रणालय के द्वारा वितरण करने के लिए भेज दिया।

उपनयन का शुभ मुहूर्त शक संवत् 1018, धातृ संवत्सर उत्तरायण, ग्रीष्म ऋतु ज्येष्ठ मास के शुक्ल पंचमी बृहस्पतिवार को जब गुरु-चन्द्र कर्कटक में शुभ नवांश में थे, तब पुनर्वसु नक्षत्र में कर्कटक लग्न में निश्चित था। इस लग्न के लाभस्थान में रवि के रहने से माता-पिता के प्राण स्वरूपचन्द्र, रवि और गुरु की शुभस्थिति को मुख्यता गणना कर उपनयन का मुहूर्त निश्चित किया गया था।

चैत के अन्त तक सभी के पास आमन्त्रण पत्र पहुँच गये। बुद्ध पूर्णिमा के बाद युवराज-परिवार की सवारी वेलापुरी से दोरसमुद्र के लिए रवाना हुई। इन आठ-दस महीनों में वे चार-छः बार वेलापुरी आ चुके थे। मरियाने भी दो-तीन बार वहाँ गया था। युवराज एरेयंग प्रभु ने मानो दूसरे ही मरियाने को देखा था, जिससे एरेयंग प्रभु निश्चिन्त-से थे।

खुद मरियाने से यह सुनकर कि चामव्वे ने ही भूल की ओर ध्यान आकर्षित करके हेग्गड़ेजी मारसिंगय्या का नाम लिखाया, युवरानी ने समझा कि अब दण्ड-नायक दम्पती ने हमारी इच्छा-अनिच्छाओं को समझने की कोशिश की है। हमारी

कृपा चाहनेवाले वे हमारे मन को दुखाने का काम अब नहीं करेंगे, ऐसी उनकी धारणा बनी।

जेठ का महीना आया। आमन्त्रित एक-एक कर दोरसमुद्र पहुँचने लगे। अबकी बार भी राजमहल में किसी को नहीं ठहराया गया। सोसेऊरु की ही तरह किसी तारतम्य के बिना सबको अलग-अलग ठहरने की व्यवस्था की गयी थी। युवरानी एचलदेवी से चामव्वे ने पूछा, "हेग्गड़तीजी के ठहरने की व्यवस्था राजमहल में ही की जानी चाहिए न?"

"क्या उनके सींग हैं? किसी भी अतिथि के लिए राजमहल में स्थान की व्यवस्था न रहेगी। ऐसे समय इस तरह का भेदभाव उचित नहीं।" युवरानी ने स्पष्ट कहा।

उसके दिमाग में युवरानी के 'क्या उनके सींग हैं' शब्द मँडरा रहे थे। युवरानीजी के मुँह ऐसी बात, सो भी उसके बारे में जिसपर उनका अपार प्रेम और विश्वास है? इस पर चामव्वे बहुत खुश हुई। उसने सोचा हेग्गड़ती का रहस्य खुल गया है। अच्छा हुआ। उसे युवरानीजी का मन तपाया हुआ सोना लगा जिसे जब वह गरम है तभी अपनी इच्छा के अनुरूप रूपित कर देना चाहिए। इसी उत्साह से वह फूल उठी। उसकी आन्तरिक धारणा थी कि राज-परिवार की सेवा करनेवाले या उसपर इतनी निष्ठा रखनेवाले उससे अधिक कोई नहीं। वह कब खाती, कब विश्राम लेती किसी को पता नहीं लगता। वह इस तरह कामों में जुट गयी कि जो अतिथि आये थे उन सभी के मनों में दण्डनायिका-ही-दण्डनायिका व्याप गयी, इसमें कोई शक नहीं।

तृतीया की शाम तक करीब-करीब सभी आहूत अतिथि पहुँच चुके थे। परन्तु यह बहुत आश्चर्य की बात थी कि बलिपुर के हेग्गड़े का कहीं पता नहीं था। सबसे पहले जिन लोगों को आना चाहिए था उन्हींके अब तक न आने ने बेचारी युवरानी परेशान थी। इस बार युवरानी ने दण्डनायक से सीधा प्रश्न नहीं करके उसे चकित किया। अलबत्ता दण्डनायक ने [illegible] यह प्रश्न उठाना [illegible] दोपहर को। युवरानी और युवराज ने [illegible] विचार किया। [illegible] आमन्त्रण पत्र कौन ले गया था, क्यों नहीं [illegible] था, इसका पता लगाकर [illegible] कारी देने का युवराज ने आदेश दिया [illegible] को। [illegible] यह हेग्गड़े अगर आ न सकता तो पत्र लिखकर सूचित करता। [illegible]

तहकीकात से मालूम हुआ कि हेग्गड़े के पास आमन्त्रण गया ही नहीं। किससे ऐसा हुआ, इसका पता शाम तक लगाने का आदेश मन्त्रणालय के कर्मचारियों को दिया मरियाने ने और ऐसे व्यक्ति को उग्र दण्ड की धमकी दी।

पति से यह सब सुनकर चामव्वे घबड़ा गयी, "मैंने ख़ुद इसपर ध्यान देकर सब देखा-भाला, फिर भी ऐसा क्यों हुआ, इसमें किन्हीं विरोधियों का हाथ है फिर भी यह अपराध हम ही पर लगेगा क्योंकि सब जिम्मेदारी हमपर है। आपके मन्त्रणालय में कोई ऐसे है जो आपसे द्वेष-भावना रखते हों?"

अब युवराज को क्या कहकर समझाऊँ, इसी चिन्ता में मरियाने घुल रहा था कि नौकरानी सावला आयी और बोली, "मन्त्रणालय के अधीक्षक दाममय्या मिलने आये हैं, और वे जल्दी में हैं।"

मरियाने बाहर के प्रांगण में आया तो दाममय्या ने कहा, "आदेश के अनुसार सारा शोध किया गया। आपने कितने निमन्त्रण पत्र दिये, इसका हिसाब मैंने पहले गिनकर लिख रहा था। वितरित आमन्त्रण पत्रों की संख्या और मेरा हिसाब दोनों बराबर मेल खाते हैं। इससे लगता है कि बलिपुर के हेग्गड़े का आमन्त्रण पत्र हमारे पास आया ही नहीं।"

"तो क्या उस आमन्त्रण पत्र को मैं निगल गया?"

"मैंने यह नहीं कहा, इतना ही निवेदन किया कि जो आमन्त्रण पत्र मुझे वितरण के लिए दिये गये, उनका ठीक वितरण हुआ है।"

"तो वह आमन्त्रण पत्र गया कहाँ जिसे बलिपुर के हेग्गड़े के पास भेजना था?"

"आपके युवराज के पास से आने और पत्रों के मन्त्रणालय में पहुँचने के बीच कुछ हो गया हो सकता है।"

"आमन्त्रण पत्रों का पुलिन्दा मेरे साथ ही मेरे घर आया। वहाँ से सीधा मन्त्रणालय में भेज दिया गया। तब आपके कहे अनुसार हमारे ही घर में कुछ गड़बड़ी हो गयी है। यही समझूँ?"

"यह कहनेवाला मैं कौन होता हूँ? मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि जो कार्यभार मुझे सौंपा गया उसे मैंने अपने मातहत कर्मचारियों के द्वारा सम्पन्न किया है। निष्ठा के साथ। उसमें कहीं कोई गलती नहीं हुई, इतना सत्य है।"

"युवराज के सामने आप ऐसा कहेंगे?"

"सत्य कहने से डरना क्यों?"

"आपके कहने के ढंग से ऐसा मालूम होता है कि इसमें आपका ही हाथ होगा। और मुझे युवराज से यही विनती करनी होगी।"

"मैंने सत्य कहा है, फिर आपकी मर्जी। आज्ञा हो तो मैं चलूँगा।" अधीक्षक दाममय्या ने कहा। उसे दुःख हुआ कि सत्य बोलने पर भी उसपर शंका की जा

रही है।

मरियाने के होंठ फड़क रहे थे। एक क्रोधपूर्ण दृष्टि डालकर कुछ बोले बिना वह अन्दर आ गया। वाहर के प्रांगण में जो बात हो रही थी उसे दरवाज़े की आड़ से चामव्वे सुन चुकी थी, बोली, "देखा, मैंने पहले ही कहा था?"

"तो क्या मुझे तुमपर विश्वास नहीं करना चाहिए।" मरियाने कुछ कठोरता से पेश आया।

"क्या कहा?"

"कुछ और नहीं, मैंने वही कहा जो उन्होंने कहा। घर में मिलान करते वक़्त तुम भी साथ थीं। इसलिए तुमको भी अब अविश्वास की दृष्टि से देखना पड़ेगा। दासमय्या ने असत्य कहा होता तो उसमें निडर होकर कहने का सामर्थ्य नहीं होता।"

"तो आपका मतलब है कि मैं ही उसका कारण हूँ।"

"मैं यह नहीं भी कहूँ पर युवराज के सामने वह ऐसा ही कहेगा। उसका फल क्या निकलेगा? अब क्या करें।"

"जो आमन्त्रण पत्र ले गया था वह किसी दूसरे काम पर अन्यत्र गया है, ऐसा ही कुछ बहाना बनाकर इस मुश्किल से बचने का प्रयत्न करना होगा। आमन्त्रण पत्र के पहुँचने की सूचना तो मिली है, परन्तु बलिपुरवाले आये क्यों नहीं, इसका पता नहीं लगा है, किसी को भेजने का आदेश हो तो भेज दूँगा, ऐसा उनसे निवेदन करना अच्छा होगा। आमन्त्रण पत्र नहीं गया, यह बताना तो बड़ा खतरनाक है।" चामव्वे ने अपनी बुद्धि का प्रदर्शन किया।

"ठीक है, अब इस सन्दिग्धता से पार होने के लिए कुछ तो करना ही होगा। परन्तु अब भी यह पता नहीं लग रहा है कि वह आमन्त्रण पत्र कहाँ गया।"

"वह सब बाद में सोचेंगे, फिलहाल तो इस विपदा से होशियारी से बचने की सोचें।"

"वह तो होना ही चाहिए।" कहते हुए मरियाने झटपट चल पड़े। दण्डनायिका फाटक तक उसके पीछे गयी, छाती पर हाथ रख झूले पर बैठी, "हे जिननाथ, अब इस सन्दिग्धावस्था से बचाकर किसी तरह उसके पति की आन बनाये रखें।"

नौकरानी सावला आयी और बोली, "राजमहल जाने का समय हो आया है। कौन साड़ी निकालकर रखूँ।" वह एकदम उठ खड़ी हुई और अपने कमरे की ओर भागती हुई बोली, "वाहन तैयार रखो, अभी दो क्षण में आयी।" और वह दो क्षण में ही तैयार होकर राजमहल की तरफ़ चल पड़ी।

उपनयन के मण्डप, यज्ञवेदी आदि को अलंकृत करना था इसलिए वह उसी तरफ़ चली। वहाँ दोरसमुद्र के प्रसिद्ध रंगवल्ली चित्रकार और दस-बारह वृद्ध

सुमंगलियाँ उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्हें वह सलाह दे ही रही थी कि युवरानीजी उधर आयी। उसने रंगवल्लीकार सुमंगलियों से परिचय कराकर कहाँ किस तरह की रंगोली बने इस पर उनकी सलाह माँगी।

युवरानी ने कहा, "वे सब सलाह के अनुसार सजा देंगी। आप आइए।" और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वे अपने अन्तःपुर की चन्द्रशाला में पहुँचीं। दण्डनायिका के प्रवेश करते ही युवरानी ने बोम्मला से कहा, "तुम दरवाज़ा बन्द कर बाहर रहो, किसी को अन्दर न आने देना।"

दण्डनायिका बैठी नहीं। उसके दिल की धड़कन तेज़ी से चल रही थी। युवरानी ने फिर कहा, "क्यों खड़ी हैं, बैठिए।" चामव्वे बैठी। उसके बैठने का ढंग कुछ ग़ैर-मामूली लग रहा था।

कुछ देर बाद युवरानी ने कहा, "दण्डनायिकाजी, लोगों के साथ आप सम्पर्क ज़्यादा रखती हैं और अनुभवी भी कुछ ज़्यादा हैं, इसलिए आपको कुछ आत्मीयता से बात करने के इरादे से बुला लायी।"

"कहला भेजतीं तो मैं खुद आ जाती, सन्निधान ने आने का कष्ट क्यों किया?"

"कुछ काम तो हमें स्वयं करना चाहिए। अब यह बात रहने दीजिए। मुख्य विषय पर बात करें।"

"आदेश हो।"

"जिनपर हम पूर्ण विश्वास रखते हैं उन्हीं से दुःखदायक काम हो जाये तो क्या करना चाहिए?"

"ऐसा करनेवाले आगे अविश्वसनीय होंगे।" चामव्वे ने कह तो दिया लेकिन तुरन्त कुछ सोचकर धीमे स्वर में फिर बोली, "क्या जान सकती हूँ कि ऐसा क्या हुआ है।"

"वही कहने को आपको यहाँ बुलाया है। आपको तो मेरे मन का अच्छा परिचय भी है।"

"यह मेरा सौभाग्य है। युवरानीजी के हृदय की शुद्धता का परिचय किसे नहीं है?"

"यदि सचमुच ऐसा है तो लोग मुझे दुःखी क्यों करते है।"

"ऐसा किसने किया, यह मालूम होने पर उसे सही ढंग से सीख दी जा सकती है। वास्तव में हुआ क्या है, सो मुझे मालूम नहीं, बात की जानकारी हो तो······।"

"कहूँगी। सबसे गलती होती है। उसी को मन मे रखकर दुःख का अनुभव करते रहना मेरा स्वभाव नहीं। क्षमा करें। ऐसी बातों को भूलना ही मेरा स्वभाव है। मेरे स्पष्ट वचन सुनकर आपको व्यथित नहीं होना चाहिए।

"आज चौथ है न ?"

"हाँ।"

"कल पंचमी है !"

"हाँ।"

"कल ही है न छोटे अप्पाजी का उपनयन ?"

"हाँ, निर्णीत विषयों के बारे में सन्निधान क्यों प्रश्न कर रही हैं, इसका पता नहीं लग रहा है ?"

"दण्डनायिकाजी, समझिये, कल आपकी लड़की की शादी हो और आपके आत्मीय ही किसी को आने से षड्यन्त्र कर रोक दें तो आपको कैसा लगेगा ?"

"तो अब किसी ने ऐसा किया है ?"

"आपसे प्रश्न की प्रतीक्षा नहीं है। आप अपने को अनजान प्रदर्शित कर रही है इस समस्या से।"

"तो क्या सन्निधान का मुझपर यह आरोप है कि मैं जानती हुई भी अनजान बन रही हूँ ?"

"आप पर आरोप लगाने से मुझे क्या लाभ ? उससे जो हैरानी हुई है वह दूर होनी चाहिए। जिन्हें बुलाया है क्या वे सब आये हैं ?"

"सब आये हैं, जो नहीं आ सके उनसे पत्र मिला है।"

"तो राज-परिवार जिन-जिनको आमन्त्रित करना चाहता था उन सबके पास आमन्त्रण पत्र पहुँचा है, है न ?"

"पहुँचा है। न पहुँचने का क्या कारण है ? अवश्य ही पहुँचा है।"

"तो बलिपुर के हेग्गड़े या उनके परिवारवालों के न आने का क्या कारण है ? न आ सकने की सूचना आयी है ?"

"इसका क्या उत्तर दूँ यह मेरी अल्पमति को कुछ सूझ नहीं रहा है।"

"हमें लगता है कि आमन्त्रण पत्र नहीं पहुँचा है।"

"सन्निधान का मत सदा एक-सा रहता है, परिशुद्ध, अकल्मष; बुराई की ओर जाता ही नहीं। इसीलिए सन्निधान को एक ही कारण मालूम होता है कि पत्र पहुँचा नहीं, पहुँचा होता तो वे नाचते-कूदते पहुँच जाते। उनके न आने से सन्निधान को जैसा सूझता है, वही सही मालूम पड़ता है। न आने के दूसरे भी कारण हो सकते हैं।"

"इसी पर विचार के लिए आपको बुलाया है। मुझे तो कोई दूसरा कारण सूझता ही नहीं। आपकी सूक्ष्म-बुद्धि को कुछ सूझता हो तो बताइये।"

"अगर सन्निधान बुरा न मानें तो अपने विचार स्पष्ट कहूँगी।"

"मंगलकार्य मन में कड़वापन आये बिना ही सम्पन्न हो जाये, इसलिए बात स्पष्ट कह दें।"

"कुछ विस्तार के साथ विचार करना होगा।"

"कहिए।"

"हेग्गड़ती की लड़की बहुत होशियार है, इसमें दो मत नहीं हो सकते। राजघराना उदार है, गुणैक-पक्षपाती है, इसलिए सन्निधान ने उसे सराहा। इसीसे उनका दिमाग फिर गया होगा।"

"क्या बात कहती हैं? कभी नहीं।"

"इसीलिए सन्निधान ने प्रेम से जो माला देनी चाही उसे इनकार किया उस छोटी ने। उसने जो बहाना बताया उसे भी सन्निधान ने स्वीकार किया। उस वक़्त मैंने भी सोचा शायद उसका कहना ठीक होगा। अब अपने बच्चों के गुरु से पूछा तो उन्होंने बताया गुरु-दक्षिणा और प्रेम से दिये पुरस्कार में कोई सम्बन्ध नहीं होता।"

"आपके बच्चों के गुरु उत्कल के हैं। वहाँ की और कर्नाटक की परम्पराओं में भिन्नता हो सकती है।"

"बुरा न देखेंगे, न सुनेंगे, न कहेंगे, इस नीति पर चलनेवाली सन्निधान को किसी में बुराई या वक्रता दिखेगी ही नहीं। अच्छा उसे जाने दें। सन्निधान के प्रेम-पात्र समझकर उन्हें मैंने अपने यहाँ विदाई का न्यौता दिया था न?"

"आपके प्रेम और औदार्य का वर्णन हेग्गड़तीजी ने बहुत सुनाया था।"

"है न? फिर सन्निधान से यही बात किसी और ढंग से कहती तो झिड़कियाँ सुननी पड़ती वह इतना नहीं जानती? चालुक्य साम्राज्ञी को उसने अपने फन्दे में फँसा लिया है। वह हेग्गड़ती कोई साधारण औरत थोड़े ही है। हमने यथाशक्ति पीताम्बर का उपहार दिया तो उसे उसने आँख उठाकर देखा तक नहीं। हाथ में लेकर बगल में सरका दिया। कितना घमण्ड है उसे?"

"इस तरह के दोषारोपण के लिए आधारभूत कारण भी चाहिए।"

"इसके कारण भी अलग चाहिए। वह समझती थी कि अन्तःपुर की अतिथि मानकर उसे युवरानी ने खुद स्वर्ण आभरण और चीनाम्बर देकर पुरस्कृत किया है। यह दण्डनायिका क्या दे सकती है?"

"मतलब यह कि जो गति आपके उस पुरस्कार की हुई वही अब प्रभु के आमन्त्रण पत्र की भी हुई है। यही न?"

"नहीं तो और क्या?"

"ऐसा करेंगे तो प्रभु नहीं क्रुद्ध होंगे, ऐसी उनकी भावना हो सकती है कि नहीं?"

"सन्निधान को फूँक मारकर वश में कर ही लिया है, कोई बहाना करके बच निकलेंगे ऐसा सोचकर नहीं आये होंगे।"

"समझ लीजिये कि आपका अभिमत मान्यार्ह है, लेकिन वे आते तो उन्हें

"आज चौथ है न ?"

"हाँ।"

"कल पंचमी है !"

"हाँ।"

"कल ही है न छोटे अप्पाजी का उपनयन ?"

"हाँ, निर्णीत विषयों के बारे में सन्निधान क्यों प्रश्न कर रही हैं, इसका पता नहीं लग रहा है ?"

"दण्डनायिकाजी, समझिये, कल आपकी लड़की की शादी हो और आपके आत्मीय ही किसी को आने से षड्यन्त्र कर रोक दें तो आपको कैसा लगेगा ?"

"तो अब किसी ने ऐसा किया है ?"

"आपसे प्रश्न की प्रतीक्षा नहीं है। आप अपने को अनजान प्रदर्शित कर रही हैं इस समस्या से।"

"तो क्या सन्निधान का मुझपर यह आरोप है कि मैं जानती हुई भी अनजान बन रही हूँ ?"

"आप पर आरोप लगाने से मुझे क्या लाभ ? उससे जो हैरानी हुई है वह दूर होनी चाहिए। जिन्हें बुलाया है क्या वे सब आये हैं ?"

"सब आये हैं, जो नहीं आ सके उनसे पत्र मिला है।"

"तो राज-परिवार जिन-जिनको आमन्त्रित करना चाहता था उन सबके पास आमन्त्रण पत्र पहुँचा है, है न ?"

"पहुँचा है। न पहुँचने का क्या कारण है ? अवश्य ही पहुँचा है।"

"तो बलिपुर के हेग्गड़े या उनके परिवारवालों के न आने का क्या कारण है ? न आ सकने की सूचना आयी है ?"

"इसका क्या उत्तर दूँ यह मेरी अल्पमति को कुछ सूझ नहीं रहा है।"

"हमें लगता है कि आमन्त्रण पत्र नहीं पहुँचा है।"

"सन्निधान का मत सदा एक-सा रहता है, परिशुद्ध, अकल्मष; बुराई की ओर जाता ही नहीं। इसीलिए सन्निधान को एक ही कारण मालूम होता है कि पत्र पहुँचा नहीं, पहुँचा होता तो वे नाचते-कूदते पहुँच जाते। उनके न आने से सन्निधान को जैसा सूझता है, वही सही मालूम पड़ता है। न आने के दूसरे भी कारण हो सकते हैं।"

"इसी पर विचार के लिए आपको बुलाया है। मुझे तो कोई दूसरा कारण सूझता ही नहीं। आपकी सूक्ष्म-बुद्धि को कुछ सूझता हो तो बताइये।"

"अगर सन्निधान बुरा न मानें तो अपने विचार स्पष्ट कहूँगी।"

"मंगलकार्य मन में कड़ुवापन आये बिना ही सम्पन्न हो जाये, इसलिए बात स्पष्ट कह दें।"

"कुछ विस्तार के साथ विचार करना होगा।"

"कहिए।"

"हेग्गड़ती की लड़की बहुत होशियार है, इसमें दो मत नहीं हो सकते। राजघराना उदार है, गुणैक-पक्षपाती है, इसलिए सन्निधान ने उसे सराहा। इसीसे उनका दिमाग फिर गया होगा।"

"क्या बात कहती हैं? कभी नहीं।"

"इसीलिए सन्निधान ने प्रेम से जो माला देनी चाही उसे इनकार किया उस छोटी ने। उसने जो बहाना बताया उसे भी सन्निधान ने स्वीकार किया। उस वक़्त मैंने भी सोचा शायद उसका कहना ठीक होगा। अब अपने बच्चों के गुरु से पूछा तो उन्होंने बताया गुरु-दक्षिणा और प्रेम से दिये पुरस्कार में कोई सम्बन्ध नहीं होता।"

"आपके बच्चों के गुरु उत्कल के हैं। वहाँ की और कर्नाटक की परम्पराओं में भिन्नता हो सकती है।"

"बुरा न देखेंगे, न सुनेंगे, न कहेंगे, इस नीति पर चलनेवाली सन्निधान को किसी में बुराई या वक्रता दिखेगी ही नहीं। अच्छा उसे जाने दें। सन्निधान के प्रेम-पात्र समझकर उन्हें मैंने अपने यहाँ विदाई का न्योता दिया था न?"

"आपके प्रेम और औदार्य का वर्णन हेग्गड़तीजी ने बहुत सुनाया था।"

"है न? फिर सन्निधान से यही बात किसी और ढंग से कहती तो झिड़कियाँ सुननी पड़तीं वह इतना नहीं जानती? चालुक्य साम्राज्ञी को उसने अपने फन्दे में फँसा लिया है। वह हेग्गड़ती कोई साधारण औरत थोड़े ही है। हमने यथाशक्ति पीताम्बर का उपहार दिया तो उसे उसने आँख उठाकर देखा तक नहीं। हाथ में लेकर बगल में सरका दिया। कितना घमण्ड है उसे?"

"इस तरह के दोषारोपण के लिए आधारभूत कारण भी चाहिए।"

"इसके कारण भी अलग चाहिए। वह समझती थी कि अन्तःपुर की अतिथि मानकर उसे युवरानी ने खुद स्वर्ण आभरण और चीनाम्बर देकर पुरस्कृत किया है। यह दण्डनायिका क्या दे सकती है?"

"मतलब यह कि जो गति आपके उस पुरस्कार की हुई वही अब प्रभु के आमन्त्रण पत्र की भी हुई है। यही न?"

"नहीं तो और क्या?"

"ऐसा करेंगे तो प्रभु नहीं क्रुद्ध होंगे, ऐसी उनकी भावना हो सकती है कि नहीं?"

"सन्निधान को फूँक मारकर वश में कर ही लिया है, कोई बहाना करके बच निकलेंगे ऐसा सोचकर नहीं आये होंगे।"

"समझ लीजिये कि आपका अभिमत मान्यार्ह है, लेकिन वे आते तो उन्हें

नुकसान क्या होता? आपके कहे अनुसार, एक बार और फूंक मारने के लिए जो मौका अयाचित ही मिला उसे वे ऐसे होते तो क्यों खो बैठते ?"

"ऐसा नहीं है। आते भी तो खाली हाथ नहीं आ सकते। इसके अलावा ग्रामीण जनता से भेंट का नजराना भी वसूल कर लाना होता। आमन्त्रण के नाम पर भेंट का जो संग्रह किया होगा उसे भी अपने पास रख सकते हैं। ऐसे कई लाभ सोचकर न आये होंगे।"

"ओफ़, ओह। कैसे-कैसे लोग दुनिया में रहते हैं। दण्डनायिकाजी, लोगों की गहराई कितनी है, यह समझना बड़ा कठिन है। हम सफ़ेद पानी को भी दूध समझ लेते हैं। आपका कथन भी ठीक हो सकता है। हमें लगता है कि यह सब सोचकर अपना दिमाग खराब करना ठीक नहीं। कोई आए या न आए। यह शुभ कार्य तो सम्पन्न होना ही चाहिए, है न? अब आप जाइए। अपना काम देखिए। आपसे बात करने पर इतना ज्ञान तो हुआ कि कौन कैसा है, निष्ठा का दिखावा करके धोखा देनेवाले कौन हैं, और वास्तव में निष्ठावान् कौन हैं। इस बातचीत के फल-स्वरूप एक यह फायदा हुआ कि आगे चलकर लोगों को परखने में इस जानकारी से सहायता मिलेगी। लोग कितने विचित्र व्यवहार करते हैं। दिखावटी व्यवहार करनेवाले ही ज्यादा हैं। परन्तु उन्हें एक बात का स्मरण नहीं रहता। दिखावटी-पन को कुचलकर सच्ची बातें भी निकल पड़ती हैं, दण्डनायिकाजी।"

बस, वही जाने का आदेश था।

महादण्डनायक मरियाने ने युवराज एरेयंग प्रभु को इस आमन्त्रण-पत्र के सम्बन्ध में विवरण करीब-करीब दण्डनायिका की सलाह के अनुसार दिया, और तात्कालिक रूप से एक सन्तोष का अनुभव किया क्योंकि युवराज की तरफ से कोई प्रतिकूल ध्वनि नहीं निकली थी। उसे यह पता नहीं था कि दण्डनायिका और युव-रानी के बीच जो बातें हुई थीं और मंत्रालय से भी जो खबर मिली थी, उससे युव-राज पहले ही परिचित हो चुके हैं। दण्डनायक-दण्डनायिका ने विचार-विनिमय के बाद वह रात शान्ति की नींद में वितायी।

उपनयन के दिन सब अपने-अपने कर्तव्य निवाह रहे थे, परन्तु उपनीत होने-वाले वटु बिट्टिदेव में कोई उत्साह नजर नहीं आया। यह बात उसके माँ-बाप से छिपी नहीं थी, यद्यपि वे कुछ कहने की स्थिति में नहीं थे। बहुत सोचने के बाद, संकोच से अन्त में उसने अपनी माँ से पूछा, "बलिपुर के हेग्गड़ेजी क्यों नहीं आये?"

युवरानी ने थोड़े में ही कह दिया, "आना तो चाहिए था, पता नहीं क्यों नहीं

जाये।" इससे अधिक वह बेचारा कर ही क्या सकता था? एक रेविमय्या से पूछा जा सकता था, उससे पूछा, लेकिन उस बेचारे को खुद भी कुछ नहीं मालूम था। बल्कि सबसे अधिक निराश वही था। वह अनुमान भर लगा सका कि इस तरह होने देने में किसी का जबरदस्त हाथ होगा। यह आन्तरिक दुख-भार वह सह नहीं सका तो एक बार युवरानीजी से कह बैठा। परन्तु उसे उनसे कोई समाधान नहीं मिला। उसका दुखड़ा सुनकर बिट्टिदेव को लगा कि रेविमय्या का कथन सत्य हो सकता है। फिर भी उसने उसे प्रोत्साहित नहीं किया। उसने सोचा कि उसके माँ-बाप इस कारण से परिचित होकर भी किसी वजह से कुछ बोल नहीं रहे हैं, अतः मेरा भी इस विषय में मौन रहना ही उचित है।

दण्डनायिका और युवरानी के बीच हुई बातचीत पद्मला ने लगभग उसी ढंग से बल्लाल को सुनायी तो उसने भी सोचा कि उसके भाई के प्रेमभाजन व्यवहार में किस स्तर के हैं, यह उसे दिखा दें। अतएव उसने बिट्टिदेव से एक चुभती-सी बात कही, "तुम्हारी प्यारी शारदा क्या हो गयी? लगता है उसने तुम्हें छोड़ दिया है।"

बिट्टिदेव को सचमुच गुस्सा आया, पर वह बोला कुछ नहीं। भाई की ओर आँखें तरेरकर देखा। बल्लाल ने समझा कि बिट्टिदेव का मौन स्वीकृतिसूचक है, कहा, "मुझे पहले से ही यह मालूम था कि वह बड़ी गर्वीली है। परन्तु राजमहल में मेरे विचार को प्रोत्साहन नहीं मिला। कुत्ते को हौदे पर बिठायें तो भी वह जूठी पत्तल चाटने का स्वभाव नहीं छोड़ेगा।"

तब भी बिट्टिदेव शुभ अवसर पर मनो-मालिन्य को अवकाश न देने के इरादे से कुछ बोला नहीं। "कम-से-कम अब तुम्हें उधर का व्यामोह छोड़ देना चाहिए।"

बल्लाल उसे छेड़ता ही गया। लेकिन वह फिर भी चुप रहा।

"क्यों भैया, मेरी बात सही नहीं है?" बल्लाल बिट्टिदेव से प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा कर रहा था।

"जिसे जैसा लगे वह वैसा बोल सकता है, भाई। अब, इस वक़्त इसपर किसी प्रश्न की जरूरत नहीं। प्रस्तुत सन्दर्भ में यह बहुत छोटा विषय है। यहाँ जो होना चाहिए उसमें उनकी अनुपस्थिति के कारण कोई अड़चन तो आयी नहीं। तब उनके न आने के बारे में चर्चा करके अपना मन क्यों खराब करें।" इतने में उसे बुलावा आया तो वह उपनयन वेदी की ओर चला गया। बल्लाल भी उसके पीछे-पीछे गया। मण्डप में हजारों लोग इकट्ठे हुए थे। स्वयं महाराज विनयादित्य की उपस्थिति से उत्सव में विशेष शोभा और उत्साह था।

राजमहल के ज्योतिषियों ने जो मुहूर्त ठहराया था, ठीक उसी में उपनयन संस्कार सम्पन्न हुआ। मातृ-भिक्षा हुई, सबने वस्त्र, नजराना आदि भेंट करना शुरू किया। करीब-करीब सब समाप्त होने पर था कि उपनयन मण्डप के एक कोने से गोंक एक परात लेकर ज्योतिषी के पास आया और उनके कान में कुछ

कहकर चला गया। पुरोहितजी ने वलिपुर के हेग्गड़ेजी के नाम की घोषणा करते हुए वटु को वह भेंट दे दी। युवराज, युवरानी और बिट्टिदेव की चकित आँखें गोंक की ओर उठीं। मरियाने और चामव्वे को घबड़ाहट-सी हुई। बाकी सब ज्यों-के-त्यों बैठे रहे। बल्लाल की आँखें इधर-उधर किसी को खोज रही थीं।

अपने भैया को आकर्षित करने का बिट्टिदेव का प्रयत्न सफल नहीं हुआ। अचानक ही बिट्टिदेव का चेहरा उत्साह से चमक उठा, जिसे ज्योतिषियों और पुरोहितों ने उपनीत धारण करने से आया हुआ समझ लिया।

उपनयन के सब विधि-विधान समाप्त हुए, सभी आमन्त्रित मेहमान भोजन करने गये। गोंक ने भोजन के समय मारसिंगय्या को युवराज से मिलने की व्यवस्था की, यद्यपि मारसिंगय्या से सबसे पहले भेंट की इच्छा दण्डनायक की रही, जो पूरी न हो सकी। उसे इतना मालूम हो गया था कि हेग्गड़े अकेला आया है सपरिवार नहीं। उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया।

दण्डनायक के मन में विचार उठे, वलिपुर के हेग्गड़े के पास आमन्त्रण-पत्र नहीं गया, फिर भी वह यहाँ आया, अवश्य ही कुछ रहस्य है, इसका पता लगाना होगा। इन बातों में मुझसे अधिक होशियार चामव्वे है, मगर उसकी तो रात तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। उन्होंने एक बार हेग्गड़े को पकड़ लाने की कोशिश भी की मगर सफल नहीं हो सके।

भेंट नजराना देते वक्त जिन लोगों ने मारसिंगय्या को देखा था वे खुश थे। किसी भी तरह उससे मिलने की कोशिश करने पर भी असफल होने के कारण कुछ झुंझला रहे थे। लेकिन वह हमें देखे बिना कहाँ जाएगा, इस तरह की एक धृष्ट भावना थी बल्लाल में। जब उसे मालूम हुआ कि मारसिंगय्या जैसे आया वैसे ही किसी को पता दिये बिना चला भी गया तो वह भौंचक्का-सा रह गया। उसे लग रहा था कि अगर उसके और बिट्टिदेव के बीच सुबह यह बात न हुई होती तो अच्छा रहता। उसमें एक तरह की झुंझलाहट पैदा हो गयी थी।

युवराज, युवरानी और नूतन वटु से मिलकर मारसिंगय्या ने अन्तःपुर में ही भोजन किया और युवराज के साथ महाराज का दर्शन कर वलिपुर चला गया।

हेग्गड़े और उसके साथ जो नौकर और रक्षक दल आये थे उन सबको दोर-समुद्र की पूर्वी सीमा तक पहुँचा आने के लिए रेविमय्या गया जिसमें एक नया उत्साह झलक रहा था। राजा के अतिथि भी अपनी-अपनी सहूलियत के अनुसार चले गये। उपनयन के बाद एक शुभ दिन वसन्त-माधव-पूजा समाप्त कर महाराज

से आज्ञा लेकर युवराज और युवरानी बच्चों के साथ वेलापुरी चले गये।

अब तक पद्मला को ऐसा भान हो रहा था कि वह किसी एक नवीन लोक में विचर रही है। बल्लाल को भी यह परिवर्तन अच्छा लग रहा था। चामला और बिट्टिदेव को पहले की तरह मिलने-जुलने को विशेष मौका नहीं मिला था तो भी पहले के परिचय से जो सहज वात्सल्य पैदा हुआ था वह ज्यों-का-त्यों बना रहा।

उपनयन के उत्सव के समय की गयी सारी सुन्दर व्यवस्था के लिए महादण्डनायक मरियाने और चामव्वे को विशेष रूप से वस्त्रों का उपहार राजमहल की तरफ से दिया गया। उनकी तीनों बच्चियों के लिए वस्त्राभूषण का पुरस्कार दिया गया। चिण्णम दण्डनायक और चांदला आये थे मगर वे केवल अतिथि बनकर रहे। युवराज के आदेशानुसार उनके साथ वे भी वेलापुरी लौटे।

इतने में समय साधकर चामव्वे ने कवि नागचन्द्र को अपने यहाँ बुलाकर अपनी बच्चियों की शिक्षा-दीक्षा और उनके गुरु का भी परिचय कराया। चामव्वे ने इतना सब जो किया उसका उद्देश्य नागचन्द्र को मालूम हो या नहीं, इतना स्पष्ट था कि कोई उद्देश्य था, वह यह कि अपनी लड़कियों की शिक्षा-दीक्षा और उनकी प्रगति आदि की प्रशंसा वह युवराज, युवरानी और राजकुमारों के कानों तक पहुँचा दे।

बलिपुर के हेग्गड़े के इस तरह आने और उनसे मिले बिना चले जाने से कुछ हैरानी हुई बरन् यह दम्पती सभी तरह से खुश था। उसे लग रहा था कि वह अपने लक्ष्य की ओर एक कदम आगे बढ़ा है, यद्यपि हुआ इसके विपरीत ही था, जिस सचाई को युवराज और युवरानी ने समझने का मौका ही नहीं दिया।

वेलापुरी पहुँचने के बाद एक दिन शाम को बल्लाल और बिट्टिदेव युद्ध-शिक्षण शिविर से लौट रहे थे। उनका अंगरक्षक रेविमय्या साथ था, दूसरा कोई नहीं था। बल्लाल ने भाई से पूछा, "छोटे अप्पाजी, शाम की यह ठण्डी-ठण्डी हवा बड़ी सुहावनी लग रही है, क्यों न थोड़ी देर कहीं बैठ लें?"

"हाँ, मैं भूल ही गया था कि रेविमय्या, तुम्हारा सलाहकार, साथ है। क्यों रेविमय्या, थोड़ी देर बैठें?"

"महामातृश्री सन्निधान कुमारों की प्रतीक्षा में है।" रेविमय्या ने विनीत भाव से कहा।

"क्या हम छोटे बच्चे है जो हमें चिड़िया उड़ा ले जायेगी, अगर माँ आक्षेप

करेंगी तो मैं अपराध अपने ऊपर ले लूंगा। तुम्हें और अप्पाजी को डरने की जरूरत नहीं।"

"राजमहल के उद्यान में भी शाम को सुहावनी हवा ऐसी ही रहती है।" रेविमय्या ने दूसरे शब्दों में अपना विरोध प्रकट किया।

"पुले में जो स्वातन्त्र्य है वह राजमहल के आवरण में नहीं मिलता। चलो, अप्पाजी थोड़ी देर इस यगची नदी के पश्चिमी तीर के आम्र वन में बैठकर चलेंगे।" किसी के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही उसने घोड़े को उस तरफ मोड़ दिया। अब दूसरा कोई चारा न था, इसलिए रेविमय्या और बिट्टिदेव ने उसका अनुकरण किया।

वह आम्र वन राज-परिवार का ही था। तरह-तरह के आम कलम करके बढ़ाये गये थे। चारों ओर रक्षा के लिए आवश्यक घेरा बना था। प्रहरियों का एक दल भी तैनात था। पूर्वसूचना के बिना राजकुमारों का अचानक आ जाना प्रहरी के लिए एक आकस्मिक बात थी, वह दंग रह गया। वह पगड़ी उतारकर आराम से हवा खाता बैठा था। राजकुमारों के आने से घबड़ाकर पगड़ी उठाकर सिर पर धारण करने लगा तो वह खुल गयी और उसका एक सिरा पीछे की ओर पूँछ की तरह लटक गया। ढीली धोती ठीक कर चला तो ठोकर खाकर गिर पड़ा। सँभलकर उठा और झुककर प्रणाम किया। उसकी हालत देख राजकुमार बल्लाल हँस पड़ा, "और कौन है?" प्रहरी से पहले बिट्टिदेव बोल पड़े, "दूसरा और कोई होता तो वह आराम से कहाँ बैठता?"

"दूसरा कोई नहीं है मालिक।" प्रहरी ने जवाब दिया।

"अच्छा जाओ, किसी को अन्दर न आने देना।" कहकर बल्लाल आगे बढ़ा। उसके इस आदेश का अर्थ बिट्टिदेव और रेविमय्या की समझ में नहीं आया। थोड़ी दूर पर यगची नदी एक मोड़ लेती है, वहाँ जाकर बल्लाल घोड़े से उतरा। सीढ़ी पर बैठा। बिट्टिदेव भी घोड़े से उतरकर भाई के पास जा बैठा। रेविमय्या भी घोड़ों को एक पेड़ से बाँधकर थोड़ी दूर खड़ा हो गया।

दोनों भाई थोड़ी देर तक मौन बैठे रहे। बल्लाल ने मौन तोड़ते हुए कहा, "अप्पाजी, तुम्हें यहाँ तक बुला लाने का एक उद्देश्य है। दूसरा कुछ नहीं। हेग्गड़े के परिवार के लोग तुम्हारे उपनयन के सन्दर्भ में जो नहीं आये। उस कारण से मैंने तुमसे बात की थी, याद है।"

"क्या? क्या बात की थी, भैया?"

"उसके बारे में बाद में बात करेंगे। इस समय तो मेरे मन में मुख्यतः जो बात खटक रही है, उसका परिहार तुमसे हो सकेगा, बिना छिपाये सच्ची बात कहना।"

"तो भैया, तुमसे छिपाने-जैसी बात मैं जानता हूँ, यही तुम्हारा अभिमत है

न ?"

"मैं तो यह नहीं कह सकता कि तुम्हारा उद्देश्य ऐसा है। मेरा कहना इतना ही है कि जो बात मुझे मालूम नहीं वह तुम जानते हो सकते हो।"

"ऐसी बात हो भी क्या सकती है, भैया। हम दोनों को कोई बात मालूम होती है तो माँजी से। माँजी मुझसे एक बात और तुमसे दूसरी बात कहेंगी? ऐसा भेदभाव माँ कर सकती है, ऐसी तुम्हारी धारणा है?"

"यह सन्दर्भ ही कुछ सन्दिग्ध है, छोटे अप्पाजी। इसीलिए···।"

"भैया, तुमको माँ के विषय में सन्देह कभी भी नहीं करना चाहिए। यदि ऐसी कोई बात हो तो तुम सीधे माँ से ही पूछ लो। वे तुम्हारे सारे सन्देह दूर करेंगी। तुम्हें क्या मालूम है क्या नहीं, मुझे क्या मालूम है क्या नहीं, यह हम दोनों नहीं कह सकते, माँ जरूर कह सकती हैं जिनके स्वभाव से तुम अपरिचित नहीं हो। उनका स्वभाव ही ऐसा है कि कोई उन्हें दुःख भी दे तो वे उसको भी कोई अहितकर बात नहीं कहेंगी।"

"बात क्या है सो जानने के पहले ही तुमने व्याख्यान देना शुरू कर दिया न?"

"बात क्या है सो सीधा न बताकर तुम्हींने विषयान्तर कर दिया तो मैं क्या करूँ, भैया?"

"बात यही है, कि वे बलिपुर के हेग्गड़े तूफ़ान जैसे आये और गये, किसी को पता तक नहीं लगा। ऐसा क्यों?"

"हाँ, तुम तो उस समय दण्डनायिका की बेटी के साथ रहे। उन बेचारे ने बड़े राजकुमार से मिल न पाने पर बहुत दुःख व्यक्त किया।"

"यह बात मुझे किसी ने भी नहीं बतायी।"

"तुमने पूछा नहीं, किसी ने बताया नहीं। माँ से पूछ लेते तो वे ही बता देतीं।"

"कैसे पूछूँ, भैया, उधर दण्डनायक के घर पर हेग्गड़े और उनके परिवार के बारे में पता नहीं क्या-क्या बातें हुईं। दण्डनायिका कह रही थी, आह्वान-पत्र भेजने पर भी नहीं आये, कितना घमण्ड है, राजमहल का नमक खा ऐसा घमण्ड करनेवाले···।"

"भैया, सम्पूर्ण विवरण जाने बिना किसी निर्णय पर नहीं पहुँचना चाहिए। क्या तुम्हें निश्चित रूप से मालूम है कि आमन्त्रण-पत्र उन्हें मिला था?"

"हाँ, दण्डनायक ने स्वयं कहा है। आमन्त्रितों की सूची में उनका नाम छूट गया था तो स्वयं दण्डनायिका ने उनका नाम जोड़ा था।"

"माँ ने भी ऐसा कहा था। फिर भी आमन्त्रण-पत्र पहुँचा है, इसके लिए उतना ही प्रमाण काफ़ी नहीं। आमन्त्रण-पत्र नहीं ही मिला है।"

"यह कैसे हो सकता है? हज़ारों को मिला है तो उन्हें भी मिलना ही चाहिए।" बल्लाल ने कहा।

"कुछ मालूम नहीं, भैया। जब हेग्गड़ेजी ने स्वयं कहा कि आमन्त्रण नहीं मिला तो अविश्वास भी कैसे करें?" बिट्टिदेव ने कहा।

"तो तुम कहते हो कि दण्डनायक ने झूठ कहा है, यही न?"

"मैं तो इतना ही कहता हूँ कि हेग्गड़े की बात पर मुझे विश्वास है।"

"हाँ, तुम्हें उस पर विश्वास करना भी चाहिए। इस तरह गुमशुम आकर भागनेवालों पर मेरा तो विश्वास नहीं।"

"भैया, हमें इस विषय पर चर्चा नहीं करना चाहिए।" बिट्टिदेव बोला।

"क्यों, तुम्हारे दिल में चुभन क्यों हुई?"

"यदि मैं कहूँ कि दण्डनायक झूठ बोलते हैं तो तुम्हारे दिल में चुभन नहीं होगी? जिन्हें हम चाहते है वे गलती करें तो भी वह गलत नहीं लगता, जिन्हें हम नहीं चाहते वे सत्य बोलें तो वह भी गलत ही लगता है। इसलिए मैं और तुम किसी के भी विषय में अप्रिय बातें करेंगे तो वह न ठीक होगा, न उचित। हेग्गड़ेजी का व्यवहार ठीक है या नहीं, इसके निर्णायक माँ और पिताजी हैं। जब वे ही मौन हैं, तब हमारा आपस में चर्चा करना उचित है क्या, सोच देखो।" बिट्टिदेव ने कहा।

"तुम्हारा कहना भी एक तरह से ठीक है। फिर भी, जब अन्दर-ही-अन्दर कशमकश चल रही हो तब भी चुप बैठा रह सकूँ, यह मुझसे नहीं होता।" बल्लाल बोला।

"इसका परिहार माँ से हो सकता है। उठिए, चलें, देर हो गयी।" बिट्टिदेव घोड़े की तरफ़ चल पड़ा।

तीनों महल पहुँचे।

बहुत समय बाद, इस उपनयन के प्रसंग में बल्लाल की पद्मला से भेंट हुई थी। उसमें उम्र के अनुसार आकर्षण, रंग-ढंग, चलना-फिरना आदि सभी बातों में एक नवीनता आयी थी जो बल्लाल को और भी पसन्द आयी। उसके दिल में अब वह अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो गयी। बल्लाल को पहले से ही हेग्गड़े और उनके परिवार के प्रति एक उदासीन भावना थी। अब वह उदासीनता द्वेष का रूप धारण कर रही थी, पद्मला की बातों के कारण जो उसने अपनी माँ से सुनकर सत्य समझ–

कर ज्यों-की-त्यों बल्लाल से कही थीं।

समय पाकर बल्लाल ने अपनी माँ से एकान्त में चर्चा की। हेग्गड़े के बारे में उसने जो सुना था वह विस्तार से सुनाया। सुनाने के ढंग से उसका उद्वेग स्पष्ट दिखता था किन्तु माँ एचलदेवी ने वह सब शान्त भाव से कोई प्रतिक्रिया व्यक्त किये बिना सुना।

माँ के विचार सुनने को बेटा उत्सुक था। वे बोलीं, "अप्पाजी, तुम्हारा झूठ का यह पुलिन्दा पूरा हो तो एकबारगी ही अपना अभिमत सुनाऊँगी।"

"माँ। यह सब झूठ है?"

"हाँ।"

"तो क्या पद्मला ने मुझसे झूठ कहा?"

"हाँ, यद्यपि यह हो सकता है कि उसको यह जानकारी नहीं हो कि वह जो बोल रही है वह झूठ है।"

"तो, माँ, उसे जो कुछ बताया गया है वह सब झूठ है?"

"अप्पाजी, तुमको माँ-बाप पर विश्वास है न?"

"यह क्या, माँ, ऐसा सवाल क्यों करती हो?"

"जब मैं यह कहती हूँ कि तुमने जो बताया वह झूठ है तब तुम यह सोचते हो कि मैं निराधार ही कह रही हूँ। तुम्हारा मन अभी कोमल है, अनुभवहीन है। पद्मला ने तुम्हारा मन जीत लिया है, इसीलिए वह जो भी कहती है उसे तुम सत्य मान लेते हो। पर इसीसे, मैं तो असत्य को सत्य नहीं मान लूँगी। तुम्हें मुझपर विश्वास हो तो मैं एक बात कहूँगी, कान खोलकर सुनो। मैं किसी का मन दुखाना नहीं चाहती क्योंकि उससे व्यथा और व्यथा से द्वेष की भावना पैदा होती है जिससे राज्य की हानि होती है। इसीलिए जो कुछ गुजरा है उसे सप्रमाण जानने पर भी हमने उस सम्बन्ध में कहीं कभी किसी से कुछ भी न कहने का निर्णय किया है। इसीलिए तुमसे भी नहीं कहना चाहती, केवल इतना कहूँगी कि तुमने जो कुछ सुना है वह हेग्गड़ेजी ने नहीं किया है। वे कभी ऐसा करनेवाले नहीं हैं, उनकी निष्ठा अचल है, यह सप्रमाण सिद्ध हो चुका है। तुम्हें भी उनके विषय में अपनी भावनाओं को बदल देना चाहिए। कल तुम सिंहासन पर बैठनेवाले हो। ऐसे लोगों की निष्ठा तुम्हारे लिए रक्षा-कवच है। तुम विश्वास ही न करो तो उनकी निष्ठा तुम्हें कैसे मिलेगी। उनकी निष्ठा चाहिए हो तो तुम्हें भी उनके साथ आत्मीयता की भावना बढ़ानी होगी, समझे।"

"अभी मेरे मन में जो भावना बसी है उसे दूर करने को स्पष्ट प्रमाण की जरूरत है, माँ, नहीं तो···"

बीच में ही एचलदेवी बोल उठीं, "अप्पाजी, जिस भावना को दूर करने के लिए तुम गवाही चाहते हो उसे मन में स्थायी बनाये रखने के लिए किसकी गवाही

पायी थी ? केवल सुनी बात और कहनेवालों पर विश्वास हो न ? उसी तरह यदि मेरी बातों पर तुमको विश्वास हो तो यह भावना दूर करो। मात्सर्य की गोद में मत जाओ।"

"ऐसा ही हो, माँ।" बल्लाल ने धीरे-से कहा, मगर उनके मन में गुनगुन उठ ही रहा था। चालुक्य महारानीजी ने आत्मीयता प्राप्त करके अपने स्वार्थ-साधन के लिए हेग्गड़े चालुक्य-पोय्सल में द्वेष का बीज बो रहा है। वरना दण्डनायक और पद्मला ऐसा क्यों कहती, उनके मातहत काम करनेवाले गुप्तचर ऐसा क्यों कहते ? ऐसे हेग्गड़े लोगों से पोय्सल राज्य को हानि नहीं होगी ? शुद्ध हृदय रखनेवाले युवराज और युवरानी को ऐसे द्रोहियों की चाल मालूम नहीं हो पाती, दण्डनायिका के इस कथन में कुछ तथ्य है।

"मेरे कथन में तुमको सन्देह हो रहा है, अप्पाजी ?" एचलदेवी ने पूछा।

"ऐसा नहीं, माँ। बात यह है कि मैं जिन दो स्थानों में विश्वास रखता हूँ उन दोनों से मेरे सामने दो परस्पर-विरोधी चित्र उपस्थित हुए हैं। इसलिए···।"

"अप्पाजी, किसी भी विषय में जल्दबाजी ठीक नहीं। उनमें भी पोय्सल वंश की उन्नति के प्रति श्रद्धा और निष्ठा है।"

"तो फिर ?"

"यह स्वार्थ है जो क्षणिक दौर्बल्य के कारण उत्पन्न होता है और जिसे भूलना ही हितकारक है। जैसा मैंने पहले ही कहा, यह सब सोचकर अपना दिमाग खराब न करके अपने शिक्षण की ओर ध्यान दो।"

इसी समय घण्टी बजी। "प्रभुजी आये हैं, अब मुझे चलने दीजिए, माँ।" कहकर बल्लाल चार कदम ही चला कि प्रभु एरेयंग अन्दर आ गये। देखकर बोले, "अप्पाजी, जा रहे हो क्या ?"

"हाँ, गुरुजी के आने का समय हो रहा है।" बल्लाल ने जवाब दिया।

"कुछ क्षण बैठो।" कहते हुए प्रभु एरेयंग बैठ गये।

युवरानी एचलदेवी ने कहा, "बोम्मला, किवाड़ बन्द करके थोड़ी देर तुम बाहर ही रहो, किसी को बिना अनुमति के अन्दर न आने देना।" और वे प्रभु के पास बैठ गयीं। प्रभु एरेयंग ने कहा, "फिर युद्ध छिड़ने का प्रसंग उठ खड़ा हुआ है।"

"किस तरफ से ?" युवरानी एचलदेवी व्यग्र हो उठीं।

"मलेपों की तरफ से बहुत तकलीफ हो रही है, यह खबर अभी यादवपुर से मिली है। दण्डनायक माचण यहाँ से सैन्य-सहायता की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह सब चोल राजा की छेड़खानी है, इधर दक्षिण-पश्चिम की ओर। यदि अभी इन हुल्लड़बाजों को दबा न दिया गया तो वहाँ काँटे-ही-काँटे हो जायेंगे, बल्कि एक काँटेदार जंगल ही तैयार हो जायेगा। इसलिए हम अब दो-तीन दिन में ही उस तरफ सेना

के साथ जा रहे हैं।" साथ ही वे बल्लाल से भी बोले, "कुमार, हमने अबकी बार तुमको साथ ले जाने का निश्चय किया है, इसलिए आज सब बातें समझाकर गुरु नागचन्द्र से सम्मति ले लो। चलोगे न हमारे साथ?"

"प्रभु की आज्ञा का पालन करना मेरा कर्तव्य है।" बल्लाल ने कहा।

"यही सर्वप्रथम युद्ध है जिसमें तुम हमारे साथ चल रहे हो। बैंजरसजी ने कहा है कि तुम्हारा हस्तकौशल बहुत अच्छा है। तलवार चलाने में तुम्हारी इतनी कुशलता न होने पर भी धनुर्विद्या में तुमने बड़ी कुशलता पायी है, डाकरस दण्डनायक की यही राय है। इसलिए हमने यह निर्णय किया है। परन्तु तुम्हारी अंग-रक्षा के लिए हम बैंजरस को ही साथ ले चलेंगे। ठीक है न?"

"बैंजरसजी साथ रहेंगे तो हो सकता है।" युवरानी ने कहा।

"क्यों, तुम्हारा पुत्र बिना बैंजरस के युद्ध-रंग में नहीं उतर सकेगा, तुम्हें डर है?"

युवरानी ने कहा, "यह तो मैं अप्पाजी के स्वास्थ्य की दृष्टि से कह रही हूँ। जिस दिन प्रभु ने पाणिग्रहण किया उसी दिन से मैं समझती रही हूँ कि मेरे पुत्रों को किसी-न-किसी दिन युद्ध-रंग में उतरना पड़ेगा। छोटे अप्पाजी की बात होती तो मैं कुछ भी नहीं कहती।"

"परन्तु छोटे अप्पाजी को तो हम नहीं ले जा रहे हैं। इसका कारण जानती हैं?" युवरानी से प्रश्न करके युवराज ने बल्लाल की ओर देखा। कुमार बल्लाल के चेहरे पर कुतूहल उभर आया।

"प्रभु के मन की बात मुझे कैसे मालूम?"

"तुम्हारी दृष्टि में छोटे अप्पाजी अधिक होशियार और धीर हैं। फिर भी वह छोटा है। अभी वह इस उम्र का नहीं कि वह युद्ध-रंग में सीधा प्रवेश कर सके। इसके अलावा वह अभी-अभी उपनीत हुआ है।"

"अप्पाजी को न ले जाएँ तो क्या नुकसान है?"

"युद्ध हमेशा नहीं होते। अप्पाजी कल सिंहासन पर बैठनेवाला है। उसे युद्ध का अनुभव होना आवश्यक है। वह मूल-तत्त्व है। यदि अब मौका चूक जाए तो नुकसान उसका होगा। छोटे अप्पाजी को भी ऐसा अनुभव मिलना अच्छा होगा। लेकिन उसे फिलहाल न मिलने पर भी नुकसान नहीं होगा। अनुभव प्राप्त कर अपने बड़े भाई को मदद देने के लिए काफी समय उसके सामने है। है न?"

"हम अन्तःपुर में रहती हैं, इतना सब हम नहीं जानतीं। जैसा प्रभु ने कहा, अप्पाजी को इन सब बातों की जानकारी होनी चाहिए। अनुभव के साथ ही तो उसमें विवेचना की शक्ति, तारतम्य और औचित्य का ज्ञान, तुलनात्मक परि-शीलन, गुण-विमर्शन की शक्ति आदि आवश्यक गुण बढ़ेंगे। इस तरह का ज्ञान उसके लिए आवश्यक है इस बात में दो मत हो ही नहीं सकते।" फिर वे कुमार से

बोली, "क्यों अप्पाजी, धीरज के साथ युद्ध-रंग में जाकर लौटोगे ? तुम सर्वप्रथम युद्ध-क्षेत्र में पदार्पण कर रहे हो।" उस समय युवरानी एचलदेवी की वात्सल्य-पूरित भावना द्रष्टव्य थी।

"माँ, मैं जिस वंश में जन्मा हूँ उस वंश की कीर्ति को प्रकाशित करूँगा, उसका कलंक कभी न बनूँगा। धैर्य के साथ आऊँगा। प्रभुजी का और आपका आशीर्वाद हो तो मैं सारा विश्व जीत सकता हूँ।" कहते हुए उसने भाव-विभोर होकर माता-पिता के चरणों पर सिर रख साष्टांग प्रणाम किया। युवरानी की आँखों से आनन्दाश्रु झरने लगे। कुमार की पीठ पर माता-पिता के हाथ एक साथ लगे और हृदयपूर्वक आशीषों की झड़ी लग गयी।

कुमार बल्लाल उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा, अप्पाजी, अपने गुरुजी को यह सब बताकर तुम युद्ध-रंग में प्रवेश के लिए तैयार हो जाओ। तुम्हें जो कुछ चाहिए वह डाकरस और बैजरस से पूछकर तैयार कर लो।" घण्टी बजायी। बोम्मले ने किवाड़ खोला। बल्लाल बाहर आया। फिर किवाड़ बन्द हुआ।

"प्रभु ऐसे विषयों पर पहले मुझसे विचार-विनिमय करते थे, अबकी बार एकबारगी निर्णय कर लिया है, इसमें कोई खास बात होगी। क्या मैं जान सकती हूँ ?"

"खास बात कोई नहीं। इसका कारण और उद्देश्य मैंने बहुत हद तक अप्पाजी के सामने ही बता दिया है। रेविमय्या ने अप्पाजी के विचारों के सम्बन्ध में सब बातें कही थीं, बलिपुर के हेग्गड़ेजी से सम्बद्ध उसके विचारों के बारे में।"

"प्रभु के आने से पहले वह मुझसे भी इसी विषय पर चर्चा कर रहा था।"

"हम कितना भी समझायें उसका मन एक निर्णय पर नहीं पहुँच सकता। यहाँ रहने पर ये ही विचार उसके दिमाग में कीड़े की तरह घुसकर उसे खोखला बनाते रहेंगे। युद्ध-रंग में इस चिन्ता के लिए समय नहीं मिलेगा। वहाँ इन बातों से वह दूर रहेगा। समय देखकर उसे वस्तुस्थिति से परिचित कराना चाहिए जिसे वह मन से मान जाए। इसीलिए उसे साथ ले जाने का निश्चय किया है। ठीक है न ?"

"ठीक है। परन्तु..."

"इसमें परन्तु क्या ?"

"प्रभुजी अपने इस निर्णय पर पुनः विचार नहीं कर सकेंगे ?"

"हमें युवरानी के हृदय के भय का परिचय है। कुमार को किसी तरह की तकलीफ न हो ऐसी व्यवस्था की जायेगी। उसकी शारीरिक दुर्बलता को दृष्टि में रखकर आप बोल रही हैं। पिता होकर मैं भी इससे परिचित हो गया हूँ, इसीलिए आप मुझपर विश्वास कर सकती हैं। हाँ, मेरे ऐसा निर्णय करने का एक कारण

और भी है।"

कहकर प्रभु चुप हो गये। युवरानी एचलदेवी ने कुतूहल-भरी दृष्टि से वह कारण जानने को प्रभु की ओर देखा।

"बलिपुर में अगले महीने भगवती तारा का रथोत्सव होनेवाला है। हेग्गड़े ने हम सबको आमन्त्रण दिया है। हम सभी को वहाँ जाना चाहिए। इस युद्ध के कारण हम नहीं जा पायेंगे, पर आप सबको तो जाना ही चाहिए। हमारे साथ के बिना अप्पाजी को बलिपुर भेजना अच्छा नहीं और दोरसमुद्र भेजने में अच्छे के बदले बुराई के ही अधिक होने की सम्भावना है, यह तुम भी जानती हो। इसलिए अप्पाजी हमारे साथ युद्ध-शिविर में रहें। इसमें उसे थोड़ा-बहुत अनुभव भी हो जायेगा, और मन को काबू रखने का अवकाश भी मिलेगा। हमने यह निर्णय इसीलिए किया है। हम और अप्पाजी युद्ध-शिविर में तथा युवरानी, छोटे अप्पाजी, उदय, रेविमय्या और नागचन्द्र बलिपुर में रहें। हो सकता है न?"

एचलदेवी ने अनुभव किया कि सभी बातों पर सभी पहलुओं से विचार करके ही यह निर्णय लिया गया है। उन्होंने अपनी सम्मति इशारे से जता दी।

"तुम्हारी यात्रा की जानकारी अभी किसी को नहीं होनी चाहिए। यह हमें, तुम्हें और रेविमय्या को ही मालूम है। छोटे अप्पाजी को भी नहीं मालूम होना चाहिए। हम युद्ध-यात्रा पर चल देंगे, उसके बाद आप लोगों के बलिपुर जाने की व्यवस्था रेविमय्या करेगा। यहाँ के पर्यवेक्षण के लिए चिण्णम दण्डनायक यहीं रहेंगे। डाकरस भी हमारे साथ जायेंगे। आज ही महासन्निधान को हमारी युद्ध-यात्रा के बारे में पत्र भेज दिया जायेगा। आप लोगों की यात्रा के बारे में पत्र बाद में भेजा जायेगा।"

"प्रभु युद्धक्षेत्र में हों और हम रथोत्सव के लिए यात्रा करें?"

"वहाँ रहने-भर में कौन-सी बाधा होगी? रथोत्सव तो निमित्त मात्र है, प्रधान है आप लोगों का बलिपुर जाना। समझ गयीं?"

"जैसी आज्ञा।" युवराज एरेयंग प्रभु खड़े हो गये लेकिन एचलदेवी ने घण्टी नहीं बजायी।

"क्यों, और कुछ कहना है क्या?"

"अर्हन्, मेरे सौभाग्य को बनाये रखने का आग्रह करो।" कहती हुई एचलदेवी ने उनके पैरों पर सिर रखकर एक लम्बी साँस ली।

"उठो, जिननाथ की कृपा से तुम्हारे सौभाग्य की हानि कभी नहीं होगी। भगवान् जिननाथ तुम्हारी प्रार्थना मानेंगे।" कहते हुए एचलदेवी की भुजा पकड़कर उठाया। युवरानी के मुख पर एक समाधान झलक पड़ा। उसने घण्टी बजायी। बोम्मले ने द्वार खोला। प्रभु ने विदा ली।

एरेयंग प्रभु ने डाकरस दण्डनायक, कुमार बल्लाल और बैजरस के साथ यादवपुरी की तरफ प्रस्थान किया। दो दिन बाद युवरानी एचलदेवी, कुमार बिट्टिदेव, कुमार उदयादित्य, कवि नागचन्द्र और रेविमय्या की सवारी बलिपुर की ओर चली। उनकी रक्षा के लिए आरक्षक दल छोटा-सा ही था। इनके आने की पूर्व सूचना देने को गोंक के साथ दो सैनिक पहले ही चल पड़े थे। युद्ध चिण्णम दण्डनायक दोरसमुद्र जाकर बेलापुर की सारी बातें एरेयंग प्रभु की आज्ञा के अनुसार महा-सन्निधान से निवेदन कर लौटा था और देख-रेख के लिए बेलापुरी ही ठहर गया था।

उधर, बिट्टिदेव के उपनयन के पश्चात् बलिपुर लौटने में पूर्व ही मारसिंगय्या ने प्रभु से बेलापुरी की घटनाओं का निवेदन किया, जल्दी में जो भेंट बलिपुर में वसूल की जा सकी थी वह समर्पित की और भगवती तारा के रथोत्सव के लिए राज-परिवार को आमन्त्रण दिया। यहाँ आने के बाद प्रभु के ठहरने की बड़ी सुन्दर व्यवस्था की। सारा बलिपुर नये साज-सिंगार से अलंकृत होकर बड़ा ही सुहावना बन गया। सारे रास्ते सुधार दिये गये थे, कहीं ऊबड़-खाबड़ नहीं रहे। बलिपुर के चारों ओर के प्रवेश-द्वार इस सुन्दर ढंग से सजाये गये थे कि मानो अतिथियों के स्वागत में विनम्र भाव से खड़े मेजबान वही हों। सभी सैनिकों को नयी वरदी दी गयी जिससे सेना को एक नया रूप मिल गया लगता था।

बूतुग और दासब्बे प्रभु के निवास की सजधज के लिए नियुक्त थे। ग्वारप्पा और ग्वालिन मल्लि दूध-दही प्राप्त करने के लिए नियोजित थे। धोबिन चेन्नी अब अलग ही व्यक्ति बन गयी थी, हेगड़े ने यह परिवर्तन उसमें देखा तो उसे अपने परिवार के कपड़े साफ करने को नियुक्त कर दिया। तो भी, चेन्नी ने प्रभु के वस्त्र स्वच्छ करने का जिम्मा उसी को सौंपने की जिद्द की मगर हेगड़ेजी ने स्वीकृति नहीं दी। अन्त में, हेगड़ती के जोर देने पर राजमहल के वस्त्र-भण्डार के संरक्षक अधिकारी के निर्देश के अनुसार काम करने का आदेश देकर प्रभु के वस्त्र स्वच्छ करने का काम दिलाने का भरोसा दिया था। बलिपुर के नागरिकों में विशेष उत्साह छलक रहा था। प्रभु के अपने यहाँ आने की खबर से खुश जनता की खुशी का यह सुनकर ठिकाना न रहा कि वे यहाँ कुछ दिन नहीं, कुछ महीने ठहरेंगे।

गोंक से पूर्व-सूचना मिलने पर बेचारे हेगड़े के परिवार को निराशा-मिश्रित सन्तोष हुआ। निराशा इसलिए कि परिस्थितिवश प्रभु आ न सके। सन्तोष इस-लिए कि युवरानी और राजकुमार एक महीना नहीं, प्रभु का आदेश मिलने तक वहीं बलिपुर में ठहरेंगे।

इतना ही नहीं, प्रभु का आदेश यह भी था कि सिंगिमय्या को वहीं बुलाकर राजकुमारों के सैनिक-शिक्षण की व्यवस्था करें। संयोग से सिंगिमय्या वहीं था। राज-परिवार के बलिपुर पहुँचने के पहले ही उसने सैनिक-शिक्षण की व्यवस्था अपने बहनोई मारसिंगय्या से विचार-विनिमय करके उपयुक्त स्थान और अन्य

आवश्यक बातों को व्यवस्थित रूप से तैयार कर रखा था। मदद के लिए चलिके-नायक को भी बुलाने की व्यवस्था हुई। इन्हीं दोनों ने धारानगर पर हमले के समय मिलकर काम किया था।

राज-परिवार की सवारी के पहुँचने से दो-तीन घण्टे पहले ही हेग्गड़े को खबर मिली थी। हेग्गड़े, हेग्गड़ती, शान्तला, पटवारी, धर्मदर्शी, सरपंच, कवि बोकिमय्या, शिल्पी गंगाचारि, शिल्पी दासोज और उसका पुत्र चावुण, पुरोहित वर्ग तथा गण्य नागरिक लोग वलिपुर के दक्षिण के सदर द्वार पर स्वागत के लिए प्रतीक्षा में खड़े हो गये। मंगलवाद्य-घोष के साथ आरक्षक सेना सलामी देने के लिये रास्ते के दोनों तरफ़ कतार बाँधे उपस्थित थी। युवरानी और राजकुमारों का रथ सामने रुका। सारथि की बगल से रेविमय्या कूद पड़ा और रथ का द्वार खोल कुछ हटकर खड़ा हो गया।

रथ से राजकुमार उतरे, युवरानीजी उतरीं। हेग्गड़ती और शान्तला ने रोरी का तिलक लगाया और आरती उतारी। नजर भी उतारी गयी। रथ महाद्वार को पारकर शहर के अन्दर प्रवेश कर गया। सबने पैदल ही पुर-प्रवेश किया। 'पोय्सल राजवंश चिरजीवी हो, कर्नाटक का सम्पदभ्युदय हो, युवरानीजी की जय हो, राजकुमारों की जय हो।' इन नारों से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। पुरोहितजी ने आशीर्वाद दिया।

हेग्गड़ती ने युवरानी के पास आकर धीरे-से कहा, "सन्निधान रथ में बैठें, निवास में जाकर विश्राम करें, हम शीघ्र ही वहाँ पहुँचेंगी।"

"इन्द्रगिरि और कटक पहाड़ पर चढ़नेवाली हम अगर चार कदम चलते ही जायें तो क्या कष्ट होगा। आपके यहाँ के नागरिकों के दर्शन का नाम ही मिलेगा हमें।"

फिर भी रास्ते के दोनों ओर लोग खचाखच भरे थे। घर-घर के सामने मण्डप रचा गया था। पैदल चलने की बात मालूम हुई होती तो हेग्गड़ेजी उसके लिए आवश्यक व्यवस्था पहले से ही कर लेते। सबने युवरानीजी को आँख-भर देखा। भाव-विभोर लोगों ने समझा कि पोय्सल राज्य के सौभाग्य ने ही मूर्तिमान् होकर उनके यहाँ पदार्पण किया है।

वलिपुर की जनता में यह हार्दिक स्वागत देखकर युवरानीजी को आश्चर्य हुआ क्योंकि उन्होंने इस सबकी आशा नहीं की थी। उन्होंने सोचा, एकनिष्ठ हेग्गड़े और उसकी प्रजा से प्राप्त स्वयंस्फूर्त, [illegible], हार्दिक स्वागत को बखान अपनी आँखों से देखता-समझना तो [illegible] हुआ। निवास के द्वार पर दासव्वे और मल्लि ने आरती उतारी। हेग्गड़े मारसिंगय्या ने कवि नागचन्द्र से कहा, "आप यों कहीं भी रह सकते हैं, लेकिन यहाँ [illegible] ज्यादा स्वतन्त्र रह सकेंगे।"

"युवरानीजी के आदेशानुसार करूँगा। व्यक्तिगत रूप से मेरे लिए सभी स्थान बराबर हैं।" कवि नागचन्द्र ने कहा।

"अपनी सहूलियत के अनुसार कीजिए।"

वह सारा दिन कुशल-प्रश्न, मेल-मिलाप में ही बीता। बढ़ी हुई शान्तला को देखकर युवरानीजी बहुत खुश हुईं। उनका हृदय मस्तिष्क को कुछ और ही सुझाव दे रहा था।

शान्तला और बिट्टिदेव स्वभावतः बड़े आत्मीय भाव से मिले। रेविमय्या और वतुग में बहुत जल्दी मैत्री हो गयी। बोम्मले और दासब्बे में भी —— स्नेह हो गया।

शान्तला का संगीत और नृत्य के शिक्षण का स्थान घर ही रहा, परन्तु साहित्य, व्याकरण, गणित आदि का पाठ-प्रवचन युवरानीजी के निवास पर चलने लगा क्योंकि कवि नागचन्द्र के सम्मिलित गुरुत्व में शान्तला, बिट्टिदेव और उदयादित्य के ज्ञानार्जन की प्रक्रिया चल रही थी। इन दोनों कवियों में ऐसी आत्मीयता बढ़ी कि उसे महाकवि रन्न देखते तो शायद यह न लिखते : 'वाक् श्रेयुतनोल अमत्सरत्व आगदुं।' अर्थात् वाक्-श्रीयुत जो होता है उसमें मात्सर्य रहेगा ही। महाकवि रन्न की यह उक्ति शायद स्वानुभूति से निकली थी। चुड़िहारों के घराने में जन्म लेकर कोमल स्त्रियों के नरम हाथों में आड़ी हड्डी के अड़े होने पर भी बड़ी होशियारी से दर्द के बिना चूड़ियाँ पहनाने में कुशल होने पर भी जो वह कार्य छोड़कर अपने काव्य-कौशल के बल पर वाक्-श्रीयुत कवियों से स्पर्धा में जा कूदा और स्वयं वाक्-श्रीयुतों के मात्सर्य का विषय बन गया हो, ऐसे धुरन्धर महाकवि की वह उक्ति स्वानुभूतिजन्य ही होनी चाहिए।

नागचन्द्र और बोकिमय्या कभी-कभी शिष्यों की उपस्थिति को ही भूलकर बड़े जोरों से साहित्यिक चर्चा में लग जाया करते यद्यपि इस चर्चा का कुछ लाभ शिष्यों को भी मिल जाता। किसी भी तरह के कड़आपन के बिना विमर्श कैसा होना चाहिए, यह बात इन दोनों की चर्चा से विदित हुई शिष्यों को।

इस सिलसिले में मत-मतान्तर और धर्म-पंथों के विषय में भी चर्चा हुआ करती। इस चर्चा से शिष्यों को परोक्ष रूप से शिक्षा मिली। वैदिक धर्म ने समय-समय पर आवश्यक बाह्य तत्त्वों को आत्मसात् करके अपने मूल रूप को हानि पहुँचाये बिना नवीन रूप धारण किया, लेकिन गौतम बुद्ध ने घोर विरोध किया

और उनका धर्म सारे भारत में जड़ जमाकर भी दो भागों में विभक्त हो कान्ति-हीन हो रहा था जबकि उन्हीं दिनों जैन धर्म वास्तव में प्रवृद्ध होकर सम्पन्न स्थिति में था। कालान्तर में वैदिक धर्म विशिष्टाद्वैत के नाम से नये रूप में विकसित होकर तमिल प्रदेश में श्री वैष्णव पंथ के नाम से प्रचारित हुआ जिसका तत्कालीन शैव चोल-वंशीय राजाओं ने घोर विरोध किया। यह विरोध भगवान् के शिव और विष्णु रूपों की कल्पना से उत्पन्न झगड़ा था। यह वह समय था जब आदि शंकर के अद्वैत ने बौद्ध मत को कुछ ढीला कर दिया था। किन्तु उन्हीं के द्वारा पुनरुज्जीवित वैदिक धर्म ने फिर से अपना प्रभाव कुछ हद तक खो दिया था। शैव सम्प्रदाय के कालमुख काश्मीर से कन्याकुमारी तक अपना प्रसार करते हुए यत्रतत्र विभिन्न मठों की स्थापना कर रहे थे। बलिपुर के पास के तावरेकेरे में भी उन्होंने एक मठ की स्थापना की जो कोड़ीमठ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। विश्व-कल्याण की साधना तभी हो सकती है जब मानव में ऊँच-नीच की भावना और स्त्री-पुरुष का भेद मिटाकर "सर्वं शिवमयं" को उद्देश्य बनाया जाए, और इसी उद्देश्य के साथ वीर-शैव मत भी अंकुरित हो बढ़ रहा था।

अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, बौद्ध, जैन कालमुख, वीरशैव आदि भिन्न-भिन्न मार्गों में चल रहे सहयोग-असहयोग पर दोनों चर्चा करने लगते तो उन्हें समय का भी पता न चलता। वे केवल ज्ञान-पिपासु थे, उनमें संकुचित भावना थी ही नहीं। वे इन मत-मतान्तरों के बारे में अच्छी जानकारी रखते थे, इससे उनकी इस चर्चा का शिष्यों पर भी अच्छा परिणाम होता था। धर्म की नींव पर सहृदयता, शोध और विचार-विनिमय के बहाने दोनों गुरु शिष्यों की चित्तवृत्ति परिष्कृत और पक्व किया करते। साहित्यिक चर्चा में तो शिष्य भी भाग लिया करते, कई बार युवरानी एचलदेवी भी यह चर्चा सुना करतीं।

बलिपुर में धार्मिक दृष्टि का एक तरह का अपूर्व समन्वय था। श्रीवैष्णव मत का प्रभाव अभी वहाँ तक नहीं पहुँचा था। एक समय था जब वहाँ बौद्धों का अधिक प्रभाव रहा। इसीलिए वहाँ भगवती तारा का मन्दिर था। बौद्धों के दर्शनीय चार पवित्र क्षेत्रों में उन दिनों बलिपुर भी एक माना जाता था। बौद्ध धर्म के क्षीण दशा को प्राप्त होने पर भी उस समय बलिपुर में बौद्ध लोग काफी संख्या में रहते थे। गौतम बुद्ध की प्रथम उपदेश-वाणी के कारण सारनाथ की जो प्रसिद्धि उत्तर में थी वही प्रसिद्धि बलिपुर की दक्षिण में थी, उन दिनों बलिपुर बौद्धों का सारनाथ बन गया था। इस बौद्ध तीर्थ-स्थान का जयन्ती-बौद्ध विहार धर्म और ज्ञान के प्रसार का केन्द्र माना जाता था। दूसरी ओर, जगदेकमलेश्वर मन्दिर, ओंकारेश्वर मन्दिर, नीलकण्ठेश्वर मन्दिर, केदारेश्वर मन्दिर, शैवों और वीरशैवों के प्रभाव के प्रतीक थे। उत्तर-पश्चिम में सीता-होंडा के नाम से प्रसिद्ध जलावृत भूभाग में वहाँ जलशयन-देव नामक वैष्णव मन्दिर था। वहाँ जैन धर्म के प्रभाव

की सूचक एक ऐतिहासिक वसति भी थी जिसका अर्थ ही जैन मन्दिर होता है।

भगवती तारा का रथोत्सव धूमधाम के साथ सम्पन्न हुआ। भारत के नाना भागों से बौद्ध भिक्खु और सहवासी बलिपुर आये। किसी भेदभाव के बिना अन्य सभी मतावलम्बियों ने भी उसमें भाग लिया। हेग्गड़े मारसिंगय्या के नेतृत्व में उत्साह और वैभव तो इस उत्सव में होना ही था, पोय्सल युवरानी और राजकुमारों के उपस्थित रहने से एक विशेष शोभा आयी थी। बलिपुर में तारा भगवती की प्रतिष्ठा करनेवाली महान् सहवासी नाप्पुरे नागियक्का अभी जीवित थी जो बहुत वृद्धा होने पर भी पोय्सल युवरानी की उपस्थिति के कारण विहार से बाहर निकलकर इस उत्सव में भाग लेने आयी। करुणा की साकार मूर्ति की तरह लगने वाली इस महासहवासी वृद्धा नागियक्का को देखकर युवरानी एचलदेवी उसके प्रति आदर से अभिभूत हो उठी जबकि प्राचीनकाल के ऋषि-मुनियों की तरह जटा बाँधे उस वृद्धा को देखकर बिट्टिदेव आश्चर्यचकित हुआ। उन्होंने युवरानी को विहार-दर्शन के लिए आमन्त्रित किया। तदनुसार रथोत्सव के बाद एक दिन वे वहाँ गयी। उनके साथ हेग्गड़ती माचिकब्बे, दोनों राजकुमार, शान्तला, गुरु नागचन्द्र और बोकिमय्या भी गये। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि रेविमय्या भी उनके साथ था।

नागचन्द्र और बोकिमय्या यहाँ महासहवासी नागियक्का के साथ भी किसी विषय पर चर्चा करेंगे, इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे बिट्टिदेव और शान्तला जिनमें पनपते सहज सम्बन्ध युवरानी की दृष्टि में थे। इन सम्बन्धों और उदयादित्य-शान्तला सम्बन्धों में जो अन्तर था वह प्रगाढ़ता की दृष्टि से कम और प्रकृति की दृष्टि से अधिक था। सबने इस महासहवासी का दर्शन कर उसे साष्टांग प्रणाम किया। उनके आदेशानुसार सभी विहार के प्राध्यापक बुद्धरक्खित के साथ विहार-दर्शन करने गये जो ध्यान, अध्ययन, निवास आदि की दृष्टि से अत्यन्त उपयुक्त, विशाल और कलापूर्ण था।

बुद्धरक्खित ने इस विहार के निर्माण और कला पर तो प्रकाश डाला ही, बौद्ध धर्म के प्रवर्तन, विकास, विभाजन, उत्थान-पतन, स्वागत-विरोध आदि पर भी सविस्तार किन्तु रोचक चर्चा की। उन्होंने बताया कि लोगों को बौद्धानुयायियों की संख्या बढ़ाने और प्रजाक्षेम को अधिकाधिक आश्रय देने के इरादे से महायान का विकास हुआ जिसमें हिन्दू देवताओं के रूप और शक्तियाँ भी समन्वित हुईं। इसीलिए उसमें बुद्ध तो है ही, केशव है, अवलोकितेश्वर है, और पाप-निवारक देवी भगवती तारा भी है। यह भगवती तारा बोधिसत्व अवलोकेश्वर को प्रतिबिम्बित करनेवाला स्त्री रूप है। महायान पंथ में इस भगवती तारा का विशेष स्थान है क्योंकि वह दुष्ट पुरुष को क्षमा करके उसे गलत रास्ते में जाने से रोककर सही रास्ते पर चलाने तथा मोक्ष-साधन के ऋजुमार्ग में प्रवर्तित करने का काम करती

है। वह संसार को निगलनेवाली रक्त-पिपासु चण्डी नहीं, भद्रकाली या चामुण्डी नहीं, वह क्षमाशीला, प्रेममयी, साध्वी, पापहारिणी पावन-मूर्ति है। बुद्धरक्खित की बातें सुनते-सुनते वे लोग सचमुच तारा भगवती की मूर्ति के सामने पहुँचे। दर्शकों की एकाग्र दृष्टि मूर्ति पर लग गयी, ऐसा आकर्षण था उस मूर्ति में।

लक्ष्म्युपनिषत् में वर्णित लक्ष्मी की तरह यह देवी मूर्ति कमलासन पर स्थित है। उसका दायाँ पाँव नीचे लटक रहा है, बायाँ अर्द्ध-पद्मासन के ढंग पर मुड़ा हुआ दायी जंघा पर तथा दायाँ पाद धर्म-चक्र पर स्थित है। वह कीमती वस्त्र धारण किये है। मस्तक नवरत्न-खचित किरीट से मण्डित है। उत्तम कर्णाभरण के साथ साँकलें कानों की शोभा बढ़ा रही हैं। माला उसके उन्नत वक्ष पर से होकर वक्षोजों के बीच वज्र-खचित पदक से शोभित है। कटि में जवाहर-जड़ी करधनी जिसकी कमान के आकार की दोलड़ी साँकल झूलती हुई दिखायी गयी है। हाथ कंगन से शोभायमान हैं, बाहु पर केयूर, अंगुलियों में अँगूठियाँ, पैरों की अंगुलियों पर छल्ले, पैरों में पाजेब और एक प्रकार का साँकलनुमा पादाभरण है जो देवी के पादपद्मों पर अर्द्धवृत्ताकार से लगकर दीर्घ पादांगुलियों को चूमता है। नपे-तुले मान-प्रमाण से बनी यह मूर्ति प्रस्तर की होने पर भी सजीव लग रही है। लम्बी चम्पाकली-सी नाक, मन्दहासयुक्त अर्धनिमीलित नेत्र। ध्यानमुद्रा में कुछ आगे की ओर झुकी हुई प्रेम से अपनी ओर बुलानेवाली प्रेममयी माँ की भंगिमा देखते ही रहने की इच्छा होती है।

दाएँ पैर की बगल में सात फनवाले सर्प नागराज का संकेत है। उसकी बगल में एक छोटी कमलासीन स्त्री-मूर्ति है, सर्वालंकार-भूपिता होने पर भी जिसके सिर के बाल गाँठ के आकार के बने है। देवी के पीछे की ओर दो खम्भे हैं। उनमें गुल्म-लताओं के उत्किरण से युक्त सुन्दर लताकार से निर्मित प्रभावलय अलंकृत है। इनपर दोनों ओर घण्टों की माला से विभूषित दो हाथी हैं जिनकी सूँड उस सिंह के दोनों जबड़ों से मिलायी गयी है। प्रभावली के उस शिल्प की महीन उत्किरण की भव्यता देखते ही बनती है।

बड़े लोग महासाध्वी नागियक्का के प्रांगण की ओर बढ़ गये, परन्तु बिट्टिदेव और शान्तला वहीं उस मूर्ति के सामने खड़े रह गये। युवरानी ने पास खड़े रेविमय्या के कान में कुछ कहा। वह वहीं थोड़ी दूर खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद बिट्टिदेव ने पूछा, "इस विहार को बनानेवाले व्यक्ति बड़े विशाल हृदय के होंगे। वे पुण्यात्मा कौन होंगे, क्या तुम्हें मालूम है, शान्तला ?"

"हाँ, मालूम है। चालुक्यों के मन्त्रियों में एक दण्डनायक रूपभट्टय्या थे जिन्होंने न केवल इसे बनवाया, यहाँ केशव, लोकेश्वर और बुद्धदेव की मूर्तियों की स्थापना भी की। यह, हमारे बलिपुर के शिल्पी दासोज जो हमारे गुरु है उन्होंने बताया है।" शान्तला ने कहा।

"इसका निर्माण करनेवाले शिल्पी कौन थे ?"

"क्यों, आप मन्दिर, विहार या वसति का निर्माण करानेवाले हैं क्या ?"

"इसे बनानेवाले शिल्पी के बारे में जानने की इच्छा रखनेवाले सभी लोग मन्दिर बनवाएँगे क्या ?"

"सभी की बात तो यहाँ उठी नहीं, आप अपनी बात कहिए।"

"ऐसा कोई विचार नहीं, फिर भी जानने की इच्छा हुई है सो मालूम हो तो बता दें।"

"इसे बनानेवाले शिल्पी रामोज थे, हमारे गुरु दासोजजी के पिता।"

"तो बलिपुर शिल्पियों का जन्मस्थान है क्या ?"

"केवल बलिपुर नहीं, कर्णाटक ही शिल्पियों का आकर है।"

"यह तुम्हें कैसे मालूम ?"

"मुझे गुरु ने बताया है। कर्णाटक के किस कोने में कौन-कौन चतुर शिल्पी हैं, यह सब वे जानते हैं।"

"क्या तुमने रामोजजी को देखा है ?"

"हाँ, देखा था। उन्हें सायुज्य प्राप्त किये अभी एक साल ही हुआ है।"

"इस मूर्ति को गढ़नेवाले भी वे ही थे ?"

"यह मैं नहीं जानती।"

"दासोजजी को शायद मालूम होगा।"

"हो सकता है, चाहें तो पूछ लेंगे।"

"तुमने बताया कि इस विहार में दण्डनायक रूपभट्टय्या ने केशव, लोकेश्वर और बुद्ध की प्रतिमाएँ स्थापित कीं। भगवती तारा की स्थापना उन्होंने नहीं की ?"

"न। इसकी स्थापना योगिनी नागियक्का ने की है।"

"क्या कहा, उस वृद्धा ने ? उस निर्धन वृद्धा से यह सब कैसे सम्भव है !"

"अब निर्धन लगें, लेकिन तब वे महादानी बाप्पुरे नागियक्का जी थीं, एक महानुभावा, सब कुछ त्यागकर आत्म-साक्षात्कार करनेवाली महान् साध्वीमणि। यह वंश आदि महाबाप्पुर के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हीं के वंशोत्पन्न ध्रुव इन्द्रवर्मा चालुक्य राज्य के एक भाग के राज्यपाल बनकर राज्य करते थे। सत्याश्रय रणविक्रम के नाम से प्रसिद्ध चालुक्य प्रथम पुलिकेशी की पत्नी दुर्लभादेवी इसी वंश की पुत्री कही जाती है। नागियक्काजी और उसके पतिदेव हंपशेट्टीजी ने अपना सर्वस्व इस विहार के निर्माण में खर्च कर अन्त तक अपना शरीर-श्रम भी देकर अपने को इसी में घुना दिया। वे महानुभाव हेग्गड़े बनकर बलिपुर में भी रहे, यह कहा जाता है।"

"तुमने उन्हें देखा था ?"

"नहीं, मेरे जन्म के कई वर्ष पहले ही उन्होंने सायुज्य प्राप्त कर लिया था। अच्छा अब, चलें, युवरानीजी हमारी प्रतीक्षा करती होंगी।"

"चलो।" दोनों चलने को हुए कि रेविमय्या को देखकर रुक गये जो हाथ जोड़े आँख मूँदकर तारा भगवती के सामने एक खम्भे से सटकर खड़ा मानो ज्ञान-समाधि में लीन था। उसका ध्यान भंग न करने की इच्छा से दोनों दो-चार क्षण प्रतीक्षा करते रहे।

"वह आ जायेगा, चलो।" कहते हुए बिट्टिदेव ने शान्तला की भुजा पर हाथ रखा और चल पड़ा। शान्तला थोड़ी झुककर कुछ दूर सरककर आगे बढ़ी। बिट्टिदेव ने शान्तला की ओर देखा। उसकी उस दृष्टि में उसे कुछ दर्द और कुछ प्रश्नार्थक भाव दिखे। उसके मन में अपराधी होने के भाव दीख रहे थे। शान्तला ने भी बिट्टिदेव को देखा। शान्तला के चेहरे पर मन्द हास झलक रहा था। लज्जा-भार से कुछ अवनत-सी होकर उसने आगे कदम बढ़ाया। बिट्टिदेव ने उसका अनुसरण किया।

रेविमय्या ने आँखें खोलीं तो देखा कि वह अकेला है। वहाँ से निकलते वक्त उसने देवी से फिर प्रार्थना की, "देवि, मेरा इष्टार्थ पूरा करो।" और प्रणाम कर नागियक्काजी के प्रांगण में पहुँचा।

नागियक्का वल्क-चीर धारण किये कुशासन पर दीवार से सटकर बैठी थीं। उनकी एक ओर शान्तला और दूसरी ओर बिट्टिदेव बैठे थे। दोनों के कन्धों पर उस महासाध्वी के प्रेममय हाथ थे। वह दृश्य देखते ही रेविमय्या की आँखों से आनन्दाश्रु बह चले जिन्हें वह रोककर भी न रोक सका था।

बुद्धरक्खित ने देखा तो कुछ घबड़ाकर पूछा, "क्या क्यों हुआ ?"

युवरानी ने कहा, "कुछ नहीं हुआ। बहुत आनन्द होने पर उसकी यही हालत होती है। उसका हृदय बहुत कोमल है।"

"हम भी यही चाहते हैं, यहाँ जो भी आते हैं उन्हें आनन्दित होकर ही जाना चाहिए। तभी हमें इस बात का साक्ष्य मिलता है कि अभी यहाँ बोधिसत्त्व का प्रभाव है। महासाध्वी सहवासी नागियक्काजी को शंका थी कि युवरानीजी आयेंगी या नहीं। सन्निधान के आने से वे भी खुश हैं।" बुद्धरक्खित ने कहा।

"इस तरह की शंका का कारण ?"

"यहाँ अनेक राज्यों से बौद्ध भिक्षु आते हैं। वे बताते हैं कि उनके राज्य के राजा अपने मत पर अत्यन्त प्रेम से प्रभावित होकर अन्य-मतियों के साथ बहुत ही असहिष्णुता का व्यवहार करते हैं। सन्निधान के विचारों से अपरिचित होने के कारण यह शंका उत्पन्न होने में कोई आश्चर्य नहीं।" बुद्धरक्खित बोले।

"तो मतलब यह कि पोय्सलवंशियों की उदार भावना से महासाध्वी नागियक्काजी अपरिचित हैं। हमारे प्रभु और महाराज की दृष्टि में कोई भेद-

भावना नहीं। किसी भी मत के अनुयायी हों, उनमें उन्हें कोई फरक नहीं दिखता।" युवरानी एचलदेवी ने कहा।

"मत मानव-मानव के बीच में प्रेम का साधन होना चाहिए, द्वेष पैदा कर मानव को राक्षस बनाने का साधन नहीं, यही उपदेश था भगवान् बुद्ध का जिन्होंने जगत् के लोगों का दुःख-दर्द देखा और उससे स्वयं दुःखी होकर, अपना सर्वस्व त्यागकर भी लोक-जीवन को सुखमय बनाने के महान् उद्देश्य से प्रकृति की गोद में आश्रय लिया। अशोक चक्रवर्ती को जयमाला के प्रेम में पड़कर अपने को विजयी समझते समय जो ध्वनि सुनायी पड़ी थी वह कोई आनन्द ध्वनि नहीं, बल्कि आहत मानवता की आर्त-ध्वनि थी। भगवान् बुद्ध की वाणी सुनकर उसका केवल भ्रम-निरसन ही नहीं हुआ बल्कि उसी क्षण से उसने शस्त्र-संन्यास ले लिया और धर्म-चक्र की स्थापना की। अनुकम्पा की अधिदेवी, पाप-निवारिणी भगवती तारा मानवोद्धार कार्य को उसी धर्म-चक्र के आधार पर चलाती रही हैं।" तापसी नागियक्का ने समझाकर कहा। उम्र के बढ़ने के साथ मानव की ध्वनि में कम्पन होता है, यह वयोधर्म है, परन्तु अक्का की ध्वनि में कम्पन नहीं, काँसे की-सी स्पष्ट ध्वनि थी। सबने एकाग्र भाव से अक्का की बातें सुनीं।

उनका प्रवचन रुका तो बिट्टिदेव ने पूछा, "तो क्या इसीलिए आपने यहाँ भगवती तारा की स्थापना की है?"

"शिल्पी इसे बनानेवाला है, भक्त-लोग इसकी स्थापना करनेवाले है, फिर भी कोई कहे कि मैंने स्थापना की है, तो इसके माने नहीं हैं। ऐसे जन-कार्य तो जनता द्वारा जनता के लिए होने चाहिए।" नागियक्काजी ने सटीक उत्तर दिया।

"ऐसे कार्यों में लोगों को प्रेरित करनेवाले को ही जनता कर्ता और स्थापक मानती है, जो ठीक है, योग्य है।" कवि नागचन्द्र ने कहा।

"हाँ यह एक कवि की व्यवस्था है और सटीक ही है क्योंकि धर्मोपदेश नीरस होने के बदले काव्यमय हो तो वह अधिक आनन्ददायक और सहज-ग्राह्य होता है।" नागियक्के ने कवि का सुन्दर ढंग से समर्थन किया।

"जातक कथाएँ तो यही काम करती हैं।" नागचन्द्र ने कहा।

"इन बच्चों को उन कथाओं से परिचित कराया है?" नागियक्का ने पूछा।

नागचन्द्र ने "नहीं" कहकर कवि बोकिमय्या की ओर देखकर पूछा, "क्या आपने अम्माजी को सुनायी हैं जातक कथाएँ?"

"कुछ, सो भी पढ़ाते समय प्रासंगिक रूप में, लेकिन पहले एक बार अम्माजी जब यहाँ आयी थी तब जातक कथाएँ इन प्रस्तरों पर उत्कीर्ण देखकर उन्होंने पूछा था, तब मैंने कुछ कथाएँ बतायी थीं।" बोकिमय्या ने उत्तर दिया।

"मैं तो आज भी नहीं देख सका।" बिट्टिदेव ने तुरन्त खेद व्यक्त किया।

"झुण्ड में अनेक बातों की ओर ध्यान नहीं जा पाता, एक बार फुरसत से

आकर देखेंगे।" बोकिमय्या ने समाधान किया।

इस सम्भाषण को ऐसे ही चलने दें तो आज दिन-भर यहीं रहना होगा। यह सोचकर माचिकब्बे ने अक्काजी से अनुमति माँगी, "वहाँ से कोई हमें बुलाने आये इसके पहले हमारा घर पहुँच जाना अच्छा होगा।" और उसने नागियक्का को साष्टांग प्रणाम किया। युवरानी और शेष लोगों ने भी प्रणाम किया। वुद्धरक्खित ने मवको प्रसाद दिया।

सबके पीछे रेविमय्या था। वुद्धरक्खित ने उससे पूछा, "सन्निधान के कहने से मालूम हुआ कि तुम बहुत खुश हो। तुम्हारी उस खुशी का स्वरूप क्या है, बता सकोगे?"

"क्या बताऊँ, गुरुवर्य, हमारे राजकुमार इस छोटी हेग्गड़ती अम्माजी का पाणिग्रहण कर सकें, ऐसी कृपा करो देवि, यह मेरी प्रार्थना थी भगवती तारा से। यही प्रार्थना करता हुआ मैं अन्दर आया तो देखा कि देवी ने मेरी प्रार्थना मान ली जिसके फलस्वरूप दोनों बच्चों को दोनों ओर बैठाकर अपने वरदहस्त बच्चों पर रखे आशीर्वाद दे रही है महासाध्वीमणि अक्काजी, इससे बढ़कर मेरे लिए आनन्द का विषय और क्या हो सकता है?" रेविमय्या ने बताया। क्षण-भर वुद्धरक्खित ने रेविमय्या को देखा।

"क्यों गुरुवर्य। मेरी यह इच्छा गलत है?" रेविमय्या ने पूछा।

वुद्धरक्खित ने कोई जवाब नहीं दिया, उनका चेहरा खिल उठा। कहाँ-से-कहाँ का यह रिश्ता, उसे चाहनेवाला कौन, विचित्र, मानव रीति ही विचित्र है। इन विचारों में खोये भिक्षु ने इतना ही कहा, "बहुत अच्छा।"

वुद्धिरक्खित को प्रणाम कर रेविमय्या जल्दी-जल्दी निकला क्योंकि बाहर वाहन कतार बाँधे चलने की तैयारी में थे। अन्दर पहुँचते ही वुद्धरक्खित ने रेविमय्या के विचारों का निवेदन नागियक्का से किया। राजकुमार भाग्यवान् होगा तो शान्तला का पाणिग्रहण करेगा। युवरानी को पद का अहंकार नहीं, इसलिए ऐसा भी हो सकता है। दोनों बच्चे बड़े वुद्धिमान् हैं। मैंने आशीष दिया है कि दोनों सुखी हों यद्यपि रेविमय्या ने जो बात कही वह मेरे मन में नहीं थी।" नागियक्का ने कहा। बात यहीं तक रही।

सिंगिमय्या के नेतृत्व में बिट्टिदेव, शान्तला और उदयादित्य का सैनिक-शिक्षण यथावत् चल रहा था। उदयादित्य उम्र में छोटा होने पर भी तलवार चलाने की

कला में बहुत चतुर था। राजवंश का रक्त उसकी धमनियों में प्रवाहित हो रहा था। बड़े भाई और अपने से उम्र में कुछ बड़ी शान्तला को तलवार चलाने का अभ्यास करते देख उसमें भी यह सीखने की इच्छा बढ़ी थी।

एक दिन शान्तला और बिट्टिदेव के बीच बातों-ही-बातों में स्पर्धा छिड़ गयी। यह देखकर सिंगिमय्या ने कहा, "बेहतर है, आप दोनों आमने-सामने हो जाओ।"

बिट्टिदेव तुरन्त बोला, "न, न, यह कैसे हो सकता है? मैं एक स्त्री के साथ स्पर्धा नहीं करूँगा। इसके अलावा, वह उम्र में मुझसे छोटी है। चाहे तो उदय और शान्तला परस्पर आमने-सामने हो जायें। वह जोड़ी शायद ठीक भी रहेगी।"

"उस हालत में भी राजकुमार उदय पुरुष ही हैं, इसके अलावा, वे मुझसे छोटे भी हैं।" शान्तला ने उत्तर दिया।

"यह कोई युद्ध-क्षेत्र नहीं। यह तो अभ्यास का स्थान है। यहाँ स्त्री-पुरुष के या छोटे-बड़े के भेद के कारण अभ्यास नहीं रोकना चाहिए। आप लोगों ने सैनिक भट मायण के साथ तो द्वन्द्व-स्पर्धा की ही थी। स्पर्धा से भी आपमें आत्म-विश्वास की भावना उत्पन्न होगी।" सिंगिमय्या ने प्रोत्साहन दिया तो शान्तला वीरोचित वेष में सजकर तलवार हाथ में ले तैयार हो गयी और बिट्टिदेव भी तलवार लेकर खड़ा हो गया। शान्तला की उस वेष की भंगिमा बहुत ही मनमोहक थी, उसके शरीर में एक तरह का स्पन्दन उत्पन्न हो रहा था। उसे देखता हुआ बिट्टिदेव वैसा ही थोड़ी देर खड़ा रहा।

"चुप क्यों खड़े हो?" यह स्पर्धा देखने को उत्सुक उदयादित्य ने पूछा।

दोनों स्पर्धार्थियों ने सिंगिमय्या की ओर देखा तो उसने अनुमति दी, "शुरू कर सकते हैं।"

दोनों ने वहीं सर झुकाकर गुरु को प्रणाम किया, तलवार माथे पर लगाकर उसे चूमा। दोनों तलवारों की नोकें एक-दूसरे से मिलीं और तलवारें चलने लगीं।

पहले तो ऐसा लगा कि इस स्पर्धा में बिट्टिदेव जीतेगा क्योंकि उसका अभ्यास शान्तला से बहुत पहले से चल रहा था। इसलिए, इस नौसिखुए को आसानी से जीत लूँगा, यह आत्म-विश्वास था उसे। शान्तला भी कुछ सोच-समझकर तलवार धीरे-धीरे चलाती रही लेकिन क्रमशः उसका हस्त-कौशल नया रूप धारण करने लगा। उदयादित्य इन दोनों को अधिकाधिक प्रोत्साहित करने लगा।

सिंगिमय्या और रावत मायण इन दोनों के हस्त-कौशल से सचमुच खुश हो रहे थे। चारों ओर तलवारों की झनकार भर गयी। करीब दो घण्टे हो गये, दोनों पसीने से तरबतर हो गये। बिट्टिदेव हार न मानकर भी इस घुमाव-फिराव और उछल-कूद के कारण थक गये। परन्तु घण्टों के नृत्याभ्यास से घुमाव-फिराव या उछल-कूद का अच्छा अभ्यास होने से शान्तला को कुछ भी थकावट महसूस

नहीं हुई। उसकी स्फूर्ति और कौशल में बिट्टिदेव से ज्यादा होशियारी लक्षित होने लगी। कभी-कभी बिट्टिदेव को पैर काँपने का अनुभव होता तो वह सँभलकर फिर शान्तला का सामना करने को उद्यत हो जाता।

सिपाही मायण ने परिस्थिति को समझकर सिंगिमय्या के कान में कुछ कहा, "अब इसे रोक देने की अनुमति दे दे तो अच्छा है।"

सिंगिमय्या ने सूचना दी, "राजकुमार थक गये हों तो रुक सकते हैं।"

"कुछ नहीं।" कहकर राजकुमार बिट्टिदेव माथे पर का पसीना, तलवार के चमकने से पहले ही, पोंछकर तैयार हो अपनी तलवार भी चमकाने लगा।

शान्तला भी अपने मामा की बात सुन चुकी थी। उसने समझा यह अब रोकने की सूचना है। बिट्टिदेव की स्थिति का भी उसे आभास हो गया था। फिर भी यह जानती थी कि यद्यपि वे नहीं मानेंगे। लेकिन वह आगे बढ़ी तो उसकी तलवार से उन्हें चोट लग सकेगी। ऐसी स्थिति उत्पन्न करने की उसकी इच्छा भी नहीं थी। इसलिए हार की चिन्ता न कर उसने स्पर्धा समाप्त करने का विचार किया। "आज का अभ्यास काफी है। है न, मामाजी?" शान्तला ने कहा।

"हाँ, अम्माजी, आज इतना अभ्यास काफी है। आज आप दोनों ने अपनी विद्या के कौशल का अच्छा परिचय दिया है।"

दोनों खड़े हो गये, दोनों हाँफ रहे थे। दोनों की आँखें मिलीं। हाँफती हुई शान्तला की छाती के उतार-चढ़ाव पर बिट्टिदेव की नजर कुछ देर टिकी रह गयी।

उदयादित्य उसके पास आया और बोला, "अम्माजी थोड़ी देर और स्पर्धा चलती तो भैया के हाथ-पैर थक जाते और वह लेट जाते।" फिर उसने अपने भाई की ओर मुड़कर कहा, "क्या पैर दुख रहे हैं?"

"हाँ, हाँ, बैठकर ताली बजानेवाले को थकावट कैसे मालूम पड़ सकती है? तुम पूरे भाट हो।" बिट्टिदेव ने अपनी खीझ प्रकट की।

भाटों से राजे-महाराजे और राजकुमार ही खुश होते हैं, तभी तो उन्हें अपने यहाँ नियुक्त कर रखते है।" शान्तला ने करारा उत्तर दिया।

"वह सब भैया पर लागू होता है, जो सिंहासन पर बैठेंगे। हम सब तो वैसे ही हैं, जैसे दूसरे हैं।"

बिट्टिदेव अभी कुछ कहना चाहता था कि शान्तला का टट्टू हिनहिनाया। निश्चित समय पर रायण घोड़े ले आया था। सिंगिमय्या ने कहा, "राजकुमारों के भोजन का समय है, अब चलें।"

बिट्टिदेव बोले, "यह आपका भी भोजन का समय है न?"

"हमारा तो कुछ देरी हुई तो भी चलता है। आप लोगों का ऐसा नहीं होना चाहिए। सब निश्चित समय पर ही होना चाहिए।" सिंगिमय्या ने कहा।

"ऐसा कुछ नहीं। चाहें तो हम अभी भी अभ्यास के लिए तैयार हैं। हैं न उदय ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"ओ, हम तैयार हैं।" उदयादित्य बोला।

"इस एक ही का अभ्यास तो नहीं है, अन्य विषय भी तो हैं। अतः राजकुमार पधार सकते हैं।" सिंगिमय्या ने कहा।

रायण के साथ रेविमय्या भी अन्दर आया था। उसने कहा, "अम्माजी को भी युवरानीजी ने भोजन के लिए बुलाया है।"

भोजन के समय शान्तला को मालूम हुआ कि आज बिट्टिदेव का जन्मदिन है तो उसने सोचा पहले ही मालूम होता तो माँ से कहकर कुछ भेंट लाकर दे सकती थी। भोजन के बीच ही में बिट्टिदेव ने कहा, "आज शान्तला ने तलवार चलाने में मुझे हरा दिया, माँ।"

"नहीं, मामा ने ऐसा निर्णय तो नहीं दिया।" धीमी आवाज में शान्तला बोली।

"तुम्हारे मामा बोले या नहीं। मेरे पैर काँपते थे, इस कारण उन्होंने स्पर्धा रोक दी। आश्चर्य है कि तुम्हारे कोमल पैरों में मुझ-जैसे एक योद्धा के पैरों से भी अधिक दृढ़ता कैसे आयी ? माँ, आपको शान्तला का हस्त-कौशल देखना चाहिए जो उसकी नृत्य-चैखरी से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।" बिट्टिदेव ने कहा।

"अब भाट कौन है, भैया।" उदय ने ताना मारा।

युवरानी एचलदेवी ने सोचा कि आज कोई मज़ेदार बात हुई होगी, इसलिए उन्होंने सीधा सवाल किया, "कहो भी, क्या हुआ।"

बिट्टिदेव के बोलने से पूर्व ही उदय बोल पड़ा, "माँ, मैं कहूँगा। ये दोनों अपनी-अपनी बात रंग चढ़ाकर सुनायेंगे। मैंने स्पर्धा में भाग नहीं लिया, बल्कि मैं प्रेक्षक बनकर देखता रहा, इसलिए जो कुछ हुआ उसका हू-ब-हू विवरण मैं दूँगा।"

मुझ-जैसा ही वह भी शान्तला के हस्त-कौशल की सराहना करता है, इसके अलावा मेरे मुँह से प्रशंसा की बात होगी तो उसका दूसरा ही अर्थ लगाया जा सकता है, यह सोचकर बिट्टिदेव ने उदय से कहा, "अच्छा, तुम ही बताओ।"

बातें चल रही थीं, साथ-साथ भोजन भी चल रहा था। सब कुछ कह चुकने के बाद उदय ने कहा, "कुछ और क्षण स्पर्धा चली होती तो सचमुच शान्तला की तलवार की चोट से भैया घायल ज़रूर होते। स्थिति को पहचानकर गुरु सिंगिमय्याजी ने बहुत होशियारी से स्पर्धा रोककर उन्हें बचा लिया।"

युवरानी एचलदेवी ने बिट्टिदेव और शान्तला की ओर देखा। उनकी आँखें भर आयी थीं।

"क्या हुआ, माँ, हिचकी लगी ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"नहीं, बेटा, आप लोगों के हस्त-कौशल की बात सुनकर आनन्द हुआ। साथ ही जो स्पर्धा की भावना तुम लोगों में हुई वह तुम लोगों में द्वेष का कारण नहीं बनी, इस बात का सन्तोष भी हुआ।" फिर शान्तला से बोली, "अम्माजी आज हमारे छोटे अप्पाजी का जन्म-दिन है। उन्हें तुम कुछ भेंट दोगी न ?"

"यहाँ आने से पहले यदि मालूम हुआ होता तो मैं आते वक्त साथ ही ले आती, युवरानीजी।"

"तुम कुछ भी लाती, वह बहुत समय तक नहीं टिकती। परन्तु अब जो भेंट तुमसे माँग रही हूँ वह स्थायी होगी। दोगी न ?" युवरानी ने कहा।

"जो आज्ञा, बताइये क्या दूँ ?"

"भोजन के बाद आराम-घर में बताऊँगी।" युवरानी बोली। बिट्टिदेव और शान्तला के मनों में युवरानीजी की इस माँग के बारे में पता नहीं, क्या-क्या विचार सूझ गये।

भोजन समाप्त हुआ। हाथ-मुँह धोकर सब विश्राम-गृह की ओर चले। वहाँ पान तैयार था। सब लोग भद्रास्तरण पर बैठे। युवरानीजी दीवार से सटकर तकिये के सहारे बैठीं। बच्चे युवरानी के पास बैठे।

एचलदेवी ने एक तैयार बीड़ा उठाया, उसे शान्तला को देती हुई बोलीं, "अम्माजी, यह बीड़ा अपने मुँह में डालने से पहले तुम मुझे एक वचन दो। आगे से तुम दोनों को आज की तरह स्पर्धा नहीं करनी चाहिए। बिट्टिदेव जिद पकड़कर स्पर्धा के लिए चुनौती दे तो भी तुम्हें उसके साथ कभी भी स्पर्धा नहीं करनी चाहिए, मुझे वचन दो। तुम दोनों में किसी भी कारण से द्वेष की भावना कभी उत्पन्न नहीं होनी चाहिए। स्पर्धा कभी भी द्वेष का कारण बन सकती है। इस-लिए वह न करने की बात कह रही हूँ। मेरा आशय यह है कि तुम दोनों में कभी कोई ऐसी बात नहीं होनी चाहिए जो तुम लोगों मे आपसी विद्वेष का कारण बन सके। है न ?"

शान्तला ने बीड़ा ले लिया और "अच्छा, युवरानीजी, मैं राजकुमार से स्पर्धा अब कभी नहीं करूँगी।" कहकर मुँह में रख लिया।

फिर युवरानी एचलदेवी ने बिट्टिदेव से कहा, "बेटा, छोटे अप्पाजी, वह तुम्हें हरा सकती है, इससे तुममें खीज पैदा हो सकती है। इसी बात से डरकर मैं शान्तला से वचन की भेंट तुम्हारी वर्धन्ती के इस शुभ अवसर पर ले रही हूँ। मान-अपमान या हार-जीत तो तुम्हारे हाथ है। धीरज से युद्ध-क्षेत्र में डटे रहने-वाले राजाओं को सदा हार-जीत के लिए तैयार रहना होगा। प्रभु कभी-कभी कहा करते हैं, तैलप चक्रवर्ती ने हार-पर-हार खाकर भी अन्त में परमार राजा भोज को पराजित किया। मुझे तुम्हारे सामर्थ्य पर शंका की भावना हो, ऐसा मत समझो। इसके पीछे माता होने के नाते, कुछ दूसरा ही कारण है जिसे मैं पोय्सल

युवरानी की हैसियत से प्रकट नहीं कर रही हूँ, केवल माँ होकर यह चाह रही हूँ, इसलिए तुमको परेशान होने की जरूरत नहीं।"

उसे भी एक बीड़ा देती हुई युवरानी फिर बोली, "इस प्रसंग में एक बात और कहे देती हूँ, अप्पाजी। तुम्हारे पिताजी बलिपुर के हेग्गड़े मारसिंगय्याजी और उनके परिवार पर असीम विश्वास रखते हैं। अपने आप पर के विश्वास से भी अधिक उनका विश्वास इन पर है। तुम्हें भी ऐसा ही विश्वास उनपर रखना होगा। उसमें भी यह अम्माजी अकेली उनके वंश का नामलेवा है। उनके लिए बेटा-बेटी सब कुछ वही अकेली है। तुम्हें अपने सम्पूर्ण जीवित-काल में, कैसी भी परिस्थिति आये, इस अम्माजी को किसी तरह का दुःख या तकलीफ न हो, इस तरह उसकी देखभाल करनी होगी। उसका मन बहुत कोमल है किन्तु बिलकुल साफ़ और परिष्कृत भी है। किसी भी बात से उसे कभी कोई तकलीफ़ न पहुँचे, ऐसा उसके प्रति तुम्हारा व्यवहार होना चाहिए। जब मैं यह बात कह रही हूँ तब मेरा यही आशय है कि परिशुद्ध स्त्रीत्व के प्रति तुम्हारा गौरवपूर्ण व्यवहार रहे। कल मैं और प्रभुजी नहीं रहें तब भी इस राज-परिवार और हेग्गड़े-परिवार के बीच इसी तरह का प्रेम-सम्बन्ध और परस्पर विश्वास बना रहना चाहिए। तुम्हारा बड़ा भाई इनपर हम-जैसा विश्वास रखता है, इसमें मुझे शंका है, इस-लिए तुम्हें विशेष रूप से जागरूक रहना होगा। अब लो बीड़ा।"

"माँ, मुझे सब बातें मालूम हैं। आपसे बढ़कर रेविमय्या ने मुझे सब बताया है। मैं आपको वचन देता हूँ, माँ, आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूँगा। आपकी आज्ञा के पालन में बड़े-से-बड़ा त्याग करने को भी तैयार हूँ।" उसने बीड़ा लिया और मुँह में रख लिया।

"बेटा, अब मैं निश्चिन्त हूँ। उदय से वह वर्णन सुनकर मैं भयग्रस्त हो गयी थी। मेरी सदा यही इच्छा रहेगी कि तुम दोनों में कभी भी स्पर्धा की भावना न आये। मेरी इस इच्छा की पूर्ति की आज यह नान्दी है। लड़कों को विवाह के पहले इस तरह पान नहीं दिया जाता, फिर भी, आज जो मैंने दिया उसे मैं अपचार नहीं मानती। इसलिए उदय से भी यही बात कहकर उसे भी यह बीड़ा देती हूँ।" युवरानी ने उसे भी बीड़ा दिया और स्वयं ने भी पान खाया। फिर आँखें मूँदकर हाथ जोड़े। भगवान् से विनती की, "अर्हन्, इन बच्चों को एक-मन होकर सुखी रहने का आशीर्वाद देकर अनुग्रह करो।"

दण्डनायिका चामव्वा के कानों में दोनों समाचार पड़ते देर न लगी और दोनों ने ही उसके मन में किरकिरी पैदा कर दी । उसे तो यह मालूम ही था कि उसका भावी दामाद कितना दृढ़ांग है, ऐसे दुर्बल व्यक्ति को युद्धक्षेत्र में क्यों ले जाना चाहिए इसका जो उत्तर उसे सूझा वह अपने पतिदेव से कहने को समय की प्रतीक्षा कर रही थी । राजघरानेवाले जाकर एक साधारण हेग्गड़े के घर रहें, यह अगर महाराज जानते होते तो वे शायद स्वीकृति नहीं देते ।

उसने यह निश्चय कर लिया है कि मुझसे बदला लेने को हेग्गड़ती ने षड्यन्त्र रचा है, अपने स्वार्थ की साधना के लिए उसने यह सब किया है । उसे कार्यान्वित करने के लिए उपनयन के दिन का पता लगाकर उसने उस भस्मधारी को यहाँ भेजा जिसने वामाचारियों के द्वारा अभिमन्त्रित भस्म लाकर यहाँ फूँक मारी । बड़े राजकुमार पद्मला से प्रेम करते हैं, यह बात जानकर ही उसने ऐसी बुरी तरकीब सोच रखी है । इसकी दवा करनी ही चाहिए। अब आइन्दा दया और संकोच छोड़कर निर्दयता से व्यवहार न करें तो हम मिट्टी में मिल जायेंगे । कौन ज्यादा होशियार है, उसे दिखा न दूँ तो मैं एचिराज और पोचिकब्बे की बेटी नहीं । यदि वह परम घातुकी हो तो मैं उससे दुगनी-चौगुनी घातुकी बन जाऊँगी । इस चामव्वे की बुद्धि-शक्ति और कार्य साधने के तौर-तरीकों के बारे में खुद उसका पाणिग्रहण करनेवाला भी नहीं जानता, हेग्गड़ती क्या चीज है । उस हेग्गड़ती के मन्त्र-तन्त्र से अपनी रक्षा के लिए पहले सोने का एक रक्षायन्त्र बनवा लेना चाहिए।

यह बात मन में आते ही किसी को पता दिये बिना वह सीधी वामशक्ति पण्डित के घर चली गयी । वहाँ उसने उससे केवल इतना कहा, "देखिये पण्डितजी, मेरा और मेरे बच्चों का नाश करने के लिए वामशक्तियों का प्रयोग चल रहा है । उसका कोई असर न पड़े, ऐसा रक्षायन्त्र तैयार कर दें जिसे किसी जेवर के साथ छिपा-कर पहिने रख सकूँ । परन्तु किसी तरह से यह रहस्य खुलना नहीं चाहिए । आपको योग्य पुरस्कार दूँगी ।"

"हाँ, दण्डनायिकाजी, परन्तु यह काम आप लोगों की बुराई के लिए कौन कर रहे हैं, यह मालूम हो तो आपकी रक्षा के साथ उस बुराई को उन्हीं पर फेंक दूँगा ।" वामशक्ति पण्डित बोला ।

"इसको बुराई करनेवालों पर ही फेर देना अगला कदम होगा । यह विवरण भी दूँगी । फिलहाल मुझे और मेरी बच्चियों के लिए रक्षायन्त्र तैयार कर दीजिये ।"

"अच्छा, दण्डनायिकाजी, एक यन्त्र है, उसका नाम 'सर्वतोभद्र' है । उसे तैयार कर दूँगा । परन्तु आपको इतवार तक प्रतीक्षा करनी होगी । यह धारण करने पर सबसे पहले भय-निवारण होगा फिर इष्टार्थ पूर्ण होंगे, फलस्वरूप आप सदा खुश रहेंगी, भाग्य खुलेगा, प्रतिष्ठा बढ़ेगी ।"

"हाँ, यही चाहिए है। परन्तु यह बात पूर्णतः गुप्त रहे। कुल चार यन्त्र चाहिए।"

"जो आज्ञा।"

"सभी यन्त्रों के पत्ते सोने के ही बनादये, उसके लिए आप ये बीस मुहरें लें। काफी हैं न, इन्हें ताम्बूल में रखकर देना चाहिए था, मैं यों ही चली आयी, अन्यथा न समझें।"

"कोई हर्ज नहीं, इसमें अन्यथा समझने की बात ही क्या है? इतवार के दिन यन्त्र लेकर मैं खुद ही···"

"न, मैं ही आऊँगी, तभी पुरस्कार भी दूँगी।" कहकर दण्डनायिका वहाँ से निकली।

वामशक्ति पण्डित ने गुन लिया कि अब किस्मत खुलेगी। अब होशियारी से इस बात का ख्याल रखना होगा कि कोई उल्टी बात न हो।

उसके लौटने के पहले ही दण्डनायक घर जा चुके थे। अहाते में कदम रखते ही उसे खबर मिल गयी। आम तौर पर वह बाहर सवारी लेकर ही जाया करती थी, पर आज इस उद्देश्य से कि किसी को पता न लगे, वह आँख बचाकर वामशक्ति पण्डित के यहाँ पैदल ही गयी। उसने आँचल से सिर ढँक लिया था फिर उन्होंने साड़ी पहचान ली थी। उसे इस बात की जानकारी नहीं थी। अन्दर आयी ही थी कि उन्होंने पूछ लिया, "आप उस मन्त्रवादी वामशक्ति पण्डित के घर पधारी थीं, क्या बात है?"

वह सीधा सवाल सुनते ही सन्न रह गयी, "आप आँख मूँदकर बैठे रहें, मैं तो नहीं बैठी रह सकती। कन्याओं को जन्म देनेवाली माँ को क्या-क्या चिन्ताएँ होती हैं यह समझते होते तो आप ऐसे कैसे बैठे रहते।"

"बात कहीं से भी शुरू करो, यहीं लाकर जोड़ती हो। अभी कोई नयी अड़चन पैदा हो गयी है क्या? तुम्हारे भाई ने भी कहा है, प्रतीक्षा करनी होगी। तुम्हें यदि महाराज की सास ही बनना हो तो प्रतीक्षा करनी ही होगी। अन्यत्र अच्छा वर खोजने को कहो तो वह देखूँगा। लेकिन तुम माँ-बेटी तो एक ही जिद्द पकड़े बैठी हो, मैं क्या करूँ?"

"और कुछ न कीजिए, युद्ध-क्षेत्र से राजकुमार को वापस बुलवा लीजिए। आपकी उम्र ही ऐसी है, आप सठिया गये हैं। षड्यन्त्र, जालसाजी, आप समझते ही नहीं। लेकिन इस जालसाजी की जड़ का पता मैंने लगा लिया है। इसीलिए कहती हूँ कि राजकुमार को युद्ध-क्षेत्र से वापस बुलवा लीजिये। बुलवाएँगे?"

"यह कैसे सम्भव है, जब स्वयं युवराज ही साथ ले गये हैं?"

"तो आपकी भी यही अभिलाषा है कि वह वीर-स्वर्ग पायें, हमारे विद्वेषियों ने अपने रास्ते का काँटा हटाने के लिए यह जालसाजी की है, बेचारे युवराज को

या राजकुमार को यह सब नहीं सूझा होगा। आपसे मैंने कभी लुका-छिपी नहीं की लेकिन यह बात मुझे अन्दर-ही-अन्दर सालती है सो आज जो कुछ मेरे मन में है उसे स्पष्ट कहे देती हूँ, फिर आप चाहे जैसा करें। कह दूँ?" बड़ी गरम होकर उसने कहा।

"तो क्या तुम कहती हो कि युवराज अपने बेटे की मृत्यु चाहते है?"

"शान्तं पापम्, शान्तं पापम्। कहीं ऐसा हो सकता है। उनके मन में ऐसी इच्छा की कल्पना करनेवाले की जीभ में कीड़े पड़ें। परन्तु राजकुमार की मृत्यु चाहनेवाले लोग भी इस दुनिया में हैं। ऐसे ही लोगों ने उकसाकर युवराज और राजकुमार को युद्ध-क्षेत्र में भेज दिया है। यह सब उन्हीं के वशीकरण का परिणाम है। युवराज को इस बात का पता नहीं कि वे जो कर रहे हैं वह उनके ही वंश के लिए घातक है, वशीकरण के प्रभाव से उन्हें यह मालूम नहीं पड़ सका है। उस राजवंश का ही नमक खाकर भी आप चुप बैठे रहे तो क्या होगा?"

"तुम्हारी बात ही मेरी समझ में नहीं आती। तुम्हारा दिमाग बहुत बड़ा है। दुनिया में जो बात है ही नहीं वह तुम्हारे दिमाग में उपजी है, ऐसा लगता है। राजकुमार की मृत्यु से किसे क्या लाभ होगा?"

"क्या लाभ? सब कुछ लाभ होगा, उसे, वह है न, परम-घातुकी हेग्गड़ती माचि, उसके लिए।"

"क्या कहा?"

"मैं साफ कहती हूँ, सुनिये। उसे स्पष्ट मालूम हो गया है कि वह चाहे कुछ भी करे, राजकुमार बल्लाल उसकी लड़की से शादी करना स्वीकार नहीं करेंगे, वे हमारी पद्मला से ही शादी करेंगे, कसम खाकर उन्होंने वचन दिया है। वह हेग्गड़ती खुद राजकुमार की सास नहीं बन सकती क्योंकि बल्लाल इसमें बाधक है। अगर वह नहीं होगा तो उसके लिए आगे का काम सुगम होगा।" बात समाप्त करके वह उसकी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा में रही।

मरियाने ने कोई जवाब नहीं दिया। चामव्वे ने समझा कि बात उनके दिमाग में कुछ बैठी है। दाँव लगा समझकर उसी तर्ज पर उसने बात आगे बढ़ायी। "इसीलिए अन्तिम घड़ी में उसने अकेले अपने पति को भेजा था, हम पर दोष आरोपित करने को। किस्मत की बात है कि हम पहले ही से होशियार हो गये, नहीं तो युवराज और युवरानी सोचते कि हमने ही जानबूझकर आमन्त्रण नहीं भेजा।"

"एक बात तो तय है कि आमन्त्रण-पत्र नहीं गया।"

"वह क्यों नहीं गया?" चामव्वे ने सवाल किया।

"क्यों नहीं गया, यह अब भी समस्या है। परन्तु इतना निश्चित है कि आमन्त्रण-पत्र गया नहीं। पत्र न पहुँचने पर भी वह ठीक समय पर कैसे आया,

यह भी समस्या है।"

"कुतन्त्र से अपरिचित आपके लिए सभी बातें समस्याएँ ही हैं। आमन्त्रण-पत्र पहुँचने पर वह आया और झूठ बोल गया कि नहीं पहुँचा।"

"मैंने सब छान-बीन की, कई तरह से परीक्षा कर डाली, इसमें यह निश्चित है कि आमन्त्रण-पत्र नहीं गया।"

"हमपर अविश्वास करके युवराज ने अलग पत्र भेजा होगा।"

"छि, यह सोचना बड़ा अन्याय है। युवराज पर दोषारोपण करनेवाली तुम्हारी बुद्धि महाकलुषित हो गयी है, यही कहना पड़ेगा। तुम्हें ऐसा जिन्दगी-भर नहीं सोचना चाहिए।"

"तो वह ठीक मुहूर्त के समय कैसे पहुँच गया? अपनी तरफ़ से और गाँववालों की तरफ़ से भेंट-चांट उपनयन के लिए ही लाया था, इसलिए उसका आना एक आकस्मिक संयोग तो हो नहीं सकता न।"

"चाहे कुछ भी हो, यह प्रसंग ही कुछ विचित्र बन गया है मेरे लिए।"

"विचित्र बन गया हो या सचित्र, उससे क्या होना-जाना है? अब तो आगे का विचार करें। बड़े राजकुमार को मरने के लिए युद्ध-क्षेत्र भेजकर युवरानी, बिट्टिदेव वगैरह को अपने यहाँ बुला लेने के क्या माने होते हैं? बड़े राजकुमार को मृत्यु-मुख में ढकेल, मौक़ा मिलते ही अपनी लड़की के मोहजाल में छोटे राजकुमार को फँसाकर अपने वश में कर लेने के लिए ही यह षड्यन्त्र नहीं है? उस घातुकी हेग्गड़ती की यह जालसाजी हम नहीं समझते, क्या हम इतने मूर्ख हैं?"

"रथोत्सव के मौक़े पर युवराज का भी जाने का विचार था, परन्तु युद्ध के कारण वे न जा सके। इसलिए युवरानी वगैरह को ही भेजने की व्यवस्था की गयी लगता है।"

"यह सब ढकोसला है, मैं जानती हूँ। हमारा राजघराना हमारे ही जैसा शुद्ध जैन घराना है, उसकी तरह संकर नहीं। उस विभूतिधारी शैव से विवाह करने के बाद उसका जैन-धर्म भी वैसा ही होगा।"

"वह तो उनका व्यक्तिगत मामला है, इससे तुम्हारा क्या नुकसान हुआ?"

"मेरा कोई नुकसान नहीं, परन्तु बात स्पष्ट है। आप ही बताइये, राजघराना जैन है, भगवती तारा के उत्सव से उसका क्या सम्बन्ध? आप विश्वास करें या न करें, यह जालसाजी है, निश्चित। उस हेग्गड़ती ने कुछ माया-मन्त्र करके युवरानी और युवराज को अपने जाल में फँसाकर वश में कर लिया है। आप महाराज से कहकर राजकुमार को युद्ध-क्षेत्र से तुरन्त वापस बुलवा लीजिये, युवरानी को बलिपुर से लौटा लाने की व्यवस्था कराइये। आप ऐसा नहीं करेंगे तो हमारी पद्मला अपने को किसी कुएँ या पोखरे के हवाले कर देगी।"

"कुछ भी समझ में नहीं आता। तुम्हारी बात को भी इन्कार नहीं कर

का हस्तक्षेप नहीं, उनका स्वार्थ नहीं, यही आपकी राय है ?"

"स्वार्थ हो सकता है, परन्तु यह नहीं माना जा सकता कि उनमें कोई बुरी भावना होगी।"

"जब स्वार्थ हो तब बुरी भावना भी रहेगी ही।"

"तुम्हारा भी तो स्वार्थ है, तो क्या यह समझ लूँ कि तुममें भी बुरी भावना है ?"

"मैंने तो किसी की बुराई नहीं सोची।"

"उन लोगों ने ही बुराई सोची है, इसका क्या प्रमाण है ?"

"कारण दिन की तरह स्पष्ट है। मुझ-जैसी एक साधारण स्त्री को भी जो बात सूझती है वह महादण्डनायक को न सूझे तो इससे ज्यादा अचरज की क्या बात हो सकती है। आप ही कहिए कि राजकुमार युद्धक्षेत्र में जाकर करेंगे क्या। उन अकेले को साथ ले जाने की प्रेरणा युवराज को क्यों दी गयी। आप स्वयं कहा करते हैं कि छोटे राजकुमार विट्टिदेव बड़े राजकुमार से ज्यादा होशियार और समर्थ हैं, शक्तिवान् हैं फिर वे उन्हें क्यों न ले गये साथ। यहाँ चल रहा शिक्षण छोड़कर उन्हें उस गँवई गाँव बलिपुर में जाकर क्यों रहना चाहिए, यह सब और क्या है ?"

"बस, अब बन्द करो, बात न बढ़ाओ। मुझपर भी गोली न चलाओ। हाँ, तुम्हारे कहने में भी कुछ सिलसिला है, परन्तु उसीको ठीक मानकर उसे स्थिर करने की कोशिश मत करो। तुम्हारी यह बात भी दृष्टि में रखकर प्रस्तुत विषय पर विचार करूँगा, डाकरस से वस्तुस्थिति जानने को गुप्तचर भेजूँगा। तब तक तुम्हें मुँह बन्द रखकर चुप रहना होगा। समझीं ?"

"यह ठीक है। वैसे मुझे मालूम ही है कि वहाँ से क्या खबर मिलेगी। कम-से-कम तब आप मेरी बात की सचाई समझेंगे। लगता है, आजकल आप भी मुझे शंका की दृष्टि से देख रहे हैं, पहले-जैसे मेरी बात सुनते ही मानते नहीं।"

"सो तो सच है, मगर वह शक के कारण नहीं, तुम्हारी जल्दबाजी के कारण है। जल्दबाजी में मनमाने कुछ कर बैठती हो और वह कुछ-का-कुछ हो जाता है। इसलिए तुमसे कुछ सावधानी से बरतना पड़ता है। अब यह बहस बन्द करो। युद्धक्षेत्र से वस्तुस्थिति जब तक न मिले तब तक तुम्हें मुँह बन्द रखना होगा। तुम्हें अपनी सारी आलोचनाएँ रोक रखनी होंगी।"

"जो आज्ञा।" उसने पतिदेव से अपनी अक्लमन्दी की प्रशंसा की प्रतीक्षा की थी। उसकी आशा पर पानी फिर गया। इसलिए असन्तुष्ट होकर वह वहाँ से चली गयी। जाते-जाते उसने निश्चय किया कि वह वामशक्ति पण्डित तो आयेगा ही, उसे अपने वश में रखना ठीक होगा। यदि प्रयोग घातक हो तो उसकी प्रतिक्रिया शक्ति भी हमारे पास तैयार रहना आवश्यक है।

चामव्वे की बातें मरियाने के दिल में काँटे की तरह चुभने लगीं। उसमें कितनी भी राजकीय प्रज्ञा हो, कितनी भी जानकारी हो, फिर भी उसकी शंका में असम्भवता उसे महसूस नहीं हो रही थी। युद्धक्षेत्र से हर हफ्ते-पखवारे एक बार राजधानी को खबर भेजते रहने का पहले से रिवाज बन गया था। ऐसी हालत में यहाँ से गुप्तचर भेजकर खबर लेने की कोशिश करने के माने ही ग़लतफ़हमी का कारण बन सकता है। आजकल तो महाराज कोई आदेश-सन्देश नहीं देते। वे अपने को निमित्त मात्र के महाराज मानते और सबकुछ के लिए युवराज पर ही जिम्मेदारी छोड़ते हैं। उनका यह विश्वास है कि युवराज जो भी काम करते हैं, खूब सोच-समझकर करते हैं इसीलिए इसमें दस्तन्दाजी करना ठीक नहीं।

प्रधान गंगराज बड़े होशियार हैं। वे कोई काम अपने जिम्मे नहीं लेते। अपनी बहिन और उसकी बच्चियों का हित चाहने पर भी वे उसके लिए अपने पद का उपयोग नहीं करते, उदासीन ही रहते हैं। यों तो वे निष्ठावान राजभक्त हैं। जो भी हो, इस विषय में बात करने मरियाने प्रधान गंगराज के घर गया। उसे इन बातों के बारे में सोच-विचार कर निर्णय में एक सप्ताह से भी अधिक लगा।

महादण्डनायक को देखते ही प्रधान गंगराज ने कहा, "आइए, बैठिए। आप आये, अच्छा हुआ। मैं खुद ही आना चाहता था।"

"कोई जरूरी काम था?" कहते हुए मरियाने बैठे।

"हाँ, महाराज हम दोनों से मिलना चाहते हैं।"

"क्या बात है?"

"कुछ मालूम नहीं। दोनों को तुरन्त उपस्थित होने का आदेश है। आपके आने का कोई कारण होगा?"

"कोई विशेष कारण नहीं, यों ही चला आया।" उसे अपनी बात प्रकट करने का वह समय उपयुक्त नहीं जँचा।

"अच्छा, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा कैसी चल रही है। साहित्य, व्याकरण आदि पढ़ाने के लिए नियुक्त वह स्त्री ठीक पढ़ाती है न?"

"इस सम्बन्ध में मैं ज्यादा माथापच्ची नहीं करता। चाहें तो पता लगाकर बता दूँगा। आपकी बहिन ने कोई शिकायत नहीं की, इसलिए मैं समझता हूँ कि सब ठीक ही चल रहा है। महाराज से कब मिलना है?"

"अभी-अभी दो क्षण में, मैं राजदर्शनोचित पोशाक पहनकर तैयार होता हूँ।" कहकर गंगराज अन्दर गये।

मरियाने सोचने लगा कि दोनों को एक-साथ मिलने का आदेश दिया है, इससे लगता है कि काम महत्त्वपूर्ण होगा और कुछ रहस्यपूर्ण भी। जब कभी किसी विषय पर विचार करना पड़ता है तब महाराज पहले से ही सूचित करते हैं, इस बार ऐसा कुछ नहीं हुआ। दोनों घोड़ों पर सवार हो राजमहल की तरफ़ चल पड़े।

इधर चामव्वे ने चारों सर्वतोभद्र यन्त्र पेटीनुमा तमगों में बन्द कर भगवान् की मूर्ति के पास रखकर उनपर दो लाल फूल चढ़ाये, प्रणाम किया और प्रार्थना की, "मेरी आकांक्षा सफल बनाओ, वामशक्ति से मैंने जो बात की है उसे प्रकट न करने की प्रेरणा दो उसे।"

भोजन के बाद शान्तला घर लौटी। राजकुमार के जन्मदिन की ओर इस अवसर पर युवरानीजी ने शान्तला से जो वादा करा लिया था, उसकी सूचना हेग्गड़ती को सिंगिमय्या से मिल चुकी थी।

स्पर्धा की बात सुनकर माचिकव्वे ने कहा, "ऐसा कहीं होता है? तुम्हें ऐसी बातों को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। वे राजा हैं और हम प्रजा। अभी तो वे बच्चे हैं, और स्पर्धा में अपने को श्रेष्ठ समझना उनका स्वभाव होना ही है, परन्तु बड़े होने के नाते हमें ऐसी स्पर्धा को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। प्रजा को राजा पर हाथ उठाना उचित होगा क्या, सिंगि? मालिक हमेशा एक बात कहा करते हैं, भले ही हम बलवान् हों, अपने बल पर हमें आत्म-विश्वास भी हो, तो भी उसे कभी प्रभु के सामने नहीं कहना चाहिए क्योंकि प्रभु का विश्वास खोने की ओर वह पहला कदम होगा, आज ही प्रारम्भ और आज ही परिसमाप्ति। ऐसा काम कभी न करो, आगे से शान्तला-बिट्टिदेव में या उदयादित्य-शान्तला में स्पर्धा न होने दी जाये। मैं भी अम्माजी को समझा दूँगी। विद्या से विनय-शीलता बढ़नी चाहिए। उसे गर्व का कारण नहीं बनना चाहिए। खासकर स्त्री को विनीत ही रहना चाहिए, वह उसके लिए श्रेष्ठ आभूषण है, स्पर्धा से उसका महत्त्व नहीं रह जाता, समझे? तुम्हें उत्साह है, तुम्हारे उत्साह के साथ उनके उत्साह की गर्मी भी मिल जाये तो परिणाम क्या होगा, सोचो। फिर भी, तुमने बिट्टिदेव को हारने न देकर स्पर्धा समाप्त की यह अच्छा किया।"

शान्तला युवरानी को जो वचन दे आयी वह प्रकारान्तर से चामला की भावनाओं का अनुमोदन था, परन्तु बिट्टिदेव के जन्म-दिन की पूर्व-सूचना न मिलने से वह कुछ परेशान हुई थी जो और भी धूम-धाम से किया जा सकता था, सारे ग्रामीणों को न्यौता दिया जा सकता था। युवरानीजी ने बिना खबर दिये क्यों किया। यह बात उसे खटकती रही तो उसने हेग्गड़े से कहकर राज-परिवार और राजकुमार की मंगल-कामना के उद्देश्य से भी मन्दिरों, वसतियों और विहारों में पूजा-अर्चा का इन्तजाम करने और युवरानीजी से विचार-विनिमय के बाद शाम

को सार्वजनिक स्वागत-भेंट आदि कार्यक्रम की बात सोची। हेग्गड़ेजी ने स्वीकृति दे दी और तुरन्त सिंगिमय्या को सब काम कराने का आदेश दिया।

हेग्गडती अब युवरानीजी के पास पहुँची, बोली, "मैं युवरानीजी की सेवा में अपनी कृतज्ञता निवेदन करने आयी हूँ। सिंगिमय्या ने सवेरे की घटना का विवरण दिया। ऐसा होना नहीं चाहिए था। हम ठहरे आपकी प्रजा, राजघराने के लोगों के साथ हमें स्पर्धा नहीं करनी चाहिए। बाल-बुद्धि ने शान्तला से ऐसा कराया है। उसे कड़ा आदेश देकर रोकने का आपको अधिकार था, तो भी आपने क्षमा की और उससे वादा करा लेने की उदारता दिखायी। सन्निधान के इस औदार्यपूर्ण प्रेम के लिए हम ऋणी हैं, कृतज्ञ हैं। इसी तरह, अज्ञता से हो सकनेवाले हमारे अपराध को क्षमा कर हम पर अनुग्रह करती रहें।"

"हेग्गड़तीजी, इसमें आपकी ओर से क्षमा माँगने लायक कोई ग़लती नहीं हुई है। हमारी ओर से कोई औदार्य की बात भी नहीं हुई। किसी कारण से मैं युवरानी हूँ। युवरानी होने मात्र से मैं कोई सर्वाधिकारिणी नहीं हूँ, सबसे पहले मैं माँ हूँ। माँ क्या चाहती है, उसका सारा जीवन परिवार-जनों की हित-रक्षा के लिए धरोहर बना रहे यही वह चाहती है। मैंने शान्तला से वचन लिया, इसमें मेरा उद्देश्य केवल यही था कि परिवार के लोगों में परस्पर प्रेम-भावना हो। हेग्गड़े के घराने को हम और हमारे प्रभुजी अपने परिवार से अलग नहीं मानते, इसलिए यह बात यहीं समाप्त कर दें। यही कहने के लिए इतनी उतावली होकर आयी हो? अम्माजी ने कुछ कहकर आपको आतंकित तो नहीं किया?"

"न, न, ऐसा कुछ नहीं। वास्तव में अम्माजी बहुत खुश है, कहती है, युवरानी जी, मुझ-जैसी छोटी बच्ची से इतना बड़ा वादा करा लें और वह वचन दे, इससे बड़ा भाग्य और क्या हो सकता है। परन्तु उसने एक और बात की, उसी बात से दर्शन लेने मुझे जल्दी आना पड़ा।"

"ऐसी क्या बात है?"

"यह वादा आपने राजकुमार के जन्म-दिन के शुभ अवसर पर भेंट-रूप में करने को कहा। इसी से विदित हुआ कि आज राजकुमार का जन्मोत्सव है। यदि पहले जानकारी होती तो वर्धन्ती का उत्सव धूमधाम से मनाने की व्यवस्था की जा सकती थी। समस्त ग्रामीणों को इस आनन्दोत्सव में भाग लेने का मौका मिल सकता था। अभी भी वक्त है। राजकुमार तथा राज-परिवार के कुशल-क्षेम के लिए आज सन्ध्या समय मन्दिरों, बसतियों, विहारों आदि में पूजा-अर्चा की व्यवस्था तो हेग्गड़ेजी करेंगे ही, प्रीति-भोज की व्यवस्था भी कर ली जाये। सन्निधान की आज्ञा लेने ही चली आयी हूँ।"

"हेग्गड़तीजी, आपके इस प्रेम के हम कृतज्ञ हैं। मन्दिरों, विहारों और

वसतियों, में पूजा-अर्चा की व्यवस्था करना तो ठीक है, राज-परिवार के हित-चिन्तन के लिए और प्रभु विजयी होकर कुशलपूर्वक राजधानी लौटें, इसके लिए विशेष पूजा आदि की व्यवस्था भी ठीक है, उसमें हम सभी सम्मिलित होंगे। अब रही शाम को प्रीति-भोजन की बात। यह नहीं होना चाहिए। जब प्रभु प्राणों का मोह छोड़कर रण-क्षेत्र में देश-रक्षा के लिए युद्ध कर रहे हों तब यहाँ हम धूमधाम से आनन्द मनायें, यह उचित नहीं लगता, हेग्गड़तीजी। वर्धन्ती का यह उत्सव घर तक ही सीमित होकर चले, इतना ही पर्याप्त है। आप दोनों, आपकी अम्माजी, आपके भाई और उसकी पत्नी और गुरुओं के भोजन की व्यवस्था कल यहाँ होगी ही। ठीक है न?"

"जैसी आज्ञा, आपका कहना भी ठीक है। ऐसे मौक़े पर आडम्बर उचित नहीं। आज्ञा हो तो चलूँ। शाम की पूजा-अर्चा की व्यवस्था के लिए मालिक से कहूँगी।"

युवरानी ने नौकरानी बोम्मले को आदेश दिया, "हल्दी, रोली, आदि मंगल-द्रव्य लाओ।"

वह परात में मंगल-द्रव्यों के साथ फल-पान-सुपारी, रोली वग़ैरह ले आयी। परात बेम्मला के हाथ से लेकर हेग्गड़ती को युवरानी ने स्वयं दी और कहा, "आप जैसी निर्मल-हृदय सुमंगली का आशीर्वाद राजकुमार के लिए रक्षा-कवच होगा। इसे स्वीकार करें।"

बहुत कुछ कहने का मन होने पर भी उस समय बोलना उचित न समझकर हेग्गड़ती ने मंगल-द्रव्य स्वीकार कर लिये।

विशेष पूजा-अर्चा आदि कार्यक्रम यथाविधि सम्पन्न हुए।

राजकुमार बिट्टिदेव का जन्मोत्सव धूमधाम के बिना ही सम्पन्न हुआ। परन्तु युवरानी ने पुजारियों को आदेश दिया कि वे पूजा के समय प्रभु की विजय और राजघराने के श्रेय के साथ ही हेग्गड़े परिवार के श्रेय के लिए भी भगवान् से प्रार्थना करें, साथ ही, तीर्थ-प्रसाद राजकुमार को देने के बाद शान्तला को भी दें। पूजा के समय रेविमय्या की खुशी की सीमा नहीं थी। उसके हृदय के कोने-कोने में शान्तला-बिट्टिदेव की आकृतियाँ साकार हो उठी थीं, प्रत्यक्ष दिख रही थीं।

दूसरे दिन भोजन के समय मारसिंगय्या, माचिकब्बे, शान्तला, बिट्टिदेव, उदयादित्य और युवरानी तथा मायण, नागचन्द्र, बोकिमय्या और गंगाचारी

आमने-सामने दो कतारों में इसी क्रम से बैठे थे। सिगिमय्या की पत्नी सिरिया देवी उस दिन के किसी समारम्भ में भाग न ले सकी। भोजन समाप्ति पर पहुँचने-वाला था, तब मौन तोड़कर युवरानी एचलदेवी ने अध्यापकों को सम्बोधित कर कहा, "आप लोग महामेधावी पुरुष है। अब तक इन बच्चों को ज्ञानवान् बनाने में आप लोगों ने बहुत परिश्रम किया है। उन्होंने अब तक जो सीखा है वह काल-प्रमाण की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है इसके लिए राज-परिवार आपका कृतज्ञ है। ज्ञानार्जन से मानवता की भावना का विकास हो और अर्जित ज्ञान का कार्यान्वयन सही दिशा मे हो और उसका योग्य विनियोग भी हो। उस स्तर तक ये बच्चे अभी नहीं पहुँच सके है तो भी विशेष चिन्ता नहीं। परन्तु मेरी विनती है कि आप उन्हें ऐसी शिक्षा दें कि वे विवेकी बनें, मानव की हित-साधना में योग दे सकें और सांस्कृतिक चेतना से उनका मानसिक विकास हो। इस विनती का अर्थ यह नहीं कि अभी आप ऐसी शिक्षा नहीं दे रहे हैं। आपके प्रयत्नों से हमारी आकांक्षाएँ कार्यान्वित होकर फल-प्रद होंगी, यह हमारा विश्वास है। फिर भी मातृ-सहज अभिलाषा के कारण हमारा कथन अस्वाभाविक नहीं, अतएव यह निवेदन किया है। इसमें कोई ग़लती नहीं है न ?"

इस आत्मीयतापूर्ण अनुरोध की स्वीकृति मे कवि नागचन्द्र सविस्तार बोले, "विद्या का लक्ष्य ही मनुष्य को सुसंस्कृत बनाना है, इसलिए सन्निधान की आकांक्षा बहुत ही उचित है। तैत्तिरीय उपनिषद् में एक उक्ति है, अथ यदि ते कर्म-विचिकित्सा वा वृत्त-विचिकित्सा वा स्यात् ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनो, युक्ता, आयुक्ता, अलूक्षा, धर्मकामाः यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः। अर्थात् कर्म क्या है क्या नहीं यह निश्चय न हो पा रहा हो, या चरित्र क्या है क्या नहीं यह निश्चय नहीं हो पा रहा हो तो उस व्यवहार के आधार पर निश्चय करना चाहिए जो ऐसे मौकों पर ब्राह्मणों, विचारशीलों, प्रमाणित योग्यतावालों, उच्च-पदासीनों, दयालुओं या धर्मात्माओं का होता है। जो करना चाहते हो उसमें अथवा बरतना चाहते हो उसमें अनिश्चय की स्थिति में राजघराने के सदस्यों को प्रजा का मार्गदर्शक बनने के लिए उपनिषद् की इस उक्ति के अनुसार चलना होगा। ऐसा चलनेवाला ही ब्राह्मण है। जन्ममात्र से ब्राह्मणत्व के संकुचित अर्थ में यहाँ ब्राह्मण शब्द का प्रयोग नहीं हुआ, ब्राह्मण वह आदर्श-जीवी है जिसने ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त किया है। इसीलिए आदर्शजीवी बनना ही चाहिए। यही हम शिक्षकों का आशय है। सन्निधान हमसे जो आशा रखती है वह हमारे लिए मान्य है।"

कवि नागचन्द्र के तर्कपूर्ण कथन का समर्थन करके भी युवरानीजी ने उसके एक समकक्ष पहलू की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा, "आपका कथन ठीक है। राजाओं का नेतृत्व बहुत उच्च स्तर का होना चाहिए। लेकिन व्यवहार और अनुसरण के स्तर की दृष्टि से समाज में जो विविधता है उसमें और मार्ग-दर्शन में

समन्वय होना चाहिए। राज्य साधारण ग्राम-जैसे छोटे-छोटे घटकों की एक सम्मिलित इकाई है, अतः ग्राम के नायक से लेकर राष्ट्रनायक तक, सभी स्तरों में आदर्श के अनुरूप व्यवहार अत्यन्त वांछनीय है।"

इस सिद्धान्त की पुष्टि में उन्होंने एक उदाहरण भी आवश्यक समझा। "पोय्सल साम्राज्य शुद्ध कन्नड़ राज्य है। अभी वह अपना अस्तित्व ही मजबूत बना रहा है। उसके अस्तित्व की रक्षा और प्रगति एक सुव्यवस्थित सामाजिक जीवन में ही हो सकती है। उदाहरणस्वरूप यह बलिपुर ही लीजिए। यहाँ के नेता हेग्गड़े हैं। आपके कहे अनुसार आदर्श नीति का अनुसरण करनेवाले वे भी हैं, यह बात प्रभुजी ने मुझसे अनेक बार की है और मैंने स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव किया है! शायद आपको मालूम नहीं कि यह बलिपुर प्रदेश और उसके हेग्गड़े का पद चालुक्य चक्रवर्ती के आश्रित कम्ब राजा के अधीन था और यह प्रदेश बनवासी प्रदेश के अन्तर्गत था। वर्तमान चक्रवर्ती विक्रमादित्य के भाई जयसिंह स्वयं इस प्रदेश का निर्वहण कर रहे थे। किसी पूर्वकृत पुण्य के फलस्वरूप प्रभु पर चक्रवर्ती का सोदर ने भी ज्यादा स्नेह और विश्वास जम गया। जयसिंह अपने बड़े भाई विक्रमादित्य चक्रवर्ती के विरुद्ध षड्यन्त्र कर गद्दार बना। प्रभु ने चक्रवर्ती का सहायक बनकर जयसिंह की गद्दारी का दमन करके सोदर-कण्टक का निवारण किया। इसलिए चालुक्य चक्रवर्ती ने बनवासी प्रदेश के बलिपुर प्रदेश को अलग कर उसे पोय्सल राज-व्यवस्था के अन्दर विलीन कर दिया। इसके पश्चात् हमारे हेग्गड़े इस प्रदेश के हेग्गडे के पद पर नियुक्त हुए। परन्तु चालुक्य चक्रवर्ती ने अपनी कृतज्ञता दर्शाने के लिए स्वतन्त्र राज्य करने की स्वीकृति दी और हमारे कामकाज में वे हस्तक्षेप नहीं करते। हम भी अपनी तरफ़ से, जो गौरव उनको समर्पित करना चाहिए, समर्पित करते आये हैं। पोय्सलों और चालुक्यों में आपस में सौहार्द और विश्वास चला आया है। यह जानकारी भी आप गुरुजनों को होनी चाहिए कि यह प्रदेश फिलहाल पोय्सल राज्य की पश्चिमोत्तर सीमा है। नाम मात्र के लिए यह बनवासी प्रान्त की राजधानी है। वास्तव में बनवासी के माण्डलिक का बलिपुर पर कोई अधिकार नहीं। अब बनवासी महाप्रधान दण्डनायक पद्मनाभय्या की देख-रेख में है, शायद यह आप लोगों को मालूम है। फिर भी, वे यहाँ कभी नहीं आये, तब भी नहीं जब साम्राज्ञीजी यहाँ पधारी थीं; इसका कारण यही है कि बलिपुर अब उनके हाथ में नहीं, पोय्सलों के अधिकार में है।"

"सन्निधान को इन सब बातों की भी जानकारी हो सकती है, हमें पता न था।" हेग्गडे मारसिंगय्या ने कहा।

"आपके प्रभु मुझे सब बातें बताते हैं। मुझपर उनका जो विश्वास है उसके प्रति मैं उन्हें कुछ भी नहीं अर्पित कर सकती। ऐसे प्रभु से मेरा पाणिग्रहण हुआ है, यही मेरे लिए अहोभाग्य है।"

हेग्गड़ती माचिकब्बे कुछ कहना चाह रही थी कि रावत मायण तुरन्त बोल पड़ा, "यदि सभी स्त्रियाँ ऐसी हों तो पुरुष भी इसी तरह विश्वास रख सकेंगे।" उसके मुख पर मानसिक दुःख उभर आया था।

मारसिंगय्या ने पूछा, "क्यों मायण, तुमने स्त्री पर विश्वास रखकर धोखा खाया है?"

"वह अपवित्र विषय इस पवित्र स्थान में नहीं उठाना चाहता, इतना जरूर कहूँगा कि जो हुआ सो अच्छा ही हुआ। दूसरे किसी तरह के मोह में न पड़कर राष्ट्र के लिए सम्पूर्ण जीवन को धरोहर बनने में उससे सहायता ही मिली।"

"बहुत दुःखी मन से बात निकल रही है। इस सृष्टि में अपवाद की भी गुंजाइश है। हमने तो केवल ऐसी स्त्री की बात की है जो सर्वस्व त्याग करने को तैयार हो और करुणा का अवतार।" युवरानी एचलदेवी ने उसे सान्त्वना दी।

"लेकिन वह तो मानवी ही नहीं मानी जा सकती, उसे स्त्री मानने का तो सवाल ही नहीं उठता। वह तो एक जानवर है।" मायण का दर्द अब क्रोध का रूप धारण कर रहा था।

"शायद ऐसा ही हो यद्यपि सन्निधान ने आदर्श स्त्री की बात की है, है न, मायण?" मारसिंगय्या ने उसे शान्त किया।

"मुझे क्षमा करें। भूलने का जितना भी प्रयत्न करूँ, वह याद आ ही जाती है। वह पीछे पड़ी साढ़ेसाती लगती है।"

"उस साढ़ेसाती का पूरा किस्सा समग्र रूप से एक बार कह दीजिए, रावतजी, मैं उसी के आधार पर एक सुन्दर काव्य लिखूँगा। उसे पढ़ने पर इस साढ़ेसाती की विडम्बना आँखों के सामने आयेगी और पीछे लगी साढ़ेसाती की भावना दूर हो जायेगी। फुरसत से ही सही, कहिए जरूर, आपके दिल का बोझा भी उतर जायेगा।" कवि बोकिमय्या ने एक प्रस्ताव रखा।

"सही सलाह है।" कवि नागचन्द्र ने समर्थन किया।

"हाँ," कहकर रावत मायण ने खाने की ओर ध्यान लगाया।

बिट्टिदेव और शान्तला रावत मायण की ओर कुतूहल-भरी नज़र से देखते रहे। उस साढ़ेसाती के विषय में जानने की उनकी भी उत्सुकता थी, परन्तु इसके लिए मौका उपयुक्त नहीं था।

सब लोग भोजनानन्तर पान खाने बैठे, तब हेग्गड़ती ने एक रेशमी वस्त्र और हीरा-जड़ी अँगूठी शान्तला के हाथ से जन्मदिन के उपलक्ष्य में बिट्टिदेव को भेंट करायी। एचलदेवी ने रेशमी वस्त्र पर चमकती अँगूठी और शान्तला की सौम्य मुखाकृति बारी-बारी से देखी, बोली कुछ नहीं।

बिट्टिदेव बोला, "मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता, जो पुरस्कार नहीं ले सकते

उन्हें पुरस्कार देने का अधिकार नहीं।"

"मतलब ?" शान्तला ने पूछा।

"उस दिन माँ ने पुरस्कार के रूप में जो सोने की माला दी उसे तुमने स्वीकार किया था ?"

"उसका कारण था।"

"इसका भी कारण है।"

"इसका मतलब ?"

"जिस दिन तुम माँ का वह हार स्वीकार करोगी उस दिन मैं यह अँगूठी स्वीकार करूँगा। ठीक है न, माँ ?"

"ठीक कहा, अप्पाजी।"

उधर गले में माला, इधर उँगली में अँगूठी; भगवन्, कृपा करो, वह दिन जल्दी आये, इस प्रार्थना के साथ रेविमय्या भावसमाधि में लीन था। युवरानीजी के आदेश से माला लायी गयी तो गंगाचारी ने कहा, "अम्माजी, मैं तुम्हारा गुरु अनुमति देता हूँ, माला स्वीकार करो।"

शान्तला का कण्ठ और छाती माला से सुशोभित हुई।

बिट्टिदेव की उँगली हीरे की अँगूठी से सजी।

वांछित आभूषण प्राप्त हो जाये तो स्त्रियाँ सहज ही बहुत खुश होती हैं। फिर अचानक हीरे-जड़े चौकोर बड़े पदक में जड़ी सोने की माला वक्षःस्थल को सुशोभित करे तो किसकी छाती आनन्द से फूलेगी नहीं? इस पदक-पेटी के अन्दर सर्वतोभद्र यन्त्र था, यह उसकी तीनों लड़कियों को मालूम होता तो वे क्या करतीं सो कह नहीं सकते। माँ इस निष्कर्ष पर पहुँची कि उसकी मासूम बच्चियाँ ऐसे पेचीदा मामलों में नहीं पड़ें क्योंकि न तो वे ये बातें गुप्त रख सकेंगी और न वे अपने हित-दिन के बारे में स्वयं सोच-समझ ही सकती हैं। अपने इस निष्कर्ष की सूचना उसने मरियाने को दी तो उन्होंने भी उसे सही मान लिया।

वामशक्ति पण्डित का मुँह बन्द करने के लिए उसके पुरस्कार का प्रमाण बढ़ाया गया था, यद्यपि उसने सोच रखा था कि किसी-न-किसी तरह दण्डनायिका के इस रहस्य का पता लगे तो वह मेरे वश में होकर जैसा नचाऊँ वैसा नाचने लगेगी; चाहे जितना हो, उस रहस्य का पता लगाकर ही रहूँगा।

पद्मला, चामला और बोप्पि तीनों आइने में अपने-अपने कण्ठहार और पदक

की सुन्दरता देख बड़ी खुश थी। चामव्वे अपना पदक छुपे-छुपे आँखों से लगाती और उसे छाती में दबाकर खुशी मान लेती। यह सब तो ठीक है। परन्तु उसे इस बात की चिन्ता थी कि उसके पतिदेव ने एक अक्षर भी इनकी प्रशंसा में नहीं कहा। बोप्पि ने हार सामने धरकर पूछा, "अप्पाजी, यह सुन्दर है न ?" तो वे केवल 'हाँ' कहकर अपने कमरे की ओर चल दिये।

चामव्वे हार और पदक प्रदर्शित करने पति के कमरे में जा रही थी कि अन्दर के प्रकोष्ठ में बैठी खिन्न बोप्पि को देखकर उसकी ठुड्डी पकड़कर प्यार करती हुई बोली, "क्या हुआ बेटी ?"

बच्ची ने गले से हार निकालकर कहा, "माँ, यह मुझे नहीं चाहिए, लगता है यह पिता को पसन्द नहीं।"

"ऐसा कहा है उन्होंने ?"

"मुझसे कहा तो कुछ नहीं, आप ही पूछ लें। वे कहें कि अच्छा है तभी पहनूँगी मैं इसे।"

"उन्हें क्या मालूम ? मैं कहती हूँ वह तुम्हारे गले में सुन्दर लगता है।"

"पिताजी भी यही कहें, तभी मैं पहनूँगी।" कहकर वह कण्ठहार फेंकने को तैयार हो गयी।

चामव्वे ने उसे उठाया, "बेटी, इसे ऐसे फेंकना नहीं चाहिए। इसे जमीन पर फेंकने से भगवान् गुस्सा करेंगे। इसे पहनो। अभी तुम्हारे पिताजी को बुलाकर उनसे कहलाऊँगी कि यह सुन्दर है।"

बोप्पि ने कहा, "हाँ," तब चामव्वे ने हार फिर पहनाकर उसे छाती से लगा लिया और जल्दी-जल्दी पति के कमरे की ओर कदम बढ़ाये।

इधर वे राजदर्शन के समय का लिबास निकालकर केवल धोती-अँगरखा पहने पलग पर पैर पसारे चिन्तामग्न बैठे थे। वह ठिठक गयी, सोचा कि राजमहल में किसी गहन विषय पर चर्चा हुई होगी। इसलिए बात के लिए समय उपयुक्त नहीं समझ वह वैसी ही प्रांगण में आ गयी।

बोप्पि माता-पिता के आगमन की प्रतीक्षा में वहीं झूले पर बैठी थी, उससे बोली, "बेटी, तुम्हारे पिताजी अभी सोये हुए हैं, जगने पर उनसे कहलाऊँगी, अब जाकर खेलो।"

इतने में सन्धिविग्रहिक दण्डनायक नागदेव के घर से पद्मला और चामला लौटीं। उन दोनों ने एक साथ कहा, "माँ, सन्धिविग्रहिक ने कण्ठहारों को देखकर बड़ी प्रशंसा की और पूछा, ये कहाँ बनवाये, किसने बनाये। हमने कहा, हमें मालूम नहीं, चाहें तो माँ से दर्याफ्त कर बतायेंगी।"

"देखो, बेटी बोप्पि, सब कहते हैं यह बहुत सुन्दर है। तुम्हारी दीदियों ने जो कहा, वह सुन लिया न, अब मान जायेगी ?"

"पिताजी कहें, तभी मानूँगी," बोप्पि ने मुँह फुलाकर वही बात दुहरायी।
"अच्छा, उनसे ही कहलवाऊँगी। उन्हें जागने दो।"

इतने में नौकर ने आकर नाट्याचार्य के आने की सूचना दी तो तीनों अभ्यास करने चली गयी।

वह फिर पतिदेव के कमरे में गयी, पलंग पर बैठकर धीरे से उनके माथे पर हाथ फेरा और पूछा, "स्वस्थ तो हैं न, आपको यों लेटे देख घबड़ा गयी हूँ।" वे कुछ बोले नहीं, उसकी तरफ़ देखा तक नहीं तो उसने फिर पूछा, "बोल क्यों नहीं रहे हैं, राजमहल में मन को दुखाने-जैसी कोई बात हुई है क्या?"

"तुम्हारा राजमहल की बातों से क्या सरोकार, इन बातों के बारे में आगे से कभी मत पूछना। मैं बताऊँगा भी नहीं।"

"छोड़ दीजिये। अब तक बताया करते थे, इसलिए पूछा, आगे से नहीं पूछूँगी। आप मुझपर पहले की तरह विश्वास नहीं रखते, यह मेरा दुर्भाग्य है।" उसकी आँखें भर आयी, वह रुक-रुककर रोने लगी।

"ऐसी क्या बात हुई जो तुम रोओ।" पतिदेव की सहानुभूति के बदले इस असन्तोष से उसके दिल में दुःख उमड़ पड़ा। मानो उन्होंने उसे लात मारकर दूर ढकेल दिया हो।

"विधि वाम हुआ तो भला भी बुरा होय, हमारा भाग्य ही फूटा है। मैंने कौन-सी गलती की है सो मेरी ही समझ में नहीं आ रही है। जो कुछ भी मैंने किया सो बिना छिपाये ज्यों-का-त्यों कारण के साथ समझाकर बताया। इतना ज़रूर है, वामशक्ति पण्डित से मिलने के पहले एक बार आपसे पूछ लेना चाहिए था। लेकिन मेरा वास्तविक उद्देश्य बच्चों की भलाई ही है, साथ ही, आप भी महाराज के ससुर बनने की इच्छा रखते हैं, इसलिए मेरे व्यवहार और कार्य को आप मान लेंगे, यही विचार कर आपकी स्वीकृति के पहले चली गयी। अगर मुझे अनुमान होता कि आप स्वीकार नहीं करेंगे तो मैं नहीं जाती। इसलिए इसके पश्चात् मैंने वैसा ही किया जैसा आपने कहा। फिर भी आप असन्तुष्ट क्यों हैं? पिछली बार आपको और मेरे भाई को जब महाराज ने बुलाया था तब से आपका ढंग ही कुछ बदल गया है। अगर कोई गलती हुई हो तो स्पष्ट कह दें। अपने को सुधार लूँगी। यों मौन और गुमसुम बैठे रहें तो मुझसे सहा न जायेगा। मेरे लिए कुछ भी हो जाये, परन्तु इन मासूम बच्चियों ने क्या किया है? बेचारी बच्ची कण्ठहार दिखाकर आपसे प्रशंसा पाने की आशा से पास आयी तो नाराजगी दिखाकर झिड़क दिया, इससे कौन-सा महान् कार्य किया। जब तक आपसे प्रशंसा न सुनेगी तब तक उसे न पहनने के इरादे से उसने उसे निकाल दिया था। उसे प्यार से फुसलाती-फुसलाती मैं थक गयी। उस बच्ची को कम-से-कम 'अच्छा' कहकर उसे सन्तुष्ट तो कर दें।"

और हाथ-मुँह धोकर बाहर भी चले गये।"

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि आज उनका रंग-ढंग विचित्र है।"

"मालिक को क्या मैं आज ही देख रही हूँ, माँ, आज का उनका व्यवहार ऐसा ही लगा।" देकब्बे ने उत्तर दिया।

"क्या लगा?" देकब्बे ने जो गुजरा, सो कह सुनाया।

"तुम्हारा सोचना ठीक है। जाकर देख आ कि वे फिर अपने कमरे में गये कि नहीं?"

"शायद वे वहाँ गये होंगे जहाँ बच्चियाँ हैं, माँ।"

"आमतौर पर वे वहाँ नहीं जाया करते। आज की रीति देखने पर, सम्भव है कि वहाँ गये हों। उस तरफ जाकर देख तो आ सही।"

"जो आज्ञा, माँ।" देकब्बे नाट्याभ्यास के उस विशाल प्रकोष्ठ की ओर धीरे-धीरे चली।

बड़े प्रकोष्ठ में उस कमरे का दरवाजा खुलता था। वह उस कमरे के पास गयी ही थी कि नाट्याचार्य बाहर निकले। अचानक नाट्याचार्य को देखकर देकब्बे ने पूछा, "यह क्या आचार्य, आज अभ्यास इतनी जल्दी समाप्त हो गया।"

"ऐसा कुछ नहीं, बच्चों में सीखने का उत्साह जिस दिन ज्यादा दिखता है उस दिन देर तक अभ्यास चलता है। उत्साह कम हो तो अभ्यास सीमित रह जाता है। सीखनेवालों की इच्छा के अनुसार हमें चलना पड़ता है। आज अचानक दण्ड-नायकजी आ गये तो बच्चियों को कुछ संकोच हुआ जिससे मैंने ही पाठ समाप्त कर दिया। अच्छा, चलूँ।"

देकब्बे ने दरवाजे की आड़ से अन्दर झाँका। मरियाने एक कालीन पर दीवार से पीठ लगाकर बैठे थे। उनकी गोद में बोप्पि बैठी थी। बाकी दोनों पिता के पास बैठी थीं।

"आज तुम्हारी माँ ने तुम सबको पुरस्कार दिया है, है न?"

"तभी तो मैंने दिखाया था।" बोप्पि ने कहा।

"हाँ, मैं भूल ही गया था।" कहते हुए उसे अपनी तरफ मुँह करके बैठाया और उसके वक्ष पर लटक रहा पदक हाथ में लेकर कहा, "बहुत अच्छा है, बेटी। ऐसा ही एक हार मुझे भी बनवा देने को अपनी अम्मा से कहोगी?" उसकी ठुड्डी पकड़कर हिलाते हुए प्रेम से थपथपाया उन्होंने। बोप्पि ने पूछा, "ऐसा हार कहीं पुरुष भी पहनते हैं?"

"क्यों नहीं, देखो मेरे कानों में भी बालियाँ हैं, तुम्हारे भी हैं, मेरी उँगलियों में अंगूठी है, तुम्हारी में भी है।"

"तो क्या स्त्रियाँ पगड़ी भी बाँध सकती हैं?"

"बाल कटा दें तो पगड़ी भी रख सकती हैं।"

"छे, छे, कहीं स्त्रियाँ भी बाल कटवाती हैं ?"

बाहर खड़ी देकव्वे ने दाँत काटा।

"तो मतलब हुआ कि पगड़ी नहीं चाहिए। मुझे तो ऐसा पदक और हार चाहिए। जाकर अपनी माँ से कहो, उसी सुनार से बनवाए। अच्छा, आज तुम लोगों ने क्या अभ्यास किया है। तुम तीनों करके दिखाओगी।"

"आप मृदंग बजाकर स्वर के साथ गाएँ तो दिखायेंगी।" चामला ने उत्तर दिया।

"वह तो मैं जानता नहीं।"

"वह न होगा तो नाचना भी नहीं हो सकेगा, पिताजी।" पद्मला ने कहा।

"तो जाने दो। जब तुम्हारे गुरुजी उपस्थित होंगे तब आकर देख लूँगा। ठीक है न?"

सबने एक साथ कहा—"हाँ।"

"तुम्हारी माँ ने यह पुरस्कार तुम लोगों को क्यों दिया। मालूम है?"

पद्मला ने कहा, "बच्चियाँ है, इसलिए प्रेम से बनवा दिया होगा।"

"बस, और कुछ नहीं बताया?"

"और क्या कहेंगी। जब कभी कीमती जेवर देती है तब माँ यही एक बात कहा करती हैं। वह चाहती हैं कि उनकी बच्चियाँ सदा सर्वालंकार भूषिता होकर सुन्दर लगें और वे अपनी हैसियत के बराबर बनी रहें। फिर दूसरों की नज़र न लगे, इसलिए सदा होशियार रहने को कहती हैं। आज भी इतना ही कहा। मगर इस बार एक विशेष बात कही, वह यह कि इसे सदा पहने रहें और किसी को छूने न दें।" पद्मला ने कहा। फिर टीका की, "दूसरे लोग छू लेंगे तो क्या होगा, पिताजी? माँ को शायद घिस जाने का डर है।"

"ऐसा कुछ नहीं। अगर ऐसा डर होता तो पेटी में सुरक्षित रखने को कहतीं। चाहे वह कुछ भी रहे, तुम लोगों को यह पसन्द आया न। मन को अच्छा लगा है न?"

बोप्पि बीच में ही बोल उठी, "माँ ने भी अपने लिए ऐसा ही हार-पदक बनवा लिया है, पिताजी।"

"ऐसा है, लल्ली? देखा अपनी अम्मा को, उन्होंने मुझसे कहा ही नहीं। जाकर कोई बुला तो लाओ, जरा देखूँ।"

इसकी भनक लगते ही देकव्वे खिसक गयी और संक्षेप में मालिकन को सारा वृत्तान्त सुनाकर बोली, अभी बुलावा भी आयेगा। वह रसोई की ओर चली गयी, बाल कटाने की बात वह छिपा गयी थी। स्वयं बोप्पि बुलाने आयी तो पूछा, "क्यों बेटी, तुम्हारा हार तुम्हारे पिता को कैसा लगा। बताया।"

"बोले, अच्छा है। अपने लिए भी एक ऐसा ही हार-पदक बनवाकर देने को

आपसे कहने को बोला है।" यह सुनकर चामव्वे हँसी रोक न सकी।

"माँ, पुरुष भी कहीं ऐसा हार पहनते हैं ?"

"अच्छा, चलो, पूछें।" गयी तो देखते ही समझ गयी कि अब पतिदेव प्रसन्न हैं, सोचा अब कोई बात न छेड़े। रात को तो तनहाई में मिलेंगे ही।

"सुनते हैं, दण्डनायिकाजी ने भी ऐसा ही हार और पदक बनवा लिया है। मुझे बताया भी नहीं।" आँख मटकाते हुए मरियाने ने ही छेड़ा।

"कहाँ, अभी तो दर्शन मिला।" कहकर उसने साड़ी का पल्ला जरा-सा ऐसा हटाया जिससे पदक भी दिख गया।

"अच्छा है। बच्चियाँ थकी हैं, उन्हें कुछ फल-वल दो, दूध पिलाओ।"

"आप भी साथ चलें तो सब साथ बैठकर उपाहार करेंगे।"

"चलो।"

बच्चियों और पत्नी के पीछे चलता हुआ वह सोच रहा था, इस पेटी-नुमा पदक के अन्दर क्या रखा गया है सो न बताकर इन बच्चियों के दिल में इसने विद्वेष का बीज नहीं बोया, यह बहुत ही ठीक हुआ।

रात रोज की तरह ही आयी, मगर चामव्वे को सूर्य की गति भी बहुत धीमी मालूम पड़ रही थी। वे जैन थे, उन्हें सूर्यास्त के पूर्व भोजन कर लेना चाहिए, लेकिन उसे लग रहा था कि अभी भोजन का वक़्त भी नहीं हुआ। आज देकव्वा भी जैसे इतनी सुस्त हो गयी है कि उसे हमें खाने पर बुलाने के समय का पता ही नहीं लग रहा है। वह एक दो बार रसोई का चक्कर भी लगा आयी। देकव्वा अपने काम में मगन थी। उसने रसोई की दीवार पर दो निशान बना रखे थे। जब सूरज की किरण उस चिह्न पर लगे तब उसे समय का पता लग जाता, यह निशान देकव्वा के लिए घड़ी का काम देता। लेकिन चामव्वा को तो रात की प्रतीक्षा थी। देकव्वे भोजन की तैयारी की सूचना देने आयी तो उसने पूछा, "आज इतनी देरी क्यों की, देकव्वा ?"

"देरी तो नहीं की, आज कुछ जल्दी तैयार करना चाहिए था क्या ?"

"बैठो, बैठो, वैसे ही आँख लगी तो समझा कि देर हो गयी। सब तैयार है न ?"

"हाँ, माँ, बुलाने ही के लिए आयी हूँ।"

"ठीक है, बच्चियों को बुलाओ। मैं मालिक को बुला लाऊँगी।" वह बाहर

आयी। नौकर से पूछा, "अरे दडिग, मालिक घर पर नहीं हैं ?" चामव्वे की जोर की यह आवाज घर-भर में गूँज गयी।

दडिग भागा-भागा आया, बोला, "मालिक राजमहल की ओर जाते-जाते कह गये हैं कि आते देर लगेगी।"

"पहले ही क्यों नहीं बताया, गधा कहीं का।" झिड़कती हुई उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना चली गयी।

बच्चियाँ आकर बैठ गयी थीं। वह भी बैठी मगर बड़बड़ाती रही, "वह दडिग बेवकूफ, यहाँ मुफ्त का खाकर घमण्डी हो गया है, काम करने में सुस्त पड़ गया है, ऐसा रहा तो वह इस घर में ज्यादा दिन नहीं टिक सकेगा। देकव्वा, कह दो उसे।"

भोजन रोज की तरह समाप्त हुआ।

उसे केवल एक काम रह गया, पतिदेव की प्रतीक्षा। बच्चियाँ अपने-अपने अभ्यास में लगीं। पढ़-लिखकर वे सो भी गयीं।

पहला पहर गया। दूसरा भी ढल गया। तब कहीं तीसरा पहर भी आया। घोड़े के हिनहिनाने की आवाज सुन पड़ी तो वह पतिदेव के कमरे की ओर भागी कि ठीक उसी वक्त दूसरी तरफ से जल्दी-जल्दी आया दडिग उससे टक्कर खाता-खाता बचा। फिर भी उसे झिड़कियाँ खानी ही पड़ीं। "अरे गधे, साँड़ की तरह घुस पड़ा। क्या आँखें नहीं थीं तुम्हारी ?"

"मालिक…"

"मालूम है, जाओ।"

चामव्वे ने कमरे में प्रवेश करते ही कहा, "अगर राजमहल जाना ही था तो कुछ खा-पीकर भी जा सकते थे।"

"मुझे क्या ख्वाब आया था, तुम्हारे भाई ने हरकारा भेजा तो मैं गया।"

"फिर खाना…"

"हुआ, तुम्हारे भाई के घर। क्यों, अभी तक सोयी नहीं ?"

"नींद हराम करने की गोली खिलाकर अब यह सवाल क्यों ?"

"क्या कहा, तुम्हें नींद न आयी तो मैं उसका जिम्मेदार ?"

"अपने अन्तरंग से ही पूछ लीजिए, आप जिम्मेदार हैं या नहीं।"

"मुझे तो इसका कोई कारण नहीं दिखता। बेहतर है, अपनी बात आप खुल्लमखुल्ला स्पष्ट कह दें।"

"मैंने अपनी बात आपसे छिपायी कब है ? सदा खुलकर बोलती रही हूँ। जिस दिन मैंने राजकुमार को युद्धक्षेत्र से वापस बुलाने की बात आपसे कही उसी दिन से आप बदल गये हैं। क्यों ऐसा हुआ, कुछ पता नहीं लगा। आज दुपहर को आपकी स्थिति देखकर मैं काँप उठी थी। राजमहल में किसी से कोई ऐसा व्यवहार

हुआ हो, जिससे आपको सदमा पहुँचा हो, हो सकता है, पर आपने मुझे कुछ भी बताना जरूरी नहीं समझा। आपके मन का दुख-दर्द जो भी हो उसकी मैं सह-भागिनी हूँ मगर मुझे लगता है कि आप मुझसे कुछ छिपाते रहे हैं। मैं कोई बड़ी राजकार्य की ज्ञाता नहीं, फिर भी मेरी छोटी बुद्धि को भी कुछ सूझ सकता है। जो हो सो मुझसे कहने की कृपा करें।"

दण्डनायक ने कुछ निर्णीत बात स्पष्ट रूप से कही, "जो अपने मन को बुरा लगे उसे दूसरों पर स्पष्ट न करके मन ही में रहने देना चाहिए। किसी ज्ञानी ने कहा है कि अपना दुख-दर्द दूसरों में बाँटने का काम नहीं करना चाहिए। एक दूसरे महात्मा ने यह भी कहा है कि बाँट न सकनेवाली खुशी खुशी नहीं, जबकि दूसरों में बँटा दुःख भी दुःख नहीं। अतः अब तुम इस बारे में कोई बात ही मत उठाओ।"

"आपका सिद्धान्त अन्य सामाजिक सन्दर्भ में ठीक हो सकता है। पति-पत्नी के सम्बन्धों के सन्दर्भ में नहीं, जहाँ शरीर दो और आत्मा एक होती है। दोनों के परस्पर विश्वास पर ही दाम्पत्य जीवन का सूत्र गठित होता है, मेरी माँ सदा यही कहा करती थी। आपसे विवाहित हुए दो दशक बीत गये। अब तक हम भी वैसे ही रहे। परन्तु अब कुछ दिन से आप अपने दुख-दर्द में मुझे शामिल नहीं करते। मुझसे ऐसी कौन-सी गलती हुई है, इसकी जानकारी हो तो अपने को सुधार लूँगी।"

"तो एक बात पूछूँगा। तुम्हें अपने बच्चों की कसम खाकर सच बताना होगा। बताओगी?"

"सत्य कहने के लिए कसम क्यों?"

"तो छोड़ो।"

"पूछिए।"

"न, न, पूछना ही दोनों के लिए बेहतर है।"

"आप पूछेंगे नहीं तो मैं मानूँगी नहीं।"

"उससे तुम्हारी शान्ति भंग हो जाएगी।"

"आपको शान्ति मिल सकती हो तो मेरी शान्ति का भंग होने में भी कोई हर्ज नहीं। पूछ ही लीजिए।"

"तुम चाहती हो कि मैं तुमसे कुछ पूछूँ ही तो तुम्हें अपनी बच्चियों की कसम खाकर सत्य ही बोलना होगा।"

"मेरे ऊपर विश्वास न रखकर कसम खिलाने पर जोर देते हैं तो वह भी सही। मैं और क्या कर सकती हूँ?"

"न, न, तुम्हें बाद में पछताना पड़ेगा। जो है सो रहने दो। चार-पाँच दिन बाद सम्भव है, मेरा ही मन शान्त हो जाए। इस तरह जबर्दस्ती लिए गए वचन निरर्थक भी हो सकते हैं।"

बच्चियाँ संगीत का अभ्यास करने बैठ गयी थीं इससे पति-पत्नी की बातों के बीच उनकी उपस्थिति की उसे चिन्ता नहीं रही। कोई मिलने आये भी तो समय नहीं देने का दडिग को आदेश देकर वह पति के कमरे में पहुँची जो उसकी प्रतीक्षा में बैठा था।

"सुना है कि मालिक ने दो बार याद की। आपको कहीं जाना था? मुझसे देर हुई, क्षमाप्रार्थी हूँ।"

वह जोर से हँस पड़ा।

"हँसे क्यों?"

"तुम्हें यह भी नहीं दिखा कि मैं बाहर जाने की वेश-भूषा में हूँ या नहीं, इसलिए हँसी आ गयी।"

"मेरा ध्यान उधर गया ही नहीं। जब यह सुना कि आपने दो बार दर्याफ्त किया तो मेरा ध्यान उधर ही लगा रहा।"

"ठीक है, अब तो इधर-उधर ध्यान नहीं होगा न, बैठो, बच्चियाँ क्या कर रही हैं?"

"संगीत-पाठ में लगी है।"

"अच्छा हुआ। आज तुम्हें दुपहर को अपने भाई के घर जाना होगा।"

"सो क्यों?"

"जो बात मुझसे कहने में आनाकानी कर रही थी वह तुम अपने भाई से कह सकती हो। इस बात का निर्णय हो ही जाना चाहिए।"

"रात को ही निर्णय कर सकते थे, आपने ही नहीं कहा, इसीलिए मैं चुप रही, बताने से मैंने कहाँ इनकार किया था?"

"हम तो लड़ाकू लोग हैं। हमें सवालों का उत्तर तब-का-तब देना चाहिए। युद्ध-भूमि में गुजरने वाला एक क्षण भी विजय को पराजय में बदल सकता है। इसलिए लम्बी-लम्बी बात करनेवालों के साथ बात करना ही हमें ठीक नहीं लगता। मैंने कल रात तुम्हारे चले जाने के बाद यह निर्णय किया है।"

"मैंने भी कल रात निर्णय किया है कि बच्चों की कसम खाकर सत्य कहूँगी। इसलिए जो भी संशय हो उसका निर्णय यहीं आपस में हो, किसी तीसरे के सामने न हो।"

"हम दोनों में निर्णय हो तो भी बात उन्हें मालूम होनी ही चाहिए।"

"वह आपकी आपस की बात है, मैं उसमें प्रवेश नहीं करना चाहती।"

"ठीक। अब बच्चों की कसम खाकर यह बताओ कि बलिपुर के हेग्गड़ेजी को आमंत्रण-पत्र न पहुँचने का कारण तुम नहीं हो। बताओ, क्या कहोगी?"

"क्या कहा?"

"फिर उसी को दुहराना होगा?"

"मैं उसका कारण हूँ। यह आप मुझपर आरोप कर रहे हैं।"

"मैं आरोप नहीं करता। राजमहल की तरफ से यह आरोप है, यह झूठा साबित हो, यही मेरा मतलब है।"

"यह आरोप किसने लगाया।"

"मुझे भी इसका ब्यौरा मालूम नहीं। तुम्हारे भाई मुझे महाराज के पास ले गये। महाराज ने मुझसे सवाल किया, वलिपुर के हेग्गड़ेजी के पास आमन्त्रण-पत्र न पहुँचने का कारण दण्डनायिका है। मैंने निवेदन किया कि जहाँ तक मैं जानता हूँ बात ऐसी नहीं है तो इस तरह का प्रमाण-वचन लेने का आदेश हुआ। किसने कब यह बात कही और यह शंका कैसे उत्पन्न हुई ये सब बातें मैं सन्निधान से पूछ भी कैसे सकता हूँ ? उनका आदेश मानकर 'हाँ' कह आया। बाद में ये सारे सवालात तुम्हारे भाई के सामने रखे तो उन्होंने भी बताया कि इस विषय में उन्हें कुछ मालूम नहीं। इसलिए अब तुम अकेली ही इस आरोप को झूठा साबित कर सकती हो तो कहो। इस तरह की हालत उत्पन्न नहीं होनी चाहिए थी। पर वह आयी है तो जो कहना चाहती हो सो बच्चों की कसम खाकर कह दो।" उसकी आवाज़ धीमी पड़ गयी। वह छत की ओर देखने लगा।

चामव्वे कभी किसी से डरी नहीं। वह द्रोहघरट्ट गगराज की बहिन है। साधारण स्थिति होती तो द्रोही को चीर-फाड़कर खतम कर देती। कौन है वह द्रोही ? अब क्या करे वह ? उसका पत्थर जैसा दिल अब चकनाचूर हो गया। कौन माँ ऐसी होगी जो अपने बच्चों की बुराई चाहेगी, "मालिक, मैं माँ हूँ। मैंने जो भी किया, बच्चों की भलाई के लिए किया। क्षमा करें।"

"तुमने मुझपर भी विश्वास न किया। अब आश्रयदाता राज-परिवार मुझे सन्देह की दृष्टि से देखता है। क्षमा करनेवाला मैं नहीं, महाराज, युवराज और युवरानी हैं। इसलिए तुम जाओ, अपने भाई के सामने स्पष्ट रूप से कहो, तुमने क्या किया। तुम्हारे भाई जैसा कहेंगे वैसा करो। मैं तुम्हारे साथ भी नहीं जाऊँगा।"

"आप चलें ही।" वह नरम हो गयी थी।

"मेरा न चलना ही अच्छा होगा। अब फिर अपनी अक्लमन्दी का प्रदर्शन करके उस हेग्गड़ती के प्रति अपनी बुरी भावना मत दिखाना।"

"स्वयं जाकर कैसे बताऊँ।"

"जो है सो कहने में क्या दिक्कत है ?"

"भाई पूछें तो उत्तर देना आसान होगा। मैं ही बात छेड़कर कहूँ, यह उतना आसान नहीं।"

"तो मतलब यह कि ऐसा करूँ कि वे ही पूछें, यही तुम्हारी सलाह है ?"

"जो मुझे आसान लगा सो सुझाया।"

"ऐसा ही हो, तुम्हारा यह अभिमान बड़ा जबरदस्त है। मैं जाकर कह दूंगा कि आपकी बहिन को भेज दूंगा, आप ही उनसे पूछ लीजिए। ठीक है न?"

"हाँ।"

"तो अब चलो, नाश्ता करें। बाद में मैं तुम्हारे भाई के यहाँ जाऊँगा। दोपहर के बाद तुम जाना।"

चामव्वा गयी तो मरियाने सोचने लगा, दुर्भावना और स्वार्थ के शिकंजे में पड़कर इस औरत ने मेरा सिर झुकवा दिया, यह अविवेक की चरम सीमा है। बात मालूम होने पर उसके भाई क्या करेंगे सो तो मालूम नहीं लेकिन उन्हें ऐसी नीचता कभी सह्य नहीं होती। अब तो जैसा उसका भाग्य वैसा होगा ही, जो किया सो भुगतना ही होगा। कम-से-कम आइन्दा को होशियार रहें तो भी ठीक होगा। और वो नाश्ते के बाद अपने साले के घर चले गये। चामव्वे कुछ खाये-पीये बिना ही अपनी कोठरी में जा बैठी और सोचने लगी, यह 'सर्वतोभद्र' यन्त्र जिस दिन धारण किया उसी दिन से इस तरह की तीव्र वेदना भुगतनी पड़ रही है। इसे निकालकर कूड़े में फेंक दूं, परन्तु ऐसा करने पर कुछ-का-कुछ हो गया तो? अब इससे छूटने का साहस भी नहीं होता, और उसका तरीका भी नहीं मालूम।

उधर महादण्डनायक प्रधान गंगराज के यहाँ जाने के लिए निकला, इधर दण्डनायिका बिना किसी को बताये वामशक्ति पण्डित के यहाँ पहुँची। अब की बार उसने बड़ी होशियारी से आगे-पीछे और इर्द-गिर्द देखकर सबकी आँख बचाकर, मन मजबूत करके उसके घर में प्रवेश किया।

पण्डित तभी अपना पूजा-पाठ समाप्त कर बाहर के बड़े बैठकखाने में जा रहा था। उसे अचानक देखकर वह चकित हुआ, "कहला भेजती तो मैं खुद ही आ जाता। आपने यहाँ तक आने का कष्ट ही क्यों किया। पधारिए, विराजिए।"

चामव्वे बैठी तो वह ... "कोई खास बात थी, दण्डनायिकाजी?"

"न, न, ऐसा हो ही नहीं सकता। यदि दण्डनायिकाजी यह बताने की कृपा करें कि क्या हुआ तो यह बताने में सुविधा रहेगी कि वह क्यों हुआ।"

"यही हुआ, ऐसा ही हुआ, यह तो निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकती। परन्तु ऐसा लग रहा है कि मानसिक शान्ति भंग हो गयी है। आपने तो कहा था कि इससे वास्तव में धैर्य, सन्तोष, श्रेय और उन्नति प्राप्त होगी। परन्तु···"

"दण्डनायिकाजी, आपको मुझपर विश्वास रखना चाहिए। नि.संकोच बिना छिपाये बात स्पष्ट कह दें तो मुझे आपकी मदद करने मे सुविधा होगी।"

"विश्वास रखकर ही तो ये यन्त्र बनवाये हैं।"

"सो तो ठीक है। परन्तु दण्डनायिकाजी अपने विरोधियों के नाम बताने में आगा-पीछा कर रही हैं तो इसका भी कोई कारण होना चाहिए। मान लीजिए कि वे लोग मान्त्रिक अंजन के बल से यह जान गये हों कि आपने मुझसे ऐसा यन्त्र बनवाया है और उन्होंने उसके विरोध में कुछ करवाया भी हो तो?"

"क्या कहा, मान्त्रिक अंजन लगाकर देखने से कहीं दूर रहनेवालों को यहाँ जो हो रहा है उसका पता लग सकता है?"

"हाँ, मानो आँखों के सामने ही गुजर रहा हो।"

"तो मैं भी यह देख सकूँगी कि वे लोग क्या कर रहे हैं?"

"कई एक बार अप्रिय बात भी दृष्टिगोचर होती है, इसलिए आपका न देखना ही अच्छा है। चाहें तो आपकी तरफ से मैं ही देखकर बता दूँगा।"

"मालिक से परामर्श कर निर्णय बताऊँगी कि आपको देखकर बताना होगा या मैं ही देखूँ। अब मेरे एक सवाल का उत्तर देंगे?"

"हुक्म हो।"

"समझ लीजिए, जैसा कि आप सोचते भी है, उन लोगों ने मान्त्रिक अंजन लगाकर देख लिया है और हमारे सर्वतोभद्र यन्त्र के विरोध में कुछ किया है। उस हालत में आपके इस यन्त्र का क्या महत्त्व रह गया।"

"दिग्बन्धन करके यह इस तरह तैयार किया गया है कि इस पर कोई बुरा प्रभाव भी नहीं पड़ सकता। विरोधियों के प्रयत्नों के कारण शुरू-शुरू में कुछ कष्ट का अनुभव तो होगा ही। परन्तु विरोध को पराजित होकर ही रहना पड़ेगा। तभी आप समझेंगी इस यन्त्र की ताकत की सचाई।"

"तो मतलब यह कि किसी तरह के भय का कोई प्रश्न नहीं?"

"किसी तरह के भय का कोई प्रश्न नही, दण्डनायिकाजी।"

"आपने बताया विरोध पराजित होकर हटेगा, इसका पता हमें कैसे लगेगा?"

"जैसे अभी प्रभाव के होने का अनुभव कर रही हैं, वैसे ही प्रभाव के हट जाने का भी अनुभव होगा। तब जो कष्ट या अशान्ति का अनुभव अब कर रही हैं, वह

"ऐसा ही हो, तुम्हारा यह अभिमान बड़ा जबरदस्त है। मैं जाकर कह दूंगा कि आपकी बहिन को भेज दूंगा, आप ही उससे पूछ लीजिए। ठीक है न?"

"हाँ।"

"तो अब चलो, नाश्ता करें। बाद में मैं तुम्हारे भाई के यहाँ जाऊँगा। दोपहर के बाद तुम जाना।"

चामव्वा गयी तो मरियाने सोचने लगा, दुर्भावना और स्वार्थ के शिकंजे में पड़कर इस औरत ने मेरा सिर झुकवा दिया, यह अविवेक की चरम सीमा है। बात मालूम होने पर उसके भाई क्या करेंगे सो तो मालूम नहीं लेकिन उन्हें ऐसी नीचता कभी सह्य नहीं होती। अब तो जैसा उसका भाग्य वैसा होगा ही, जो किया सो भुगतना ही होगा। कम-से-कम आइन्दा को होशियार रहें तो भी ठीक होगा। और वो नाश्ते के बाद अपने साले के घर चले गये। चामव्वे कुछ खाये-पीये बिना ही अपनी कोठरी में जा बैठी और सोचने लगी, यह 'सर्वतोभद्र' यन्त्र जिस दिन धारण किया उसी दिन से इस तरह की तीव्र वेदना भुगतनी पड़ रही है। इसे निकालकर कूड़े में फेंक दूँ, परन्तु ऐसा करने पर कुछ-का-कुछ हो गया तो? अब इससे छूटने का साहस भी नहीं होता, और उसका तरीका भी नहीं मालूम।

उधर महादण्डनायक प्रधान गंगराज के यहाँ जाने के लिए निकला, इधर दण्डनायिका बिना किसी को बताये वामशक्ति पण्डित के यहाँ पहुँची। अब की बार उसने बड़ी होशियारी से आगे-पीछे और इर्द-गिर्द देखकर सबकी आँख बचाकर, मन मजबूत करके उसके घर में प्रवेश किया।

पण्डित तभी अपना पूजा-पाठ समाप्त कर बाहर के बड़े बैठकखाने में जा रहा था। उसे अचानक देखकर वह चकित हुआ, "कहला भेजती तो मैं खुद ही आ जाता। आपने यहाँ तक आने का कष्ट ही क्यों किया। पधारिए, विराजिए।"

चामव्वे बैठी तो वह भी सामने के एक आसन पर बैठा, "कोई खास बात थी, दण्डनायिकाजी?"

"वही, यन्त्र के बारे में बात करने आयी हूँ।"

"क्यों, क्या हुआ, सब सुरक्षित हैं न?"

"है। कल वे पहने भी जा चुके हैं। फिर भी कल और आज के दिन कोई ठीक से नहीं गुजरे। कहीं यह यन्त्र का ही कुप्रभाव न हो, यही पूछने आयी हूँ।"

"न, न, ऐसा हो ही नहीं सकता। यदि दण्डनायिकाजी यह बताने की कृपा करें कि क्या हुआ तो यह बताने में सुविधा रहेगी कि वह क्यों हुआ।"

"वही हुआ, ऐसा ही हुआ, यह तो निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकती। परन्तु ऐसा लग रहा है कि मानसिक शान्ति भंग हो गयी है। आपने तो कहा था कि इससे वास्तव में धैर्य, सन्तोष, श्रेय और उन्नति प्राप्त होगी। परन्तु..."

"दण्डनायिकाजी, आपको मुझपर विश्वास रखना चाहिए। निःसंकोच बिना छिपाये बात स्पष्ट कह दें तो मुझे आपकी मदद करने में सुविधा होगी।"

"विश्वास रखकर ही तो ये यन्त्र बनवाये हैं।"

"सो तो ठीक है। परन्तु दण्डनायिकाजी अपने विरोधियों के नाम बताने में आगा-पीछा कर रही हैं तो इसका भी कोई कारण होना चाहिए। मान लीजिए कि वे लोग मान्त्रिक अंजन के बल से यह जान गये हों कि आपने मुझसे ऐसा यन्त्र बनवाया है और उन्होंने उसके विरोध में कुछ करवाया भी हो तो?"

"क्या कहा, मान्त्रिक अंजन लगाकर देखने से कहीं दूर रहनेवालों को यहाँ जो हो रहा है उसका पता लग सकता है?"

"हाँ, मानो आँखों के सामने ही गुजर रहा हो।"

"तो मैं भी यह देख सकूँगी कि वे लोग क्या कर रहे हैं?"

"कई एक बार अप्रिय बात भी दृष्टिगोचर होती है, इसलिए आपका न देखना ही अच्छा है। चाहें तो आपकी तरफ से मैं ही देखकर बता दूँगा।"

"मालिक से परामर्श कर निर्णय बताऊँगी कि आपको देखकर बताना होगा या मैं ही देखूँ। अब मेरे एक सवाल का उत्तर देंगे?"

"हुक्म हो।"

"समझ लीजिए, जैसा कि आप सोचते भी हैं, उन लोगों ने मान्त्रिक अंजन लगाकर देख लिया है और हमारे सर्वतोभद्र यन्त्र के विरोध में कुछ किया है। उस हालत में आपके इस यन्त्र का क्या महत्त्व रह गया।"

"दिग्बन्धन करके यह इस तरह तैयार किया गया है कि इस पर कोई बुरा प्रभाव भी नहीं पड़ सकता। विरोधियों के प्रयत्नों के कारण शुरू-शुरू में कुछ कष्ट का अनुभव तो होगा ही। परन्तु विरोध को पराजित होकर ही रहना पड़ेगा। तभी आप समझेंगी इस यन्त्र की ताकत की सचाई।"

"तो मतलब यह कि किसी तरह के भय का कोई प्रश्न नहीं?"

"किसी तरह के भय का कोई प्रश्न नहीं, दण्डनायिकाजी।"

"आपने बताया विरोध पराजित होकर हटेगा, इसका पता हमें कैसे लगेगा?"

"जैसे अभी प्रभाव के होने का अनुभव कर रही हैं, वैसे ही प्रभाव के हट जाने का भी अनुभव होगा। तब जो कष्ट या अशान्ति का अनुभव अब कर रही हैं, वह

न रहकर मानसिक शान्ति का अनुभव होगा।"

"तो जो भी इस यन्त्र को धारण करेंगे उन सब पर एक ही तरह का प्रभाव दिखेगा।"

"सब पर एक ही व्यक्ति के द्वारा एक ही तरह का मन्त्र-तन्त्र चला हो तो सबको एक ही तरह की शान्ति आदि का अनुभव होगा। परन्तु विरोधी शक्ति का प्रयोग सब पर नहीं किया गया हो तो एक ही तरह की अनुभूति कैसे हो सकती है?"

"अभी आपने बताया कि विरोध का प्रभाव शुरू-शुरू में होगा ही। वह कितने दिन तक ऐसा रहेगा।"

"इसका निश्चित उत्तर देना क्लिष्ट है, क्योंकि यह विरोध करनेवाले की शक्ति पर निर्भर है।"

"आपने कहा कि वह विरोधी शक्ति अपनेआप हट जाएगी हारकर। मान लें कि विरोधी शक्ति बहुत प्रबल है तब उसे पीछे हटने में कितना समय लग सकता है?"

"हम कुछ भी न करें तो दो या तीन पखवारे लगेंगे। लेकिन आप चाहें तो उसका पता लगाकर दो ही दिन में दबा सकता हूँ। अगर आप ही बता दें कि किसपर आपकी शंका है तो एक ही दिन में उस विरोधी शक्ति को हटा सकता हूँ।"

उसने फौरन कुछ नहीं कहा, सोचती बैठी रही। वामशक्ति उसका अन्तरंग समझने के इरादे से अपने ही ढंग से घूम-फिरकर इस नुक्कड़ पर पहुँचा। दण्ड-नायिका के मुँह से अन्तरंग की बात निकलवाने का समय आ गया। एक-दो क्षण उसने प्रतीक्षा की। फिर बोला, "भयभीत होने का कोई कारण नहीं, जैसे वैद्य से रोग नहीं छिपाना चाहिए वैसे ही ज्योतिषी से अपनी नियति भी नहीं छिपानी चाहिए।"

"पण्डितजी, आपसे कुछ छिपाना मेरा उद्देश्य नहीं। परन्तु मैं मालिक की आज्ञा नहीं टाल सकती, वे मान लेंगे तो फौरन कह दूँगी। वे मान ही लेंगे। तब आपके अंजन के प्रभाव से हम सब उन विरोध करनेवालों को भी देख सकेंगे। मुझ में यह कुतूहल पैदा हो गया है कि इस अंजन का प्रयोग कैसे करते हैं और उससे कहीं घट रही घटना कैसे देख सकते हैं। इसलिए आप यह न समझें कि हम आप पर विश्वास नहीं रखते। अच्छा, अब चलूँगी।"

वामशक्ति पण्डित भी उठ खड़ा हुआ उसे विदा करने।

"आज मैं अपने मायके जाना चाहती हूँ। मुहूर्त अच्छा है न?" उसने चलते-चलते पूछा।

"आज स्थिर-वासर है। वहाँ कितने दिन तक रहना होगा।"

"रहना नहीं है। आज ही लौटने की सोची है। बहुत होगा तो एक दिन

रहूँगी।"

"जरूरी काम हो तो जाने में कोई हर्ज नहीं। स्थिर-वासर को सूर्योदयान्तर आठ घटियों के बाद दोष नहीं रहेगा। आप राहुकाल में यहाँ आयीं, अब वह खतम हो गया है। भोजनोपरान्त जा सकती है। आज तेईस घटी तक अश्विनी है। इसी नक्षत्र के रहते आप रवाना हों।अगर किसी अनिवार्य कारण से समय के अन्दर नहीं निकल सकती हों तो सोमवार को जाइएगा।"

"अच्छा, पण्डितजी, मैं चलूँगी।"

वामशक्ति पण्डित के घर जाते समय जो सावधानी, सजग दृष्टि रही, वहाँ से रवाना होते वक्त वह न रह सकी क्योंकि वह पण्डित विदा करने रास्ते तक साथ आया। यह कहने पर भी कि मैं चली जाऊँगी, आप रह जाइए, वह साथ आ ही गया। इधर-उधर देखे बिना वह पल्ला ही घूँघट-सा सिर पर ओढ़े निकल पड़ी। उसे डर रहा कि कहीं कोई देख न ले, उसका दिल धड़कता ही रहा। घर के अहाते में प्रवेश करते ही उसने पति और अपने भाई के घोड़े देखे तो धड़कन और भी बढ़ गयी।

वह यह सोचती हुई अन्दर आयी कि भाई को यहीं बुला लाने की बात पहले ही कह देते तो वह घर पर ही रह जाती। लेकिन ये हैं कि कोई भी बात ठीक तरह से बताते ही नहीं। अब क्या करूँ, क्या करूँ?

अन्दर कदम रखा ही था कि दडिग ने कहा, "मालिक ने कहा है कि आते ही आपको उनके कमरे में भेज दें। प्रधानजी भी आये हैं।"

"कितनी देर हुई, क्या पूछा?"

"कोई एक-दो घण्टा हुआ होगा। पूछा था, कहाँ गयी है?"

"तुमने क्या कहा?"

"कहा कि मालूम नहीं।"

"क्यों, वसति गयी, कहते तो तुम्हारी जीभ कट जाती?"

"पता होता तो वही कहता, माँ। जो बात मालूम नहीं वह कैसे कहता, बाद में कुछ-का-कुछ हो जाये तो?"

कुछ कहे बिना वह सीधी उस कमरे में गयी, हाँफती हुई, पसीना पोंछती हुई बहिन को आते देख गंगराज ने कहा, "आओ चामू, बैठो, पसीने से तर हो, इस धूप में दूर से चलकर क्यों आयी? गाड़ी में जाती। किसी को कहे बिना कहाँ गयी थी?"

वह बैठकर पल्ले से पसीना पोंछने लगी, फिर भी पसीना छूटता ही रहा। उसकी आँखों में डर समा गया था। बहन की यह हालत देखकर गंगराज ने कहा, "चामू, तुम जाओ, पहले हाथ-मुँह धोकर स्वस्थ हो आओ। फिर बातें करेंगे।"

उसे भी सुस्ताने के लिए समय मिला, पसीना पल्ले से पोंछती हुई चली

न रहकर मानसिक शान्ति का अनुभव होगा।"

"तो जो भी इस यन्त्र को धारण करेंगे उन सब पर एक ही तरह का प्रभाव दिखेगा।"

"सब पर एक ही व्यक्ति के द्वारा एक ही तरह का मन्त्र-तन्त्र चला हो तो सबको एक ही तरह की शान्ति आदि का अनुभव होगा। परन्तु विरोधी शक्ति का प्रयोग सब पर नहीं किया गया हो तो एक ही तरह की अनुभूति कैसे हो सकती है?"

"अभी आपने बताया कि विरोध का प्रभाव शुरू-शुरू में होगा ही। वह कितने दिन तक ऐसा रहेगा।"

"इसका निश्चित उत्तर देना क्लिष्ट है, क्योंकि यह विरोध करनेवाले की शक्ति पर निर्भर है।"

"आपने कहा कि वह विरोधी शक्ति अपनेआप हट जाएगी हारकर। मान लें कि विरोधी शक्ति बहुत प्रबल है तब उसे पीछे हटने में कितना समय लग सकता है?"

"हम कुछ भी न करें तो दो या तीन पखवारे लगेंगे। लेकिन आप चाहें तो उसका पता लगाकर दो ही दिन में दबा सकता हूँ। अगर आप ही बता दें कि किसपर आपकी शंका है तो एक ही दिन में उस विरोधी शक्ति को हटा सकता हूँ।"

उसने फौरन कुछ नहीं कहा, सोचती बैठी रही। वामशक्ति उसका अन्तरंग समझने के इरादे से अपने ही ढंग से घूम-फिरकर इस नुक्कड़ पर पहुँचा। दण्ड-नायिका के मुँह से अन्तरंग की बात निकलवाने का समय आ गया। एक-दो क्षण उसने प्रतीक्षा की। फिर बोला, "भयभीत होने का कोई कारण नहीं, जैसे वैद्य से रोग नहीं छिपाना चाहिए वैसे ही ज्योतिषी से अपनी नियति भी नहीं छिपानी चाहिए।"

"पण्डितजी, आपसे कुछ छिपाना मेरा उद्देश्य नहीं। परन्तु मैं मालिक की आज्ञा नहीं टाल सकती, वे मान लेंगे तो फौरन कह दूँगी। वे मान ही लेंगे। तब आपके अंजन के प्रभाव से हम सब उन विरोध करनेवालों को भी देख सकेंगे। मुझ में यह कुतूहल पैदा हो गया है कि इस अंजन का प्रयोग कैसे करते हैं और उससे कहीं घट रही घटना कैसे देख सकते हैं। इसलिए आप यह न समझें कि हम आप पर विश्वास नहीं रखते। अच्छा, अब चलूँगी।"

वामशक्ति पण्डित भी उठ खड़ा हुआ उसे विदा करने।

"आज मैं अपने मायके जाना चाहती हूँ। मुहूर्त अच्छा है न?" उसने चलते-चलते पूछा।

"आज स्थिर-वासर है। वहाँ कितने दिन तक रहना होगा।"

"रहना नहीं है। आज ही लौटने की सोची है। बहुत होगा तो एक दिन

रहूँगी।"

"जरूरी काम हो तो जाने में कोई हर्ज नहीं। स्थिर-वासर को सूर्योदयान्तर आठ घटियों के बाद दोष नहीं रहेगा। आप राहुकाल में यहाँ आयीं, अब वह खतम हो गया है। भोजनोपरान्त जा सकती है। आज तेईस घटी तक अश्विनी है। इसी नक्षत्र के रहते आप रवाना हों। अगर किसी अनिवार्य कारण से समय के अन्दर नहीं निकल सकती हों तो सोमवार को जाइएगा।"

"अच्छा, पण्डितजी, मैं चलूंगी।"

वामशक्ति पण्डित के घर जाते समय जो सावधानी, सजग दृष्टि रही, वहाँ से रवाना होते वक्त वह न रह सकी क्योंकि वह पण्डित विदा करने रास्ते तक साथ आया। यह कहने पर भी कि मैं चली जाऊँगी, आप रह जाइए, वह साथ आ ही गया। इधर-उधर देखे बिना वह पल्ला ही घूंघट-सा सिर पर ओढ़े निकल पड़ी। उसे डर रहा कि कहीं कोई देख न ले, उसका दिल धड़कता ही रहा। घर के अहाते में प्रवेश करते ही उसने पति और अपने भाई के घोड़े देखे तो धड़कन और भी बढ़ गयी।

वह यह सोचती हुई अन्दर आयी कि भाई को यहीं बुला लाने की बात पहले ही कह देते तो वह घर पर ही रह जाती। लेकिन ये हैं कि कोई भी बात ठीक तरह से बताते ही नहीं। अब क्या करूँ, क्या कहूँ?

अन्दर कदम रखा ही था कि दडिग ने कहा, "मालिक ने कहा है कि आते ही आपको उनके कमरे में भेज दें। प्रधानजी भी आये हैं।"

"कितनी देर हुई, क्या पूछा?"

"कोई एक-दो घण्टा हुआ होगा। पूछा था, कहाँ गयी हैं?"

"तुमने क्या कहा?"

"कहा कि मालूम नहीं।"

"क्यों, वसति गयी, कहते तो तुम्हारी जीभ कट जाती?"

"पता होता तो वही कहता, माँ। जो बात मालूम नहीं वह कैसे कहता, बाद में कुछ-का-कुछ हो जाये तो?"

कुछ कहे बिना वह सीधी उस कमरे में गयी, हाँफती हुई, पसीना पोंछती हुई बहिन को आते देख गंगराज ने कहा, "आओ चामू, बैठो, पसीने से तर हो, इस धूप में दूर से चलकर क्यों आयी? गाड़ी में जाती। किसी को कहे बिना कहाँ गयी थी?"

वह बैठकर पल्ले से पसीना पोंछने लगी, फिर भी पसीना छूटता ही रहा। उसकी आँखों में डर समा गया था। बहन की यह हालत देखकर गंगराज ने कहा, "चामू, तुम जाओ, पहले हाथ-मुँह धोकर स्वस्थ हो आओ। फिर बातें करेंगे।"

उसे भी सुस्ताने के लिए समय मिला, पसीना पल्ले से पोंछती हुई चली

गयी।

गंगराज ने कहा, "दण्डनायकजी ने बहुत डरा दिया मालूम होता है।"

"वह इतने से डरनेवाली नहीं, वहिन आपकी ही तो है। आज दोपहर उसकी आप ही के यहाँ आने की योजना थी, इसी के लिए मैं आपके यहाँ आया था। इतने में वह किधर गयी सो मालूम नहीं। किसी से कहे बिना गयी थी, इसलिए उसी से जानना होगा कि वह कहाँ गयी थी। इस वक्त आपका यहाँ पधारना उसके लिए अकल्पित बात है। इतना ही नहीं, जिस कठोर सत्य का सामना करना है उसने उसे नरम बना दिया है। सिर उठाकर इतरानेवाली आपकी बहिन के लिए अब शरम से सिर झुकाकर चलना असम्भव बात मालूम पड़ रही है।"

"उसने जो किया है उसे अपनी गलती मान ले तभी उसका हित होगा, नहीं तो यह बुरी प्रवृत्ति और भी बड़ी बुराई की ओर बढ़ सकती है, और मैं चाहता हूँ कि ऐसा न हो।"

"वह स्वभाव से तो अच्छी है परन्तु उसमें स्वार्थ सबसे प्रथम है। इसीलिए जल्दबाजी में कुछ-का-कुछ कर बैठती है। जो किया सो गलत है, यह वह मानती नहीं। कई बार वह अपनी गलती को भी सही साबित करने लगती है। इस प्रसंग में भी उसने शायद यही किया हो। बच्चों की क़सम खाकर सत्य कहने की नौबत आने से उसकी हालत दो पाटों के बीच के दाने की-सी हो गयी है। लेकिन इससे उसकी भलाई भी होगी, और उसका दृष्टिकोण बदलने में सहायता भी मिलेगी।"

"गलती मनुष्य मात्र से होती है, परन्तु उसे सुधार लेना चाहिए और सुधार लेने के लिए मौका भी दिया जाना चाहिए।"

"यह सब हमें नहीं मालूम, आप कुछ भी मौक़ा बना दें उसे यह मानना ही होगा कि उसके स्वार्थ ने उससे ऐसा कराया है।"

"क्या आप समझते हैं कि वह ठीक है?"

"ठीक तो नहीं कह सकता, क्षम्य जरूर कह सकता हूँ। मेरी भावना के पीछे मेरा अपना स्वार्थ भी हो सकता है, इसीलिए मेरे विचार को कोई मूल्य देने की जरूरत नहीं। जो काम हो चुका है सो तो हो ही चुका और इससे राज-परिवार को सदमा भी पहुँच चुका है। अब तो इसका दुष्परिणाम नहीं बढ़े, यह देखना ही आपकी जिम्मेदारी है।"

"कितना बड़ा अपराध भी क्यों न हो, युवराज, क्षमा कर देंगे। वे बड़े उदार हैं। परन्तु आत्मीयों के प्रति द्रोह उनके लिए सह्य नहीं। जो भी हो, पहले यहाँ तो ठीक कर लें, तब वहाँ ठीक करने की बात उठाएँ।"

"आप कहें तो ठीक हो सकती है।"

"यह मेरी बहिन है सही, फिर भी मैं इस सम्बन्ध में कोई निर्णय कर सकूँगा, यह नहीं कहा जा सकता।"

चामब्बे बादाम और केसर मिश्रित दूध के दो लोटे, एक परात में लेकर आयी, "लीजिए भैया, यह दूध।" भाई के सामने परात बढ़ाया तो सही लेकिन उसकी तरफ़ देख न सकी।

गंगराज को उसके मुख पर परेशानी और भय के वे भाव अब नहीं दिखे जो कुछ क्षण पूर्व दिखे थे। उसने एक लोटा लिया और परात मरियाने के पास सरका दिया। उसने भी एक लोटा लिया।

गंगराज ने पूछा, "तुम नहीं लोगी?"

"मैं बच्चियों के साथ पीऊँगी, अभी उनकी पढ़ाई चल रही है।" चामब्बे ने उत्तर दिया।

दोनों दूध पी चुके तब भी मौन छाया रहा। बात छेड़नी थी गंगराज को ही और चामब्बे उसकी बातों का सामना करने के लिए तैयार बैठी थी। पत्नी और उसके भाई को मरियाने कुतूहल भरी नजर से देख रहा था।

अन्त में गंगराज ने कहा, "चामू!"

"क्या, भैया," कहती हुई उसने धीरे से सर उठाया।

"कई बार ऐसे भी प्रसंग आते हैं जब अप्रिय लगने पर भी और मन के विरुद्ध होने पर भी कोई बात कहनी ही पड़ती है। राज-निष्ठा अलग चीज़ है और सगे-सम्बन्धी की बात अलग है। किन्तु इन दोनों सम्बन्धों के निर्वाह के लिए मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ। राज-परिवार से, उसमें भी युवराज और युवरानी जैसे उदार मन के व्यक्तियों के द्वेष का पात्र बनने का तुमने निश्चय किया हो तो तुम्हारी मर्जी, वरना स्पष्ट कहो कि राजकुमार के उपनयन का आमन्त्रण-पत्र बलिपुर के हेग्गड़ेजी को न भेजने का षड्यंत्र तुमने क्यों किया। तुम्हारा यह षड्यन्त्र हम सब पर अविश्वास का कारण बना है, और अब तो यह इस स्तर तक पहुँच गया कि इस अपराध के कारण, प्रधान होने के नाते मेरे द्वारा तुम्हें दण्ड भी दिया जा सकता है। बताओ, क्या कहती हो?"

"कहना क्या है भैया, ऐसी छोटी बात यहाँ तक पहुँच सकती है, इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी।"

"दीवारों की भी आँखें होती हैं, कान होते हैं, हवा में भी ख़बर फैलाने की शक्ति होती है, क्या यह बात तुम्हें मालूम नहीं? तुम्हारी अकल पर परदा पड़ गया है जो तुम इसे छोटी बात कहती हो? बात अगर छोटी होती तो तुम्हारी तरफ़ से मैं ही न क्षमा माँग लेता? हेग्गड़े दम्पती पर तुम्हें विद्वेष की भावना क्यों है।"

"क्यों है और है भी या नहीं, सो तो मालूम नहीं, भैया, परन्तु वे मेरे रास्ते के काँटे जरूर हैं। आप कन्या के पिता होते और उसे एक अच्छी जगह ब्याह देना चाह रहे होते कि कोई आपके आड़े आता तो शायद आप समझते कि उनके प्रति मेरा व्यवहार ठीक है या नहीं।"

"चामू, हमने भी माना कि तुम्हारी कामना सही है, इसीलिए मैंने भी उसे सफल करने का प्रयत्न करने का वचन दिया था। फिर भी हम दोनों को बताये बिना तुमने ऐसा काम किया तो स्पष्ट है कि तुम्हें हमपर विश्वास नहीं। तब तो हमें यही समझना पड़ेगा कि तुम्हें अपनी शक्ति का पूर्ण परिचय है।"

"भैया, गलती हुई। यह सारी बात मुझ अकेली के मन में उत्पन्न हुई और मुझ अकेली से ही यह काम हुआ है, इससे मैं समझती थी कि किसी को पता न लगेगा।"

"द्रोह, अन्याय कितने ही गुप्त रखे जायें वे जरूर किसी-न-किसी तरह से प्रकट हो ही जाते हैं। अभी थोड़ी देर पहले उस वामशक्ति पण्डित के यहाँ जो गयी सो क्या तुमने समझा कि मुझे मालूम नहीं हुआ? घर में किसी को बताये बिना वहाँ जाने का ऐसा कौन-सा काम आ पड़ा था?"

मरियाने दण्डनायक ने चकित होकर पत्नी की ओर देखा जो भाई के इन सवालों से मर्माहत-सी होकर सोच रही थी कि भाग्य ने उसे झूठ बोलने से बचा लिया, नहीं तो भाई के मन में अपनी बहिन के प्रति कौन-सी भावना उत्पन्न होती। मगर लगता है, मेरे ही भाई ने मेरे पीछे कोई गुप्तचर तैनात कर रखे हैं। पोय्सल राज्य के महादण्डनायक की पत्नी और प्रधान गंगराज की बहिन होकर भी इस तरह सूक्ष्म गुप्तचरी की शिकार हुई तो मेरा गौरव ही कहाँ बचा। उसे सूझा नहीं कि अब क्या उत्तर दे, सर झुकाकर बैठ गयी।

"क्यों चामू, कुछ बोली नहीं, चुप क्यों बैठी हो, मनुष्य की दृष्टि सदा आगे-आगे रहती है, अपने ही पद-चिन्हों पर नहीं जाती। क्यों यह सब कर रही हो, तुम पर किसी दुष्ट ग्रह का आवाहन हुआ है क्या?"

"आप ही यह निर्णय करें कि क्या हुआ है, भैया। अपनी बच्चियों की कसम खाकर कहती हूँ, मेरी एक बात सुनो। मेरी बच्चियों की प्रगति में कुछ बाधाएँ उपस्थित होने की सम्भावनाएँ दिख रही हैं। इन बाधाओं से अपनी बच्चियों की रक्षा मेरा कर्तव्य है। केवल यही एक कारण है कि मैंने जो भी किया, किया है।"

"नहीं चामू, सभी छोटी-मोटी बातों के लिए बच्चियों की कसम मत खाओ। तुम्हारी जानकारी के बिना ही तुम्हारे मन में असूया ने घर कर लिया है। वह तुम्हें नचा रही है और भटका रही है, बच्चियों को शापग्रस्त क्यों बनाती हो।"

"तो मतलब यह कि तुम्हें मेरी कठिनाई मालूम ही नहीं है।"

"तुम्हारी कठिनाई क्या है, बताओ, वह भी सुनता हूँ।"

"तुम्हें मालूम ही है कि मैं अपनी बड़ी लड़की का विवाह राजकुमार के साथ करना चाहती हूँ। तुमने भी कहा है कि मेरी इच्छा गलत नहीं। है न?"

"अब भी तो यही कह रहा हूँ। अकेली तुम ही क्यों, इस दुनिया की कोई माता अपनी लड़की के विषय में ऐसी आशा अवश्य ही कर सकती है। इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है।"

"तो मतलब यह कि हमारे पटवारी कालम्मा की पत्नी भी अपनी लड़की कालव्वे को महारानी बनाने की चाह रख सकेगी?"

"कोई भी ऐसी आशा कर सकती है। परन्तु सबकी आशाएँ सफल नहीं हो सकेंगी।"

"तो क्या आप कहेंगे कि पटवारी की पत्नी की भी ऐसी आशा सही है?"

"जरूर। परन्तु इतना अवश्य है कि इसके लिए राज-परिवार की स्वीकृति मिलना या न मिलना अनिश्चित है।"

"स्वीकृति देंगे, ऐसा मानना ठीक होगा?"

"स्वीकार करें तो ठीक अवश्य है।"

"शायद इसीलिए हेग्गड़ती ने यह षड्यन्त्र रचा है। भैया, मेरे मन में जो है उसे स्पष्ट बताये देती हूँ। वह सही है या गलत इसका निर्णय कर लेना। मालूम नहीं तुम जानते हो या नहीं कि बलिपुर की हेग्गड़ती अपनी बेटी का विवाह छोटे राजकुमार से करने के मौके की प्रतीक्षा कर रही है।"

"ऐसा है क्या, पहले तुमने कहा था कि जिसे मैं अपना दामाद बनाना चाहती हूँ, उसे ही वह अपना दामाद बनाना चाहती है? अब तुम जो कह रही हो वह एक नयी ही बात है।"

"हाँ, कैसे भी हो, मुझे भी साथ ले लो की नीति है उस हेग्गड़ती की।"

"माने?"

"माने तो स्पष्ट हैं। बड़े राजकुमार ने हमारी पद्मला को पसंद किया है, यानी अब उसकी लड़की का विवाह बड़े राजकुमार से तो हो नहीं सकता, यही सोचकर अब यह नया खेल शुरू किया है उसने, जिसका लक्ष्य बहुत दूर तक है।"

"तो मतलब यह हुआ कि तुम्हें ऐसी बहुत-सी बातें मालूम हैं जो हम भी नहीं जानते। यह नया खेल क्या है?"

"भैया, वह खेल एक तन्त्र ही नहीं, बहुत बड़ा षड्यन्त्र भी है, बल्कि राजद्रोह भी है।"

"यह क्या मनमाने बोल रही हो, बहिन, राजद्रोह कैसे है?"

"तो यह तात्पर्य हुआ कि मेरे मालिक ने सारी बातें आपको बतायी ही हैं।" कहती हुई चामव्वे ने पति मरियाने दण्डनायक की ओर देखा जिसने उनसे नजर बचाकर चुप्पी साधी। उसे लगा कि अब परिस्थिति उसके अनुकूल बन रही है। उसे कुछ धीरज हुआ। उसने कुछ नये उत्साह से बातें शुरू कीं।

जा सकता है। सदा याद रखो कि अपनी गलती स्वीकार करने में ही वड़प्पन है।"

"अच्छा भैया, जो तुम कहोगे वही करूँगी, अपनी लड़की के लिए और उसके श्रेय के लिए नहीं करूँगी। परन्तु इस वारे में राजमहल में जो हुआ वह मुझे वता सकते है ?"

"जितना वताना चाहिए, उतना तो वता दिया है। अव और वताने की कोई वजह नही।"

"अगर वह मालूम हो जाए तो आइन्दा ध्यान रख सकूँगी कि वहाँ जाने पर कैसा व्यवहार करूँ।"

"वही तो अव तुम्हें करना नहीं चाहिए। तुम जैसी रही वैसी रहना सीखो। कोई खास वात हो तो मैं उसकी सूचना दूँगा। आइन्दा तुम स्वतन्त्र रूप से कुछ करोगी तो मैं ही तुम्हारे सम्बन्ध तुड़वाने मे अगुआ वनूँगा, समझी ?"

चामव्वे को कोई दूसरा चारा नही था, हाँ, कहना ही पड़ा।

नगराज चला गया। चामव्वा सोचने लगी कि उसकी अपनी स्वतन्त्रता पर कैसा वन्धन लग गया।

"एक शिल्पी को इतने विपयों का ज्ञान क्यों अनिवार्य है ?" विट्टिदेव ने सहज ही पूछा, एक वार शिल्पी दासोज से वास्तु-शिल्प के अनेक विपयों पर चर्चा के दौरान। वलिपुर के केदारेश्वर एव ओंकारेश्वर मन्दिरों का शिल्पी यही दासोज था। उसके पिता रामोज ने ही उसे शिल्प शिक्षण दिया था। वैद्यशास्त्र, संगीतशास्त्र, नृत्य-शास्त्र, चित्रकला, वास्तुशिल्प, आदि में तो पूर्ण पाण्डित्य जरूरी था ही, वास्तव में, मन्दिर-निर्माण के लिए आगम शास्त्र और पुराणेतिहासों का अच्छा परि-चय भी आवश्यक था। विट्टिदेव नहीं समझ सका कि एक शिल्पी को इतने विपयों का ज्ञाता क्यों होना चाहिए।

"इन सवकी जानकारी न हो तो कला से जिस फल की प्राप्ति होनी चाहिए वह नही हो सकती। प्रतिमा-लक्षण निर्देश करने के कुछ क्रमवद्ध सूत्र हैं। वे मानव-देह की रचना के साथ मेल खाते हैं, यद्यपि मानव मानव में लम्वाई-मुटाई आदि मे भिन्नता होने पर भी प्रतिमा के लिए एक निश्चित आकार निर्दिष्ट है। प्रति-मेय के पद आकार-प्रकार, वेप-भूपा, आसन-मुद्रा, परिकर-परिवेश आदि की व्यापकता की दृष्टि से प्रतिमा का निर्माण करनेवाले को चित्र, नृत्य, संगीत आदि का शास्त्रीय ज्ञान होना ही चाहिए। इस सन्दर्भ में विष्णु-धर्मोत्तर पुराण का निर्देश

विशेप महत्त्व रखता है।"

"मतलब यह हुआ कि कला सौन्दर्योपासना का ही साधन है।" विट्टिदेव ने अपना निप्कर्ष निकाला।

"सौन्दर्य तो मूलतः है ही, परन्तु एक आदर्श किन्तु मनोहारी प्रतिमा की परिकल्पना सत्य से वाहर नहीं होनी चाहिए। हमारे देश में धर्म ही सभी शास्त्रों का मूल आधार है, प्रतिमा-निर्माण कला का भी, इसलिए कला में प्रतिविम्बित होने के लिए धर्म को सत्यपूत होना चाहिए, उसमें सौन्दर्य का भी सम्मिलन होना चाहिए।"

"ऐसी एक प्रतिमा का उदाहरण दे सकते हैं?" विट्टिदेव जल्दी से तृप्त होने-वाला न था।

"राजकुमार ने वेलुगोल में वाहुवली स्वामी का दर्शन किया होगा?" दासोज ने खूब ही उदाहरण दिया।

"हाँ, किया है।"

"वह प्रतिमा वास्तविक मानव से दसगुनी ऊँची है, है न?"

"हाँ।"

"फिर भी वह मूर्ति कहीं भी, किसी दृष्टि से असहज लगती है?"

"नहीं, वह सभी दृष्टियों से भव्य लगती है।"

"वस, उसकी इसी भव्यता में कला निहित है।"

"उसकी मुखाकृति जो एक अवोध वच्चे-सी निर्मल, मनोहर हँस-मुख वन पड़ी है उसीमें तो कला है। वह मूर्ति यथाजात वालक की भाँति दिगम्वर अवस्था की है। परन्तु उसकी नग्नता में असह्यता नहीं, सत्यशुद्धता है, जिससे सिद्ध होता है कि कला सत्यपूत और सुन्दर है।"

"वाहुवली की उस मूर्ति का आकार मानव-प्रमाण होता तो वह और भी अधिक सत्यपूत और सुन्दर न हुई होती? उस ऊँचाई पर वैठकर काम करनेवाला शिल्पी यदि नीचे गिरता तो क्या होता?"

"नहीं, क्योंकि कलाकार का एक अनिवार्य लक्षण निर्भय होना भी है, डर-पोक कला की साधना नहीं कर सकता। वाहुवली मानव होने पर भी अतिमानव थे, देव-मानव थे, उनके हृदय की भाँति उनका शरीर भी अतिविशाल था। उसी की कल्पना कलाकार की छैनी से इस विशालरूप मूर्ति के रूप में साकार हुई है। वास्तव में कलाकार की कल्पना संकुचित नहीं, विशाल होनी चाहिए, उच्च-स्तरीय होनी चाहिए। हमारे मन्दिर इसी वैशाल्य और औन्नत्य के प्रतीक हैं।"

"इतना विशाल ज्ञान अनिवार्य है एक शिल्पी को?" विट्टिदेव ने आश्चर्य व्यक्त किया।

"इसमें चकित होने की क्या बात है?"

"यह कि इतना सब सीखने के लिए तो सारी आयु भी पर्याप्त नहीं होगी।"

"सच है, परन्तु हमारे समाज की रचना ऐसी है कि यह सब थोड़े समय में भी सीखना आसान है क्योंकि बहुत हद तक रक्तगत होकर ज्ञान संस्कार बल से प्राप्त रहता ही है। इसी कारण इन कुशल कलाओं के लिए आनुवंशिक अधिकार प्राप्त है; शिल्पी का बेटा शिल्पी होगा, गायक का पुत्र गायक, शास्त्रवेत्ता का पुत्र शास्त्रवेत्ता और योद्धा का पुत्र योद्धा ही होगा। इसी तरह, वृत्ति-विद्या भी रक्तगत होने पर जिस आसानी से सीखी जा सकती है उस आसानी से अन्यथा नहीं सीखी जा सकती, एक कुम्हार के बेटे को शिल्पी या शिल्पी के पुत्र को योद्धा या वैद्य बेटे को संगीतज्ञ बनाने के माने है उसके मस्तिष्क पर बोझ लादना, एक असफल प्रयास।"

"संस्कारों से संचित ज्ञान-धन को निरर्थक नहीं होने देने, और मस्तिष्क की क्रियाशील शक्तियों का भी दुरुपयोग या अपव्यय नहीं होने देने से हमारे देश में आनुवंशिक वृत्ति विद्यमान है! इसी कारण प्रगति करती हुई कला यहाँ नित नवीन रूप और कल्पना धारण कर विशेष परिश्रम के बिना भी आगे बढ़ी है। अब जिस तरह, राजकुमार ने राज-शासन, शस्त्र-संचालन आदि में निपुणता रक्तगत संस्कार से पायी है उसी तरह हमारे चावुण ने भी शिल्पकला में निपुणता पायी है। मेरे बचपन में पिताजी कहा करते थे कि तुम मुझसे भी अच्छा शिल्पी बनोगे। वही धारणा मुझे अपने लड़के चावुण के बारे में है। जन्म से उसने छेनी-हथौड़े की आवाज सुनी है, पत्थर; छेनी, हथौड़ा, मूर्ति और चित्र देखे है, इसीलिए रूपित करने का अवसर मिलते ही उसकी कल्पना सहज ही प्रस्फुटित होती है। परन्तु आप अगर इस तरह का प्रयोग करना चाहे तो...।"

बिट्टिदेव ने बीच ही में कहा, "वह असाध्य है, यह कहना चाहते है न आप ?"

"यह तो नहीं कहता कि वह असाध्य है, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वह कष्टसाध्य है। कुछ लोगों को शायद असाध्य भी हो सकता है, जैसे कि हमारे चावुण को बहुत करके शस्त्रविद्या असाध्य ही होगी। साराश यह कि विद्या आनुवंशिक है, परम्परा-प्राप्त है और [illegible] एक आत्म[illegible] प्राप्त होती है। मेरी ही बातें अधिक [illegible] तृप्ति आप उनसे विचार-विमर्श कर सकते [illegible] कवि[illegible] है,

के हाथ भयंकर तलवार के जौहर भी दिखाते थे।" कवि नागचन्द्र ने कहा।

"हमारी यह अम्माजी भी नृत्य और शस्त्र-विद्याओं में एक साथ निपुण वन सकती है। शायद इस तरह के अपवादों का कारण भी पूर्व-संचित संस्कार हो सकता है।"

"हमारे राजकुमार ऐसे ही अपवाद के एक उदाहरण वन सकते हैं। उनके व्यूह-रचना के चित्र देखने पर ऐसा लगता है कि युद्ध-क्षेत्र ही सामने प्रत्यक्ष दिख रहा है।" सिंगिमय्या ने कहा।

अव वातों का रुख प्रशंसा की ओर वढ़ता देख विट्टिदेव और शान्तला को कुछ संकोच होने लगा। विट्टिदेव ने तो पूछ ही लिया, "इस तरह वड़ों और छोटों को एक ही तराजू पर तोलना कहाँ तक उचित है?"

"प्रशंसा से फूलकर खुश होनेवालों की प्रगति होती यह कहनेवाले गुरु ही प्रशंसा करने लगें तो वह वास्तविक रीति का अपवाद होगा।" शान्तला ने कहा।

वात का रुख वदलने के ख्याल से विट्टिदेव ने पूछा, "दासोजाचार्यजी, शिल्पी वनना मेरे लिए असाध्य कार्य है, मानता हूँ, परन्तु शिल्पशास्त्र सम्वन्धी ज्ञान पाना तो मुझे साध्य हो सकता है। इसीलिए इस शास्त्र से सम्वन्ध रखनेवाले ग्रन्थ कौन-कौन है, यह वताने की कृपा करें, कोई हर्ज न हो तो।"

"कोई हर्ज नही। गंगाचार्यजी इन सव वातों को अधिकृत रूप से वता सकते है।" दासोज ने कहा।

"इन कवि-द्वय से हमारे ज्ञानार्जन में विशेष सहायता मिली है, तुलनात्मक विचार करने की शक्ति भी हममें आयी है। उसी तरह से आप दोनों हमें विद्यादान करके शिल्पशास्त्र का ज्ञान कराएँ तो हमारी वड़ी मदद होगी।" विट्टिदेव ने विनीत भाव से निवेदन किया।

"जो आज्ञा। वलिपुर शिल्प का आकर है। यहाँ के मन्दिर, वसति, विहार आदि का क्रमवद्ध रीति से प्रत्यक्ष अनुशीलन करते हुए वे अपनी जानकारी के अनुसार समझाएँगे। इससे हमारा ही फायदा होगा, नुकसान नहीं होगा। जो कुछ मैंने सीखा जाना उसका पुनरावर्तन होगा।" दासोज ने कहा।

वात वातों में ही खतम नहीं हुई, उसने कार्यरूप धारण किया। फलस्वरूप दूसरे दिन से ही प्रातःकाल के दूसरे पहर से देव-मन्दिरों के दर्शन का कार्यक्रम निश्चित हुआ। दोनों शिल्पी, तीनों विद्यार्थी, दोनों कवि, रेविमय्या और चावुण पंचलिंगेश्वर मन्दिर गये। अन्दर प्रवेश कर ही रहे थे कि कवि नागचन्द्र ने कहा, "लगता है, यह मन्दिर अभी हाल में वनकर स्थापित हुआ है।"

"इसकी स्थापना को साठ वर्ष वीत चुके हैं, फिर भी साफ-सुथरा रखा जाने और अभी हाल में वादिरुद्रगण लकुलीश्वर पण्डितजी द्वारा ख़ुद जीर्णोद्धार कराने

"इसमें चकित होने की क्या बात है?"

"यह कि इतना सब सीखने के लिए तो सारी आयु भी पर्याप्त नहीं होगी।"

"सच है, परन्तु हमारे समाज की रचना ऐसी है कि यह सब थोड़े समय में भी सीखना आसान है क्योंकि बहुत हद तक रक्तगत होकर ज्ञान संस्कार बल से प्राप्त रहता ही है। इसी कारण इन कुशल कलाओं के लिए आनुवंशिक अधिकार प्राप्त है; शिल्पी का बेटा शिल्पी होगा, गायक का पुत्र गायक, शास्त्रवेत्ता का पुत्र शास्त्रवेत्ता और योद्धा का पुत्र योद्धा ही होगा। इसी तरह, वृत्ति-विद्या भी रक्तगत होने पर जिस आसानी से सीखी जा सकती है उस आसानी से अन्यथा नहीं सीखी जा सकती, एक कुम्हार के बेटे को शिल्पी या शिल्पी के पुत्र को योद्धा या वैद्य बेटे को संगीतज्ञ बनाने के माने हैं उसके मस्तिष्क पर बोझ लादना, एक असफल प्रयास।"

"संस्कारों से सचित ज्ञान-धन को निरर्थक नहीं होने देने, और मस्तिष्क की क्रियाशील शक्तियों का भी दुरुपयोग या अपव्यय नहीं होने देने से हमारे देश में आनुवंशिक वृत्ति विद्यमान है! इसी कारण प्रगति करती हुई कला यहाँ नित नवीन रूप और कल्पना धारण कर विशेष परिश्रम के बिना भी आगे बढ़ी है। अब जिस तरह, राजकुमार ने राज-शासन, शस्त्र-संचालन आदि में निपुणता रक्तगत संस्कार से पायी है उसी तरह हमारे चावुण ने भी शिल्पकला में निपुणता पायी है। मेरे बचपन में पिताजी कहा करते थे कि तुम मुझसे भी अच्छा शिल्पी बनोगे। वही धारणा मुझे अपने लड़के चावुण के बारे में है। जन्म से उसने छेनी-हथौड़े की आवाज सुनी है, पत्थर; छेनी, हथौड़ा, मूर्ति और चित्र देखे हैं, इसीलिए रूपित करने का अवसर मिलते ही उसकी कल्पना सहज ही प्रस्फुटित होती है। परन्तु आप अगर इस तरह का प्रयोग करना चाहें तो…।"

बिट्टिदेव ने बीच ही में कहा, "वह असाध्य है, यह कहना चाहते हैं न आप?"

"यह तो नहीं कहता कि वह असाध्य है, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वह कष्टसाध्य है। कुछ लोगों को शायद असाध्य भी हो सकता है, जैसे कि हमारे चावुण को बहुत करके शस्त्रविद्या असाध्य ही होगी। सारांश यह कि विद्या आनुवंशिक है, परम्परा-प्राप्त है और उससे हमें एक आत्म-सन्तोष और तृप्ति प्राप्त होती है। मेरी ही बातें अधिक हो गयीं। दोनों कविश्रेष्ठ मौन ही बैठे हैं, आप उनसे विचार-विमर्श कर सकते हैं कि मेरा कथन ठीक है या नहीं।"

"सुखी समाज की रचना के लिए और कम परिश्रम से विद्या सीखने के लिए हमारी यह वंश-पारम्पर्य पद्धति बहुत ही अच्छी है, इसीलिए द्वेष-रहित भावना से सभी एक-दूसरे के पूरक होकर पनप रहे हैं। परन्तु सबके अपवाद भी होते ही हैं। सुनते हैं कि सुन्दर और श्रेष्ठ काव्यरचना में सर्वश्रेष्ठ स्थान पानेवाले महाकवि पम्प

के हाथ भयंकर तलवार के जौहर भी दिखाते थे।" कवि नागचन्द्र ने कहा।

"हमारी यह अम्माजी भी नृत्य और शस्त्र-विद्याओं में एक साथ निपुण बन सकती है। शायद इस तरह के अपवादों का कारण भी पूर्व-संचित संस्कार हो सकता है।"

"हमारे राजकुमार ऐसे ही अपवाद के एक उदाहरण बन सकते हैं। उनके व्यूह-रचना के चित्र देखने पर ऐसा लगता है कि युद्ध-क्षेत्र ही सामने प्रत्यक्ष दिख रहा है।" सिंगिमय्या ने कहा।

अब बातों का रुख प्रशंसा की ओर बढ़ता देख बिट्टिदेव और शान्तला को कुछ संकोच होने लगा। बिट्टिदेव ने तो पूछ ही लिया, "इस तरह बड़ों और छोटों को एक ही तराजू पर तोलना कहाँ तक उचित है?"

"प्रशंसा से फूलकर खुश होनेवालों की प्रगति होती यह कहनेवाले गुरु ही प्रशंसा करने लगें तो वह वास्तविक रीति का अपवाद होगा।" शान्तला ने कहा।

बात का रुख बदलने के ख्याल से बिट्टिदेव ने पूछा, "दासोजाचार्यजी, शिल्पी बनना मेरे लिए असाध्य कार्य है, मानता हूँ, परन्तु शिल्पशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान पाना तो मुझे साध्य हो सकता है। इसीलिए इस शास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाले ग्रन्थ कौन-कौन हैं, यह बताने की कृपा करें, कोई हर्ज न हो तो।"

"कोई हर्ज नहीं। गंगाचार्यजी इन सब बातों को अधिकृत रूप से बता सकते हैं।" दासोज ने कहा।

"इन कवि-द्वय से हमारे ज्ञानार्जन में विशेष सहायता मिली है, तुलनात्मक विचार करने की शक्ति भी हममें आयी है। उसी तरह से आप दोनों हमें विद्यादान करके शिल्पशास्त्र का ज्ञान कराएँ तो हमारी बड़ी मदद होगी।" बिट्टिदेव ने विनीत भाव से निवेदन किया।

"जो आज्ञा। बलिपुर शिल्प का आकर है। यहाँ के मन्दिर, बसति, विहार आदि का क्रमबद्ध रीति से प्रत्यक्ष अनुशीलन करते हुए वे अपनी जानकारी के अनुसार समझाएँगे। इससे हमारा ही फायदा होगा, नुकसान नहीं होगा। जो कुछ मैंने सीखा जाना उसका पुनरावर्तन होगा।" दासोज ने कहा।

बात बातों में ही खतम नहीं हुई, उसने कार्यरूप धारण किया। फलस्वरूप दूसरे दिन से ही प्रातःकाल के दूसरे पहर से देव-मन्दिरों के दर्शन का कार्यक्रम निश्चित हुआ। दोनों शिल्पी, तीनों विद्यार्थी, दोनों कवि, रेविमय्या और चावुण पंचलिंगेश्वर मन्दिर गये। अन्दर प्रवेश कर ही रहे थे कि कवि नागचन्द्र ने कहा, "लगता है, यह मन्दिर अभी हाल में बनकर स्थापित हुआ है।"

"इसकी स्थापना को साठ वर्ष बीत चुके हैं, फिर भी साफ-सुथरा रखा जाने और अभी हाल में वादिरुद्रगण लकुलीश्वर पण्डितजी द्वारा खुद जीर्णोद्धार कराने

से यह नवस्थापित लग रहा है।" बोकिमय्या की ओर देखते हुए दासोज ने कहा और उनसे पूछा, "कविजी, आपको कुछ स्मरण है, इस मन्दिर में देवता की प्रतिष्ठा कब हुई?"

बोकिमय्या ने कहा, "युवनाम संवत्सर में संक्रान्ति के दिन, इतना स्मरण है।"

चावुण ने फौरन कहा, "शालिवाहन शक नौ सौ सत्तावन के युव संवत्सर में पूस सुदी पूर्णिमा को इतवार के दिन यहाँ उमा-महेश्वर की प्रतिष्ठा हुई।"

"शिल्पीजी, आपके लड़के की स्मरण-शक्ति बहुत अच्छी है।" कहते हुए कवि नागचन्द्र ने चावुण की पीठ थपथपाकर कहा, "अपने वंश की कीर्ति बढ़ाओ, बेटा।"

"उसके दादा ने जिन मन्दिरों का निर्माण किया है, उन सबकी पूरी जानकारी उसे है। सदा वह उसी ध्यान में मगन रहता है। चलिए।" उन्होंने मन्दिर की परिक्रमा में प्रवेश किया। उनके पीछे सब और सबके पीछे चावुण चल रहा था। शायद उसे संकोच हो रहा था जिसे बिट्टिदेव ने भाँपकर अपने गुरु के कान में कुछ कहा।

कवि नागचन्द्र रुके और बोले, "चावुण साथ-साथ चलो, यों संकोचवश पीछे मत रहो।" टोली परिक्रमा कर गर्भगृह की ओर मुखनासी के पास खड़ी हुई। अर्चना हुई। सब मुखमण्डप में बैठे। रविमय्या सामने के स्तम्भ से सटकर खड़ा हो गया।

कवि नागचन्द्र ने अपनी बगल में बैठे चावुण से पूछा, "यह सपरिवार उमा-महेश्वर की मूर्ति गढ़नेवाले शिल्पी कौन थे?"

"हमारे पिताजी बताते हैं कि गढ़नेवाले मेरे दादा हैं।" चावुण ने कहा।

बिट्टिदेव ने कहा, "मैं समझता था कि यहाँ लिंग की प्रतिष्ठा की गयी है।"

"वह है न। नीलकण्ठेश्वर मन्दिर में केवल लिंग ही है जो हरे पत्थर का बना है। शायद हमारे देश में यही एक हरे पत्थर का बना लिंग है। ऐसा अन्यत्र कहीं नहीं, केवल यहीं है, ऐसा लगता है।" दासोज ने बताया।

"तब तो यह आश्चर्य भी है, और खास विशेषता भी है। क्योंकि जहाँ तक मैं जानता हूँ समूचे भारतवर्ष में लिंग काले पत्थर या संगमरमर से या स्फटिक शिला से ही बने हैं।" कवि नागचन्द्र ने कहा।

"हमारा बलिपुर अन्य बातों में भी अपनी ही विशेषता रखता है। यहाँ हरे पत्थर का शिवलिंग तो है ही, यहाँ गण्ड-भेरुण्ड का देह-मानव भी है। इसके अलावा उमा-महेश्वर में भी एक वैशिष्ट्य है।" दासोज ने कहा।

"क्या वैशिष्ट्य है?" नागचन्द्र ने पूछा।

"राजकुमार को कोई विशेषता दिखायी दी?" दासोज ने पूछा।

"हाँ, कुछ विशेषता तो अवश्य है। आपसे सावधानी से पूछकर जानना चाहता था, यथावकाश। बैठे हुए महेश्वर की यह मूर्ति राज-ललितयुक्त है। उनकी बायीं जंघा पर उमा आसीन है। इतना ही नहीं, यहाँ महेश्वर का सारा परिवार दिखाया गया अपने-अपने वाहन समेत विनायक और कुमार स्कन्द हैं, वाहन नन्दी मित्र, कुबेर आदि भी निरूपित हैं। शिवजी के, मानव-जैसे एक ही सिर और दो ही हाथ हैं, यह सब तो ठीक है परन्तु महेश्वर की गोद में उनकी अर्धांगिनी देवी उमा को बिठाने के बाद भी उन्हें शिल्पी ने सम्पूर्ण पुरुष की तरह नहीं बनाया, इसका कारण समझ में नहीं आ रहा है। लगता है कि वह स्त्री-पुरुष के संयोग का प्रतीक है, शायद शिल्पी की ही कल्पना की यह विशेषता रही होगी।" बिट्टिदेव ने स्पष्ट किया।

"राजकुमार ने यह शिल्प जैसा समझा है वह सही है, परन्तु इसे स्त्री-पुरुष का संयोग समझने का कारण भी तो मालूम होना चाहिए, बता सकेंगे?" दासोज ने प्रश्न किया।

"इसके एक-दो कारण समझ में आते हैं। महेश्वर के दायें कान का कुण्डल पुरुषों का-सा है और बायें का स्त्रियों का-सा। अभय मुद्रा से युक्त रुद्राक्ष माला लिये दायाँ हाथ बलिष्ठ है जो पौरुष का प्रतीक है। परन्तु अर्धांगिनी की पीठ को सहारा देकर उसकी कमर को आवृत कर उनका बायाँ हाथ कोमल स्पर्श के लिए आवश्यक कोमलता से युक्त है। मेरा समझना सही है या नहीं, मैं कह नहीं सकता। कोई और विशेषता हो जो मेरी समझ में नहीं आयी हो तो समझाने की कृपा करें।" बिट्टिदेव ने नम्रता से उत्तर भी दिया। बोकिमय्या और शान्तला को राजकुमार की शिल्प-कला की सूझ-बूझ बहुत पसन्द आयी।

"राजकुमार की कला-परिशीलन की सूक्ष्म दृष्टि बहुत प्रशंसनीय है। महेश्वर की गोद में उमा के दिखाये जाने पर आमतौर पर किसी का भी ध्यान महेश्वर के अर्द्धनारीत्व की ओर नहीं जाता जबकि यहाँ वह विशेषता है। यह विग्रह गढ़ते समय कितनी कल्पना और परिश्रम से काम लिया गया है, इस बारे में मेरे पिताजी कहा करते थे कि इसका वाम भाग तैयार करने के बाद ही महेश्वर का दायाँ भाग पुरुष रूप में गढ़ा गया। दोनों आधे-आधे भाग कोमलता और पौरुष के भिन्न-भिन्न प्रतीक होने पर भी समूचे विग्रह की एकरूपता में अवरोधक न बनें इस बात का इतना सफल निर्वाह करना कोई आसान काम नहीं था।" दासोज ने कहा।

"ऐसा क्यों किया? पहले महेश्वर की मूर्ति को गढ़ लेते और बाद में उमा का आकार गढ़ लेते तो?" नागचन्द्र ने पूछा।

"हाँ, जैसा आपने कहा, वैसा भी किया जा सकता था अगर यह मूर्ति दो अलग-अलग पत्थरों से गढ़ी गयी होती। काव्य में पद्य या वाक्य या शब्द बदले जा सकते हैं, शिल्प में अदला-बदली सम्भव नहीं।" दासोज का उत्तर था।

"तो क्या आपकी यह धारणा है कि काव्य-रचना शिल्प-कला की अपेक्षा आसान है ?" नागचन्द्र ने पूछा।

"न, न, कृति निर्माण में आपको जो सहूलियतें और स्वातन्त्र्य है वह हमें नहीं है। एक शब्द भी ठीक नहीं जँचा तो उसे काटकर दूसरा लिख दिया। मगर हमारे काम में ऐसा नहीं, कोई एक अंश बिगड़ा तो सभी बिगड़ा, फिर तो शुरू से दूसरी ही मूर्ति बनानी होगी।" शुक्रनीति से उक्त प्रतिमा लक्षण का हवाला देकर विस्तार के साथ समझाया दासोज ने।

शान्तला और उदयादित्य मौन रहे। समय का पता ही न चला। भोजन का वक्त आने पर सब वहाँ से गये। रेविमय्या ने सबसे पीछे, गर्भगृह की ओर मुँह करके हाथ जोड़कर सिर झुकाकर प्रार्थना की, हे भगवन्, आपकी कृपा से इन दोनों बच्चों का जीवन तुम्हारी ही तरह द्वन्द्व-रहित हो।

रोज का कार्यक्रम यथावत् चलने लगा। चावुण बिट्टिदेव से एक साल बड़ा था। वंशानुगत ज्ञानार्जन की प्रवृत्ति उसमें प्रबल थी किन्तु उसके पिता ने जो सिखाया था उसके अलावा अन्य विषय सीखने की उसे सहूलियतें नहीं मिली थीं। संयोग से अब अन्य बालकों के साथ उसे भी साहित्य, इतिहास, व्याकरण आदि की शिक्षा प्राप्त करने की सहूलियत प्राप्त हुई। इसके फलस्वरूप उसके अन्तर्निहित संस्कार को एक नया चैतन्य प्राप्त हुआ। बहुत बड़े लोगों के सम्पर्क के फलस्वरूप संयम भी उसमें आया। बिट्टिदेव से कुछ घनिष्ठता हुई, जिससे धीरे-धीरे उनका शस्त्राभ्यास भी देखने का अवसर उसे मिला। अधिक समय तक अभ्यास न कर सकने वाले उदयादित्य के साथ बैठकर उन लोगों के अभ्यास को देखना उसका दैनिक कार्यक्रम बन गया। उसने शस्त्राभ्यास की इच्छा भी व्यक्त की परन्तु वह मानी नहीं गयी क्योंकि कोमल कला का निर्माण करनेवाली वे कोमल हस्तांगुलियाँ शस्त्राभ्यास के कारण कर्कशता पाकर कोमल-कला के लिए अनुपयुक्त हो जायेंगी, यह समझाकर उसके पिता दासोज ने ही मना कर दिया था। फिर भी वह शस्त्राभ्यास के ठौर पर आया करता और वहीं से शस्त्रास्त्र-प्रयोग की विविध भंगियों के चित्र बनाने लग जाता।

उदयादित्य ने इन चित्रों से उत्साहित होकर चावुण से शिल्प-कला, मन्दिर-निर्माण आदि में बहुत से विषयों का परिचय पाया। वह इस तरह से जो सीखता उसपर तनहाई में बैठकर शान्तला से विचार-विनिमय कर लेता। इस पर चावुण-उदयादित्य और उदयादित्य-शान्तला में अलग ही तरह का मेल-जोल बढ़ा।

उस दिन हेग्गड़ेजी के घर एक छोटी गोष्ठी का आयोजन था। बाहर कोई धूम-धाम न थी, घर के अहाते के अन्दर उत्साहपूर्ण कार्यकलाप चलते रहे। स्वयं युवरानीजी और राजकुमार भी वहाँ आये, इससे मालूम पड़ता था कि हेग्गड़े के घर में कोई विशेष कार्यक्रम होगा। वह शान्तला का जन्मदिन था। जब राजकुमार का जन्मदिन ही धूमधाम से नहीं मनाया गया तो अपनी बेटी का जन्मदिन हेग्गड़ेजी धूम-धाम से कैसे मनाते?

प्रातःकाल मंगल-स्नान, उपाहार आदि के बाद भोजन के समय तक किसी को कोई काम न था। जहाँ-तहाँ छोटी गोष्ठियाँ बैठी थीं। शान्तला, युवरानीजी और हेग्गडतीजी की। सिंगिमय्या, रावत और मायण की। बोकिमय्या और नागचन्द्र की। शिल्पी दासोज और चावुण नहीं थे। गंगाचारी अकेला क्या करे, इसलिए वह दोनों कवियों की गोष्ठी में ही आ बैठा।

दोनों राजकुमार एक जगह बैठे-बैठे ऊब गये। बिट्टिदेव ने रेविमय्या को बुलाकर उसके कान में कुछ कहा। वह चुपचाप वहाँ से खिसक गया। थोड़ी ही देर में बूतुग आया और बिट्टिदेव के कान में उसने कुछ कहा। बिट्टिदेव ने कहा, "ठीक" और बूतुग वहाँ से चला गया।

थोड़ी देर बाद बिट्टिदेव और उदयादित्य घर के अहाते में आये और वहीं प्रतीक्षा में खड़े बूतुग के साथ पिछवाड़े की अश्वशाला से होते हुए फुलवाड़ी में गये।

चारों ओर के सुगन्धित पत्र-पुष्पों की सुरभि से वह स्थान बड़ा मनोहर था। रेविमय्या वहाँ चमेली की लताओं के मण्डप के पास उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। बिट्टिदेव और उदयादित्य वहीं जा पहुँचे। बूतुग वहाँ से लौटकर घर के अन्दर चला गया।

लता-मण्डप के अन्दर बाँस के सुन्दर झुरमुट की चारों ओर चौकोर हरा-हरा कोमल घास का गलीचा था। रेविमय्या ने वहाँ बैठने को कहा तो बिट्टिदेव ने पूछा, "यहाँ क्या काम है रेविमय्या?"

"यहाँ रोशनी और हवा अच्छी है। और..." रेविमय्या कह ही रहा था कि वहाँ कहीं से स्त्रियों के खाँसने की आवाज सुनायी पड़ी। बात वहीं रोककर रेविमय्या छलाँग मारकर बाँसों के झुरमुट के पीछे छिप गया। उदयादित्य भी उसके साथ छिप गया। दासब्बे के साथ शान्तला आयी थी।

"रेविमय्या भी क्या जल्दी करता है? इधर ऐसा क्या काम है? माँ को अचानक किसी से काम से जाना पड़ जाये तो युवरानीजी अकेली रह जायेंगी। मुझे जल्दी जाना चाहिए।" यह शान्तला की आवाज थी।

"छोटे अप्पाजी का जी ऊब रहा था। इसलिए बुलाया है आपको।"

"कहाँ हैं वे?"

"बाँस के झुरमुट की उस तरफ।"

"इन्हें इधर धूप में क्यों बुला लाये, रेविमय्या ?"

"जगह सायेदार है, अम्माजी। घर के अन्दर उतना अच्छा नहीं लगेगा। इस-लिए ऐसा किया। गलती की हो तो क्षमा करें, अम्माजी।"

"गलती क्या, तुम्हारे विचार ही सबकी समझ में नहीं आते। कभी-कभी तुम्हारी रीति व्यावहारिक नहीं लगती। ओहो, छोटे अप्पाजी भी यहीं है।" वहीं उदयादित्य को भी देखकर शान्तला ने कहा। बिट्टिदेव की समझ में अब आया कि रेविमय्या ने तनहाई की परेशानी दूर करने के लिए क्या किया है।

उसका मन उत्साह से भर गया। शान्तला को सन्तोषपूर्ण स्वागत मिला, "पधारना चाहिए, छोटी हेग्गड़ती को।" कहते हुए जब बिट्टिदेव उठ खड़े हुए।

"मुझे यह सब पसन्द नहीं। राजकुमार आसीन हों।" कहती हुई वह सामने बैठने के ही इरादे से पीताम्बर ठीक से सँभालने लगी। बिट्टिदेव ने शान्तला को सीधा सामने देखा, जैसे पहले कभी देखा न हो और आज ही प्रथम बार देख रहा हो।

"बैठिए, क्या देख रहे हैं ?" कहकर वह अपनी पीठ की ओर देखने लगी तो बिट्टिदेव को हँसी आ गयी। शान्तला ने फौरन उसकी ओर मुड़कर पूछा, "क्यों क्या हुआ ?"

बिट्टिदेव ने उत्तर में सवाल ही किया, "छोटी हेग्गड़तीजी को उस तरफ क्या दिख रहा है जो इस तरह मुड़-मुड़कर देख रही है ?"

"राजकुमार कुछ आश्चर्य से जिधर देख रहे थे उधर ही मैं भी देखने लगी थी।"

"वह दृश्य अकेले मुझे ही दिखा था।"

"तो क्या जो आपको दिखा वह मुझे न दिखेगा।"

"हाँ, हाँ, जब दृष्टि-भेद हो तब ऐसा ही होता है।"

"अच्छा जाने दीजिए। आपकी बातों से यह स्वीकृति मिली कि मुझे मालूम होनेवाले अनेक विषय आपको भी मालूम नहीं पड़ते। अच्छा, अब आप बैठिए।"

मौका देखकर रेविमय्या, दासब्बे और उदयादित्य वहाँ से गायब हो चुके थे। बैठते हुए बिट्टिदेव ने इर्द-गिर्द देखकर पुकारा, "उदय, उदय। इधर चमेली के फूल चुन रहा हूँ।" दूर से उदयादित्य की आवाज सुन पड़ी।

कुछ देर तक दोनों की मौन दृष्टि हरी घास पर लगी रही।

वह सोच रही थी कि बुलाया इसलिए था कि अकेले बैठे-बैठे ऊब गये हैं। अब मौन होकर बैठ गये, इसके क्या माने ! दृष्टि बिट्टिदेव की तरफ रहने पर भी बात अन्दर-ही-अन्दर रह गयी थी। दायें हाथ के सहारे बैठी शान्तला ने ठीक बैठकर पैरों का स्थान बदला। पाजेब ने मौन में खलल पैदा कर दिया।

बिट्टिदेव की दृष्टि फौरन शान्तला पर पड़ी जो यही सोच रहा था कि बात की शुरुआत कैसे करें। वह बोला, "रावत मायण ने अपनी कहानी आपके गुरुजी को सुनायी है क्या ?"

"उसके बारे में जानना चाहकर भी मैंने गुरुजी से पूछना अनुचित समझा।"

"उस दिन रावत ने जो क्रोध प्रकट किया उससे लगा कि उन्होंने बहुत दुख सहा है।"

"दुख क्या सहा होगा, परन्तु दुख के बदले अगर क्रोध उत्पन्न हो तो मनुष्य शकुनि बन जाता है और जिसे क्रोध नहीं आता, वह पुरुष दुख का अनुभव करते हुए भी धर्मराज युधिष्ठिर बनता है।"

"तो तुम्हारा मतलब है कि मायण का क्रोध गलत है।"

"असली बात जाने बिना निर्णय कर नहीं कर सकते। पहले मायण की बात सुननी होगी और फिर उस स्त्री की भी। उसके बाद ही किसी निर्णय पर पहुँचना होगा।"

"तो फिर शकुनि और युधिष्ठिर की तुलना का कारण ?"

"मनुष्य क्रोध के फलस्वरूप मानवता खो बैठता है, यह बुजुर्गों का अनुभव है।"

"जो भी हो, उस कहानी को जानने के बाद अब उनके उस क्रोध का निवारण करना चाहिए।"

"उन्होंने हमारे गुरुवर्य से अपनी बात कही होगी तो वे उन्हें समझाये बिना न रहेंगे, बल्कि उन्हें सही दिशा में सोचने को प्रेरित भी करेंगे।"

"भोजन के लिए अभी देर है, वे सब चुपचाप बैठे भी हैं, रेविमय्या से कहला भेजें और उन्हें बुलवाएँ तो क्या गलत होगा ?"

"बड़ों को इस तरह बुलवाना ठीक नहीं होता।"

इनकी बातचीत पास में उस ओर स्थित लोगों को सुनायी दे रही थी। रेविमय्या ने दासब्बे को इशारे से पास बुलाया और कहा, "ये फल ले जाकर अपनी छोटी मालकिन को दे दो, वे चाहें तो केले के रेशे में पिरोकर एक गजरा भी तैयार करके दो। राजकुमार तुम्हारे साथ रहेंगे। मैं जल्दी लौटूंगा।"

दासब्बे केले का रेशा और कुछ सुगन्धित पत्ते अपने पल्ले में भरकर, उदयादित्य के साथ बिट्टिदेव और शान्तला के पास पहुँची।

बिट्टिदेव ने पूछा, "उदय, फूल चुन चुके न ?"

"हाँ।"

शान्तला ने कहा, "आइए, बैठिए।"

दासब्बे फूलों को घास पर रखकर एक ओर बैठ गयी। उदयादित्य शान्तला के पास जा बैठा।

बिट्टिदेव ने पूछा, "रेविमय्या कहाँ है ?"

"घर की ओर गया है, अभी आता ही होगा।" दासब्बे ने कहा, और फूल गूँथना शुरू किया। शान्तला ने उसका साथ दिया।

इस तरह फूलों को रेशे से गूँथना बिट्टिदेव और उदयादित्य ने पहली ही बार देखा था। फूल गूँथने में दासब्बे से तेज शान्तला की उँगलियाँ चल रही थीं जिससे यह काम बहुत आसान हो गया। बिट्टिदेव ने भी साथ देना शुरू किया लेकिन उससे न तो गाँठ लगी, न ही फूल गुँथ पाये बल्कि वे नीचे जा गिरे।

यह देखकर शान्तला बोली, "कहाँ तलवार पकड़नेवाले ये हाथ और कहाँ ये सुकोमल फूल ?"

"फूल की कोमलता ज्यों-की-त्यों बनाये रखनेवाले ये तुम्हारे हाथ तलवार भी पकड़ सकते हैं तो मेरे हाथ फूल नहीं गूँथ सकेंगे ?"

"यह कोई ब्रह्म-विद्या नहीं। सीखने पर ही यह कर सकोगे, परन्तु राजकुमार को यह सीखने की जरूरत ही क्या जबकि राजमहल में गजरा बनानेवालों के झुण्ड-के-झुण्ड इसी काम के लिए तैनात हैं।" शान्तला ने कहा।

"तो भी सीखना तो चाहिए ही, सिखा देंगी ?"

"हाँ, हाँ। उसमें क्या रखा है, अभी सिखा दूँगी। परन्तु सीखने के लिए राजकुमार को यहाँ मेरी बगल में बैठना होगा।" बिट्टिदेव तुरन्त उठा और उसकी बायीं ओर बैठ गया।

अपने हाथ का गजरा एक तरफ रखकर, उनके हाथ में केले का एक रेशा देकर तथा दूसरा अपने हाथ में लेकर वह समझाने लगी, "देखिए, यह रेशा बाएँ हाथ में यों पकड़िए और दाएँ हाथ की तर्जनी और मध्यम उँगली से डोरे को ऐसा घुमाव दीजिए।" बिट्टिदेव वैसा करने लगा तो वह फिर बोली, "न, इतनी दूर का घुमाव नहीं, यह डोरा फूल के बिलकुल पास होना चाहिए।"

उसके हाथ की तरफ देखते हुए भी बिट्टिदेव ने फिर वैसा ही किया। लेकिन शान्तला ने फिर टोका, "बाएँ हाथ के फूल रेशे के घुमाव के अन्दर धीरे से गूँथकर दाएँ हाथ की डोरी धीरे से थोड़ी कसना चाहिए। इससे फूल डोरे में बँध भी जाएँगे और मसलने भी नहीं पाएँगे।"

बिट्टिदेव ने डोरा कसते वक्त फूल कहीं गिर न जाये—इस डर से उसे बाएँ अँगूठे से दबाकर पकड़ा ही था कि तभी उसका कोमल डंठल टूट गया। फूल नीचे गिर गया तो, अपने हाथ का डोरा नीचे रख शान्तला 'यों नहीं, यों' कहती हुई बिट्टिदेव के हाथों को अपने हाथों से पकड़कर गुँथवाने लगी। तब उसे कुछ ज्यादा ही सटकर बैठना पड़ा। जिससे दोनों को कुछ आह्लादकर आनन्द हुआ। लगा कि ऐसे ही बैठे रहें और हाथों में हाथ रहें। लेकिन जैसे ही शान्तला को दासब्बे की उपस्थिति का अहसास हुआ तो वह तुरन्त उसका हाथ छोड़कर कुछ सरककर

बोली, "अब गूँथिए, देखूँ ज़रा !"

"एक-दो बार और हाथ पकड़कर गुँथवा दो न !" बिट्टिदेव ने कहा, जैसे उसे वहाँ शान्तला के सिवाय दूसरे कोई दिख ही नहीं रहे थे।

"हाँ, अम्माजी, राजकुमारजी का कहना ठीक है।" दासब्बे के सुझाव से बिट्टिदेव को कुछ संकोच-सा हुआ। लेकिन शान्तला का संकोच कुछ-कुछ जाता रहा। वह उसके पास सरक आयी और चार-पाँच फूल गुँथवाकर बोली, "अब आप कोशिश स्वयं करें।"

बिट्टिदेव ने कोशिश की। फूल मसलने नहीं पाये, टूटकर गिरे भी नहीं। हाँ, डोरे में उल्टे-सीधे बँध गये।

उसकी ओर संकेत करती हुई शान्तला बोली—

"ऐसे ही करते जाइए। अभ्यास से यह बनने लगेगा।"

"उदय तुम सीखोगे ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"नहीं भैया," उदयादित्य ने कहा। थोड़ी देर फिर मौन। फूल गूँथे जा रहे थे, गजरे बन रहे थे। अचानक उदयादित्य ही बोल उठा, "भैया, आज शान्तला का जन्मदिन है। जो गजरा तुम बना रहे हो उसे आज वहीं भेंट करो तो कितना अच्छा होगा !"

"क्या भेंट कर रहे हो ?" सिंगिमय्या की आवाज़ पर सबकी दृष्टि गयी। बिट्टिदेव ने अधबना गजरा वहीं रखकर उठने की कोशिश की।

"राजकुमार, आप बैठिए, आओ मायण। घर में बच्चों को न पाकर बहन ने देख आने को मुझसे कहा तो इधर चले आये। सब यहाँ हैं तो हमें चलना चाहिए।"

"बैठिए, माँ ने बुलाया है क्या, मामाजी !"

"नहीं, यों ही दर्यापत किया था।" और बैठते हुए कहने लगे, "अपना गजरे बनने का काम चलाये रखिए।"

मायण भी बैठ गया। शान्तला और दासब्बे ने अपनी बात आगे बढ़ायी।

"यह क्या, घर छोड़कर सब यहाँ आकर बैठे हैं !" सिंगिमय्या ने सवाल किया।

"यों ही बैठे-बैठे ऊब गये थे तो इधर चले आये। अब फूल चुनकर गजरे बना रहे हैं।" बिट्टिदेव ने उत्तर दिया और दासब्बे से पूछा, "रेविमय्या कहाँ गया, अभी तक नहीं आया !"

"उसे युवरानीजी ने किसी गाँव में काम पर भेजा है," उत्तर दिया सिंगिमय्या ने। इतने में उदयादित्य उठा, "मैं घर जाऊँगा।"

शान्तला ने कहा, "दासब्बे, जाओ, उन्हें घर तक पहुँचा आओ।" वे दोनों चले गये। मायण मौन बैठा था। सिंगिमय्या ने उसे छेड़ा, "क्यों मायण, आज गूँगे

की तरह बैठे हो ? बोलते नहीं ? कुछ कहो। तुम्हारा पुराना अनुभव ही सुन लें। मन तो बहलेगा।"

"हम क्या सुनायेंगे। किस्सा तो मारने-काटनेवाले सुना सकेंगे। मैं कवि होता तो अवश्य बड़े दिलचस्प ढंग से सही-झूठ सब नमक-मिर्च लगाकर किस्सा गढ़ता और सुनाता।" मायण ने कहा।

"अब जब यहाँ कवि कोई नहीं तो, तुम ही कुछ कहो।" सिंगिमय्या ने आग्रह किया।

मायण ने सिर खुजाते हुए कहा, "कुछ सूझता नहीं।"

शान्तला बोली, "आप ही कहिए, मामाजी।"

"राजकुमार ही कुछ कहें तो···" कहकर सिंगिमय्या ने बिट्टिदेव की ओर देखा।

"किस्सा-कहानी हम बालक आपस में कहें—यह तो ठीक है, मगर बड़ों के समक्ष यह सब ठीक लगेगा ?" बिट्टिदेव ने मानो शान्तला की तरफ से भी यह बात की।

कुछ क्षणों के लिए फिर मौन छा गया। कुछ देर बाद बिट्टिदेव ने ही पूछा, "इस गाँव के पश्चिम मे एक मानवाकार गण्ड-भेरुण्ड की स्थापना की गयी है, इसके पीछे कोई आशय है ?"

"बिना आशय किसी की स्थापना नहीं की जाती। कोई-न-कोई आशय अवश्य होगा।" बीच में ही मायण बोल उठा।

"क्यों रावतजी, इस बारे में आपको भी कुछ जानकारी है ?" बिट्टिदेव ने मायण से पूछा।

"मुझे अधिक तो मालूम नहीं, राजकुमारजी। परन्तु इसे जब कभी देखता हूँ, मेरे मन मे यह भावना जागती है कि दुरंगी चाल चलनेवाले पर कभी विश्वास मत रखो।" मायण ने कहा।

"दुरंगी चाल के क्या माने ? घोड़े की चालें कई तरह की होती हैं। तुरकी चाल, सरपट आदि-आदि। यही न आपका मतलब ?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"घोड़ा मनुष्य नहीं राजकुमारजी। रावत होने से मुझे घोड़े की सब चालें मालूम हैं। मैंने तो मानव के बारे में कहा है। बाहर कुछ और भीतर कुछ। मुँह में राम-राम, बगल में छुरी। इस तरह की रीति, यही दुरंगी चाल है।"

"यह गण्ड-भेरुण्ड खड़ा करनेवाले चामुण्डराय की विरुदावली में गण्ड-भेरुण्ड एक विरुद था, सुनते हैं। पीछे-पीछे क्या होता है या हो रहा है उसे वे प्रत्यक्ष देखकर सावधानी बरतते थे। गण्ड-भेरुण्ड की आँखें गिद्ध की-सी होती हैं, सुनते हैं। इसीलिए यह आगे और पीछे स्पष्ट दिखायी देने का प्रतीक है। ऐसा नहीं हो सकता क्या ?" शान्तला ने अपना मत व्यक्त किया।

"यह भी हो सकता है। पर मुझे जो लगा सो कैसे बताऊं।" [illegible]

"श्रवणबेलगोल में बाहुबली मूर्ति बनवानेवाले वही चामुण्डराय हैं न?" बिट्टिदेव ने पूछा।

"नहीं, वे अलग हैं और वे अलग हैं। वे [illegible] के [illegible] थे। इनके पूर्व कितने [illegible] के आश्रय में रहे [illegible]। [illegible] के राज्य-काल में थे। इनकी दृष्टि कितनी निर्मल थी, मन भी उतना ही विशाल। [illegible] के थे वे [illegible] थे। उनके [illegible] का मन्दिर [illegible] है, मालूम है न? इन चामुण्डराय का 'चावुण्डराय पुराण' [illegible] के द्वारा नहीं [illegible]। इतना ही नहीं, [illegible] के अपने [illegible] के [illegible] जैन, शैव, वैष्णव, वैदिक इन चारों मत-सम्प्रदायों के अनुयायियों के निवास के लिए गृह-निर्माण करानेवाले महानुभाव वही थे। उनका वह महान् आदर्श सार्वकालिक है। मेरे गुरुवर्य ने यही बताया है। उनकी समन्वय दृष्टि, सहनशीलतायुक्त विचार-विनिमय की रीति और मत-सहिष्णुता के बल पर [illegible]— सब सुखी जीवन के लिए उत्तम मार्ग हैं। गुरुवर्य ने यह बात बहुत स्पष्ट रूप से समझायी है।" शान्तला के हाथ में पकड़ा तब तक वैसा ही रुका रहा।

"परन्तु [illegible] की दृष्टि में इस दुरंगी चाल चलनेवालों के सम्बन्ध में अगर हुशियार रहने का संकेत है तो उसका कोई कारण भी होना चाहिए न?" बिट्टिदेव ने छेड़ा।

"राजकुमारजी का कहना ठीक हो सकता है। उस दिन राजकुमार के जन्म-दिन के अवसर पर सबकी बातों से इस मायण की बातें निराली ही रहीं।" सिंगिमय्या ने कहा।

"हाँ, हाँ, तभी तो उस दिन कविजी ने कहा था कि उसपर वे सुन्दर काव्य लिखेंगे।" बिट्टिदेव ने सुर-में-सुर मिलाया।

"आनन्द-मंगल के समय उस कड़वी बात को याद नहीं करनी चाहिए।" मायण हाथ न आया लेकिन सिंगिमय्या को भी वह ठीक जँचा, "अच्छा, यह बात और कभी कह लेना। आज कुछ और कहो!"

"धारानगरी पर विजय के बाद वहाँ आग लगाते वक्त हमारे प्रभु ने जो बुद्धिमानी दिखायी थी, उसका किस्सा सुनाऊँ?" मायण ने पूछा।

"वह किस्सा सबको मालूम है।" सिंगिमय्या बोले।

"मैं जो किस्सा बता रहा हूँ वह सबको मालूम नहीं। वह किस्सा अलग ही है। किस्सा युद्ध-रंग का नहीं। वह घटना शिविर में घटी थी। उस रात प्रभु के अंगरक्षक दल का उत्तरदायित्व मुझ पर था। कुछ और चार-पाँच लोग मेरे आज्ञानुवर्ती थे। आधी रात का समय था। प्रभु के शिविर के मुख्य द्वार पर मैं था। पूर्णिमा की रात थी वह। दूध-सी चाँदनी बिछी थी। तभी एक योद्धा वहाँ आया। किसी तरह के भय के बिना वह सीधा मेरे पास आकर खड़ा हो गया।

उसे देखते ही मुझे मालूम हो गया कि वैरी के दल का है। मैंने म्यान से तलवार निकाली। मुंह पर उँगली दबाकर वह मेरे कान में फुसफुसाया, 'मैं महाराज भोज-राज के ठिकाने का पता लगाकर आया हूँ। मैं तुम्हारी ही सेना का आदमी हूँ। लेकिन इस समाचार को पाने के लिए प्रभु से आज्ञप्त होकर शत्रुओं की पोशाक में आना पड़ा है।'

मैंने कहा, रात के वक्त किसी को अन्दर न आने देने की कड़ी आज्ञा है, तो वह बोला, 'परमार भोज को पकड़ना हो तो इसी रात को पकड़ना साध्य है। कल सुबह के पहले वह अन्यत्र चला जाएगा। मैं प्रभु का गुप्तचर हूँ। अब तुम मुझे अन्दर न जाने दोगे तो राजद्रोह का दण्ड भोगना होगा। इसलिए मुझे अन्दर जाने दो, यही दोनों के लिए अच्छा है। प्रभु के लिए भी यह हित में होगा।'

'प्रभु सो रहे है, उन्हें जगाया कैसे जाए ?' मैंने धीरे से पूछा।

'वे वास्तव में मेरी प्रतीक्षा में हैं, सोये नहीं होंगे।' उसने धीरे से उत्तर दिया।

'अगर यह बात निश्चित होती तो वे मुझसे नही कहते ?' मैंने फिर प्रश्न किया।

'उन्होंने सोचा होगा, कह दिया है।' उसके इस उत्तर पर मेरा मन बहुत असमंजस में पड़ गया। अन्दर जाने देना भी मुश्किल, न आने देना भी मुश्किल ! मैंने एक निश्चय किया। प्रभु की रक्षा करना मेरे लिए प्रधान है इसीलिए इस नवागन्तुक के पीछे, उसे बिना पता लगाये जाकर अन्दर के परदे के पास तलवार निकालकर तैयार रहूँगा। इसके पास तो कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं है। खाली हाथ आया है। परमार भोज और काश्मीर के हर्ष—दोनों के छिपकर रहने से प्रभु परेशान थे। अगर आज ही रात को भोज बन्दी बना लिया गया तो···? यह सब सोचकर मैंने कहा, 'तुम यहीं रहो, प्रभु जागते होंगे तो तुम्हें अन्दर चला जाने दूंगा।' परन्तु दूसरे ही क्षण, ऐसा लगा कि एक अपरिचित को अकेले अन्दर जाने देना ठीक नही। इसलिए मैंने फिर कहा, 'नहीं, तुम मेरे ही साथ आओ, प्रभु जाग रहे होंगे तो तुम अन्दर चले जाना, मैं बाहर ही रहूँगा। यदि सो रहे होंगे तो दोनों लौट आयेंगे।'

'तुम बड़े शक्की मालूम पड़ते हो।' वह फुसफुसाया तो मैं बोला, 'यह स्थान ही ऐसा है। प्रभु हम पर पूर्ण विश्वास रखकर निश्चिन्त है। ऐसे वक्त पर हमारी गैरसमझी के कारण कुछ अनहोनी हो जाए तो उसका जिम्मेदार कौन होगा ? इसलिए हम तो हर बात को तब तक सन्देह की ही दृष्टि से देखते हैं जब तक हमें विश्वास न हो जाए।'

'इतना सन्देह करनेवाले खुद धोखा खायेंगे।' कहकर उसने मुझे डराना चाहा।

'अब तक तो ऐसा नहीं हुआ है,' कहकर मैंने उसका हाथ पकड़ा और नकेल-लगे पशु की तरह उसे अन्दर ले आया। फिर हम द्वार के परदे के पास गये। उसमें एक छोटा-सा छेद था। उससे रोशनी पड़ रही थी। मैंने झाँककर देखा। प्रभु पलंग पर बैठे थे। इस नवागन्तुक की बात में कुछ सचाई मालूम पड़ी। मैंने कहा, 'ठीक है, तुम अन्दर जाओ, मगर जल्दी लौटना।' इस पर वह पूछने लगा, 'किस तरफ़ से जाना है?' इस पर मुझे फिर शंका हुई। लगा कि मैं ही पहले अन्दर जाऊँ और प्रभु की अनुमति लेकर तब इसे अन्दर भेजूँ—यही अच्छा होगा। वह आगे बढ़ ही रहा था कि मैंने उसे वहीं रोक दिया और घण्टी बजायी तो अन्दर से प्रभु ने पूछा, 'कौन है?'

'मैं हूँ मायण, एक व्यक्ति स्वयं को हमारा गुप्तचर बताता है और कहता है कि परमार भोज का पता लगाकर आया है, क्या सन्निधान के पास उसे भेजूँ?' मैंने पूछा।

'भेजो।'

आज्ञा हुई तो फौरन लौटा। भाग्य से वह वहीं खड़ा था। मैंने उससे कहा, 'जाओ, घण्टी है, उसे बजाना और बुलाने पर ही अन्दर जाना।' इतना सब होने के बाद मेरे मन में फिर भी सन्देह बना रहा। इसलिए उस छेद से देखने की इच्छा हुई। परन्तु वहाँ शिविर के मुख्य-द्वार की रक्षा की याद आयी, जहाँ पहरे पर कोई और नहीं था। तो बाहर दौड़ पड़ा। साथ के दूसरे व्यक्ति को बुलाकर वहाँ पहरे पर खड़ा किया। फिर मैं अन्दर आया और छेद से देखने लगा। मैं अपनी आँखों पर विश्वास न कर सका। मुझे लगा कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ। आँखें मलीं। फिर समझा, जाग रहा हूँ। फिर से एक बार छेद से देखा। मुझे लगा, मैंने जिसे अन्दर भेजा था वह पुरुष नहीं, कोई स्त्री है। मुझे मालूम ही नहीं था कि हमारे गुप्तचरों में स्त्रियाँ भी हैं।

'हाँ, आगे।' प्रभु के शब्द थे जो पलंग पर अटल बैठे थे। उनकी ध्वनि में आत्मीयता के भाव न थे। सन्देह और प्रश्न दोनों ही उससे व्यक्त हो रहे थे।

'प्रभुजी, मुझे क्षमा करें। मैं परमार भोज की तरफ़ की हूँ यह सत्य है। झूठ बोलकर अन्दर आयी हूँ। परन्तु इसमें धोखा देने का उद्देश्य नहीं। अनुग्रह की भिक्षा माँगने आयी हूँ। एक प्रार्थना है।' स्त्री रूप में उसकी आवाज़ मधुर थी, और रूप—वह भी अवर्णनीय। पुरुषोचित दाढ़ी-मूँछ आदि सब-कुछ अब नहीं थे। मैं सोच ही नहीं सका कि उस कराल बनावट के अन्दर इतना सुन्दर रूप छिपा रह सकता है! मुझमें कुतूहल जगा। यों तो मुझे ऐसा झाँककर देखना नहीं चाहिए था, लेकिन प्रभु की रक्षा का कार्य मेरा ही था। मुझे शंका उत्पन्न हो गयी थी। इसलिए ऐसा करना पड़ा। कुतूहलवश ही सही, मुझे वहीं देखते रहने के लिए बाध्य होकर खड़ा रहना पड़ा।

'हमारे लोगों की तरफ़ से कुछ बाधा हुई है क्या ?' प्रभु के इस प्रश्न पर वह बोली, 'नहीं, लेकिन धारानगर को यदि आग न लगायी गयी होती तो आपका व्यवहार आदर्श व्यवहार होता।' फिर प्रभु के कहने पर वह कुछ दूर एक आसन पर बैठ गयी तो प्रभु ने पूछा कि वह उनसे क्या चाहती है। लेकिन वह मौन रही। उसकी चंचल आँखों ने इधर-उधर देखा तो प्रभु ने उसे आश्वस्त किया। 'यहाँ डरने का कोई कारण नहीं। नि.संकोच कह सकती हो।'

'आपका वह पहरेदार···?'

उसकी शंका को बीच में ही काटा प्रभु ने, 'ऐसी कुबुद्धिवाले लोगों को हमारे शिविर के पास तक आने का मौक़ा ही नहीं। जो भी कहना चाहती हो, नि.संकोच कहो।' प्रभु के इन शब्दों से मुझे लगा कि किसी ने थप्पड़ मार दिया हो। वहाँ से चले जाने की सोची। परन्तु कुतूहल ने मुझे वहीं डटे रहने को बाध्य कर दिया।

'मैं एक बार देख आऊँ?' उसने पूछा।

'शंका हो तो देख आओ।' प्रभु का उत्तर था।

वह परदे की ओर गयी। मैं उसके आने से पहले ही आड़ में हो गया था। वह लौट आयी तो मैं फिर उसी छेद के पास जा खड़ा हुआ। अबकी वह उस आसन पर नहीं बैठी। सीधी प्रभु के पलंग की ओर गयी। उसका आँचल खिसक गया था। उसकी परवाह न करके वह आगे बढ़ गयी थी।

शायद प्रभु को उसका यह काम पसन्द नहीं आया था। वे उठ खड़े हुए और उसे पहले के ही आसन पर बैठने को कहा तो वह प्रभु के दोनों पैर पकड़कर चरणों के पास बैठ गयी और बोली, 'मुझे आसन नहीं, आपके पाणिग्रहण का भाग्य चाहिए।' प्रभु ने झुककर पैर छुड़ा लिये और उसे पीछे की ओर सरकाकर, खुद पलंग के पास गये और घण्टी बजायी।

मैंने भी दरवाज़े पर की घण्टी बजायी और अन्दर गया। इतने में वह स्त्री कपड़े सँभालकर आसन पर बैठ चुकी थी। प्रभु ने दूसरे तम्बू में ले जाने का आदेश देते हुए कहा, 'सहारा खोकर तकलीफ़ में फँसी यह स्त्री भेष बदलकर सहारा पाने आयी है। इसकी मर्यादा की रक्षा कर गौरव देना हमारा कर्तव्य है। इसलिए सावधान रहना कि कोई इसके पास न फटके। इसे तम्बू छोड़कर कहीं बाहर न जाने दें।' लेकिन वह स्त्री न हिली, डुली। मुझे भी कुछ नहीं सूझा कि क्या करना चाहिए। पहले उसे पुरुष समझकर हाथ पकड़कर बिना संकोच ले गया था, पर अब ऐसा करना उचित नहीं लगा। प्रभु की ओर प्रश्नार्थक दृष्टि से देखा तो वे उससे बोले, 'अब जाओ, सुबह आपको बुलाएँगे। तभी सारी बातों पर विचार करेंगे।'

वह उठ खड़ी हुई, [illegible] कुछ [illegible] प्रभु की ओर

देखकर कहने लगी, 'आप बड़ विचित्र व्यक्ति हैं ! मैं कौन हूँ यह जानने तक का कुतूहल नहीं जगा आप में ? मुझे विजितों का स्वप्न बनकर उनकी इच्छा के अनुसार लेकिन अपनी इच्छा के विरुद्ध परमारों के अन्तःपुर मे रहना चाहिए था। परन्तु अब अपनी इच्छा…'

किन्तु उसकी बात बीच ही में काटकर प्रभु ने कहा, 'जो भी हो, कल देखेंगे। अभी तो आप जाइए ही।' और मैं उसे दूसरे तम्बू में छोड़ आया। दूसरे दिन भोजनोपरान्त उसे प्रभु का दर्शन मिला। प्रभु ने मुझे आदेश दिया कि उसे चार अंगरक्षकों के साथ वहाँ पहुँचा आना जहाँ वह जाना चाहे। बाद में वह कहाँ गयी और उस दिन प्रभु ने उसकी क्या बातें हुईं—यह सब मालूम नही पड़ सका।"

"मैं भी शिविर में था। मुझे यह मालूम ही नहीं हुआ।" सिंगिमय्या ने कहा।

"यह बात चार-पाँच लोग ही जानते हैं। बाकी लोगों को उतना भी मालूम नहीं, जितना मैं जानता हूँ। पर प्रभु को तो सब कुछ मालूम है।" मायण ने बताया।

"प्रभु जानते हैं कि तुमने छिपकर कुछ देखा है?"

"हाँ जानते हैं। मैंने ही कहकर क्षमा माँग ली थी। प्रभु बड़े उदार हैं। कहा, 'तुमने कह दिया इसलिए तुम क्षमा करने योग्य हो।' मुझे अब की बार भी उनके साथ युद्ध-रंग में जाने की प्रबल इच्छा हुई थी। परन्तु प्रभु ने मुझे इधर आने का आदेश दिया तो दूसरा कोई चारा नही रहा। यहाँ रहने पर भी मुझे युद्धरंग की ही चिन्ता है। वहाँ से कोई समाचार मिला।" मायण ने पूछा।

"हम तक पहुँचाने जैसी कोई खबर नही मिली होगी। ऐसी कोई खबर आयी होती तो हेग्गड़ेजी हमें बताये बिना नही रहते।" सिंगिमय्या ने कहा।

शान्तला सारी घटना सुनने मे मग्न रही आयी, इसलिए गजरा वैसा-का-वैसा ही रह गया। बिट्टिदेव भी उसे सुनने में तल्लीन हो गया था। आगे बात किस ओर मुड़ती, पता नहीं। इतने मे रेविमय्या ने आकर कहा कि सबको बुलाया है, तो सब घर की ओर चल पड़े।

यथाविधि भोजन समाप्त हुआ। युवरानीजी ने शान्तला को एक पीताम्बर, वैसी ही एक चोली, और एक जोड़ी सोने के कंगन दिये।

माचिकब्बे ने अपना संकोच प्रदर्शित किया, "यह सब क्यों?"

"मांगलिक है। आशीर्वादपूर्वक दिया है। फिर यह रेविमय्या की सलाह है।" युवरानी ने कहा।

माचिकब्बे और शान्तला दोनों ने रेविमय्या की तरफ़ देखा। वह उनकी दृष्टि बचाकर दूसरी तरफ़ देखने लगा। उसने नहीं सोचा था कि युवरानीजी बीच

'हमारे लोगों की तरफ़ से कुछ बाधा हुई है क्या ?' प्रभु के इस प्रश्न पर वह बोली, 'नहीं, लेकिन धारानगर को यदि आग न लगायी गयी होती तो आपका व्यवहार आदर्श व्यवहार होता।' फिर प्रभु के कहने पर वह कुछ दूर एक आसन पर बैठ गयी तो प्रभु ने पूछा कि वह उनसे क्या चाहती है। लेकिन वह मौन रही। उसकी चचल आँखों ने इधर-उधर देखा तो प्रभु ने उसे आश्वस्त किया। 'यहाँ डरने का कोई कारण नहीं। निःसंकोच कह सकती हो।'

'आपका वह पहरेदार···?'

उसकी शंका को बीच में ही काटा प्रभु ने, 'ऐसी कुबुद्धिवाले लोगों को हमारे शिविर के पास तक आने का मौका ही नहीं। जो भी कहना चाहती हो, नि.संकोच कहो।' प्रभु के इन शब्दों से मुझे लगा कि किसी ने थप्पड़ मार दिया हो। वहाँ से चले जाने की सोची। परन्तु कुतूहल ने मुझे वहीं डटे रहने को बाध्य कर दिया।

'मैं एक बार देख आऊँ ?' उसने पूछा।

'शंका हो तो देख आओ।' प्रभु का उत्तर था।

वह परदे की ओर गयी। मैं उसके आने से पहले ही आड़ में हो गया था। वह लौट आयी तो मैं फिर उसी छेद के पास जा खड़ा हुआ। अबकी वह उस आसन पर नहीं बैठी। सीधी प्रभु के पलंग की ओर गयी। उसका आँचल खिसक गया था। उसकी परवाह न करके वह आगे बढ़ गयी थी।

शायद प्रभु को उसका यह काम पसन्द नहीं आया था। वे उठ खड़े हुए और उसे पहले के ही आसन पर बैठने को कहा तो वह प्रभु के दोनों पैर पकड़कर चरणों के पास बैठ गयी और बोली, 'मुझे आसन नहीं, आपके पाणिग्रहण का भाग्य चाहिए।' प्रभु ने झुककर पैर छुड़ा लिये और उसे पीछे की ओर सरकाकर, खुद पलंग के पास गये और घण्टी बजायी।

मैंने भी दरवाज़े पर की घण्टी बजायी और अन्दर गया। इतने में वह स्त्री कपड़े सँभालकर आसन पर बैठ चुकी थी। प्रभु ने दूसरे तम्बू में ले जाने का आदेश देते हुए कहा, 'सहारा खोकर तक़लीफ में फँसी यह स्त्री भेष बदलकर सहारा पाने आयी है। इसकी मर्यादा की रक्षा कर गौरव देना हमारा कर्त्तव्य है। इसलिए सावधान रहना कि कोई इसके पास न फटके। इसे तम्बू छोड़कर कहीं बाहर न जाने दें।' लेकिन वह स्त्री न हिली, डुली। मुझे भी कुछ नहीं सूझा कि क्या करना चाहिए। पहले उसे पुरुष समझकर हाथ पकड़कर बिना संकोच ले गया था, पर अब ऐसा करना उचित नहीं लगा। प्रभु की ओर प्रश्नार्थक दृष्टि से देखा तो वे उससे बोले, 'अब जाओ, सुबह आपको बुलाएँगे। तभी सारी बातों पर विचार करेंगे।'

वह उठ खड़ी हुई, मगर बढ़ी नहीं, कुछ सोचती रही। फिर प्रभु की ओर

देखकर कहने लगी, 'आप बड़े विचित्र व्यक्ति हैं ! मैं कौन हूँ यह जानने तक का कुतूहल नहीं जगा आप में ? मुझे विजितों का स्वप्न बनकर उनकी इच्छा के अनुसार लेकिन अपनी इच्छा के विरुद्ध परमारों के अन्तःपुर में रहना चाहिए था। परन्तु अब अपनी इच्छा···'

किन्तु उसकी बात बीच ही में काटकर प्रभु ने कहा, 'जो भी हो, कल देखेंगे। अभी तो आप जाइए ही।' और मैं उसे दूसरे तम्बू में छोड़ आया। दूसरे दिन भोजनोपरान्त उसे प्रभु का दर्शन मिला। प्रभु ने मुझे आदेश दिया कि उसे चार अंगरक्षकों के साथ वहाँ पहुँचा आना जहाँ वह जाना चाहे। बाद में वह कहाँ गयी और उस दिन प्रभु से उसकी क्या बातें हुईं—यह सब मालूम नहीं पड़ सका।"

"मैं भी शिविर में था। मुझे यह मालूम ही नहीं हुआ।" सिंगिमय्या ने कहा।

"यह बात चार-पांच लोग ही जानते हैं। बाकी लोगों को उतना भी मालूम नहीं, जितना मैं जानता हूँ। पर प्रभु को तो सब कुछ मालूम है।" मायण ने बताया।

"प्रभु जानते हैं कि तुमने छिपकर कुछ देखा है ?"

"हाँ जानते हैं। मैंने ही कहकर क्षमा माँग ली थी। प्रभु बड़े उदार हैं। कहा, 'तुमने कह दिया इसलिए तुम क्षमा करने योग्य हो।' मुझे अब की बार भी उनके साथ युद्ध-रंग में जाने की प्रबल इच्छा हुई थी। परन्तु प्रभु ने मुझे इधर आने का आदेश दिया तो दूसरा कोई चारा नहीं रहा। यहाँ रहने पर भी मुझे युद्धरंग की ही चिन्ता है। वहाँ से कोई समाचार मिला।" मायण ने पूछा।

"हम तक पहुँचाने जैसी कोई खबर नहीं मिली होगी। ऐसी कोई खबर आयी होती तो हेग्गड़ेजी हमें बताये बिना नहीं रहते।" सिंगिमय्या ने कहा।

शान्तला सारी घटना सुनने में मगन रही आयी, इसलिए गजरा वैसा-का-वैसा ही रह गया। बिट्टिदेव भी उसे सुनने में तल्लीन हो गया था। आगे बात किस ओर मुड़ती, पता नहीं। इतने में रेविमय्या ने आकर कहा कि सबको बुलाया है, तो सब घर की ओर चल पड़े।

यथाविधि भोजन समाप्त हुआ। युवरानीजी ने शान्तला को एक पीताम्बर, वैसी ही एक चोली, और एक जोड़ी सोने के कंगन दिये।

माचिकब्बे ने अपना संकोच प्रदर्शित किया, "यह सब क्यों ?"

"मांगलिक है। आशीर्वादपूर्वक दिया है। फिर यह रेविमय्या की सलाह है।" युवरानी ने कहा।

माचिकब्बे और शान्तला दोनों ने रेविमय्या की तरफ़ देखा। वह उनकी दृष्टि बचाकर दूसरी तरफ़ देखने लगा। उसने नहीं सोचा था कि युवरानीजी बीच

में उसका नाम लेंगी। उसे बड़ा संकोच हुआ।

राज्य की श्रेष्ठ-सुमंगली युवरानीजी निर्मल मन से स्वयं आशीर्वादपूर्वक मंगलद्रव्य देती हैं तो उसे स्वीकार करना मंगलकर ही है, यह मानकर शान्तला ने स्वीकार किया और युवरानीजी को सविनय प्रणाम किया।

युवरानी ने उसका सिर और पीठ सहलाकर आशीर्वाद दिया, "सदा सुखी रहो, बेटी। तुम्हारा भाग्य अच्छा है। यद्यपि भाग्य अच्छा होने पर भी सुबुद्धि रहती है, यह कहना कठिन है क्योंकि भाग्यवानों में भी असूया और कुबुद्धि सक्रिय हो जाती है। यह मैंने देखा है और इसकी प्रतिक्रिया का भी अनुभव मैंने किया है। उन्नत स्थिति पर पहुँचने पर तुम्हारा जीवन सहज करुणा से युक्त और असूया से रहित हो, तुम गुण-शील का आगार बनकर जिओ।"

शान्तला ने फिर एक बार प्रणाम किया, मानो बता रही थी कि आशीर्वाद, आज्ञा शिरोधार्य है। युवरानी ने उसके गालों को अपने हाथ से स्पर्श कर नजर उतारी और कहा, "ये चूड़ियाँ और यह पीताम्बर पहन आओ, बेटी।"

माँ की सहायता से वह सब पहिनकर लौटी तो बिट्टिदेव खुशी से फूला न समाया। क्योंकि वेणी में वही गजरा गुथा था जिसे उसने तभी सीखकर अपने हाथ से बनाया था। शान्तला ने फिर एक बार युवरानी के पैर छुए। फिर माता-पिता, मामा और गुरुओं के भी पैर छुए। बिट्टिदेव के भी पैर छूने लगी तो वह पीछे सरकता हुआ बोला, "न-न, मुझे क्यों?"

परन्तु उसके लिए सुरक्षित वह प्रणाम उसके कहने के पूर्व ही उसके चरणों में समर्पित हो चुका था।

पान-सुपारी का कार्यक्रम चला। युवरानी ने उस दिन पान देकर जो वादा कराया था, वह बिट्टिदेव और शान्तला को याद आ गया। उन दोनों ने अपने-अपने मन में उसे दोहराया। बिट्टिदेव ने अपने बायें हाथ की उँगली की अँगूठी पर दृष्टि डाली। शान्तला ने उस दिन बिट्टिदेव को तृप्त करने के लिए दिये हुए हार और पदक को छाती से लगा लिया।

किसी तरह की धूमधाम के बिना, घर तक ही सीमित शान्तला का जन्म-दिन समारम्भ-संपन्न हुआ। वहाँ उपस्थित सबके मन में शान्ति विराज रही थी। लोगों की दृष्टि कभी शान्तला की ओर तो कभी बिट्टिदेव की ओर जाती रही, मानो उनके अंतरंग की आशा की क्रिया यही दृष्टि हो।

श्रद्धा-निष्ठा से युक्त हेग्गड़े परिवार के साथ युवरानी और राजकुमारों ने बलिपुर में सुव्यवस्थित रूप और सुख-शांति से महीनों पर महीने गुजारे। सप्ताह-पखवारे में एक बार युद्ध-शिविर से समाचार मिल जाता था। बिट्टिदेव और शान्तला की मैत्री गाढ़ से गाढ़तर होती जा रही थी। उदयादित्य और शान्तला में, समवयस्कों में सहज ही होनेवाला निष्कल्मष प्रेम स्थायी रूप ले चुका था।

युवरानी जी और हेग्गड़ती के बीच की आत्मीयता देखनेवालों को चकित कर देती थी। शिक्षकगण अपने शिष्यों की सूक्ष्मग्राही शक्ति से आश्चर्यचकित ही नहीं अपितु तृप्त होकर यह कहने लगे थे कि हमारी विद्या कृतार्थ हुई। कुल मिलाकर यही कहना होगा कि वहाँ हर कहीं असूया-रहित निर्मल प्रेम से आप्लावित परि-शुद्ध वातावरण बन गया था।

दूसरी ओर, दोरसमुद्र में, किसी बात की कमी न रहने पर भी, किसी में मानसिक शान्ति या समाधान की स्थिति नजर नहीं आती थी। चामव्वे सदा यही महसूस करती कि कोई छाया की तरह उसके पीछे उसी का अनुगमन कर उसे भय-भीत कर रहा है। उसे किसी पर विश्वास नहीं होता, वह सबको शंका की ही दृष्टि से देखती। उसका मन वामशक्ति की ओर अधिकाधिक आकर्षित हो रहा था, लेकिन वह स्वयं वहाँ जाये या उसे ही यहाँ बुलाये, किसी तरह उसके भाई प्रधान गंगराज को इसकी खबर मिल जाती जिससे उसकी सारी आशाएँ मिट्टी में मिल जातीं। उस दिन की उस घटना के बाद वह सर उठाकर अपने पतिदेव से या भाई प्रधान गंगराज से मिल भी नहीं सकती थी। वे भी एक तरह से गम्भीर मुद्रा में मुँह बन्द किये मौन ही रहते। तब वह सोचती कि मेरी यह हालत देखकर वह चंट हेग्गड़ती फूलकर कुप्पा हो जायेगी। ऐसी स्थिति में मेरा जीवन ही किस काम का? मैं क्या करूँ?

दण्डनायिका के बच्चे भी खेल-खिलवाड़ में ही समय बितानेवाले रह गये थे। कहाँ, क्या और कैसे हो रहा है यह सब समझने-बूझने की उनकी उम्र हो गयी थी। वे घर में इस परिवर्तित वातावरण को भाँप चुकी थीं। परन्तु इस तरह के परिवर्तन का कारण जानने में वे असमर्थ थीं। अगर पूछें भी तो क्या जवाब मिलेगा, यह वे समझ सकती थीं। यों उनका उत्साह कुंठित हो रहा था। इन कारणों से उनका शिक्षण और अभ्यास यांत्रिक ढंग से चल रहा था।

इस परिवर्तित वातावरण का परिणाम पद्मला पर कुछ अधिक ही हुआ था। उससे जितना सहा जा सकता था उतना उसने सह लिया। आखिर एक दिन उसने माता से पूछने का साहस किया, "माँ, आजकल घर में राजमहल के बारे में कोई बात क्यों नहीं जबकि दिन में एक बार नहीं, बीसों बार कुछ-न-कुछ बात होती ही रहती थी। इस परिवर्तन का क्या कारण है?"

माँ ने कहा, "अरी, जाने दे, हर रोज वही-वही बातें करती-करती थक गयी हूँ।"

उसे लगा कि माँ टरका रही हैं, इसीलिए उसने फिर पूछा, "तुम्हें शायद ऐसा लगे, मगर मुझे तो ऐसा नहीं लगता। क्या कोई ऐसा आदेश जारी हुआ है कि कोई राजमहल से सम्बन्धित बात कहीं न करें?"

"लोगों का मुँह बन्द करना तो राजमहल को भी संभव नहीं। वैसे भी ऐसा

आदेश राजमहलवाले नहीं देंगे।"

"तो क्या युवराज की तरफ़ से कोई ख़बर आयी है ?" पद्मला ने पूछा।

"मुझे तो कोई खबर नहीं मिली।"

"पिताजी जाते होते तो आपसे कहते ही, है न ?"

"यों विश्वास नहीं कर सकते। वे सभी बातें स्त्रियों से नहीं कहते।"

"यह क्या कहती हो माँ, तुम ही कह रही थीं कि वे सभी बातें तुमसे कहा करते है।"

"उन्हीं से पूछ लो।"

"तो मेरे पिताजी मेरी माताजी पर पहले जैसा विश्वास नहीं रखते है ?" पद्मला को लगा कि वह बात आगे न बढ़ाए, और वह वहाँ से चली गयी। सोचा, चामला से बात छेड़कर जानने की कोशिश करूँ लेकिन फिर समझा कि उससे क्यों छेड़ूँ ? पिताजी के पास जाकर उन्हीं से बात क्यों न कर ली जाये ? अगर पिताजी कह दें कि राजमहल की बातों से तुम्हें क्या सरोकार, अम्माजी, बच्चों को बच्चों ही की तरह रहना चाहिए, तो ? एक बार यह भी उसके मन में आया कि यदि राजकुमार यहाँ होते तो उन्हीं से पूछ लेती। राजकुमार की याद आते ही उसका मन अपने ही कल्पनालोक में खो गया।

राजकुमार ने युद्ध-रंग में क्या-क्या न किया होगा ? वे किस-किसकी प्रशसा के पात्र न बने होंगे ? कितने शत्रुओं की आहुति न ली होगी उन्होंने ? धारानगरी के युद्ध में युवराज ने जो कौशल दिखाया था उससे भी एक कदम आगे मेरे प्रिय-पात्र का कौशल न रहा होगा ? वे जब लौटेंगे तब जयमाला पहनाने का मौक़ा सबसे प्रथम मुझे मिले तो कितना अच्छा हो ? परन्तु ऐसा मौक़ा मुझे कौन मिलने देगा ? अभी पाणिग्रहण तक तो हुआ नहीं। वह हुआ भी कैसे होता ? माँ की जल्द-बाजी और षड्यन्त्र होने देते तब न ? अब पता नहीं, होगा भी या नहीं। जयमाला पहनाने का नहीं तो कम-से-कम आरती उतारने का ही मौक़ा मिल जाये। भगवान से प्रार्थना है कि वे विजयी होकर जल्दी लौटें। मुझे तो सदा उन्हीं की चिंता है, उसी तरह मेरे विषय में चिंता उनके मन में भी होनी ही चाहिए। लेकिन उन्होंने मेरे लिए कोई खबर क्यों नहीं भेजी ? आने दो, उन्हें इस मौन के लिए अच्छी सीख दूँगी, ऐसा पाठ पढ़ाऊँगी कि फिर दुबारा कभी ऐसा न करें। उसकी यह विचार-धारा तोड़ी नौकर दडिग ने जिसने आकर खबर दी कि उसे दण्डनायकजी बुला रहे है।

पद्मला को आश्चर्य हुआ। कोई बात पिता स्वय उसके पास आकर कहा करते थे, आज इस तरह बुला भेजने का कारण क्या हो सकता है ? दिमाग में यह बात उठी तो उसने नौकर से पूछा, "पिताजी के साथ गुरुजी भी हैं क्या ?"

"नहीं, अकेले हैं।" दडिग ने कहा।

"माँ भी वहीं हैं ?"

"नहीं, वे प्रधानजी के यहाँ गयी हैं।"

"कब ?"

"बहुत देर हुई।"

"पिताजी कब आये ?"

"अभी कोई आध-घण्टा हुआ। आकर राजमहल की वेष-भूषा उतारकर हाथ-मुँह धोकर उन्होंने आपको बुलाने का हुक्म दिया, सो मैं आया।"

"ठीक" कहकर पद्मला उठकर चली गयी।

जब वह पिता के कमरे में गयी तो देखा कि पिता पैर पसारे दीवार से पीठ लगाकर पलंग पर बैठे हैं। किवाड़ खोलकर पद्मला ने अंदर प्रवेश किया तो तकिये से लगकर बैठते हुए बोले, "आओ, बेटी, बैठो।"

"तुम्हारी माँ ने तुम्हारे मामा के घर जाते समय तुमसे कुछ कहा, अम्माजी ?"

"पिताजी, मुझे मालूम ही नहीं कि माँ वहाँ गयी हैं।"

"मैंने सोचा था कि उसने कहा होगा। कोई चिंता नहीं। खबर आयी है कि युवराज लौट रहे हैं। इसलिए तुम्हारे मामा ने माँ को बुलवाया है। मैंने सोचा था कि यह बात उन्होंने तुमसे कही होगी।"

"विजयोत्सव की तैयारी के बारे में विचार-विनिमय के लिए माँ को बुलवाया होगा, पिताजी ?" पद्मला ने पूछा। उसे इस बात का संकोच हो रहा था। विजय के बारे में सीधा सवाल पूछ न सकी।

"विजय होने पर भी उत्सव नहीं होगा, अम्माजी। युवराज अधिक जख्मी हो गये हैं, यह सुनने में आया है।"

"हे भगवान्, राजकुमार तो कुशल हैं न ?" कुछ सोचकर बोलने के पहले ही ये शब्द आपसे आप उसके मुँह से निकल पड़े।

"राजकुमार तो कुशल हैं। उन्हीं की होशियारी और स्फूर्ति के कारण, सुनते हैं, युवराज बच गये। उत्सव में स्वयं युवराज भाग न ले सकेंगे, इसलिए धूमधाम के साथ सार्वजनिक उत्सव नहीं होगा। परन्तु मन्दिर-वसतियों में मंगल-कामना के रूप में पूजा आदि होगी।"

"युवरानीजी के पास खबर पहुँचायी गयी है, पिताजी ?"

"वे दोरसमुद्र की ओर प्रस्थान कर चुकी हैं। शायद कल-परसों तक यहाँ पहुँच जाएँगी। इसी वजह से तुम्हारे मामा ने तुम्हारी माँ को बुलवा लिया है।"

पद्मला को प्रकारान्तर से अपने प्रिय की कुशलता का समाचार मिला। इतना ही नहीं, उसे यह बात भी मालूम हुई कि वे युद्ध-चतुर भी हैं। इस सम्बन्ध में विस्तार के साथ पूछने और जानने में उसे संकोच हो रहा था। यह बात तो

एक ओर रही, उसे यह ठीक नहीं लग रहा था कि यह समाचार बताये बिना ही माँ मामा के यहाँ चली गयी, जबकि कोई बहाना ढूँढकर अपने भावी दामाद के बारे में कुछ-न-कुछ जरूर कहती ही रहतीं। माँ अपने लिए और मेरे लिए भी जो समाचार सन्तोषजनक हो, उसे बिना बताये रह जाने का क्या कारण हो सकता है? पिताजी ने मुझे बुलवा भेजा। इस तरह उनके बुलावे के साथ माँ के इस व्यवहार का कोई सम्बन्ध है? इन विचारों से उभरी तो वह यह समझकर वहाँ से उठी कि केवल इतना समाचार कहने को ही पिताजी ने बुलवाया होगा। लेकिन मरियाने ने मौन तोड़ा—

"ठहरो, बेटी, तुमसे कुछ क्लिष्ट बातें करनी हैं, तुम्हारी माँ की गैरहाजिरी में ही तुमसे बात करनी है, इसीलिए तुम्हें बुलवाया है। किवाड़ बन्द कर साँकल लगा आओ।"

पद्मला साँकल लगाकर बैठ गयी तो वे फिर बोले—

"बेटी, मैं तुमसे कुछ बातें पूछूँगा। तुम्हें निःसंकोच, बिना कुछ छिपाये स्पष्ट उत्तर देना होगा। दोगी न?"

पिताजी की ओर कुछ सन्दिग्ध दृष्टि से देखती हुई उसने सर हिलाकर अपनी स्वीकृति व्यक्त की।

"बलिपुर के हेग्गड़े की लड़की के बारे में तुम्हारे विचार क्या हैं?"

"पहले मैं समझती थी कि वह गर्वीली है, लेकिन बाद में धीरे-धीरे मैं समझी कि वह अच्छी लड़की है।"

"तुम्हारे बारे में उसके क्या विचार हैं?"

"यह कैसे बताऊँ पिताजी? वह मुझे गौरवपूर्ण दृष्टि से ही देख रही थी। चामला और उसमें अधिक मेलजोल था। यह कह सकते हैं कि चामला उसे बहुत चाहती है।"

"तो क्या, तुम नहीं चाहतीं उसे?"

"ऐसा नहीं, हम दोनों में उतना मेलजोल नहीं था, बस।"

"कोई द्वेष-भावना तो नहीं है न?"

"उसने ऐसा कुछ नहीं किया जिससे ऐसी भावना होती।"

"हेग्गड़तीजी कैसी हैं?"

"युवरानीजी उनके प्रति स्वयं इतना प्रेम रख सकती हैं तो वे अच्छी ही होनी चाहिए।"

"सो तो ठीक है; मैं पूछता हूँ कि उनके बारे में तुम्हारे विचार क्या हैं?"

"वे बहुत गौरवशाली और गम्भीर हैं। किसी तरह का ज़ोर-ज़ुल्म नहीं करतीं। अपने में सन्तुष्ट रहनेवाली हैं।"

"उनके विषय में तुम्हारी माँ के क्या विचार हैं?"

"माँ को तो उनकी छाया तक पसन्द नहीं।"
"क्यों ?"
"कारण मालूम नहीं।"
"कभी उन दोनों में कुछ कड़वी बातें हुई थी ?"
"जहाँ तक मैं जानती हूँ ऐसा कुछ नहीं हुआ है।"
"तुम्हें उनके प्रति आदर की भावना है; युवरानीजी उनसे प्रेम रखती हैं; तुम्हारी माँ की भी उनके प्रति अच्छी राय होनी चाहिए थी न ?"
"हाँ होनी तो चाहिए थी। मगर नहीं है। मैंने भी सोचा। क्योंकि पहले ही मैं माँ उनके प्रति कुछ कड़वी बातें ही किया करती थी। उसे सुनकर मेरे मन में भी अच्छी राय नहीं थी। परन्तु मैंने अपनी राय बदल ली। पर माँ बदली नहीं।"
"तुमने इन बारे में अपनी माँ से बातें की ?"
"नहीं। माँ सब बातों में होशियार है तो थोड़ा बेवकूफ भी है। यह समझकर भी उनसे ऐसी बातें करें भी कैसे ? अपने को ही सही मानने का हठी स्वभाव है माँ का। वे हमेशा 'तुम्हें क्या मालूम है, अभी बच्ची हो, तुम चुप रहो' वग़ैरह कहकर मुँह बन्द करा देती है। इसलिए मैं इस काम में नहीं पड़ी।"
"तुम्हारी माँ के ऐसा करने का कोई कारण होना चाहिए न ?"
"ज़रूर, लेकिन वह उन्होंने आपसे कहा ही होगा। मुझे कुछ मालूम नहीं।"
"जाने दो, वह कुछ भी समझ ले। जैसा तुमने कहा, उसका स्वभाव ही ऐसा है। अच्छा, तुम्हारी माँ ने कहा है कि राजकुमार ने तुम्हें एक आश्वासन दिया है। क्या यह सच है ?"
"हाँ, सच है।"
"उनके इस आश्वासन पर तुम्हें विश्वास है ?"
"अविश्वास करने लायक कोई व्यवहार उन्होंने कभी नहीं किया।"
"तो तात्पर्य यह कि तुम्हें उनके आश्वासन पर भरोसा है, है न ?"
"क्या आप समझते हैं कि वह विश्वसनीय नहीं ?"
"न, न, ऐसी बात नहीं, बेटी। तुम जिसे चाहती हो वह तुम्हारा बने और उससे तुम्हें सुख मिले, इसके लिए तुममें विश्वास दृढ़ होना चाहिए। मुझे मालूम है कि तुम उनसे प्रेम करती हो। परन्तु, तुम उनसे उनके व्यक्तित्व से आकर्षित होकर प्यार करती हो या इसलिए प्यार करती हो कि वे महाराज बनेंगे, यह स्पष्ट होना चाहिए।"
"पिताजी, पहले तो माँ के कहे अनुसार मुझे महारानी बनने की आशा थी। परन्तु अब सबसे अधिक प्रिय मुझे उनका व्यक्तित्व है।"
"ठीक, जब तुमने सुना कि वे युद्धक्षेत्र में गये, तब उन्हें कैसा लगा बेटी ?"
"कौन ? जब बड़े राजकुमार गये तब ?"

"हाँ, बेटी।"

"मुझे भय और सन्तोष दोनों एक साथ हुए, पिताजी।"

"बड़ी अच्छी लड़की, तुमने भय और सन्तोष दोनों को साथ लगा दिया, बताओ तो भय क्यों लगा?"

"उनकी प्रकृति कुछ कमज़ोर है इसलिए यह सुनते ही भय लगा। परन्तु वह भय बहुत समय तक न रहा, क्योंकि ऐसे समय की वे प्रतीक्षा करते थे। मेरा अन्तरंग भी यही कहता था कि उन्हें वांछित कीर्ति मिलेगी ही, उनकी उस कीर्ति की सहभागिनी मैं भी बनूँगी, इस विचार से मैं सन्तुष्ट थी।"

"ठीक है, बेटी, अब मालूम हुआ कि तुम्हारी अभिलाषा क्या है। तुममें जो उत्साह है, सो भी अब मालूम हुआ। तुम्हारी भावना जानकर मुझे भी गर्व हो रहा है। परन्तु, तुम्हें अपनी इस उम्र में और भी ज्यादा संयम से रहना होगा। कठिन परीक्षा भी देनी पड सकती है। इस तरह के आसार दिखने लगे हैं। एकदम ऐसी स्थिति आ जाने पर पहले से उसके लिए तुम्हें तैयार रहना होगा। यही बात बताने के लिए तुम्हें बुलाया है, बेटी। सम्भव है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न ही न हो। पर हो ही जाय तो उसका सामना करने को हमें तैयार रहना चाहिए।"

"पिताजी, आपने जो कुछ कहा, वह मेरी समझ में नहीं आया। और ये आप चुप क्यों हो गये?"

"हाँ, बेटी। मुझे मालूम है कि यह सब तुम्हारी समझ मे नहीं आया होगा। पर मैं भी सोच रहा हूँ कि तुम्हें कैसे समझाऊँ? अब देखो, मैंने तुमसे संयम से रहने को कहा। ऐसा कहना हो तो सन्दर्भ कैसा हो सकता है, यह तुम्हें एक उदाहरण देकर बताता हूँ। यह केवल उदाहरण है, इसे इससे अधिक महत्त्व देने की आवश्यकता नहीं। बड़े राजकुमार के साथ तुम्हारे विवाह की कोशिश चल रही है, अगर इस कोशिश का फल उल्टा हो जाए या वैसी हालत पैदा हो···।" उनकी बात पूरी भी न हो पायी थी कि घबड़ाकर पद्मला रो पड़ी। उसकी यह हालत मरियाने से देखी न गयी। घुमा-फिराकर बात समझाने की कोशिश की। परन्तु जिस दिमाग में हाथ में तलवार लेने की प्रेरणा क्रियाशील रहती हो उस दिमाग में कोमल-हृदय बालिका को बिना दुखाये समझा सकने का मार्दव कहाँ से आता? वे उसे अपने पास खींचकर प्यार से उसकी पीठ सहलाते हुए बोले, "बेटी, पोय्सल राज्य के महादण्डनायक की बेटी होकर भी तुम केवल एक उदाहरण के तौर पर कही गयी बात को ही लेकर इतनी अधीरता दिखा रही हो। तुम्हें डरना नहीं चाहिए। तुम्हारी आशा को सफल बनाने के लिए मैं सब कुछ करूँगा। तुम्हारे मामा भी यही विचार कर रहे हैं। इस तरह आँचल में मुँह छिपाकर रोती रहोगी तो कल महारानी बनकर क्या कर सकोगी? कई एक बार कठोर सत्य का धीरज के साथ सामना करना होगा, तभी अपने लक्ष्य तक पहुँच सकोगी। ऐसी स्थिति में

आँचल में मुँह छिपाकर बैठे रहने से काम कैसे चलेगा। मुँह पर का आँचल हटाओ और मैं जो कहता हूँ वह ध्यान से सुनो।" कहते हुए अपने करवाल-पकड़नेवाले हाथ से उसकी पीठ सहलाने लगे। थोड़ी देर बाद, उमड़ते हुए आँसुओं को पोंछकर उसने उनकी ओर देखा तो वे बोले, "बेटी, अब सुनो। युवराज, राजकुमार और युवरानीजी के लौटने के बाद भी उनके दर्शन शायद न हो सकें, इस तरह की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी है। इन परिस्थितियों के बारे में कुछ नहीं पूछना ही अच्छा है क्योंकि उन्हें उत्पन्न करनेवाले हमारे ही आप्त जन है। उनका कोई बुरा उद्देश्य नहीं है। परन्तु अपनी जल्दबाजी और असूया के कारण वे ऐसा कर बैठे हैं। ऐसी स्थिति उत्पन्न न होने देने के प्रयत्न में ही तुम्हारे मामा ने तुम्हारी माँ को बुलाया है। उनके उस प्रयत्न को निष्फल होने की स्थिति में सबसे अधिक दुःख तुम्हें होगा, यह मुझे मालूम है। तुम निरपराध बच्ची हो। ऐसी हालत का सामना करने की स्थिति उत्पन्न नहीं होनी चाहिए थी। पर उत्पन्न हो गयी है। इसलिए कुछ समय तक राजकुमार का दर्शन न हो तो भी तुम्हें परेशान नहीं होना चाहिए। दूर रहने पर मन एक तरह से काबू में रहता है। युद्धभूमि से लौटने के बाद युवराज वेलापुरी में नहीं रहेंगे। महाराज की इच्छा है कि वे यहीं रहें। बताओ, कुछ समय तक, राजकुमार के दर्शन न होने पर भी तुम शान्ति और संयम के साथ रहोगी कि नहीं ?"

बेचारी ने केवल सिर हिलाकर सम्मति की सूचना दी। कुछ देर तक पिताजी की बातें मन में दुहराती रही, फिर बोली, "पिताजी, मेरे विचार गलत हों तो क्षमा करें। जो सूझा उसे निवेदन कर रही हूँ। आपकी बातों से ऐसा लगता है कि वह आप्त व्यक्ति हमारी माँ ही हो सकती है।"

यह बात सुनकर मरियाने के चेहरे पर व्यंग्य की रेखा खिंच गयी, "तुम्हें ऐसा भान क्यों हुआ, बेटी ?"

"वे कुछ समय से राजकुमार के या राजमहल के सम्बन्ध में बात ही नहीं करतीं। एक दिन मैंने पूछा तो बोली कि रोज-रोज वे ही बातें क्यों करनी ?"

"कुछ भी कारण हो बेटी, तुम अपनी माँ से इस विषय में कुछ भी बात न करना। और राजकुमार से मिलने में भी किसी तरह का उतावलापन प्रकट न करना। समय आने पर सब ठीक हो जाएगा।"

"इस तरह की चेतावनी का कारण मालूम होता तो···।"

मरियाने बीच ही में बोल उठे, "बेटी, मैं पहले ही कह चुका हूँ कि कारण जानने की आवश्यकता नहीं। यह बात जितने कम लोगों को मालूम हो उतना ही अच्छा रहेगा। अब जिन-जिनको मालूम है उन्हें छोड़ किसी और को यह मालूम न हो, यही प्रधानजी का आदेश है। उनके इस आदेश के पालन में ही हमारे परिवार की और तुम्हारी भलाई है। बेटी, यह शरीर पिरियरसी पट्टमहादेवी

केलेयब्बरसीजी के प्रेमपूर्ण हाथों में पालित होकर बढ़ा है। हमारे घराने के अस्तित्व का कारण भी वे ही है। हमारे और राजघरानों में एक निष्ठायुक्त सम्बन्ध स्थापित रहा है। कोई नयी गलती करके इस सम्बन्ध का विच्छेद होने नहीं देना चाहिए। अब मौन रहने से उत्तम कार्य कोई नहीं। तुम लोग अपना दैनिक अभ्यास निश्चिन्त होकर चालू रखो। अब चलो। बार-बार इसी विषय को लेकर बात करना बन्द करो।" उन्होंने स्वयं उठकर किवाड़ खोले।

पद्मला गम्भीर मुद्रा में कुछ सोचती हुई प्रांगण को पार कर बड़े प्रकोष्ठ में आयी ही थी कि उसे माँ की आवाज़ सुन पड़ी। वह अभी-अभी ही आयी थी। इसलिए, वह मुड़कर सीधी अपने अभ्यास के प्रकोष्ठ में चली गयी और तानपूरा लेकर उसके कान ऐंठने लगी। श्रुति ठीक हो जाने पर उसीमें लीन हो गाने लगी। उसकी उस समय की मानसिक स्थिति के लिए ऐसी तन्मयता आवश्यक थी। सबकुछ भूलकर संयत होने का इससे अच्छा दूसरा साधन ही क्या हो सकता था?

हमारे अन्य महत्त्वपूर्ण उपन्यास

अमृता प्रीतम : चुने हुए उपन्यास	अमृता प्रीतम	90.00
कोरे काग़ज़	,,	15.00
कहाँ पाऊँ उसे	समरेश बसु	75.00
बन्द दरवाज़े	सुमंगल प्रकाश	50.00
कथा एक प्रान्तर की (पुरस्कृत)	एस. के. पोट्टेक्काट	50.00
मृत्युंजय (पुरस्कृत)	वीरेन्द्र कुमार भट्टाचार्य	35.00
मृत्युंजय (तृ. सं.)	शिवाजी सावंत	75.00
अमृता	रघुवीर चौधरी	35.00
गोमटेश गाथा	नीरज जैन	25.00
शब्दों के पींजरे में	असीम रॉय	20.00
छिन्न पत्र	सुरेश जोशी	12.00
स्वामी (द्वि. सं.)	रणजित देसाई	35.00
मूकज्जी (पुरस्कृत) (द्वि. सं.)	शिवराम कारन्त	27.00
सुवर्णलता (तृ. सं.)	आशापूर्णा देवी	45.00
बकुल-कथा (तृ. सं.)	,,	45.00
अवतार वरिष्ठाय	विवेकरंजन भट्टाचार्य	10.00
भ्रमभंग	देवेश ठाकुर	13.00
बारूद और चिनगारी	सुमंगल प्रकाश	20.00
जय पराजय	,,	20.00
आधा पुल (द्वि. सं.)	जगदीशचन्द्र	14.00
मुट्ठी भर कांकर	,,	32.00
छाया मत छूना मन (द्वि. सं.)	हिमांशु जोशी	12.00
कगार की आग (द्वि. सं.)	,,	14.00
पुरुष पुराण	विवेकीराय	8.00
माटीमटाल भाग 1 (पुर., तृ. सं.)	गोपीनाथ महान्ती	
माटीमटाल भाग 2 (पुर., तृ. सं.)	,,	
देवेश : एक जीवनी	सत्यपाल विद्यालंकार	15.00
धूप और दरिया	जगजीत बराड़	6.00
समुद्र संगम	भोलाशंकर व्यास	17.00
पूर्णावतार (द्वि. सं.)	प्रमथनाथ विशी	25.00
दायरे आस्थाओं के	स. लि. भैरप्पा	9.00

नमक का पुतला सागर में (द्वि. सं.)	धनंजय वैरागी	18.00
तीसरा प्रसंग	लक्ष्मीकांत वर्मा	
टेराकोट (द्वि. सं.)	,,	
आईने अकेले हैं	कृश्नचन्दर	5.00
कहीं कुछ और	गंगाप्रसाद विमल	7.00
मेरी आँखों में प्यास	वाणी राय	10.00
विपात्र (च. सं.)	ग. मा. मुक्तिबोध	5.00
सहस्रफण (द्वि. सं.)	वी. सत्यनारायण	16.00
रणांगण	विश्राम वेडेकर	3.50
कृष्णकली (छठा सं.)	शिवानी { पेपरबैक	20.00
	लाइब्रेरी	28.00
हँसली बाँक की उपकथा (द्वि. सं.)	ताराशंकर वन्द्योपाध्याय	25.00
गणदेवता (पुरस्कृत, छठा सं.)	,,	42.00
अस्तंगता (द्वि. सं.)	'भिक्खु'	9.00
महाश्रमण सुनें ! (द्वि. सं.)	,,	4.00
अठारह सूरज के पौधे (द्वि. सं.)	रमेश बक्षी	12.00
जुलूस (पं. सं.)	फणीश्वरनाथ 'रेणु' { पेपरबैक	8.00
	लाइब्रेरी	12.00
जो (द्वि. सं.)	प्रभाकर माचवे	4.00
गुनाहों का देवता (अठारहवाँ सं.)	धर्मवीर भारती	20.00
सूरज का सातवाँ घोड़ा (दसवाँ सं.)	{ पेपरबैक	6.50
	लाइब्रेरी	10.00
पीले गुलाब की आत्मा (द्वि. सं.)	विश्वम्भर मानव	6.00
अपने-अपने अजनबी (छठा सं.)	अज्ञेय { पेपर बैक	5.50
	लाइब्रेरी	8.50
पलासी का युद्ध	तपनमोहन चट्टोपाध्याय	5.00
ग्यारह सपनों का देश (द्वि. सं.)	सं. लक्ष्मीचन्द्र जैन	7.00
राजसी	देवेशदास, आई. सी. एस.	5.00
रक्त-राग (द्वि. सं.)	,,	5.00
शतरंज के मोहरे (पुरस्कृत, च. सं.)	अमृतलाल नागर	12.00
तीसरा नेत्र (द्वि. सं.)	आनन्दप्रकाश जैन	4.50
मुक्तिदूत (पुरस्कृत, च. सं.)	वीरेन्द्रकुमार जैन	13.00

□



सी. के. नागराजराव

कर्नाटक के चित्रदुर्ग जिले के चल्लकेरे ग्राम में 12 जून 1915 में जनमे श्री नागराजराव को वृत्ति से एक इंजीनियर होना था किन्तु कन्नड साहित्य एव इतिहास के अध्ययन-मनन ने उनके जीवन की जैसे दिशा ही बदल दी। आज उनकी ख्याति कन्नड़ के श्रेष्ठ साहित्यकारो मे है। एक मजे हुए मंच-अभिनेता और निर्देशक के साथ-साथ वे कन्नड़ चलचित्र-जगत् के सफल पटकथाकार भी है। आदर्श फिल्म इंस्टीट्यूट, बैंगलोर के उप-प्रधानाचार्य (1973-77), कन्नड़ साहित्य परिषद् के भूतपूर्व कोषाध्यक्ष एव मानद सचिव, मिथिक सोसायटी की कार्यसमिति के सदस्य, असहयोग आन्दोलन मे गाधीजी के साथ सक्रिय भूमिका आदि जीवन के बहुमुखी आयामो के कारण कर्नाटक की धरती पर पर्याप्त लोकप्रिय हो चुके है। कर्नाटक राज्य साहित्य अकादमी द्वारा उन्हें दो बार सम्मानित किया जा चुका है।

लेखन-कार्य

उपन्यास : पट्टमहादेवी शान्तलादेवी (कर्नाटक राज्य साहित्य अकादमी से पुरस्कृत), नविद जीव।

कहानी-संग्रह : काडु मल्लिगे, संगम, दृष्टिमंथन।

नाटक (मौलिक एवं अनूदित) : हरिश्चन्द्र, शूद्रमुनि, एकलव्य, अमितमति, कुरंगनयनी, अक्क महादेवी, कांडेक्ट मैडल, संकोले बसव, सम्पन्न समाज, रमा, छाया, हेमवती आदि।

अनुसंधान-समीक्षा : लक्ष्मीश का काल और स्थान (कर्नाटक राज्य साहित्य अकादमी से पुरस्कृत)।

अन्य : बांग्ला के शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय, अंग्रेजी के एलन पेटन, रूस के दोस्तो एवस्की आदि ख्यात साहित्यकारों की अनेक कृतियो का कन्नड़ में अनुवाद। अनेक निबन्ध तथा व्यंग्य रचनाएं।